

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

~~~~~

ग्रन्थाङ्कः ७२

वैद्यनाथकृतगदाटीकासंवलितः  
परिभाषेन्दुशेखरः ।

एतत्पुस्तकं

वे० शा० रा० रा० गोखले इत्युपाह्वैर्गणेशशा-  
स्त्रिभिः संशोधितम् ।

तत्

हरि नारायण आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३५

ख्रिस्ताब्दाः १९१३

( अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः )

मूल्यमाणकषट्कसहितं रूपकद्वयम् । ( २६ )

## आदर्शपुस्तकालेखपत्रिका ।



अस्य गद्दाटीकासाहितस्य परिभाषेन्दुशेखरस्य पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संशोधनार्थं प्रदत्तानि तेषां नामादीनि संज्ञाश्च प्रदर्श्यन्ते—

- ( क. ) इति संज्ञितम्—कै० नारायणशास्त्री साठे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७८८
- ( ख. ) इति संज्ञितम्—रा० रा० निळोपंत वझे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७१२
- ( ग. ) इति संज्ञितम्—आनन्दाश्रमस्थम् । अस्य लेखनकालः संवत् १८३१
- ( घ. ) इति संज्ञितम्—वे० शा० सं० रा० वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १८१२
- ( ङ. ) इति संज्ञितम्—वे० शा० रा० काशीनाथशास्त्री अगाशे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७२६
- ( च. ) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तनस्थानां रा० रा० काशीनाथ बळवंत पेणसे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शकः १८२९



## शुद्धिपत्रम् ।

—:\*:—

| शुद्धम् । | पङ्क्तिः । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|-----------|------------|------------|-----------|
| ७         | २३         | द्या       | द्या      |
| १०        | १७         | पि         | पी        |
| १३        | १३         | था चोष     | था चाच उप |
| ३४        | २८         | स्व        | स्व       |
| १५        | १६         | कृदा       | कृदा      |
| १६        | ६          | ष्य        | ष्य       |
| १९        | २६         | स्वा       | वा        |
| २०        | २६         | था         | या        |
| २३        | २          | ध्व        | ध्व       |
| २३        | ९          | दास        | द स       |
| २३        | १६         | धयि        | धीय       |
| २७        | २१         | स          | सं        |
| २९        | ६          | थ          | थ         |
| ३१        | २९         | चो         | च         |
| ३२        | ११         | स्व        | स्व       |
| ३२        | १४         | स्व        | स्वं      |
| ३६        | ६          | झे इ       | झावि      |
| ३६        | १७         | झेर्ष      | झेर्ष     |
| ३७        | २६         | तत्ये      | तेत्य     |
| ३८        | १७         | व.         | व         |
| ३८        | १८         | सू         | सू        |
| ४०        | १८         | त्य        | त्य       |
| ४१        | ११         | इ          | इ         |
| ६७        | <          | इ          | इ         |
| ७१        | १४         | वात्       | वर्ति     |
| ७१        | १६         | वु         | वु        |
| ७१        | २७         | म          | मा        |
| ७१        | २८         | रु         | रु        |

[ २ ]

| पृष्ठम् । | पङ्क्तिः । | अशुद्धम् । | शुद्धम् ।   |
|-----------|------------|------------|-------------|
| ७२        | २१         | सु         | मु          |
| ८७        | २०         | ग          | ङ्ग         |
| ९२        | २२         | त् । क्    | त् । उक्त   |
| ९५        | २४         | त्त        | त           |
| ९८        | ३०         | स्थ        | स्य         |
| ९९        | १७         | त्वं       | त्वं        |
| ९९        | २०         | स्याः      | स्था        |
| १००       | २५         | स्व        | स्वं        |
| १००       | २९         | त्व        | त्व         |
| १०१       | १६         | न्यु       | न्यु        |
| १०१       | २८         | मित        | भिमित       |
| १०३       | ११         | स्थ        | स्य         |
| १०४       | २६         | न्मतुप्    | दिष्टन्     |
| १०४       | २७         | श्र        | श्रु        |
| १०५       | १०         | तोलाः      | तोऽला       |
| १०६       | १६         | ष्यो       | षो          |
| १०७       | २३         | स्था       | त्या        |
| १०८       | २७         | स्यः       | स्य         |
| १०९       | ७          | पि त्वाः   | पि तत्त्वाः |
| १०९       | १२         | त्वये      | कस्ये       |
| १११       | १४         | र्तुं बृ   | र्तुं बृ    |
| १११       | २६         | स्थाः      | स्याः       |
| ११७       | १६         | द्धि       | द्ध         |
| ११७       | २५         | य          | यं          |
| ११७       | २७         | दमि        | दनमि        |
| १२०       | १०         | लो         | लौ          |
| १२०       | २४         | स्वे       | से          |
| १२१       | २२         | द्         | न्द्र       |
| १२६       | ४          | त्या स्याः | त्याऽस्याः  |
| १३०       | ६          | प्ये       | प्यै        |

| पृष्ठम् । | पङ्क्तिः । | अशुद्धम् ।       | शुद्धम् ।        |
|-----------|------------|------------------|------------------|
| १३७       | १७         | त्त              | न्त              |
| १३८       | ६          | ष                | प                |
| १३८       | १०         | र्थ              | र्थ              |
| १४०       | १३         | वा               | वा               |
| १४२       | ११         | स्ति             | त्ति             |
| १४४       | १२         | थ्य              | ध्य              |
| १५२       | २४         | यी               | पी               |
| १५६       | ७          | ध                | व                |
| १५८       | २३         | सां              | स                |
| १५९       | ३          | धा               | धो               |
| १५९       | १३         | ञ्चु             | ञ्चु             |
| १५९       | २५         | ञे               | ने               |
| १५९       | ३१         | जित्य            | जित्यांशये       |
| १६१       | १४         | ते               | वे               |
| १६४       | २४         | ब्द्या           | ब्धा             |
| १६४       | २५         | विभक्तौ किमुक्तं | किमुक्तं विभक्तौ |
| १७४       | १९         | पा               | प                |
| १७७.      | १२         | धा               | घा               |
| १७८       | ५          | घौ               | घौ               |
| १७८       | १६         | वि वि            | वि               |
| १७९       | २५         | रीव              | रवि              |
| १८१       | १७         | थोः              | योः              |
| १८१       | २२         | स                | स                |
| १९१       | ४          | त्वं             | त्वं             |
| १९२       | ४          | ब्द              | द्र              |
| १९२       | १७         | र्थ              | र्थ              |
| १९२       | २०         | दत्              | त्               |
| २००       | १७         | कृडिचे           | कृडितिचे         |
| २०८       | २६         | ता               | त                |
| २०९       | १४         | त्वा             | त्वा             |
| २११       | १५         | न्या             | न्या             |

[ ४ ]

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | अक्षुद्धम् । | शुद्धम् । |
|-----------|-----------|--------------|-----------|
| २१४       | २२        | मै           | मे        |
| २१६       | ९         | त्र          | त्रे      |
| २२१       | २०        | ड्य          | ण्ड्यं    |
| २२२       | १४        | क्ता         | क्त       |
| २२३       | २०        | इय           | इय        |
| २२४       | २२        | स्या         | स्या      |
| २३१       | ६         | र्धा         | र्धा      |

समाप्तम् ।

---

---

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

## परिभाषेन्दुशेखरः

वैद्यनाथकृतगदाटीकोपेतः ।

नत्वा साम्बशिवं ब्रह्म नागेशः कुरुते सुधीः ।

बालानां सुखबोधाय परिभाषेन्दुशेखरम् ॥ १ ॥

प्राचीनवैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापकन्याय-  
सिद्धानि भाष्यवार्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि  
व्याख्यायन्ते ।

ब्रह्मादयो यस्य न पारमामुवन्गङ्गाऽद्भुत मस्तकदेशवासिनी ।

वामार्धदेहाऽपि न चण्डिकाऽऽप य ध्यायामि देवं सनकादिवन्द्यकम् ॥ १ ॥

वैद्यनाथः पायगुण्डो नत्वा नागेश्वर गुरुम् ।

विवृतिं परिभाषेन्दुशेखरे तनुते गदाम् ॥ २ ॥

प्रारिप्सितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानतिरूप मङ्गलमाचरञ्चिष्याशिक्षायै  
व्याख्यातृश्रोतृणामनुषङ्गतो मङ्गलाय च निबध्नाति—नत्वेति । निर्गुणमूर्तेर्नित्यसमवादाह-  
साम्बेति । रूपकमिदम् । बालानां, भाष्यादितः परिभाषार्थनिर्णयासमर्थानाम् । परिभाषेन्दुर-  
र्थप्रकशकत्वात्स शेखरे यस्येति । ग्रन्थपक्षे तत्र तासामेव व्याख्येयत्वेन वन्द्यत्वान्मस्तकधृ-  
तत्वमारोप्यते । यद्वा स शेखरो भूषण यस्य । यद्वा तस्य शेखर आश्रयः । यद्वा तासां  
प्रकाशकालकारस्तम् । शिवपक्षे तु परिभाषा इवेन्दुरित्यादि स्पष्टमेव । ननु कास्ताः परिभाषा  
अत आह—प्राचीनेति । \* इन्द्रादीत्यर्थः । वाचनिकानि, सूत्ररूपेण पठितानि । अत्र,  
अस्मिन् । एवमग्रेऽपि । ज्ञापकेत्यस्य प्रायेणेत्यादिः । तथा च वाचनिकानामपि तत्सहचरि-  
तानां सग्रहः । न्यायसिद्धाज्ज्ञापकसिद्धस्य प्राबल्येनाभ्यर्हितत्वाज्ज्ञापकशब्दस्य द्वे द्वे पूर्व-  
निपातः । तत्रैतच्छास्त्रीयं लिङ्गं ज्ञापकम् । एतच्छास्त्रलोकतन्त्रान्तरप्रसिद्धा युक्तिर्न्यायैः ।  
सूत्रपाठस्थपरिभाषाणामत्राव्याख्यानार्थं [ + वाचनिकानां सग्रहाय ] प्राचीनोक्तानां कासा  
चिदप्रामाण्याय चाऽऽह—भाष्येति । [ ×तयोस्तत्त्वेन पठितानीत्यर्थः । तथा च सौत्रव-

\* ' इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नापिशली शाकटायन । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टाऽऽदिशा-  
ब्दिका. ' इदं पद्यं कपुस्तकस्थम् । + धनुश्चिह्नान्तगतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थः । X धनुश्चिह्नान्तगतो  
ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'माययुर्गङ्गा' । २ ड. 'अस्मिन्पक्षे' । ३ ग ड. 'य. । अनेन सू' । ४ ग. ड. 'व्याख्यानैऽपि  
न क्षतिरिति सूचितम् । प्रा० । ५ ग. ड. 'प्यायाऽऽह' ।



ननु 'लण्' 'अइउण्' सूत्रयोर्णकारस्यैवोपादानेनाणिग्रहणेषु संदेहादनिर्णयोऽत आह—

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम् ॥ १ ॥

विशेषस्यान्यतराद्यर्थरूपस्य व्याख्यानाच्छिष्टकृतात्प्रतिपत्तिर्निश्चयो हि यतः संदेहाच्छास्त्रमलक्षणमननुष्ठापकं लक्षणमलक्षणं तथा न शास्त्रस्य निर्णयजनकत्वौचित्यादित्यर्थः । असंदिग्धानुष्ठानसिद्धयर्थेऽत्र शास्त्रे संदिग्धोच्चारणरूपाचार्यव्यवहारेण संदेहनिवृत्तेर्व्याख्यानातिरिक्त-निमित्तानपेक्षत्वं बोध्यत इति यावत् । तेन 'अणुदित्सवर्णस्य' [ पा०सू०१।

त्त्रिरासस्तत्सग्रहश्च । एतदर्थमेव वातिकपदम् । अन्यथा भाष्य इत्येव वदेत् । ] अनेन रूढवर्थतावच्छेदकमुक्तम् । तथा च शुद्धरूढमिदं परिभाषापदम् । यद्वा योगरूढमस्तु । परितो भाष्यते या सेति योगसभवात् । अत एव 'परितो व्यापृता भाषा परिभाषा प्रचक्षते' इत्यभियुक्तोक्तिः परिभाषा पुनरेकदेशस्थेत्यादिभाष्यं च सगच्छते । एतेन शुद्धयौगिकमिदं मिति भ्रान्तोक्तिरपास्ता । सज्ञादिष्वितिप्रसङ्गादिति भावः । पुनः प्रतिज्ञा तु स्पष्टार्था । पद्या-त्तथाऽप्रतीतेः । तत्र भाष्ये सर्वतः पूर्वं व्याख्यानत इत्यस्या उक्तत्वेन सर्वशास्त्रोपकारक-त्वेन च ता तावद्वक्तुं शङ्कते—**नन्विति । विशेषेति ।** कर्तृकर्मिति कर्मषष्ठ्यन्तेन समासः । उभयप्राप्तावित्यस्योभयप्रयोग एव प्रवृत्तेरत्राप्रवृत्त्या कर्मणि चेति निषेधाप्रवृत्तेः । शेषषष्ठ्या वा । तद्वन्वयन्नाह—**विशेषेति ।** बहुसंदेहेऽन्यतमस्याऽऽदिना परामर्शः । **व्याख्याना-दिति ।** 'पदच्छेद पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना । आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं मतम्' \* इत्युक्तोपदेशपरम्परारूपागमादित्यर्थः । नन्वेवमितिप्रसङ्गोऽत आह—**शिष्टेति ।** भाष्यकारादीत्यर्थः । प्रस्तुतत्वादाह—**शास्त्रमिति ।** प्रकृतशास्त्रमित्यर्थः । ननु तत्र लक्षणत्वस्य ब्रह्मणाऽपि निषेधो दुष्करोऽत आह—**अननुष्ठेति ।** तदर्थान्तर्भावोपात्र वृत्तिरिति भावः । **औचित्यादिति ।** अन्यथा शास्त्रानर्थक्यापत्तेरिति भावः । नन्वणादिषु भाष्योक्तज्ञापकैरेव संदेहपरिहारे किमर्थं परिभाषेयमत आह—**असंदीति ।** सिद्ध्यर्थे, सिद्धिफलके । सदिग्धपदेऽर्शाद्यच् । सदिग्धार्थप्रतिपादकणकारानुबन्धोच्चारणरूपशिव-व्यवहारेणेत्यर्थः । तथा च तैर्महद्भिः प्रयत्नैः संदेहपरिहारेऽपि प्रतिपत्तिगौरवं ज्ञापकशून्य-+ स्थलेऽनिर्वाहश्चेतीयमावश्यकता । अन्यथा लाघवाय वर्णान्तरमेवानुबध्येतेति भावः । ननु ज्ञापितेऽपि प्रवर्तकतया निवर्तकतया वा नास्य चारितार्थ्यमत आह—**बोध्यत इति ।** तथा चोपदेशपरम्परया सिद्ध एवाथमर्थस्तादृशव्यवहारेण बोध्यत इति नान्यत्रेवात्र ज्ञापकता भगवतोऽभिमतैति भावः । उक्तदोषोद्धाररूपमेतत्फलमाह—**तेनेति ।** व्याख्यानेनैवेत्यर्थः ।

\* इ पुस्तके इत्येवरूपादि° इति पाठान्तरम् । + क पुस्तके अणोऽप्रगृह्येत्यादौ ।

१ ग. भाष्योक्त्यर्थेणैव तासां व्याख्यानमिति सूचयितुं तावच्छङ्को ।

१ । ६९ ] इत्येतत्परिहाय पूर्वेणाणग्रहणं, परेणेणैग्रहणमिति लणसूत्रं भाष्ये स्पष्टम् ॥ १ ॥

तत्र संज्ञापरिभाषाविषये पक्षद्वयमित्याह—

यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ २ ॥

कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥ ३ ॥

उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम् । उद्देशश्चोपदेशदेशः । अधिकरणसाधनश्चायम् । यत्र देश उपदिश्यते तद्देश एव वाक्यार्थबोधेन गृहीतशक्त्या गृहीतपरिभाषार्थेन च सर्वत्र शास्त्रे व्यवहारः । देशश्चोच्चारणकाल एवात्र शास्त्रे व्यवहियते । तत्तद्वाक्यार्थबोधे जाते भविष्यति किञ्चिदनेन प्रयोजनमिति ज्ञानमात्रेण संतुष्यद्यथाश्रुतग्राहिप्रतिपन्नपे-

[ \* लणसूत्र इति । तत्र हि दूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण इत्यादिज्ञापकादणुदित्सूत्रातिरिक्ते पूर्वणैव । अणुदित्सूत्रे तु ऋत उदित्यादिज्ञापकात्परेण । इण इत्येव सिद्धे च्वोरिति ज्ञापकादिपरणैवेत्युक्तम् ] भाष्य इति । अनेनैव सति ज्ञापकानुसरणकेशो वृथेति सूचितम् । एतेन तेषूक्तार्थसिद्धिर्न व्याख्यानमात्रात्किंतु + संज्ञापकादिति तथा प्राचोक्तमयुक्तमिति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्तमपास्त भाष्यविरोधापत्तेरिति दिक् ॥ १ ॥

अथ सीरदेवादिभिरत्रानुक्तमपि परिभाषाद्वय संज्ञापरिभाषाणां सर्वशास्त्रोपकारकत्वादादौ तत्प्रकरणोल्लेखवत्तद्विषयकमादौ वक्तुं पूर्वसगतिमाह—तत्रेति । शास्त्र इत्यर्थः । अलक्षणमित्यनेन तस्य पूर्वमुपस्थितत्वादिति भावः । संज्ञेति । इतरेतरद्वन्द्वः । अग्रे समाहारद्वन्द्वः । तत्राऽऽद्याया अर्थमाह—उद्देशमिति । ल्यबन्तस्य वर्तत इति शेषः । उद्देशोपदेशयो-रन्यत्र क्वचिद्भेदाद्देशपदस्य भावघञन्तत्वाच्चाऽऽह—उपदेशेति, अधीति च । तथा चोपदेश एवात्रोद्देशेऽर्थः । अयम्, उद्देशशब्दः । व्युत्पत्तिं सूचयितुमत्र पक्षे निर्वाहमाह—यत्रेति । एवेन विधिदेशव्यावृत्तिः । संज्ञास्थल आह—गृहीतेति । परिभाषास्थल आह—गृहीतपरीति । उभयत्र कर्मधारयः । सर्वत्र, अष्टाध्याय्याम् । ननु कोऽसावत्र देशो यत्र वाक्यार्थबोधः । प्रसिद्धदेशस्त्वत्र न सम्भवतीत्यत आह—देशश्चेति । चस्त्वर्थे । व्यवहियत इति । तथा च न मुख्यं तत्त्व किं त्वारोपितमिति भावः । नन्वेवं तदानीं विधिवाक्यार्थाज्ञानेन किमस्य फलमित्याकाङ्क्षाशान्त्यभावेन दुष्ट एवायं पक्षोऽत आह—तत्तदिति । संज्ञापरिभाषावाक्यार्थेत्यर्थः । अनेन, शक्तिग्रहेण परिभाषार्थग्रहेण च । मात्रपदेन विशेषज्ञानव्यावृत्तिः । नन्वत्र पक्षेऽग्नी इत्यादौ मृतस्यासिद्धत्वेन तत् प्रागेव मृताभावपक्षेऽनुनासिकप्रतिबन्धेन फलवत्या प्रगृह्यसंज्ञाया ततः मृते तं द्विमात्रत्वेन पश्यन्त्याः

\* वनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ । + ङ पुस्तके ज्ञापकसहितादित्यर्थः ।

१ ग. °य प्रतिज्ञानुरोधेनाऽऽह—तं । २ घ. °दुपदेशप° ।

क्षोऽयं पक्ष इतीदृत्सूत्रे [ १ । १ । ११ ] कैयटः । केचित्तु परिभाषा-  
विषये ' तस्मिन् ' ( १ । १ । ६६ ) इत्यादिवाक्यार्थबोधे सप्तमीनिर्दे-  
शादि क्तेति पर्यालोचनायां सकलतत्तद्विध्युपस्थितौ सकलतत्तत्संस्का-  
राय गुणभेदं परिकल्प्यैकवाक्यतयैव नियमः । कार्यकालपक्षे तु त्रिपा-  
द्यामप्युपस्थितिरिति विशेषः । एतदेवाभिप्रेत्याधिकारो नाम त्रिप्रकारः  
कश्चिदेकदशस्थः सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः  
सर्वं वेश्माभिज्वलयतीति ' षष्ठी स्थाने ' ( १ । १ । ४९ ) इति सूत्रे  
भाष्य उक्तम् । अधिकारशब्देन पाराशर्यात्परिभाषाऽप्युच्यते । कश्चित्प-  
रिभाषारूप इति कैयटः । दीपो यथा प्रमाद्वारा सर्वगृहप्रकाशक एव-  
मेतत्स्वबुद्धिजननद्वारा सर्वशास्त्रोपकारकमिति तत्तात्पर्यम् । एतच्च पक्ष-  
द्वयसाधारणं भाष्यं पक्षद्वयेऽपि प्रदेशैकवाक्यताया इतः प्रतीतेः । तत्रै-  
तावान्विशेषः—यथोद्देशे परिभाषादेशे सर्वविधिसूत्रबुद्ध्यावात्मभेदं  
परिकल्प्य तैरेकवाक्यता परिभाषाणाम् । तदुक्तं ' कृडिति च ' ( १ । १ ।

अपि संज्ञायाः पुनः प्रवृत्तौ बीजाभावादल्विधित्वेन स्थानिवत्त्वाभावाच्चाप्रगृह्यत्वेनानुनासिकः  
स्यादिति चेन्न । संज्ञायाः कार्यार्थतया पुनः प्रवृत्तौ कार्यसिद्धिरूपबीजसत्त्वेन पुनस्तस्याः  
सुलभत्वात् । स्पष्ट चेद तत्रैव भाष्ये । दुष्टत्वांशङ्कैव नास्तीति सूचयितुं कैयट इति सूचि-  
तामरुचिमुक्तपक्षे ध्वनयितुं च सिद्धान्तभाष्यप्रतमाह—केचिदित्यादिना । केचिदिति ।  
भाष्यतत्त्वविद इत्यर्थः । परीति । संज्ञाया विशेषस्य वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । बोधे,  
सतीति शेषः । आदिभ्यामग्रिमसूत्रतद्विषययोर्ग्रहणम् । सकलतत्तद्विधीति । सप्तमीनिर्देशा-  
दिचटितसर्वविधीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । संस्कारः, विशिष्टवाक्यार्थनिश्चयः । गुणभेदं, परि-  
भाषाभेदम् । एवेन भिन्नवाक्यताव्यावृत्तिः । नियमः, इतरव्यावृत्तिः । ननु यथोद्देशेऽप्येवं  
पदैकवाक्यताया को भेदः कार्यकालपक्षादत आह—कार्येति । अपिः सपादसप्ताध्यायी-  
समुच्चायकः । तथा च तत्र पक्षे सर्वैकवाक्यताऽत्र तु त्रिपादीभिन्नेनैवेति भेदः । वाक्यार्थ-  
बोधस्तु स्वगृह उभयथाऽप्यस्त्येवेति भावः । अत्र प्रमाणमाह—एतदेवेति । पक्षद्वयेऽपि  
पदैकवाक्यतयैव नियम इत्येतदेवेत्यर्थः । नामेति निश्चये । ननु परिभाषाप्रसङ्गेऽधिकार  
इत्युक्तिरसगताऽत आह—अधीति । तदुभयाशयमाह—दीप इति । एतदेवाभिप्रेत्येत्सु-  
क्तमभिप्रायमाह—एतच्चेति । पक्षद्वयेति । यथोद्देशकार्यकालेत्यर्थः । प्रदेशः, विधिः । इतः,  
उक्तभाष्यात् । तत्र, द्वयोः पक्षयोरेकवाक्यतायाम् । आत्मभेद, परिभाषाभेदम् । तैः, विधिसूत्रैः ।

५ ) इति सूत्रे कैयटेन—यथोद्देशे प्रधानान्यात्मसंस्काराय संनिधीय-  
मानानि गुणभेदं प्रयुञ्जत इति । कार्यकाले तु तत्तद्विधिप्रदेशे परिभाषा-  
बुद्ध्यैकवाक्यतेति । अत्रैकदेशस्थ इत्यनेन तत्रतत्र तत्तद्बुद्ध्यावपि  
तत्तद्देशस्थत्वं वारयति । यथा व्यवहर्तॄणां कार्यार्थमनेकदेशगमनेऽपि न  
तत्तद्देशीयत्वव्यवहारः किं त्वभिजनदेशीयत्वव्यवहार एव तद्वत् । निषेधवा-  
क्यानामपि निषेधविशेषाकाङ्क्षत्वाद्धिष्येकवाक्यतयैवान्वय इति परि-  
भाषासादृश्यात्परिभाषात्वेन व्यवहारः कृडिति च(१।१।५)इत्यत्र भाष्ये ।  
तत्रैकवाक्यता पर्युदासन्वायेन । प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि तेन सह वाक्यार्थबो-  
धमात्रेणैकवाक्यताव्यवहारः । संज्ञाशास्त्रस्य तु कार्यकालपक्षे न पृथ-

प्रधानानि, विधिसूत्राणि । अनेन तत्तद्विषयकनिषेधोपप्लवे बीजं दर्शितम् ।  
गुणभेद, निषेधभेदम् । तत्तदित्यनेन यौगपद्य निरस्तम् । एव च यथोद्देश एकदेशस्थत्वं  
स्पष्टमेव । कार्यकालेऽपि तस्यैव स्वविषयविषयकसर्वशास्त्रैकवाक्यत्वात्तत्त्वं प्रसिद्धदेशस्थेनैव ।  
तत्रतत्र स्वबुद्धिजननादिति भावः । तदाह—अत्रैकेति । उक्तभाष्य इत्यर्थः । कार्यकाल  
इति भावः । [ \* नन्वत्र पक्षे ङः सीत्यादौ तस्मिन्निति तस्मादित्युभयोपस्थितावेकदेश-  
स्थत्वेन परत्वादुभयनिर्देश इति नियमानुपपत्तिरत आह—वारयतीति ] एवः स्पष्टार्थः ।  
प्रसिद्धदेशस्थत्वमेव सर्वथा बोधयितुमेकदेशस्थ इत्युक्तमिति तात्पर्यम् । ननु कार्यकार्लेपक्षेण  
समाध्युक्तस्तत्र भाष्येऽयुक्ता न हि निषेधस्य परिभाषात्वव्यवहारोऽत आह—निषेधेति ।  
अपिर्मुल्यसमुच्चायकः । तस्य त्वेन व्यवहार इत्यत्रान्वयः । निषेधेति । अनुवृत्तगुणवृद्धि-  
श्रुत्या तद्विशेषरूपनिषेध्याकाङ्क्षाया यावद्गुणवृद्धिविधायकशास्त्रोपस्थितौ तत्तद्विषयविषयक-  
निषेधवाक्यानां व्यक्तिपक्षे विनिगमनाविरहादुपप्लवेनैकवाक्यतयैवान्वय इत्यर्थः । इतीति ।  
तथाऽन्वितत्वरूप यत्परिभाषासादृश्य तस्मादित्यर्थः । इतिरभेद इति केचित् । वस्तुत इतिहेतौ  
सादृश्यस्य पदार्थान्तरत्वादिति बोध्यम् । तथा चाऽऽरोपित तत्त्वं न तु मुख्यमिति भावः ।  
ननु विरोधात्कथमेकवाक्यताऽत आह—तत्रैकेति । तयोर्विधिनिषेधयोरित्यर्थः । पर्यु-  
दासेत्यनेन पदैकवाक्यता सूचिता । सा च कृडिद्धिन्नसार्वधातुकादौ गुण इत्यादिरूपा  
शाब्दी । नन्वसमस्ते प्रायेण निषेध एव नञर्थ इतीदमसगतमत आह—प्रसज्येति ।  
तेन, विधिना । साहित्यं चाव्यवहितोत्तरत्वसंबन्धेन । तथा च वाक्यैकवाक्यता ।  
अनन्तरं सा च प्रागुक्तरूपाऽऽर्थाति भावः । एव यथोद्देशे कार्यकाले च परि-  
भाषास्थले निर्णयं कृत्वा सज्ञास्थले तमाह—संज्ञेति । पृथगिति । स्वदेश इत्यर्थः ।

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तके वर्तते ।

१ ङ. °काले तु स्वविषयस° । २ ङ °त्वं पठितदे° । ३ ङ °र्थः । पठितदे° । ४ ग. लय-  
थाद्देशपक्षभेदेन पक्षद्वयोक्तिस्तत्र । ५ ग नन्वेव पक्षान्तरेऽनिर्वाहोऽत आ° ।

वाक्यार्थबोधः किं तु प्रदेशवाक्यार्थेन सहैव । अत एव 'अणोऽप्रगृह्यस्य' ( ८।४।५७ ) इत्येतदेकवाक्यतापन्नम् 'अदसो मात्' ( १।१।१२ ) इत्येतत्प्रति न मुत्वाद्यसिद्धम् । असिद्धत्वस्य कार्यार्थतया कार्यज्ञानोत्तरमेव प्रवृत्तिः कार्यज्ञानं च प्रदेशदेश एवेति तद्देशस्थस्यासिद्धत्वात्पूर्वग्रहणेनाग्रहणात् । एवं तद्बोधोत्तरमेव विरोधप्रतिसंधानं चेति तत्रत्यपरत्वमेव विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ बीजम् । अत एव कार्यकालपक्षेऽयादिभ्यः परैव प्रगृह्यसंज्ञेति 'अदसो मात्' ( १।१।१२ ) इति सूत्रे भाष्य उक्तम् । आकडाराधिकारस्थभपदसंज्ञादिविषये तु यथोद्देशपक्ष एवेति तत्रत्यपरत्वेनैव बाध्यबाधकभावः । पदादिसंज्ञानां तत्र

सहैवेति । प्राग्वत् । तथा च वाक्यैकवाक्यतेति भावः । अत्र मानमाह—अत एवेति । तत्रैव बोधादेवेत्यर्थः । ननु तदेकवाक्यत्वेनाग्रे गमनेऽपि पूर्वं पाठेन तत्त्वं दुर्वारमतोजनसिद्धत्वे हेतुमाह—असिद्धत्वेत्यादिग्रहणादित्यन्तेन । असिद्धत्वस्य, पूर्वत्रासिद्धमित्यतिदेशस्य । प्रदेशेति । वाक्यार्थबोधोत्तरमेव तज्ज्ञानादिति भावः । तथा च यद्देशे वाक्यार्थबोधस्तद्देशस्थत्वमेव तस्य । तदाह—तद्देशस्थस्येति । गमकान्तरमत्रैव वक्तुमाह—एवमिति । उक्तवदित्यर्थः । तद्बोधोत्तरमेवेति । प्रदेशदेश एव वाक्यार्थबोधोत्तरमेवेत्यर्थः । चेन तत्कार्यविज्ञानसमुच्चयः । तत्रत्येति । प्रदेशदेशस्थेत्यर्थः । अत्र मानमाह—अत एवेति । प्रदेशस्यपरत्वस्य तद्बीजत्वादेवेत्यर्थः । परैवेति । उक्त एवास्य भाष्यस्याऽऽशयः । पूर्वं पाठेऽपि तत्र वाक्यार्थबोधाभावादिति भावः । एवकारेण सज्ञास्थले क्वचित्पाठकृत पूर्वत्व विद्यमानमपि विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ न नियामकमिति सूचितम् । परिभाषाणां तु तत्पक्षेऽपि स्वदेशेऽर्थबोधोऽस्त्येवेति तद्विषये विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ पाठकृतमेव तन्नियामकमिति तत्तात्पर्यमित्यनुपदमेव स्फुटी भविष्यति मूले । नन्वेव भपदसज्ञादाविष्टबाध्यबाधकभावो न स्यादत आह—आकडारेति । भपदसंज्ञादीति । [ \* स्वादिष्वित्यादिविहितासु मियोर्बाध्यबाधकभावापन्नास्वित्यर्थः । तथा च सुप्ति ङन्तमित्यस्य कार्यकालत्वेऽपि न बाधकम् ] सज्ञाद्वयमुपदेशेन यत्र प्राप्त तत्रेत्यर्थः । तेन न पूर्वापरविरोधो न वा भाष्यशब्दरत्नादिविरोध इति भावः । [ + प्यङ् इति सूत्रस्थ भाष्य त्वेकदेशशुक्तिः ] तत्रत्येति । स्वदेशस्थेत्यर्थः । [ × एतेन कार्यकालपक्षे यूप्य इत्यत्राहोपे नलोपापत्तिः स्वादीत्यस्यासिद्धत्वाद्याचि भमित्यनेन तद्वाधायोगादित्यपास्तम् । ] नन्वेव तद्दृष्ट्या त्रिपाद्या असिद्धत्वात्तत्र प्रवृत्तिर्न स्यादत आह—पदादीति । तत्र, स्वगृहे ।

\* धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ. । + धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तकस्थः ।  
× धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ. ।

जातशक्तिग्रहणेनैव त्रिपाद्यामपि व्यवहारः । अत एव 'पूर्वत्रासिद्धम्' ( ८।२।१ ) इति सूत्रे भाष्ये परिभाषाणामेव त्रिपाद्यामप्रवृत्तिमाशङ्क्य कार्यकालपक्षाश्रयेण समाहितमित्याहुः । यथोद्देशपक्षः प्रगृह्य-संज्ञाप्रकरणे भाष्ये ॥ २ ॥

कार्यकालमित्यस्य च कार्येण कालयते स्वसंनिधिं प्राप्यत इत्यर्थः । कार्येण स्वसंस्काराय स्ववृत्तिलिङ्गचिह्नितपरिभाषाणामाक्षेप इति यावत् । अत एव 'पूर्वत्रासिद्धम्' ( ८।२।१ ) इति सूत्रे भाष्ये त्रिपाद्या असिद्धत्वात्तत्र सपादसप्ताध्यायीस्थपरिभाषाणामप्रवृत्तिमाशङ्क्य यद्य-पीदं तत्रासिद्धं तच्चिह्नं सिद्धमित्युक्त्वा तावताऽप्यसिद्धिरित्यभिप्रा-यके कथमिति प्रश्ने कार्यकालं संज्ञापरिभाषं यत्र कार्यं तत्रोपस्थितं

एवकारेण विधिप्रदेशे शक्तिग्रहनिरासः । अपिः सपादसप्ताध्यायीसमुच्चायकः । प्यङ्गः सप्रसारणमितिसूत्रस्थ भसज्ञायाः कार्यकालत्वपर भाष्यं त्वेकदेश्युक्तिरिति भावः । अत्र मानमाह—अत एवेति । तत्र यथोद्देशाङ्गीकारे तथा निर्वाहादेवेत्यर्थः । एवेन संज्ञाव्यावृत्तिः । आशङ्क्य, यथोद्देशे तदसिद्धत्वात् । अन्यथा शङ्कासमाध्योः संज्ञा-यामपि तुल्यत्वेन विशिष्य तत्रैव तदुक्त्यसांगत्य स्पष्टमेवेति भावः । यथोद्देशस्य दुर्बलत्वा-त्तत्सत्त्वे मानमाह— यथोद्देशेति ॥ २ ॥

एवमाद्यपरिभाषार्थमुक्त्वा द्वितीयार्थमाह—कार्येति । चस्त्वर्थे । नन्वचेतनत्वाद्बुभयोः पक्षयोः परिभाषायाः कथं सानिध्यप्राप्तिः । किं च सर्वत्र सर्वासा तदापत्तिः । किं चासिद्धे तस्मिन्कथं तदुपस्थितिरत आह—कार्येणेति । तथा चाऽऽरोपिताकाङ्क्षया नोक्तदोषत्रय-मिति भावः । तत्र तृतीयदोषोद्धारं स्पष्टयितुमुक्तस्याऽऽक्षेपस्य परिभाषार्थत्वे मानमाह— अत एवेति । अस्यास्तदाक्षेपार्थकत्वादेवेत्यर्थः । तत्र, त्रिपाद्याम् । परिभाषाणामिति । संज्ञास्थले गतिस्तूक्तैवेति भावः । इदं, त्रिपादीस्थम् । तत्र, तस्मिन्परिभाषाशास्त्रे । तच्चिह्नेति । परिभाषाशास्त्रं तु त्रिपाद्यां सिद्धमित्यर्थः । असिद्धिरिति । कथं सिद्धमित्यर्थः । असिद्धे तस्मिन्कथं तदुपस्थितिरिति भावः । कार्यकालमित्य-स्योत्तरमित्यादिः । नन्वस्या अपि लक्ष्ये कार्येण समकालं तयोः प्रवृत्तिरित्यर्थस्तत्र कार्य-स्यासिद्धत्वे कथं तत्समकालं प्रवृत्तिः । यत्कार्यं हि सिद्धं तत्रोपस्थितिरास्तां नाम । येषाम्-सिद्धत्वं तत्रोपस्थितिस्तु बाधितैवात आह—यत्र कार्यमिति । कार्येणाऽऽक्षेपादित्यर्थः ।

दृष्टव्यमित्युक्तम् । न च कार्यकालपक्षे 'डमो ह्रस्वात्' ( ८ । ३ । ३२ )  
 ह्रस्वाद् 'तस्मादित्युत्तरस्य' ( १ । १ । ६७ ) 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे  
 पूर्वस्य' ( १ । १ । ६६ ) इति परिभाषाद्वयोपस्थितौ परत्वादुभयनि-  
 र्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयानिति तस्मिन्नितिसूत्रस्थभाष्यासंगतिः ।  
 उभयोरिकदेशस्थत्वेन परत्वादित्यस्यासंगत्यापत्तेः । स्पष्टं चेदमिको गुण  
 ( १ । १ । ३ ) इत्यत्र कैयट इति वाच्यम् । विप्रतिषेधसूत्रेऽष्टाध्यायी-  
 पाठकृतपरत्वस्याऽऽश्रयणेनादोषात् । न हि कार्यकालपक्ष इत्येतावता  
 तदपैति । पक्षद्वयेऽपि प्रदेशेषु स्वबुद्धिजननाविशेषात् । न हि तत्पक्षेऽ-  
 प्यचेतनस्य शास्त्रस्य स्वदेशं विहाय तद्देशगमनं संभवति । नाप्यस्मदा-  
 दिबुद्धिजननेन स्वदेशत्यागो भवति । अत एव भाष्य एकदेशस्थस्यैव  
 सर्वशास्त्राभिज्वालकत्वमुक्तम् । अत एव तस्मिन्नितिसूत्रे कैयटः—सूत्रपा-

तथा च कार्येण मूलोत्तरीत्या तासामाक्षेपसम्भवः । कार्यस्य स्वसंस्कारकत्वात्परिभाषापेक्षा,  
 परिभाषाया अपि स्वसंस्कार्यत्वेन विध्यपेक्षा । तत्र सपादसप्ताध्याय्यामुभयाकाङ्क्षया सन्-  
 न्धस्त्रिपाद्या तु तदीयाकाङ्क्षयैवेति विशेषः । एव च पक्षद्वयसाधारण उभयाकङ्क्षयैव  
 संबन्ध इत्याशयकः पूर्वपक्षः । कार्यकालाश्रयेणान्यतराकाङ्क्षयाऽपि संबन्ध इत्युत्तराशयः ।  
 तत्रत्यकैयटस्तु चिन्त्य इति स्पष्टं तत्रैवोद्द्योते । तथा चेद भाष्यमुक्ततात्पर्यकमेवेति न  
 कश्चिद्दोषः । तथा च परिभाषाणा कार्यार्थतया कार्यकालत्वमेव युक्तमिति सिद्धम् । तत्र  
 शङ्कते—न चेति । [\* परिभाषाविषये पूर्वोक्तैकदेशस्थपदमूचितस्वदेशहान्यभावसिद्धान्तान-  
 भिन्नस्येयमाशङ्कतेति भावः ] आदिना ड सीत्यादिपरिग्रहः । परत्वादिति प्रकृताभिप्राय न  
 तु परिभाषान्तर्गतम् । स्पष्टमिति । क्रोष्ट्रीयसमतविप्रतिषेधखण्डके नैष युक्तो विप्रतीतिभाष्य-  
 प्रतीके यथोद्देशपक्षे परिभाषयो पौर्वापर्यं न तु कार्यकालतायामिति तेनोक्तम् । पाठकृतेति ।  
 परिभाषास्थल इति शेषः । तासामत्र पक्षेऽपि स्वदेशोऽर्थबोधोऽस्त्येवेति भावः । नन्वत्र पक्षे  
 तत्र गमनेन कथं तत्त्वमत आह—न हीति । तत्, पाठकृतपरत्वम् । प्रदेशेष्विति ।  
 विषयसप्तमी । तथा च तद्विषयस्वबुद्धिः स्वगृहे तत्र वा जन्यत इति भावः । ननु कार्यकाले  
 स्वस्यैव विधौ गमनमिति कथमुत्तरीत्याऽविशेषोऽत आह—न हीति । तत्पक्षेऽपीति ।  
 पक्षद्वयान्तर्गतकार्यकालपक्षेऽपीत्यर्थः । अपर्यथोद्देशसमुच्चायकः । तत्र च वैपरीत्य बोध्यम् ।  
 बुद्धीति । तद्विषयेत्यादिः । इदं च परिभाषास्थले । सज्ञास्थले तूक्तं भाष्यबलात्तथाऽङ्गीकृत-  
 मिति भावः । अत एव, स्वदेशात्यागादेव । तच्च भाष्यमुक्तं प्राक् । [+ पठितदेशदेशस्थ-  
 त्वमेव सर्वथा परिभाषाणा बोधयितुं तथोक्तमिति भावः ] कैयटस्यापीत्यमेवेष्टमित्याह—अत  
 एवेति । उक्त एवार्थः । नन्वेवमुक्तभाष्यविरोधात्स्वविरोधाच्च तत्कैयटस्य वा गतिरत आह—

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड. पुस्तकस्थः ।

ठापेक्षया परत्वस्य व्यवस्थापकत्वमिति । इको गुण(१।१।३)इतिसूत्रस्थ कैयटस्तु चिन्त्य एव । अन्यथा सर्वशास्त्राणां प्रयोगार्थत्वेन प्रयोगरूपैकदेशस्थत्वेन क्वापि परत्वं न स्यात् । किं च क्ङिति च(१।१।५) इतिसूत्रस्थकैयटरीत्या विधिसूत्राणां यथोद्देशपक्षे परिभाषादेशसंनिधानेन तेषां परत्वं व्याहन्येत । एवं च वृक्षेभ्य इत्यत्र 'सुपि च' (७।१०२) इत्यतः परत्वात् 'बहुवचने ह्यल्पेत्' (७।३।१०३) इत्येत्वमित्याद्युच्छिद्येतेत्यलम् ॥ ३ ॥

इत्संज्ञका अनुबन्धास्तथा तेष्ववयवानवयवत्वसंदेह आह—

इको गुणेतीति । विपक्षे बाधकान्तरमप्याह—अन्यथेति । पूर्वपक्षीयकैयटोक्त्यङ्गीकार इत्यर्थः । प्रयोगार्थत्वेन, प्रयोगसाधनफलकत्वेन । देशस्थत्वेन, तत्र मिलनात् । न स्यादिति । तथा च परत्वस्योच्छेद एव स्यादिति भावः । नन्वत एव तादृशदेशो न गृह्यतेऽत आह—किं चेति । कैयटेति । स च प्रागुक्तः । संनिधानेन, बौद्धेन । तेषामिति । तेषामपीत्यर्थः । इष्टापत्तौ बाधकमाह—एवं चेति । तत्परत्वव्याघाते चेत्यर्थः । न चैव कार्यकालपक्षमादाय त्रिपाद्या परिभाषाशास्त्राणां प्रवृत्तिर्यथोद्देशे तु पूर्वाण्येतानि प्रति त्रिपाद्या असिद्धत्वेनाप्रवृत्तिरेव स्यादिति भाष्याद्युक्तमत्र प्रागुक्त विरुध्येतेति वाच्यम् । परिभाषाणां सिद्धत्वेनात्र पक्षेऽसिद्धेनापि कार्येण स्वार्थं स्वमात्राकाङ्क्षया तदाक्षेपसम्भवस्योक्तत्वात् । वस्तुतः सर्वत्र पाठकृतपरत्वमेव तन्नियामकम् । परैव प्रगृह्यसंज्ञेत्यत्र संज्ञापदेन तत्कार्यं प्रकृतिभाव उच्यते । आशयानभिज्ञस्याग्रे प्रश्नः कथमिति, एकदेशिन उत्तर कार्यकालमित्यादीति । एव च न तद्विरोध इत्येकरूपता संज्ञापरिभाषयोः सिद्धा । एव चात्रापि स्वगृहे बाधयार्थ-चोद्यः पूर्ववल्लक्ष्यसंस्कारकत्वमपि तस्य तुल्यम् । एतेन कार्यकालेऽपि पाठकृतपरत्वमयादी-चामेव । अन्यथा ङमो ह्रस्वादित्यादौ त्रिपादीस्थे कार्यकालपक्षे एव परिभाषयोः प्रवृत्त्या परत्वात्तत्र तस्मादित्येवेति सिद्धान्तासगतिरुभयोरेकदेशस्थत्वेन परत्वासमवादित्यपास्तम् । अत एवैतावदशस्य दुष्टत्वेन तत्रारुचिसूचनाय केचिदित्युक्तम् । अन्यथैतदन्यस्य सर्वस्य सिद्धान्तत्वेन परे त्विति षक्तुमुचितम् । अत एवैतद्व्यन्यस्यादसौ मादित्यत्रत्योद्द्योतविरोधो चेति दिक् । तदेतद्ध्वनयन्नाह—अलमिति ॥ ३ ॥

अथेत्संज्ञायाः संज्ञाप्रसङ्गेनैव स्मृतायास्तद्विशेषभूतायाः शास्त्रमूलत्वात्तच्छास्त्रस्यऽऽ-दाबुद्धेखवत्ताद्विषयक परिभाषाद्वयमादौ वक्तुं जीर्णानुक्तत्वात्तद्व्यन्ये न्यूनता ध्वनयितुं च पूर्वसंज्ञातिमाह—इत्संज्ञेति । संज्ञायाः पूर्वमुपस्थितत्वात्तद्विशेषे तादृशे विचार इति भावः । इत्संज्ञाप्रयुक्तस्वलोपान्यकार्यजनकत्वविशिष्टमिदमनुबन्धसामान्यलक्षणम् ।



## अनेकान्ता अनुबन्धा इति ॥ ४ ॥

अनेकान्ता अनवयवा इत्यर्थः । यो ह्यवयवः स कदाचित्तत्रोपलभ्यत एव । अयं तु न तथा तदर्थभूते विधेये कदाऽप्यदर्शनात् । शित्किदित्यादौ समीपेऽवयवत्वारोपेण समासो बोध्यः । ' वुञ्छण्कठ ' ( ४ । २ । ८० ) इत्यादौ णिच्वप्रयुक्तं कार्यं पूर्वस्यैवेत्यादि तु व्याख्यानतो निर्णयम् । ' हलन्त्यम् ' ( १ । ३ । ३ ) इत्यत्रान्त्यशब्दः परसमीपबोधकः ॥ ४ ॥

यतो हीत्संज्ञका इत्यस्येत्संज्ञाद्वारकस्वलोपान्यभावाभावरूपकार्यभाज इत्यर्थ इति तत्त्वम् । तथा, पर्यवसितम् । एवमेव वाच्ये तथोक्तिः प्राचां मतस्यापि समग्रहाय । अवयवत्वस्य प्रकृत्यादीत्यादिः [ \* तत्रैव तत्तत्प्रयुक्तकार्यभेदसंभवत् । तदेकदेशमतमाह— ] अनेकान्ता इति । इत्यस्येति शेषः । तच्च व्यतिरेकमुखेणोपपादयति—यो ह्येति । शीखादिरित्यर्थः । छेदने तत्रानुपलम्भादाह—कदाचिदिति । छेदनात्पूर्वमित्यर्थः । एवमानुपलम्भन्यवच्छेदः । अयं तु, अनुबन्धत्वावच्छिन्नस्तु । न तथा, नावयवः । तदर्थेति । औपदेशिकबोधकबोधे लौकिकप्रयोगस्थ इत्यर्थः । नन्वनवयवत्वे [ + तदनुपादकशब्दान्तरे ] वृत्तिर्न स्यात्सबन्धाभावात्सामीप्ये तु न वृत्तिरिति स्पष्टमेवात् आह—शिदिति । समासः, बहुव्रीहिः । [ × सामीप्यं च तदभिलतद्बोधकौपदेशिकगतम् । एतावता तत्र कार्येऽपि सोपाधिकोपलम्भापत्तिर्नेति बोध्यम् ] नन्वेवमपि पूर्ववत्परविषयेऽपि त्कार्यप्रसङ्गः कचिदत् आह—वुञ्जिति । पूर्वस्यैवेत्यस्य पूर्वसबन्धिन एवेत्यर्थः । [ ० स्पष्टं चेद् तस्य लोप इति सूत्रे भाष्ये । पक्षद्वयं सदोषमुक्त्वा स्वीकृत एव तर्ह्यनन्तर इति तृतीयपक्षे पूर्वपरयोरित्कार्यप्रसङ्गरूपदत्तदोष परिहरता वृत्ताद्वेत्यनेन । व्याख्यात च कैयटेन व्याख्यानपरतया ] । नन्वेवमपीत्वस्यैवाभावे मूले कुठार एवात् आह—हलन्त्यमिति । छक्षणयेति भावः ॥ ४ ॥

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो घ. पुस्तकस्थः । × धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । ० धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'स्य लौकिकप्रयोगस्थ' । २ ङ 'दिः । अनुबन्धा इति । अनुबन्धत्व च कार्यविशेषसंपादकत्वम् । भ° । ३ घ. 'षः । भाष्येऽत्रानुक्तमेकान्तत्वोक्तहेतुतो लब्धं हेतु व्य° । ४ ङ. 'ति । तद्वदितार्थे ल° । ५ घ. पूर्व बोध्यस्यैवे° ।

वस्तुतस्तु—

एकान्ताः ॥ ५ ॥

इत्येव न्याय्यम् । शास्त्रे तत्रोपलम्भादन्यत्रानुपलम्भाच्च । अनव-  
यवो हि काकादिरैकजातीयसंबन्धेन गृहवृक्षादिषूपलभ्यते नैवमयम् ।  
एवं हि बहुव्रीहिरपि न्यायत एवोपपन्नः । अन्त्यशब्दे लक्षणा च न ।  
किं चानवयवत्वे णशकप्रत्ययादौ कादेरित्त्वानापत्तिः प्रत्ययादित्वाभा-  
वात् । दृष्टञ्चकारस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । इदं च 'तस्य लोपः' ( १ ।

एवमेकदेशिमतमुक्त्वा सिद्धान्तमतमाह—वस्तुत इति । एकान्ताः, अवयवाः । ननु  
तदभावसाधकहेतोरुक्तत्वात्कथं तत्त्वमत आह—शास्त्र इति । तत्र, विधेयबोधके । [\*तद-  
भिन्न औपदेशिके ] एतेन विधेयेऽनुपलम्भेऽपि क्षत्यभावः सूचितः । अवयविनिदर्शनस्यैवा-  
पेक्षितत्वेन [+तत्रैवेति नियमाभावेन तस्यात्र सत्त्वात् । ] [×तदुक्त घसंज्ञासूत्रे भाष्ये । इह हि  
व्याकरणे सर्वेष्वेव सांभन्धकग्रहणेषु रूपमाश्रीयते यत्रास्यैतद्रूपमिति रूपनिर्ग्रहश्च शब्दस्य  
नान्तरेण लौकिक प्रयोगं तस्मिंश्च लौकिके प्रयोगे सांभन्धाना प्रयोगो नास्तीति कृत्वा  
द्वितीयः प्रयोग उपास्यते कोऽसावुपदेश [इदं] नामेति ] तस्यात्र सत्त्वात् । =अन्वयमुक्त्वा  
व्यतिरेकमाह—अन्यत्रेति । तथा चानुपलम्भकयत्न विना तत्रान्यत्र चोपलभ्यमानोऽनवयवस्तं  
विना तत्रैवोपलभ्यमान एव यः सोऽवयव इति फलितम् । अन्यथा शाखाया अपि  
च्छेदोक्त. रमन्यत्रोपलम्भात्तत्रैवोपलम्भाभावेनानवयवस्व स्यादिति भावः । इदमपि  
व्यतिरेकमुखेणैवोपपादयति—अनवेति । एकजातीयसंबन्धेन, संयोगादिना ।  
नैवमयमिति । अनुबन्धो न तादृशसंबन्धेन सर्वत्रोपलभ्यत इत्यर्थः ।  
एवमनेन हेतुना तद्धेतुनिरासेन साधितेऽवयवत्वे साधकान्तरमप्याह—एवं हीति ।  
यतोऽवयवत्व इत्यर्थः । अस्योभयत्रान्वयः । न्यायतः, औचित्येन । आरोपं विनेति  
यावत् । नन्वनैयोः पूर्वत्रोक्तगतिभ्यामपि निर्वाहोऽत आह—किं चेति । नन्वादिशब्दोऽ-  
प्यन्त्यशब्दवत्सुशको व्याख्यातुमत आह—दृष्टञ्च इति । ननु पूर्वमुक्त एव व्याख्यानेन  
निर्णय इति न तस्य वैयर्थ्यमत आह—इदं चेति । पूर्वोक्त सर्वं चेत्यर्थः । तदेवाऽऽह—

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तके वर्तते ।  
× अयमपि घ पुस्तकस्थ एव । = अत्रार्थं घ. पुस्तके पाठः—नन्वेव शाखावत्काकादेरप्यवयवत्वा-  
पत्तिरत आह—अन्यत्रेति ।

१ घ. °ति । व्यक्तिभेदादाह—जातीयेति । सं० । १ घ. °दिनेत्यर्थः । नै० । ३ क. °नयोर्वि-  
निगमनाविरहात्पूर्वोक्तगतिरेन गृह्यतेऽत ।

३।९) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् । तत्र ह्युक्तमेकान्ता अनुबन्धा इत्येव न्याप्यमिति दिक् ॥ ५ ॥

नन्वेकान्तत्वेऽनेकाल्त्वादेवौशादीनां सर्वादेशत्वसिद्ध्या 'अनेकाल्' सूत्रे ( १।१।५५ ) शिद्ग्रहणं व्यर्थमत आह—

नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ ६ ॥

शिद्ग्रहणमेवैतज्ज्ञापकम् । तेन ' अर्बणस्तु ' ( ६।४।१२७ ) इत्यादेर्न सर्वादेशत्वम् । ङादिविषये तु सर्वादेशत्वं विनाऽनुबन्धत्वस्यैवामावेनाऽऽनुपूर्व्यात्सिद्धम् ॥ ६ ॥

तत्र ह्युक्तमिति । एकान्तत्वानेकान्तत्वोक्त्युत्तरमिदमुक्तं तत्र भाष्ये । तस्याय भावः । एकान्तत्व एकोऽवयवो द्वयोर्न संभवतीति व्याख्यानेन निर्णयेऽपि नानेकान्तत्वे तथाऽऽनन्तर्यस्योभयापेक्षस्यैकत्र विरोधाभावात्सदेहाभावाद्याख्यानाप्रवृत्तेः । विरुद्धानेककोटिविषयकज्ञानस्यैव सदेहत्वात् । तथा च चवैयर्थ्यं सम्यगेव । किं चोत्तरीत्या व्याख्यानाप्रवृत्तौ वृच्छणादिविहितकादिविषये णित्वादिप्रयुक्तवृद्ध्याद्यापत्तिर्लक्षणारोपाभावप्रयुक्तं लाघवं च पूर्वोक्तहेतुनैतस्यैव सिद्धिश्चेति । तद्ध्वनयन्नाह—इति दिगिति ॥ ५ ॥

एतत्पक्षे भाष्याद्युक्तदोषत्रय तदुत्तरीत्यैव तत्क्रमेणोद्धर्तुं पूर्वसगतिमाह—नन्वेकान्तत्व इत्यादि । अनुबन्धकृतमनेकाल्त्वं नाऽऽश्रयणीयमिति परिभाषार्थः । एवमंग्रऽपि । अस्यां ज्ञापकमाह—शिदिति । उक्तरीत्यैवेति भावः । ध्वसोरेद्धावित्यत्र निर्वाहस्तु भाष्यादौ स्पष्ट इति तात्पर्यम् । चारितार्थं स्वस्मिन्स्पष्टत्वादुपेक्ष्य ज्ञापितपरिभाषाफलमाह—तेनेति । ज्ञापितवचनेनेत्यर्थः । एवमंग्रेऽपि सर्वत्र बोध्यम् । ननु णलः प्रत्ययाधिकारपाठादौपदेशिकप्रत्ययत्वेनै तदनुबन्धत्वेनानया प्राप्तदोषस्य प्रश्लेषेण निवारणेऽपि ङादिरनया सर्वादेशो न प्राप्नोति गत्यन्तरसम्भवेन पूर्ववत्प्रश्लेषो नात आह—ङादीति । आदिना जसः शी, सुपा-मिति सूत्रोक्तशे इत्यादिसंग्रहः । औपदेशिकप्रत्ययत्वस्यात्र सर्वत्राभावात् । तथा च सर्वादेशताऽऽदौ तत आतिदेशिकं प्रत्ययत्व तत इत्सज्ञेति पूर्वं तदभाव एव । अनुबन्धत्वं च विशेषणं न तूपलक्षणाभिहितं भावः । तदाह—आनुपूर्व्यादिति । उक्तक्रमादित्यर्थः । एतेनात्र णल्लेख कुर्वन्सीरदेवादिः परास्तः । उक्तहेतोः । इदं च प्राचीनरीत्या । अत एवा-रुचिबोधकस्तुः प्रयुक्तः । वस्तुतो णल्युक्तप्रकार एव ङादौ । जसः शीत्यादौ शित्वादेव सर्वादेश इति बोध्यमित्यन्यत्र निरूपितं गुरुभिः । स्पष्ट चेदं ज्ञापक तस्य लोप इत्यत्रैव भाष्ये ॥ ६ ॥

१ घ. °रभाष्योक्तनमन्तरपक्षोक्त्युत्तरमि° । २ ग. °त्वेनानु° । ३ घ. °ति । यद्वा एवश-  
ब्दोऽप्यर्थे विनाशब्दोऽभावे । तथा चानुबन्धत्वस्याभावेन विनाऽपि नाऽऽभाति भा° ।

नन्वेवमप्यवदातं मुखमित्यत्र पलोपोत्तरमात्वे कृते 'अदाप्' ( १ )  
१ । २० ) इति घुसंज्ञाप्रतिषेधो न स्यात् । दैपः पकारसत्त्वेऽनेजन्तत्वा-  
दात्वाप्राप्त्या पलोपोत्तरं पकाराभावेनास्य 'दाब्' रूपत्वाभावाद्वा-  
आह—

नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ ७ ॥

'उदीचां माङः' ( २ । ३ । १९ ) इति निर्देशोऽस्या ज्ञापकः ।  
'आदेच उपदेशे ( ६ । १ । ४५ ) इति सूत्रेणोपदिश्यमानस्यैजन्त-  
स्याऽऽत्वं क्रियते । ङकारसत्त्वं एजन्तत्वाभावादात्वाप्राप्तेस्तस्यासंगतिः ।  
न चास्यामवस्थार्या तस्य धातुत्वाभावात्कथमात्वम् । तत्र धातोः ( ६ ।  
१ । ८ ) इत्यस्य निवृत्तेरित्यन्यत्र विस्तरः । स्पष्टं चेदं 'दाधाध्वदाप्'  
( १ । १ । २० ) इति सूत्रे भाष्ये ॥ ७ ॥

एवमपि, उक्तदोषस्यात्र मत उद्धारेऽपि । पलोपोत्तरमात्वे इति । अन्यथाऽ-  
नेजन्तत्वान्न स्यादिति भावः । न स्यादिति । तथा चोपसर्गादिति स्यादिति भावः । ननु पसत्व-  
एव निषेधोऽत आह—दैप इति । आत्वाप्राप्त्येत्यस्य दाप्त्वाभावेऽन्वयः । नन्वेव तल्लोपोत्तरं  
सोऽत आह—पलोपोत्तेति । अस्य । उक्तप्रयोगस्थस्य । इति निर्देश इति ।  
इत्यत्रत्यो मेङः सानुबन्धस्याऽऽत्वभूतस्य माङ इति निर्देश इत्यर्थः । तस्य तत्त्वमुपपाद-  
यति—आदृच इति । उपदेश इति कमणि घञ्बध्द्यर्थे सप्तमी विशेष्यत्वं च तस्य ।  
तदाह—उपदीति । तस्यासंगात्तरिति । माङ इति निर्देशस्यासंगतिरित्यर्थः । तस्य  
तदर्थज्ञापकतासंगतिरिति क्वचित्पाठः । तत्र निर्देशस्य परिभाषार्थज्ञापकत्वसंगतिरित्यर्थः । अस्यां,  
मेङ इत्यस्याम् । तस्य, मेङ इत्यस्य । अनुबन्धलोपे जात एव धातुत्वमित्यर्थस्य न धातु-  
लोप इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः स्पष्टत्वादिति भावः । तत्र, आदेच इत्यत्र । निवृत्तेरिति ।  
गवादिशब्दानां दौकितेत्याद्येकदेशानां चानुपदेशान्नात्वम् । इरेप्रभृतीनामुपदेशोऽप्यशित्परत्वा-  
भावान्न तत । प्रसज्ज्यप्रतिषेधेऽपि प्रत्यासत्त्याऽशित्प्रत्ययपरत्वयोऽयानामेजन्तानामेवग्रहणान्न  
दोषः । उच्चारणसामर्थ्यादपि तत्रादोषः । यावता विनेतिसिद्धान्तादिदमपि तज्ज्ञाप्यम् । एतेन  
तडादेशानां टेरेनेत्वज्ञापनेन चरितार्थं तदित्यपारतम् । अत एवाथापि निवृत्तमित्यादेच इत्यत्र  
तदेतद्भातुग्रहणं तिष्ठतु तावत्सान्यासिकमिति लिटि धातोरित्यत्र च भाष्य उक्तम् । अन्तरङ्ग-  
त्वाद्यतीहारनित्यसन्नद्धस्य मेङ एव सूत्रे ग्रहणं न माङस्तस्य पदान्तरसन्निधानेन प्रतीयमान-  
बहिरङ्गव्यतीहारवृत्तित्वादिति कैयटः । अन्ये तु माङोऽनभिधानात्कत्वोऽनुत्पत्तिरिति न  
तस्य तत्र ग्रहणमित्याहुः । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्धोतादावित्यर्थः । अत्रै समाति-  
माह—स्पष्टं चेदमिति । उक्तज्ञापकमित्यर्थः । दाधाध्वित्युपलक्षणं तस्य लोप इति  
सूत्रस्यापि ॥ ७ ॥

नन्वेवमपि ' वाऽसरूपः ' [ ३।१।९४ ] इतिसूत्रेण कविषयैऽणो-  
ऽप्यापत्तिरित्यत आह—

नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ ८ ॥

' ददातिदधात्योर्विभाषा ' [ ३।१।१३९ ] इति णबाधकशस्य  
विकल्पविधायकमस्या ज्ञापकम् । तेन गोद् इत्यादौ नाणिति वाऽसरूप-  
सूत्रे माण्ये स्पष्टम् ॥ ८ ॥

ननु संख्याग्रहणे बह्वादीनामेव ग्रहणं स्यात् । प्रकरणस्याभिधानि-  
यामकत्वसिद्धात्कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसंप्रत्यय इति  
न्यायात् । अस्ति च प्रकृते बह्वादीनां संख्यासंज्ञा कृतेति ज्ञानरूपं प्रक-  
रणम् । न तु लोकप्रसिद्धैकद्यादीनामित्यत आह—

उभयगतिरिह भवति ॥ ९ ॥

इह शास्त्रे । ' संख्याया अतिशदन्तायाः ' [ ५।१।२२ ] इति निषे-  
धोऽस्या ज्ञापकः । न हि कृत्रिमा संख्या त्यन्ता शदन्ता चास्ति । तेन  
' कर्तारि कर्मव्यतिहारे ' [ १।३।१४ ] ' कण्वमेघेभ्यः करणे ' [ ३।१।  
१७ ] ' विप्रतिषिद्धं चानधिकरण ' [ ५।४।१३ ] इत्यादौ लौकिक-

एवमपीति । प्राग्वत् । इति गेति । इत्यत्र श्याद्व्यवेति प्राप्तणस्य बाधकशस्य  
ददातीतिसूत्रविहितस्य विकल्पविधायकं विभाषाग्रहणमित्यर्थः । तत्कृतासारूप्याङ्गी-  
कारे तु तैव सूत्रेण रूपद्वयसिद्धौ तदानर्थक्यं स्पष्टमेव । शङ्कोक्तं वारियति—  
तेनेति । वाऽसरूपेत्युपलक्षणं तस्य लोप इति सूत्रस्यापि ॥ ८ ॥

अथेत्संज्ञाप्रसङ्गात्संज्ञाविशेषोद्देश्यतावच्छेदकविधानन्यत्र विचार इति पूर्वसर्गातिं ध्वन-  
यन्नाह—ननु संख्येति । प्रकरणेति । इदं च हर्यादिग्रन्थे स्पष्टम् । ननु सैन्धवमा-  
नयेत्यादौ भोजनादिवत्प्रकृते किं तत्प्रकरणेन येन तद्वदत्रापि शक्तिसकोचो भवेत् । न च  
पूर्वोपक्रान्तत्वं तत्त्वम् । अव्यवहितस्य तस्याभावात् । अत आह—अस्ति चेति । कृते-  
तीति । शास्त्र इति भावः । एवव्यवच्छेद्य स्पष्टार्थमाह—न त्विति । एकशब्दस्या-  
नेकार्थत्वेन संख्याशब्दग्रहणायाऽऽह—द्यादीति । परिभाषापाठनिरासायाऽऽह—  
शास्त्र इति । ताया इतीति । इत्यत्रातीति<sup>१</sup> निषेध इत्यर्थः । ज्ञापकमुपपादयति—  
न हीति । नन्वर्थकत्वेऽपि ते सामर्थ्यात्कतीति कृत्रिमसंख्यामादाय स निषेधः सफ-  
लोऽत आह—शदन्ता चेति । लौकिकेति । तत्त्व चात्र वेदभिन्नविदितत्वम् ।  
अत एव तत्र सामर्थ्यात्तन्त्रान्तरप्रसिद्धद्रव्यग्रहणेऽपि न क्षतिः । यद्यप्यकृत्रिमस्यैव ग्रहण-

क्रियाद्रव्याद्यवगतिः । तत्र क्रोमयगतिः क्वाकृत्रिमस्यैव क् कृत्रिमस्यैव-  
त्यत्र लक्ष्यानुसारि व्याख्यानमेव शरणम् । अत एवाऽऽग्नेडितशब्देन कृत्रि-  
मस्यैव ग्रहणं न तु द्विस्त्रिघुष्टमात्रस्य । स्पष्टं चेदं संख्यासंज्ञासूत्रे भाष्ये ।  
यत्तु संज्ञाशास्त्राणां मच्छास्त्रेऽनेन शब्देनैत एवेति नियमार्थत्वं कृत्रिमा-  
कृत्रिमन्यायबीजमिति तन्न । तेषामगृहीतशक्तिग्राहकत्वेन विधित्वे  
संभवति नियमत्वायोगात् । सर्वे सर्वार्थवाचका इत्यभ्युपगमोऽपि  
योगिदृष्ट्या न त्वस्मदादिदृष्ट्या । विशिष्य सर्वशब्दार्थज्ञानस्याशक्यत्वात् ।  
सामान्यज्ञानं तु न बोधोपयोगीत्यन्यत्र निरूपितम् ॥ ९ ॥

मितिमात्रज्ञापनेऽप्यस्य साफल्य तथाऽप्याग्नेडितादौ दोषापत्तेः संज्ञाकरणवैयर्थ्यापत्तेश्चाकृ-  
त्रिमस्यापीत्येव ज्ञाप्यते । एव च संख्याग्रहणेऽपि न दोष इति भावः । द्रव्याद्यवग-  
तिरिति । क्रियाद्रव्यादेरेवावगतिरित्यर्थः । न तु कारकस्येति भावः । ननुभयगतिरित्यु-  
क्त्वेद् फलकथनमयुक्तं तथा तत्राभावात् । संख्याग्रहणस्थले च तथा फलं वक्तुं युक्तमिति चेन्न ।  
उभयगतिरित्यस्योभयोः कृत्रिमाकृत्रिमयोर्विषयभेदेनैकत्र विषये च गतिर्ग्रहणमित्यर्थेन त्रित-  
यलाभात् । तत्रान्त्यलक्ष्यं तु पूर्वपक्षविषय एवेति न पुनरुक्तम् । अत एव तद्दोषपरिहारः ।  
अत एव च लः कर्मणीत्यादौ कारकावगतिः । तद्ध्वनयन्नाह—तत्रेति । तेषां त्रयाणां  
मध्य इत्यर्थः । व्याख्यान, भाष्यकृत्वादीनाम् । अत एवेति । तथाव्याख्यानस्य शरण-  
त्वादेवेत्यर्थः । तत्र तैस्तैव व्याख्यानात् । अन्यथा तदस्य गतिः स्पष्टैवेति भावः । एतेनो-  
भयोर्ग्रहणं वा स्यात्कृत्रिमस्यैव वाऽकृत्रिमस्यैव तु ग्रहणं कथमित्यपास्तम् । स्पष्टं चेद-  
मिति । प्रागुक्तं सर्वमित्यर्थः । तत्र ह्येकादीनां संख्यासंज्ञार्थं संख्याग्रहणमुद्देश्यसमर्पकं  
कर्तव्यमित्याशङ्क्योत्तरीत्या प्रत्याख्यातम् । कैयटाद्युक्तिं खण्डयति—यत्त्विति । तेषां,  
संज्ञासूत्राणाम् । ननु सर्वेषां सर्वार्थवाचकत्वमिति पक्षे गृहीतशक्तिग्राहकत्वमेव तेषामत  
आह—सर्वं इति । न त्विति । यतस्तदस्माभिर्दुर्ज्ञेयमिति भावः । तदाह—विशि-  
ष्येति । सर्वशब्दार्थेत्यत्र द्वन्द्वकर्मधारयषष्ठीतत्पुरुषा बोध्याः । सामान्येति । शब्द-  
त्वादिनेत्यर्थः । न चैवम्—

‘व्यवहाराय नियमः संज्ञायाः संज्ञानि क्वचित्’ ।

इत्यादिहरिग्रन्थास्य गतिरिति वाच्यम् । तस्य तत्र तत्र सकेते गृहीते तत्तत्सकेतज्ञानरू-  
पप्रकरणवशात्तस्यैवोपस्थितिनान्यस्येति फलितनियमपरत्वात् । तदेतद्विशेषणविशेष्यवदित्य-  
नेन सूचितमिति मञ्जूषाया विस्तरः । तदाह—अन्यत्रेति ॥ ९ ॥

नन्वध्येता शयित इत्यादाविङ्गशीङोर्ङिस्वाद्गुणनिषेधः स्यादत आह—

कार्यमनुभवन्हि कार्या निमित्ततया नाऽऽश्रीयते ॥ १० ॥

‘स्थण्डिलाच्छयितरि’ ( ४।२।१५ ) इति निर्देशश्चास्या ज्ञापकः ।  
ऊर्णुनविषतीत्यादिसिद्धये कार्यमनुभवन्निति । अत्र हि ‘द्विर्वचनेऽचि’  
( १।१।५९ ) इति नुशब्दस्य द्वित्वम् । अन्यथा ‘सन्वङोः’ ( ६।१।९ )  
इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वात्सन्नन्तस्य कार्थित्वेनेसो द्वित्वनिमित्तत्वाभावात्तत्प्र-  
वृत्तिर्न स्यात् । वस्तुतः समवायिकारणनिमित्तकारणयोर्भेदस्य सकललो-  
कतन्त्रप्रसिद्धतया तस्य तत्त्वेनाऽऽश्रयणाभावेन नैषा ज्ञापकसाध्या ।

अथ सिंहावलोकनन्यायेनेत्संज्ञकविशेषोद्देश्यकविधौ विचार इति ध्वनयन्नाह—नन्व-  
ध्येतेति । शयित इति । निष्ठा शीङिति कित्त्वनिषेधः । आदिना शयितेत्यादिसंग्रहः ।  
शयितेति तृजन्तपाठस्तु सुमम एव । निषेधः स्यादिति । क्ङितीति सत्सप्तमीति भावः ।  
न चैव निष्ठा शीङिति व्यर्थम् । तेन तावन्मात्रवारणापेक्षया परिभाषाज्ञापनस्यैवौचित्या-  
दिति बोध्यम् । यत्त्वस्या ज्ञापकं दीधीवेव्योर्गुणप्रतिषेधः कृटादौ कूङ्पाठो वेति सीरदेवाद-  
यस्तन्न । दीधीवेवीटामित्यस्य प्रत्याख्यानानात् । प्रत्याख्यानस्थले दृष्टफलाभावेन भाष्यरीत्या  
तदसम्भवात् । आदीध्यक इत्यादावनिगलक्षणाचो ङ्गितीतिवृद्धिनिषेधेन साफल्येन सूत्ररी-  
त्याऽपि तत्त्वासंभवात् । पाठस्याशोकवनिकान्यायेन चरितार्थत्वाच्च । अत आह—  
स्थण्डिलादिति । न च निर्देशः सौत्रः । तथा सत्यन्यत्र प्रयोगो न स्यादिति भावः ।  
चेन निष्ठा शीङिति निषेधस्य दीधीवेव्योः प्रकारान्तरेण प्रत्याख्यानपरभाष्यस्य च समु-  
च्चयः । अन्यथा तयोर्ङित्वात् क्ङिति चेत्येनेनैव निषेधे सिद्धे प्रकारान्तरानुसरणं व्यर्थ-  
मेवेति बोध्यम् । तथा चाध्येता शयितोऽरिरिषतीत्यादिसिद्धिः । नैवमूर्णुनविषतीत्यादावि-  
त्याह—ऊर्णुनेति । हि, यतः । + [ चीतीति निषेधोऽत इति पाठः ] द्वित्वमिति ।  
न तु पूर्वत्रेवेति भावः । अन्यथा, तद्विशेषणाभावे । निमित्तत्वाभावात्, तत्त्वाभावापत्तेः ।  
तत्प्रवृत्तिः, द्विर्वचनेऽचीत्यस्य प्रवृत्तिः । एतेन परिभाषाद्वयमिदमिति सीरदेवाद्युक्त सुध्यु-  
पास्य इत्यादावनया प्राप्तदोषस्य ज्ञापकाद्वारणामिति भ्रान्तोक्तमेकपरिभाषापक्षेऽपि प्रायिक-  
मेतल्लक्ष्यवशात्कचिदाश्रीयते कचिन्नेत्याद्योक्तमुक्तज्ञापकसिद्ध परिभाषान्तरमित्यन्योक्तं  
चापास्तम् । उक्तयुक्तेर्भाष्येऽस्यानुक्तेश्च । व्याकरणेऽपि कार्थिणोपश्लिष्टस्यैव निमित्तत्व-  
व्यवहाराच्च । न चारिरिषतीत्यादाविसस्तथा । उपश्लेषस्य समीपसंबन्धरूपस्य  
भेदनिबन्धनत्वात् । तद्ध्वनयन्सिद्धान्तमाह—वस्तुत इति । अस्य तत्त्वमित्य-  
न्वयः । तन्त्रेति । न्यायशास्त्रादीत्यर्थः । तस्य, समवायिकारणस्य । तत्त्वेन,

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतोऽर्थो ह पुस्तकस्थः ।

अत एव हिः प्रयुक्तः । स हिस्तत्त्वेनानाश्रयणे हेतोः प्रसिद्धत्वं द्योतयतीति तत्त्वम् । 'द्विर्वचनेऽचि' ( १ । १ । ५९ ) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितैषा ॥ १० ॥

ननु प्रणिदापयतीत्यादौ दारूपस्य विधीयमाना घुसंज्ञा दापेर्न स्यादत आह ।

यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते ॥ ११ ॥

यमुद्दिश्याऽऽगमो विहितः स तद्गुणीभूतः शास्त्रेण तद्वयवत्त्वेन बोधितोऽतस्तद्ग्रहणेन तद्ग्राहकेण तद्बोधकेन शब्देन गृह्यते बोध्यत इत्यर्थः । तत्र तद्गुणीभूता इत्यंशो बीजकथनम् । लोकेऽपि देवदत्तस्या-

निमित्तकारणत्वेन । अत एव, अज्ञापकसाध्यत्वादेव । हेतोः, सकललोकतन्त्रप्रसिद्धभेद-  
त्त्वस्य । ध्वनितैषेति । तत्र हि जेम्नीयते देधीयत इत्येतद्वारकाज्ग्रहणस्य रूपातिदे-  
शज्ञापकतोक्ता । तेन यथा ध्वनिता तथा स्पष्टमुद्द्योते ॥ १० ॥

अथ सज्ञाप्रसङ्गादेव सज्ञाकर्मके संज्ञिविशेषोद्देश्यके विधौ विचार इति ध्वनयन्नाह-  
ननु प्रणीति । दापेर्न स्यादिति । तत्र स्व रूपमिति तद्ग्रहणेन समुदायस्यादारूप-  
त्वादेकदेशस्य चानर्थकत्वात् । तथा च णत्व न स्यादिति भावः । इदं च मुख्यकार्यकालपक्षे ।  
द्वितीयस्तु दुर्बल एवेत्युक्तम् । सम्राहकवाक्येऽत्र बहुवचनसत्त्वेऽपि लक्ष्यसंस्कारकवाक्ये  
तदनुपयोगादाह—यमिति । एतत्परिभाषाप्रवृत्तिविषयसूत्रे कार्थित्वेन निर्दिष्टमित्यर्थः ।  
अस्य-तत्पदार्थद्वयेनान्वयः । तस्य तत्रोद्देश्यता च यथा कथञ्चिन्न तु तत्सूत्रोपात्तावच्छे-  
दकरूपेणैवेत्याग्रह इति भावः । आगम इत्यस्य य इत्यादि । तद्गुणाभूत इत्यस्य यत  
इत्यादि । अस्यैव व्याख्या—शास्त्रेणेति । आद्यन्तौ टकिनावित्यादिनेत्यर्थः ।  
[ \* एवं चास्य कैयटोक्तार्थो न युक्त इति स्पष्टमुद्द्योते ] ननु ग्रहणमुच्चारण ज्ञानं वा  
न हि तेन तस्य ग्रहणं सभवतीत्यत आह—तद्ग्राहेति । ननु तद्ग्राहकेण श्रोत्रेण तद्ग्र-  
हणेऽपि प्रकृतेष्टासिद्धिरत आह—तद्बोधेति । नन्वेवमपि तेनोच्चारणासम्भोऽत आह-  
बोध्यत इति । स समुदाय इति शेषः । इदमेव ध्वनयितुमस्या लोकन्यायसिद्धत्व  
प्रतिपादयितुं तत्साधकतया विशेषणं सफल्यति—तत्रेति । तेन तद्बोधन इत्यर्थः ।  
परिभाषायामित्यर्थ इति कश्चित् । तद्गुणीभूत इति पाठे तत्रेत्यस्य व्याख्यानं इत्यर्थः ।  
[ + अनेन परिभाषास्थस्यापि तदुक्तप्रायम् । ] तदेवाऽऽह—लोकेऽपीति । अपिः

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ । + वनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थ. क. ख. पुस्तक-  
चोर्वर्तते ।



ज्ञाधिक्ये तद्विशिष्टस्यैव देवदत्तग्रहणेन ग्रहणं दृश्यते । यमुद्दिश्य विहित इत्युक्तेः प्रनिदारयतीत्यादौ न दारित्यस्य घुत्वम् । आने मुक् ( ७।२।८२ ) इति मुग्निधानसामर्थ्यादेवाऽनित्या । अन्यथा पचमान इत्यादावकारस्य मुख्यनया परिभाषया विशिष्टस्य सवर्णदीर्घे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तेन विदीय इत्यादौ यणादि न । जहारेत्यादौ 'आत औ णलः' ( ७।१।३४ )

शास्त्रसमुच्चायकः । तद्विशिष्टस्येत्यनेनोक्तार्थसिद्धिः । एवेन तद्रहितव्यावृत्ति । ननु यदागमा इत्यस्य यथा कथंचिद्यत्संबन्धिन आगमास्तदवयवा इत्याद्येवार्थोऽस्त्वत आह— यमुद्गीति । ( \* ल्यब्लोपे पञ्चमीविधानादित्यर्थः । समासस्तु पञ्चमीति योगविभागात्सुप्सुपेति वा मयूरव्यसकादित्वाद्धेति कश्चित् । ) घुत्वमिति । रेफस्य यथाकथंचिद्घुसंज्ञासूत्रोपात्तदामुद्दिश्याविधानात् । अत एव नेर्णत्व न । अन्यथा रेफस्य शास्त्रेणाऽऽकारावयवत्वबोधनेनावयवावयवस्य समुदायावयवत्वस्य लोकसिद्धत्वेन दावयवत्वस्य रेफे सत्त्वेन तदापत्तिरिति भावः ।

नन्वेवमप्यन्यत्रातिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवात आह—आने मुगिति । अन्यथा, अनित्यत्वानङ्गीकारे । विशिष्टस्य, अमः । अक्त्वेन ग्रहणादाकारेण सहेति शेषः । तेन, एतदनित्यत्वेन । अस्योभयत्रान्वयः । नद्वयोपादानान्न चोक्ति । अन्यथा दिदीय इत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्भ्रष्टे द्वित्वेऽनया तद्विशिष्टस्यैशोऽज्ग्रहणेन ग्रहणादेरनेकाच इति यणापात्तिः । युद्धविधानं तु पाक्षिकयत्रयश्रवणेन सफलमिति भावः । जहारेति । ननु प्रनिदारयतीत्यतोऽत्र को विशेष इति चेत् । शृणु । तत्रोक्तरीत्या घुसज्ञासूत्रोपात्तदोद्देशेन रेफस्याविधानमत्र तु तथाऽऽत औ इत्येतत्सूत्रोपात्ताकारोद्देशेन रेफस्य विधानम् । धातुपदस्यानुवृत्तेरसम्भवात् । णल इत्यनेनाऽऽक्षेपेऽपि तस्य पार्थक्येनाऽऽकारविशेषणतया वाऽन्यसम्भवात् । आक्षिप्तस्य विशेषणत्वस्यैवाङ्गीकारेण सम्भवतीति न्यायानङ्गीकारात् । वक्ष्यमाणरीत्याऽन्यथानुपपत्त्यभावाच्च । अङ्गसंज्ञानिमित्तणल इत्यर्थेनाङ्गस्येति तु षष्ठ्यन्तमेव न तु पञ्चम्यन्तमिति स्पष्ट भाष्यादाविति । एतेनानित्यत्वमनभिप्रेत्य चिच्छिदतुरित्यादौ हलादिःशेषेण तुको निवृत्तिः स्यादित्यादिदोषानभिधाय महता प्रयासेन यथा कथंचित्समार्थं कुर्वन्सीरुद्वादे र्यासुटोऽनयोदात्तत्वे सिद्ध उदात्तविधानमागमानुदात्तत्व ज्ञापयतीति वदन्भ्रान्तश्च परास्तः । अनित्यत्वेन तत्राप्रवृत्ते । आद्य उक्तरीत्या परिभाषाप्रवृत्तेरेवाभावात् । अन्ये भूयासमित्यादौ तस्य चारितार्थत् । लस्य यासुट्यापि लस्य स्थान आद्युदात्त सम्भवादेवेवमर्थादुत्पद्यमानस्यैवाऽऽद्युदात्ततया तत्र यदागमा इत्यस्या अनुवादविषयाया अप्रवृत्त्या यासुडुदात्त-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ ।

इति च न । न चाकारादेर्वर्णस्य वर्णान्तरमवयवः कथमिति वाच्यम् । वचनेनावयवत्वबोधनात् । तस्य चावयवत्वसादृश्ये पर्यवसानं बोध्यम् । न चोक्तज्ञापकाद्वर्णग्रहणेऽस्या अप्रवृत्तिविरिति वाच्यम् । ' आने मुक् ' ( ७ । २ । ८२ ) इति सूत्रे भाष्येऽकारस्याङ्गावयवस्य मुगित्यर्थे पचमान इत्यत्र ' तास्यनुदात्तेत् ' ( ६ । १ । १८६ ) इति स्वरो न स्यादित्याशङ्क्यादुपदेशभक्तस्तद्ग्रहणेन ग्रहीष्यत इत्युक्तेरसंगत्यापत्तेः । किं च ङमन्तपदावयवस्य ह्रस्वात्परस्य ङमो ङमुडित्यर्थे कुर्वन्नास्त इत्यादौ ङमो ङमुडागमे णत्वप्राप्तिमाशङ्क्य यदागमा इति न्यायेनाऽऽद्यनस्यापि पदान्तग्रहणेन ग्रहणात् ' पदान्तस्य ' ( ८ । ३ । ३७ ) इति निषेध इत्यनया च परिभाषयाऽऽगमानामागमिधर्मवैशिष्ट्यमपि

त्वेदौर्लभ्याच्चेति दिक् । कथमिति । शाखायाः शाखान्तसवयवत्वव्यवहारादर्शनादिति भावः । नन्वसिद्धपदार्थस्य वचनसहखेगापि बोधनं दुर्वचमत आह—तस्य चेति । अवयवत्वस्य चेत्यर्थः । अन्यत्रान्यशब्दः प्रयुज्यमानो विनाऽपीति न्यायादिति भावः । वर्णग्रहण इति । यथा कथंचिद्वर्णग्रहण इत्यर्थः । ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात् । अत एव दिदीय इत्यादौ न दोष इति भावः । अथे, सिद्धान्तभूते । इत्यत्र, इत्यादौ । तास्येति । चित्स्वर बाधित्वा परत्वादिष्ट इत्यादि । अङ्गुपदेशेति । अकारान्तोपदिश्यमानेत्यर्थः । स्वरविधौ तथैव सिद्धान्तितत्वात् । अत एव हतो हथ इत्यादौ नानुदात्तत्वम् । शुद्धाकारे तु व्यपदेशिवद्भावो बोध्यः । तत्रत्यकैयटस्तु चिन्त्य एवेति स्पष्टमुद्घोते तत्रैव । अत्र यतस्तद्भक्तोऽनस्तद्धोधकशब्देन समुदायो ग्रहीष्यत इत्यर्थो बोध्यः । ग्राहिष्यत इति तु चिप्त्वद्भावेन रूपम् । एव वर्णस्य विशेषणत्वेनाऽऽश्रयण एतदप्रवृत्तौ दोषमुक्त्वा विशेष्यत्वेनाऽऽश्रयणे तत्र तमाह—किंच ङमन्तेति । अथे, असिद्धान्तभूते । अदिना क्लृपन्नास्त इत्यादिपरिग्रहः । ङमुडागमे णत्वेति । नुडागमनकारे णत्वेत्यर्थः । तस्य पूर्वत्वेनापदान्तत्वेन निषेधाप्रवृत्तेरिति भावः । आद्यनस्यापि, आगमनकारस्थापि । निषेध इतीत्यस्य भाष्य इत्यनेनान्वयः । ननु भाष्ये पदान्तभक्त पदान्तग्रहणेन ग्राहिष्यत इत्युक्तं तदुक्तम् । यदागमा इत्यनयोक्तरीत्या समुदायस्य पदान्तत्वातिदेशेऽपि केवलगमनकारस्य तच्चाभावात् । नत्व तु तस्याप्यस्त्येवेति । अत आह—अनया चेति । चस्त्वर्थे वाक्याल्लकारे वा । कचिन्निश्च. पाठः । अपिभिन्नक्रम आगमानामित्यत्र योज्यः । तेन समुदायसमुच्चयः । अयं भावः—परिभाषाया गृह्यन्त इति पाठः । यदागमा इत्यत्रापीति शेषः । तद्ग्रहणेनाऽऽगमिग्राहकधर्मेण गृह्यन्ते ज्ञानविषयी क्रियन्ते । तथा चाऽऽगमी चेत्

बोधयत इत्याशयकङ्कमुद्सूत्र—( ८ । ३ । ३२ )—स्थभाष्यासंगतेः ।

किं च गुणादे रपरत्वे रेफविशिष्टे गुणत्वाद्येष्टव्यम् । अन्यथा ऋकारस्य गुणवृद्धी अरारावेवेति नियमो न स्यात् । तच्च वर्णग्रहण एतदप्रवृत्तौ न संगच्छते । अत एव ' रदाभ्याम् ' ( ८ । २ । ४२ ) इति सूत्रे भाष्यम्—“ गुणो भवति वृद्धिर्भवतीति रेफशिरा गुणवृद्धि-संज्ञकोऽभिनिर्वर्तते ” इति । अत एव ' नेटि ' ( ७ । २ । ४ ) ' णेरनिटि ' ( ६ । ४ । ५१ ) इत्यादि चरितार्थम् । अनागमकानां

धर्मेण गृह्यते तद्ग्रहणेन तद्गाहकधर्मेण यमुद्दिश्य विहिता आगमा यतस्तद्गुणीभूता अतस्तेऽपि गृह्यन्तेऽपिना तद्विशिष्टा अपीत्यक्षरार्थः । यमुद्दिश्येत्यस्यार्थस्तु प्रागुक्त एव । आगमी यद्यद्धर्मवैशिष्ट्येन भासते परिभाषाप्रवृत्तिविषय आगमविध्यन्यविधौ तदारोपेणाऽऽगमस्यापि तद्धर्मवैशिष्ट्येन ग्रहणमिति यावत् । आगमी येन येन शब्देन बोध्यते तेन तेन शब्देनाऽऽगमस्य समुदायस्य च कार्यारुपेण बोधनमिति फलितोऽर्थः । स च प्रागुक्तो मूले । तत्र समुदायस्य तेन बोधन लोकन्यायसिद्धमुक्तम् । आगमस्य तेन बोधनमपि लोकन्यायसिद्धम् । अङ्गुल्याद्यवयवेऽङ्गुल्यादिव्यवहारदर्शनात् । इदं भाष्यमप्यत्र गमकमिति । इत्याशयके-त्यपि भाष्यविशेषणम् । संगतेरिति । निश्चः पाठः ।

ननु ह्रस्वात्परपदावयवभ्रमः परस्याजादे. पदस्येति व्याख्यानस्यैव सिद्धान्तत्वेनास्यैक-देश्युक्तमतावलम्बनकत्वेनासिद्धान्तत्वान्नाय दोषोऽत आह—किं च गुणादेरिति । अन्यथेति । विशिष्टे तदभाव इत्यर्थः । सर्वत्राऽऽन्तरन्मयाभावस्य तुल्यत्वादिति भावः । तच्चेति । विशिष्टे तदेषण चेत्यर्थः । यत इत्यादि । विशिष्टे तत्त्वे समतिमध्याह—अत एवेति । विशिष्टस्य तत्त्वादेवेत्यर्थः । भाष्यमित्यस्य संगच्छत इति शेषः । तदे-वाऽऽह—गुण इति । यत्तु भ्रान्तादयो नेटीत्यादिज्ञापकमात्रसाध्येयमिति । तत्र । लोकन्यायसिद्धत्वस्योक्तत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—अत एवेति । तथापरिभाषाङ्गीकारा-देवेत्यर्थः । अन्यथाऽपटीत्कारयितव्यमित्यादाविटा व्यवहितत्वादेव वृद्धिणिलोपयोर्भावात्कि-निर्षेधाम्यामिति भावः । तथा चाऽऽद्ये सूत्रे द्वितीयेऽशरूपमनिटीति निषेधक चरितार्थमि-त्यर्थो बोध्यः । आदिनाऽधराणीत्यादिनिर्देशपरिग्रहः । नन्वनागमकानां सागमका आदेशा इति सिद्धान्तात्स्थानिवद्भावप्राप्तवृद्ध्यादिनिषेधार्थतथा नेटीत्यादेः साफल्यमिति कथमेतज्ज्ञा-पकत्वं तैयोः । किं च समुदायस्य तत्त्वमित्यंशरूपा व्यर्थेयं तेनैव गतार्थत्वात् । अत आह—अनागमेति । अयमर्थ इत्यस्य कर्तव्येतीत्यत्रान्वयः । यथाश्रुतार्थतात्पर्ये बीजप्रतिपादन-

सागमका आदेशा इत्यस्य त्वयमर्थः । आर्धधातुकस्येडागम इत्यर्थे ज्ञाते नित्येषु शब्देष्वगमविधानानुपपत्त्याऽर्थापत्तिमूलकवाक्यान्तरकल्पनेनेद्ग्रहितबुद्धिप्रसङ्गे सेद्बुद्धिः कर्तव्येति । एवं चाऽऽदेशेष्विवात्रापि बुद्धिविपरिणाम इति न नित्यत्वहानिः ।

स्थानिवत्सूत्रे च नेदृशादेशग्रहणम् । साक्षाद्दृष्टाध्यायीबोधितस्थान्यादेशभावे चारिताथर्थात् । किं चैवं सति स्थानिबुद्ध्यैव कार्यप्रवृत्त्या 'निर्दिश्यमानस्य' ( प० १२ ) इति परिभाषाया अप्राप्त्याऽडागमसहितस्य पिबाद्यादेशापत्त्या लावस्थायामडितिभाष्योक्तसिद्धान्तासंगतिः । स्थानिवद्भावविषये निर्दिश्यमानस्येति परिभाषायाः प्रवृत्तौ

पूर्वकमत्र हेतुमाह—आर्धधातुकेत्यादि कल्पनेनेत्यन्तेन । तथा च सा हेतौ तृतीया । अनुपपत्त्येति । अभेदे तृतीया । तदभिन्ना यार्थापत्तिस्तन्मूलिकेत्यर्थः । नुपपत्त्यर्थापत्तीति पाठस्तु सुगमः । यद्वा कल्पनायां तस्या हेतुत्वेनान्वय इति यथाश्रुतं तदपि साधु । अर्थापत्तीति । कल्पकप्रमाणोपन्यास । वाक्यान्तरेति । तद्रहितार्धधातुकबुद्धौ सेडार्धधातुकबुद्धिरित्यादिरूपेत्यादिः । तत्तात्पर्यमाह—एवं चेति । बुद्धिविपरिणामस्वीकारे चेत्यर्थः । अत्रापि, आगमेष्वपि । विपरिणाम इत्यस्य तन्मात्रमित्यर्थः ।

नन्वस्त्वेव तथाऽपि तद्वत्तेन गतार्थत्वादि तदवस्थमेवात आह—स्थानिवदिति । ईदृशेति । अनागमकानामित्युक्तेत्यर्थः । साक्षादिति । हनो वधेत्यादिनेति भावः । ननु बुद्धिविपरिणामस्य तत्रापि सत्त्वादविशेषोऽत आह—किं चैवमिति । ईदृशादेशस्यापि तत्र ग्रहणे सतीत्यर्थः । यत्तं, स्थानिवद्भावेन सर्वत्रेति शेषः । स्थानिबुद्ध्यैव कार्यप्रवृत्त्येति । परिभाषाया अप्राप्तौ हेतुः । तस्य तद्बुद्ध्या कार्यकरणे निर्दिश्यमानस्यैव जायमानत्वेन फलाभावात्तदप्राप्तिरिति भावः । अप्राप्त्येत्यग्रेऽपिबदित्यादाविति शेषः । ननु तद्बुद्धिविषयत्वेन तत्त्वऽपि वस्तुतः स्वरूपसन्निर्दिश्यमानत्व न तत्र समुदायस्येति नोक्तदोषो निर्दिश्यमानेति परिभाषाप्रवृत्त्या । न चैव हन्त्यादिकार्यं वधादौ न स्यादिति वाच्यम् । इष्टापत्तः । अतिदेशस्त्विडाद्यागमस्थलविशेष एव सफलोऽत आह—स्थानिवदिति । [ \*आदेशातिरिक्तकार्ये साफल्येन स्थानिवद्भाववैयर्थ्यापत्तिरूपदोषा-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ ड °र्क तत्र । २ ड तस्याम् । ३ ड °त्वे वाऽन्व° । ४ घ °ति । इड्ही° । ५ ख. ततः । ६ घ. तदबुद्ध्या । ७ ड तदबुद्धि° । ८ घ. °षाया. फलसत्त्वेन प्रवृत्ते । अतस्तत्रेदृशस्यापि ग्रहण एव दोषान्तरमाह—स्था° ।

तिसृणामित्यत्र परत्वात्तिस्रादेशे स्थानिवद्भावेन त्रयादेशमाशङ्क्य सकृद्भ्रतिन्यायेन समाधानपरभाष्यासगतिः । ' एरुः ' ( ३ । ४ । ८६ ) इत्यादौ स्थानपष्ठीनिर्देशात् तदन्तपरतया पठितवाक्यस्यैव समुदायादेशपरत्वेनाऽऽदेशग्रहणसामर्थ्यात्तस्य स्थानिवत्सूत्रे ग्रहणेन न दोषः ।

आनुमानिकस्थान्यादेशभावकल्पनेऽपि श्रौतस्थान्यादेशभावस्य जत्याग इति ' अचः परस्मिन् ' ( १ । १ । ५७ ) इत्यादेर्नासंगतिः ।

भावादाह—तिसृणामिति । ] परत्वादित्यस्य त्रयादेशापेक्षेत्यादि । असंगतिरिति । निर्दिश्यमानेतिन्यायेन शङ्काया एवाभावात् । अज्ञानेन तत्करणेऽपि तं विहाय समाध्यन्तरकरणासंगतिरिति भावः । नन्वेतावता तद्विषये तदप्रवृत्तिसिद्ध्या बुद्धिविपरिणामस्येभ्यत्र तुल्यत्वेनाविशेषार्थिकं चैव सतीति दोषापत्त्या यत्र श्रौतस्थान्यादेशभावेन प्रयोगनिर्वाहस्तादृशस्याऽऽदेशस्य तत्र ग्रहणं नाऽऽनुमानिकादेशस्येति सिद्धम् । तथा सत्यैरुरित्यादौ दोषापत्तिरत आह—एरुरिति । तदन्तेति । नित्यत्वानुपपत्तिमूलिकयेत्यादिः । अर्थवत्येव । स्थान्यादेशभावविश्रान्तेः शब्दरूप विशेष्यमादाय वर्णग्रहणे तदन्तग्रहणादिनि भावः । वाक्यस्यैव, एरुरित्यादेरेव । इदं च मध्यमणिन्यायेनान्वेति । एवेनापठितागमस्थलीयानुमानिकवाक्यसदृशवाक्यव्यावृत्तिः । आदेशग्रहणेति । स्थानिवदित्युक्त्यैव संबन्धिशब्दमहिम्नाऽऽदेशाक्षेपे सिद्धे पुनरादेशग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थः । तस्य, तादृशसमुदायादेशस्य । तथा च श्रौतस्थान्यादेशभावे तदनुपपत्तिमूलकतया कल्प्यमानतादृशस्थान्यादेशभावे च तत्प्रवृत्तिर्न त्वागमस्थलीये तत्रेति फलितमिति नोक्तदोषद्वयमिति बोध्यम् । . .

नन्वेवमपि श्रौतस्थान्यादेशभावस्य द्वितीये त्यागादच परेत्यादीनामसगतिवच्छ्रौतावयवावयविभावस्य तत्र त्यागाद्यदागमा इत्यस्याप्यसगतिरेवात आह—आनुमानिकेति । यथेत्यादिः । नासंगतिरिति । तथाऽत्रापि श्रौतावयवावयविभावस्य न त्याग इति यदागमा इत्येतत्प्रवृत्तिरव्याहनेवेति प्रणिदापयतीत्यादौ न दोष इति शेषः । अन्यथाऽऽनुमानिकेत्यादिग्रन्थस्य प्रकृतानुपयुक्तत्व स्पष्टमेव । प्रासङ्गिकत्वकल्पनापेक्षया हीत्यमेवोचितमिति बोध्यम् । यत्तत्र पक्ष आगमत्व नास्त्येवेति तत्र । अनागमकानामित्यादिव्यवहारसंगतेः । किं च निरवयवकबुद्धिनिमज्जनपूर्वकसावयवकबुद्ध्युन्मज्जेनेनाऽऽगमत्वव्यवहारस्यापि निर्वाधत्वात् । किं च नित्यत्वरक्षणार्थैरुरित्यादाविवात्रापि बुद्धिविपरिणाममात्रस्वीकारेण समुदाये गौणादेशत्वव्यवहारेणावयवे तदपगमो न युक्तो भिन्ननिष्ठत्वेनाविरोधादिति

१ घ °कः । तथा च तदसिद्ध्या किंचैव सतीति दोषापत्त्या नोक्तादेशस्य तत्र ग्रहणमिति न तेन गतार्थत्वादीति भावः । नन्वेवं श्रौतादेशस्य तत्र प्र° । २ घ. °पयोगित्वं । ३ घ. °दिपूर्वकव्यं ।

एतेन यदागमा इति परिभाषा स्थानिबत्सूत्रेण गतार्थेत्यपास्तम् ।  
एतत्सर्वं ' दाधा ध्वदाप् (१।१।२०) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ११ ॥

नन्वेवमुदस्थादित्यादौ ' उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ' (८।४।  
६१) इति पूर्वसवर्णापत्तिरत आह—

निर्दिश्यमानस्याऽऽदेशा भवन्ति ॥ १२ ॥

' षष्ठी स्थानेयोगा ' (१।१।४९) इति सूत्रमावर्तते । तत्र  
द्वितीयस्यापमर्थः, षष्ठ्यन्तं निर्दिश्यमानमुच्चार्यमाणमुच्चार्यमाणसजा-  
तीयमेव निर्दिश्यमानावयवरूपमेव वा स्थानेन स्थाननिरूपितसंबन्धेन  
दिक् । तद्ध्वनयत्वाह—एतेनेति । उक्तरीत्याऽनयोर्भिन्नविषयकत्वेनेत्यर्थ । इदं सर्वं समू-  
ल्यति—एतत्सर्वमिति । परिभाषातद्याः स्थानमनागमकानामित्यादि सर्वं चेत्यर्थः । तत्र  
हि प्रनिदारयतीत्यादौ तदभावाय कृत ' समानशब्दप्रतिषेध.' इति वार्तिकमर्थवद्ग्रहण-  
परिभाषया स्वण्डयित्वा प्रणिदापयतीत्यत्र तथैवाव्याप्तिमाशङ्क्य न वाऽर्थवतो ह्यागमस्तदुणी-  
भूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यत इत्याद्युक्त्वा नित्येष्वनागमशासनमयुक्तमित्याशङ्क्य नित्येष्वानागमशासनं  
यथा बुद्धिविपरिणामेन तथाऽत्रापीत्याशयेनाऽऽदेशास्तर्हिमे भविष्यन्त्यनागमकाना साग-  
मकाः । तत्कथम् । सर्वे सर्वपदादेशा इत्याद्युक्तम् । आदेशा इत्यादेरिम आगमत्वेन  
व्यवहियमाणा अपि तथा विधीयमाना अप्यादेशास्तत्सदृशा भविष्यन्तीत्यर्थ इति  
बोध्यम् ॥ ११ ॥

एवं, यदागमा इत्यङ्गीकारे । अनेन पूर्वसगतिरुक्ता । नेयं ज्ञापकलोकतन्त्रान्तरस्थान्या-  
यसिद्धा किं तु सूत्रार्थभूतेत्याह—षष्ठीति । यद्यपि ' षष्ठी स्थाने ' इति सूत्र प्रसिद्धा-  
र्थक नापेक्षित तद्विनैवान्तरङ्गत्वादिनाऽत्र शास्त्रे तादृशस्थले सर्वत्र स्थानसंबन्धलभात्तथा  
चाऽऽनर्थक्यात्तस्यैवायमर्थ इति भाष्य उक्त सीरदेवादिभिरपि तथैवोक्त तथाऽप्यबुधबोध-  
नाय सूत्रमतावलम्बेनाऽऽह—आवर्तत इति । तत्रैकस्य प्रसिद्धार्थकत्वादाह—  
तत्रेति । तयोर्मध्य इत्यर्थः । अय, वक्ष्यमाणः । तमेवाऽऽह—षष्ठ्यन्तमित्यादी-  
तीत्यन्तेन । प्रत्ययग्रहण इति परिभाषया षष्ठीपदेन तदन्तग्रहादाह—षष्ठ्यन्तमिति ।  
निर्दिश्यमानपदाध्याहारादाह—निर्दिश्येति । तदर्थमाह—उच्चार्येति । ननु सूत्रा-  
द्युच्चार्यमाणस्य न तत्संबन्धः किं तु प्रयोगस्थस्यात आह—उच्चार्येति । सर्वं वाक्य-  
मिति न्यायेन सामर्थ्यात्परिभाषायाः फलवतीत्वाच्चाऽऽह—एवेति । नन्वेव सुपद उद-  
स्थादित्यादिसिद्धावप्यतिस्य इत्यादौ दोषोऽत आह—निर्दिश्येति । उच्चार्यमाणसजा-  
तीयावयवरूपमेव वेत्यर्थः । एव च यत्र समुदायोत्तर स्थानषष्ठी तद्विषय पूर्व पक्षो यत्रा-  
वयवषष्ठी तद्विषयोऽन्त्यः पक्ष इति विकल्प । अत एव वक्ष्यतीयं चावयवषष्ठीविषयेऽपीति  
बोध्यम् । इदमप्यध्याहारलभ्यम् । सुपद उदस्थादित्यादौ तु व्यपदेशिवद्भावेन सिद्धिरिति  
भावः । स्थानस्यासंबन्धत्वस्यान्यत्र प्रतिपादितत्वादाह—स्थानेनेति । निवर्त्यनिवर्तक-

युज्यते न तु प्रतीयमानमिति । तेनेदं सिद्धम् ।

न च 'अस्य च्चौ' ( ७।४।३२ ) इत्यादौ दीर्घाणामादेशानापत्तिस्तेषां निर्दिश्यमानत्वाभावादिति वाच्यम् । जातिपक्षे दोषाभावात् । किं च 'न भूसुधियोः' ( ६।४।८५ ) इति निषेधेन ग्रहणकशास्त्रगृहीतानां निर्दिश्यमानकार्यबोधनात् दोषः । इयङ्कुवङोङित्वं त्विवर्णोर्षाणान्तधातुश्नुभ्रुवामित्यर्थेन धात्वादीनामपि निर्दिष्टत्वादन्त्यादेशत्वाय ।

भावेनेत्यर्थः । योगेति कर्मणि घञित्याह—युज्यत इति । एवव्यावर्त्यमाह—नेति । प्रतीयमान, प्रतीयमानसजातीय प्रतीयमानसजातीयावयवरूप वेत्यर्थः । [ \* प्रतीयमानत्वं च यत्किञ्चिच्छास्त्रान्तरप्रापितत्वम् । आनुमानिकमिति यावत् । ] इति तेनेदमिति पाठः । इत्यर्थस्तेनेदमित्यपाठः । तेनेदमिति । उक्तार्थकतत्सूत्रेणोक्तवचन समूलमित्यर्थः । यद्वा, उभयत्रार्थ इत्येव पाठः । अयमित्यस्योक्तवचनरूप इत्यर्थस्तदेवाऽऽह—षष्ठ्यन्तमित्यादिसिद्धमित्यन्तेन । इत्यर्थ इति । द्वितीयसूत्रस्येति भावः । अन्यत्सर्वं प्राग्वत् ।

एव साधितपरिभाषाया व्यक्तिपक्षे शङ्कते—न चेति । इत्यादौ, इत्यादिविषये माली भवतीत्यादौ । दोषाभावादिति । जातेः स्वतो निर्दिश्यमानत्वाभावेऽपि नान्तरीयकतया तत्तात्पर्योच्चारितव्यक्तिद्वारक तदस्त्येव । जातिश्च सर्वत्राविशिष्टा । एवं चोच्चार्यमाणत्वमारोपानारोपसाधारणमते न वक्ष्यमाणग्रन्थासगतिरपीति भावः । नन्वेवमपि व्यक्तिपक्षे दोषस्तदवस्थ एवात आह—किं चेति । यत इति शेषः । ग्रहणकशास्त्रेति । ग्राहकशास्त्राणुदित्सूत्रेत्यर्थः । कार्यबोधनात्, कार्यभवनबोधनात् । अन्यथा, एरनेकाच ओः सुपीत्यादौ तेन तेषां ग्रहणेऽप्यनिर्दिश्यमानत्वाद्भूसुधियोः प्राप्तिरेव नेति निषेधवैयर्थ्यं स्पष्टमेव । धातोरनुवृत्त्या तादृशनिर्दिष्टत्वेऽपि ह्रस्वकारान्तादेशे तस्य तत्त्व न तु दीर्घकारान्तादेशः । चिच्यतुरित्यादावेरित्यस्य षट्मन्तमाचष्टे णिज्मत्ब्लोपस्ततः क्विप्, षट्, षट्त्रावित्यादावो सुपीत्यस्य चारितार्थमिति भावः । नन्वेवमपीयङ्कुवङोङित्वं व्यर्थं ख्योरित्युक्त्याऽनया तयोरेव भवनादत आह—इयङिति । इह ख्योरिति सभवतीतिन्यायेन धातोरेव समानाधिकरण विशेषण नान्ययोरसभवादव्यभिचाराच्च । तदाह—इवर्णोर्वर्णान्तेति । धातुश्नुभ्रुवामिति पाठः । सर्वमूलत्वेनाभ्यर्हितत्वाद्धात्वन्तस्य पूर्वनिपातः । अत एवाग्रे धात्वादीनामित्युक्तिः । सूत्रे तु सौत्रत्वात्तदविवक्षयाऽल्पाचूतस्त्वेन तथा प्रयोग इति बोध्यम् । इत्यर्थेन, अचि श्नुधात्वित्यस्येति शेषः । अपिर्वर्णसमुच्चायकः । निर्दिष्टत्वात्, स्वरूपतः प्रागुक्तरित्या यथासभव निर्दिष्टत्वात् । साक्षादिति शेषः ।

\* वस्तुश्चिद्धान्तगतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'वैवेले' । २ घ. 'दिल्ले मा' । ३ घ. 'र्थभावो' । ४ घ. 'दे विव्यु' । ५ घ. व्यर्थम् । ए ओ इत्यनयोस्तत्रानुवृत्त्या तदन्ते प्राप्तावप्यनं ।

रीङ्गिडोङ्गित्वं तु स्पष्टार्थमेव । एतेनेदं ङित्वं वर्णग्रहणे निर्दिश्यमान-  
परिभाषाया अप्रवृत्तिज्ञापकमित्यपास्तम् । हयवरट्सूत्रस्थेन ' अयोग-  
वाहानामुपदेशेऽलोऽन्त्यविधिः प्रयोजनं वृक्षस्तत्र नैतदस्ति प्रयोजनं  
निर्दिश्यमानस्येत्येव सिद्धम् ' इति भाष्येण विरोधात् ।

अनया परिभाषया 'येन विधिः' (१।१।७२) इति सूत्रबोधिततदन्तस्य  
स्थानित्वाभावबोधनं ' यदागमाः ' ( ५०११ ) इति लब्धस्य च । तेन

एव च तत्त्वाविशेषेऽपि प्राधान्याच्छ्रुतुवोरुक्तयुक्त्यसंभवच्च तेषामेव स्यादिति नामया  
वारणमिति ङित्वमावश्यकमिति भावः । नन्वेवमपि रीङ्गिडोङ्गित्वं व्यर्थम् । तद्विधौ वर्णवत्स-  
मुदायस्यानिर्दिष्टत्वादनर्थैव निर्वाहात् । न चाङ्गस्येत्यधिकारप्राप्तमिति तदपि तथा निर्दि-  
ष्टमेवेति वाच्यम् । तावताऽप्यतिप्रसक्त्या तस्य स्वातन्त्र्येणास्थानित्वेन तदन्तविधिं विना  
तत्राऽऽदेशाप्राप्त्याऽवश्यवाच्यतदन्तविधौ तत्र तदभावबोधकत्वेन स्थानित्वनिवारकत्वेनास्या-  
स्तत्र विद्यमानस्यापि निर्दिष्टत्वस्याप्रयोजकत्वात् । अत एव प्राग्घात्वादीत्यत्राऽऽदिपदो-  
क्तिरेरनेकाच इत्यादावङ्गस्यातत्त्व च । एव चानुवृत्त्या तत्त्वमाधिकारसूत्रान्यसूत्रस्थपदस्यै-  
वेति न वक्ष्यमाणातिस्य इत्यादिग्रन्थासंगतिरत आह—रीङ्गिति । एवेन फलान्तरव्यव-  
च्छेदः । तमेवाऽऽह—एतेनेति । वक्ष्यमाणदोषेणेत्यर्थः । इदं ङित्वं, रीङ्गिदेङ्गित्वम् ।  
तमेव दोषमाह—ह्येति । अस्य भाष्येणेत्यत्रान्वयः । उपदेश इति । प्रयोजनवि-  
शेषनिर्देशं विनोपदेश इत्यर्थः । वृक्षस्तत्रेति । अलोऽन्त्यस्येत्यन्त्यस्य सत्त्वसिद्धिरिति  
भावः । विरोधादिति । तत्रापि वर्णग्रहणेन त्वद्रीत्यैतदप्रवृत्त्यापत्तेरिति भावः ।

नन्ववतरणादस्या यदागमा इतिन्यायमात्रलब्धविशिष्टस्थानित्वबाधकत्वलाभात्सुपद  
इत्याद्यासिद्धिः । सामान्यतः सर्वबाधकत्व त्वस्य च्वावित्याद्युत्तरीत्या दुर्वचम् । अतः  
पर्यवसितमाह—अनयेति । एव चोभयलब्धविशिष्टद्वय प्रतीयमानत्वेन विवक्षितं तद्विभ्रं  
प्रागुत्तरीत्योच्चार्यमाणत्वेन विवक्षितमिति न काश्चिद्दोषः । तथा चोपस्थितत्वेन तथोक्तावपि  
तत्तस्याप्युपलक्षणमिति भावः । पदाङ्गाधीत्यस्य सूत्रप्रपञ्चत्वादाह—येनेति । ततः परादेः  
कार्यस्येष्टत्वादाह—स्थानित्वेति । सूत्रतस्तथैव लाभादिति भावः । लब्धस्य चेति ।  
विशिष्टस्य तत्त्वाभावबोधनमित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । स्थलविशेषेऽलोऽन्त्यपरिभाषालब्ध-  
स्यापि तस्याभावबोधनमित्यपि बोध्यम् । इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति । अनेनैव क्रमेण  
तयोरुदाहरणे आह—तेनेति । अस्य वचनस्य तदुभयादिबोधिते तत्र तैद्वाधकत्वेने-



सुपद उदस्थादित्यादिसिद्धिः । अनया च स्वस्वनिमित्तसंनिधापिता-  
नाम् 'अलोऽन्त्यस्य' ( १ । १ । ५२ ) इत्यादीनां समावेश एवं न  
बाध्यबाधकभावो विरोधाभावात् । नाप्येतयोरङ्गाङ्गिभाव उभयोरपि  
परार्थत्वेन तदयोगात् । 'अनेकालिशत्' ( १ । १ । ५५ ) इति सूत्रे  
सर्वश्रैतत्परिभाषाबोधित एव गृह्यते ।

यत्तु 'आदेः परस्य' ( १ । १ । ५४ ) 'अलोऽन्त्यस्य'  
( १ । १ । ५२ ) इत्येतावेतद्बाधकाविति तन्न । उदस्थादिति सूत्रवि-  
षयेऽस्याः 'पादः पत्' ( ६ । ४ । १३० ) इति सूत्रे भाष्ये संचा-  
रितत्वात् । नाप्येतयोरियं बाधिका । एतयोर्निर्विषयत्वप्रसङ्गादिति

त्यर्थः । आदिना विंशक इत्यादिपरिग्रहः । कस्यचिदुक्तिं खण्डयितुं सिद्धान्तमाह—  
अनया चेति । सहेति शेषः । त्यदादीनाम एरनेकाच इत्यादाविति भावः । आदिनाऽऽ-  
देरित्यस्य परिग्रहः । बहुवचनेनानेकालित्यस्य परिग्रहः । समावेश एवेति । अधिकृ-  
ताङ्गाद्युपात्तयदाद्यनेकाजादिव्यवच्छेदद्वारैतद्व्यवस्थापकत्वस्यापि तेषां संभवादिति भावः ।  
एवव्यवच्छेद्यमेवाऽऽह—न बाध्येति । विरोधेति । कचिन्निष्फलत्वेऽप्येतत्प्रवृत्तौ  
दोषाभावेन कचित्तत्साध्यफलस्यैवानया साध्यत्वेन धर्मद्वयाक्रान्तत्वस्यैकत्र समवेन च  
तदभावादित्यर्थः । अन्यथा परत्वात्तेषामेतद्बाधकत्वापत्तिरिति भावः । नन्वेवमङ्गाङ्गिभावा-  
पत्तिरत आह—नापीति । परार्थत्वेन, विध्युपकारकत्वेन । गुणानामितिन्यायादिति  
भावः । नन्वेवमपि येन विधिर्यदागमा इत्युभयबोधितस्थानिनोरनेकालित्यत्रत्यसर्वपदेन  
ग्रहणादनया सह तस्य विरोधसमवेन बाध्यबाधकभावापत्त्या परत्वाद्यनेकालित्यस्य प्रवृत्त्या  
सुपदो निर्जरसावित्याद्यसिद्धिरैवात आह—अनेकालिति । एवेन तदुभयबोधितव्यावृत्तिः ।  
तथा च तेनापि समावेश एव । पदन्न इत्यादावप्यादेशैः पाणिनिकृतस्थान्युच्चारणानुमाना-  
त्तेषां व्यवस्थार्थत्वाद्वा न दोष इति भावः ।

कौस्तुभोक्तिं खण्डयति—यत्त्विति । परत्वात्सर्वादेशविषयेऽस्याश्चारितार्थं तेनैव हि  
समावेशस्तथा भाष्य उदाहरणात् । तयोस्तु कृते चारितार्थमिति भावः । उदस्थादिति  
सूत्रेति । पादः पादिसूत्रभाष्य उदस्थादिति लक्ष्य आदेरितिसूत्रविषयेऽस्याः संचारितत्वा-  
दित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । तत्सूत्रेति विशतेरिति सूत्रे चालोन्त्यस्य भाषाविषयेऽस्याः  
संचारितत्वादित्यपि बोध्यम् । किञ्चोक्तरीत्या तेषां व्यवस्थापकत्वे संभवति बाधकत्वकल्प-  
नानौचित्याद्बाधनेनोपेतिन्यायादित्यपि बोध्यम् । एतयोः, पूर्वोक्तयोरनयोः । बाधि-  
केति । अन्तरङ्गत्वादिति भावः । निर्विषयत्वेति । कचिदनया बाधेन सिद्धेः

‘ति विंशतेः’ ( ६ । ४ । १४२ ) इति सूत्रे कैयटः ।

अक्रज्विषये नाय न्यायः । स्थानिवद्भावेनेव तन्मध्यपतितन्यायेन क्वचिदनिष्ठापत्तेः क्वचिदन्त्याद्योरनिर्दिश्यमानविषयत्वाभावाच्च । एव चैतद्विषय उक्तरीत्याऽ-लोन्त्यस्येत्यादिप्रवृत्तावप्यबाधिततद्विषयताके राज्ञः क चेत्यादौ नैतत्प्रवृत्तिरुभयाद्यविषय-त्वात् । एवं च समः सुटि तासस्त्योरित्यादौ येनेतिविषय एतत्प्रवृत्त्या तत्प्रवृत्तिः सुवचेति न दोषः । स स्यार्थेत्यत सीतित्वस इत्यनुवृत्तिरप्यन्त्ये सुवचेति भावः । ति विंशतिः । तत्र हि यस्येति चेत्यनेनैवान्त्यस्य लोपे सिद्धे सूत्रारम्भसामर्थ्यात्समुदायस्य निर्दिष्टत्वात्प्रा-प्तादेशवारणाय तिम्रहणे कृतेऽप्यन्त्यस्य कुतो नेति प्रश्ने निर्दिश्यमानेतिवारणपरोत्तरभाष्य-प्रतीकेनात्र परिभाषाप्रवृत्तिरिष्टा । न हि सा तयोर्बाधिका । उक्तहेतोः । तस्मात्तिम्रह-णसामर्थ्यादलोन्त्यस्येत्यस्याप्रवृत्तौ सर्वस्यार्थाल्लोप इति भाष्याकृतमिति तेनोक्तम् । कैयट इत्यनेनारुचिः सूचिता । उक्तार्थस्येष्टत्वेऽपि नानर्थक इत्यस्य प्रत्याख्यानपरिसिद्धान्तभाष्य-रीत्या तद्भाष्ययोजनेत्यमनुचिता । अक्षरास्वारस्यात् । न चैव भाष्यासंगतिः । एकदेश्यु-क्तेन प्रकारान्तरेण सुयोजत्वात् । तथा हि—द्वयोर्दशतोर्विन्नादेशः शतिचप्रत्यय इति पक्षेऽ-व्युत्पत्तिपक्षे विशादेशस्तित्प्रत्यय इति साधुत्वाय व्युत्पत्तावपि वस्तुतः शुद्धरूढे चानर्थक-त्वेनालोन्त्यस्येत्यस्याप्रवृत्त्याऽनया सर्वादेश इति । एव चैकदेशिमताभिप्रायकमेव तद्भा-ष्यम् । अत एवोद्द्योतेऽन्य इत्युक्तम् । सिद्धान्तस्तु कैयटोक्त एव । इदमेव सूचयितुं तिविंशतिसूत्रपर्यन्त गमनम् । अन्यथोक्तार्थस्य षष्ठी स्थान इत्यत्रैव कैयटेनोक्तत्वेन तावत्पर्यन्तगमन व्यर्थमेवेति बोध्यामिति केचित् । वस्तुतस्त्विद्यं परिभाषा तयोर्विषय इव प्रकारान्तरेण बाधितालोन्त्यपरिभाषाविषयेऽपि तत्त्वस्य बाधिकेति तद्भाष्याकृतम् । नैतावता तयोर्निर्विषयत्वप्रसङ्गः । सामर्थ्यसहकारस्थल एव तथाऽङ्गीकारात् । युक्त चैतत् । निर्दिश्य-मानत्वस्याक्तपरिमाणधर्मतया सरुयादिवन्न्यूनाधिकयोरसत्त्वेनाधिके तत्त्वव्यवच्छेदवन्न्यूनेऽपि तत्सभवात् । एव चैव भाष्यसंगतावन्यथा वदन्तौ कैयटोद्द्योतौ चिन्त्यावेव । अत एव कैयट-व्याख्यानमकृत्वा स्वव्याख्यानेऽन्य इत्यरुचिसूचकमुद्द्योत उक्तम् । एव च त्रितयबोध्यास्था- नित्वाभाषबोधनमनया क्रियत इति बोध्यम् ।

नन्वेवमप्यस्या अक्रज्विषयेऽपि प्रवृत्तिसभवेन पूर्वत्र तन्मध्यपतितन्यायस्याप्युल्लेख उचितैः । तथा च साकचकस्य कार्यं न स्यादत आह—अक्रजिति । [\*नायं न्याय इति । येन विधिर्यदागमा इत्येतद्भाष्यत्वेनोत्सर्गसम्मानदेशा इति न्यायेनास्यास्तद्विषयत्वेन तद-विषये तत्राप्राप्तेरिति भावः ] तत्रैतन्न्यायाप्रवृत्तौ हेतुमाह—स्थानीति । [ +एवो व्युत्क्रमे न्यायेनेत्युत्तर योज्यः । तथा च ] यथा स्थानिवद्भावेन स्थानिबुद्ध्या कार्यं तथा

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. घ पुस्तकयोर्वर्तते । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. घ, पुस्तकस्थः ।

तद्बुद्ध्यैव कार्यजननात् । इयं चावयवषष्ठीविषयेऽपि । अत एव 'तदोः सः सौ' ( ७ । २ । १०६ ) इति सत्वमतिस्व इत्यत्रोपसर्गतकारस्य न । निर्दिश्यमानयुष्मदाद्यवयवमपर्यन्तस्यैव यूयादयो न त्वतियूयमित्यादौ सोपसर्गावयवमपर्यन्तस्येति बोध्यम् । ' पादः पत् ' ( ६ । ४ । १३० )

तेन न्यायेन तद्बुद्ध्यैव कार्यजननादित्यर्थ । अस्याऽऽशयः किं चैव सति स्थानिबुद्ध्यैवेति-  
ग्रन्थव्याख्यानरीत्या बोध्यः । न चैवमत्र दृष्टान्तोक्तिरधिकेति वाच्यम् । पूर्वदोषारुच्या  
तिसृणामित्यत्रान्यथात्रयादेशवारणपरभाष्यासगत्यापत्त्या तदग्रिमया पूर्वत्रोक्तया यथा  
तद्विषय एतदप्रवृत्तिरेवमत्रारुचिसत्त्वेऽपि किम इत्यस्योत्तरार्थत्वेऽपि कादेशविधानसामर्थ्या-  
त्स्थानिवद्भाववत्तन्मध्येतिन्यायवैयर्थ्यापाताच्च तद्विषय एतदप्रवृत्तिरिति तन्मध्येतिन्यायः  
स्थानिवद्भावतुर्यो न तु ताभ्यामिति तत्कोटिप्रविष्टत्व तन्मध्येत्यस्य नेति तौ द्वौ मिथस्तु-  
र्यावेतौ द्वौ च मिथ इति ताभ्यामत्र भेद इति सूचनार्थत्वात् । एतेन । तयोरेव विष-  
येऽस्याः प्रवृत्तिरित्यत्र किं मान तन्मध्येतिन्यायविषयेऽपि प्रवृत्तिसभवात् । किं च यदा-  
गमा इत्यनेनापि तद्बुद्ध्यैव कार्यजनने ततोऽविशेषेण तत्रैतदप्रवृत्तावस्य हेतुत्वासम्भोऽ-  
न्यथा स्वपूर्वापरविरोध इत्यपास्तम् । ग्रन्थयोरन्याशयकत्वस्योक्तत्वात् । शीङो रुडित्यत्र  
रुड् न झस्य तथा सत्यत्तस्य न स्यात् , ओङेरित्यनेन रुट एव स स्यादिति न्यासकृद्यु-  
क्तिस्तु चिन्त्यैव । तथा सत्यनया तस्य सर्वथा दौर्लभ्यापत्तेः । अत एवादभ्यस्तादित्युतोऽ-  
दित्यनुवृत्तिरूरीकृता दीक्षितैः । एतेनैतदनपेक्षेय न्यासकृद्युक्तिर्मपर्यन्तेतिमूर्त्रे तदभावे  
युक्त्वामित्यादावतिप्रसङ्ग इति तदुक्तिरपि तथेति सीरदेवोक्तमपास्तम् । आद्य उक्तरीत्या  
दोषाभावात् । अन्य एतदप्रवृत्तेरुक्तत्वात् । नन्वेवमपि षष्ठी स्थान इत्यस्या अनिर्धारित-  
संबन्धविशेष एव प्रवृत्त्या तदर्थकत्वेनास्या अपि तत्रैव प्रवृत्तिः स्यादिति प्रथमार्थ एव  
प्रागुक्तो युक्तो न द्वितीय इत्यातिस्य इत्याद्यसिद्धिरेवात् आह—इयं चेति । चो वाक्या-  
लंकारे । अत्र लक्ष्यानुरोधस्य हेतुत्व सूचयितुं फलमाह—अत एवेति । तत्रापि प्रवर्तना-  
देवेत्यर्थः । अस्य बोध्यमित्यत्रान्वयः । अतिस्य इत्यत्र कर्मधारयः । तकारस्य नेति ।  
अन्यथाऽङ्गाधिकारात्तदन्तविधौ त्यदाद्यन्तानामङ्गानां तदोः स इत्यर्थेन तदापात्तिः स्पष्टैवेति  
भावः । फलान्तरमाह—निर्दिश्येति । एतत्प्रवृत्तिलब्धार्थकथनमेतत् । एवव्यावर्त्यमाह—  
न त्वतीति । अत्यादय इति समासः । सोपेति । अन्यथा पूर्ववत्तदन्तविधिना  
युष्मदाद्यन्ताङ्गावयवमपर्यन्तस्येत्यर्थेन प्राप्तिरिति भावः । नन्वस्याः पादः पादिति सूत्रस्थ-

इति सूत्रे 'षष्ठी स्थाने' (१ । १ । ४९) इति सूत्रे च माष्ये स्पष्टैषा ॥ १२ ॥

ननु चेतेत्यादौ ह्रस्वस्येकारस्य प्रमाणत आन्तर्यादिकारोऽपि स्यादत आह—

यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः ॥ १३ ॥

अनेकविधं स्थानाथगुणप्रमाणकृतम् । अत्र मानं 'षष्ठी स्थाने' (१।१।४९) इत्यत एकदेशानुवृत्त्या स्थानेग्रहणे पुनः स्थानेऽन्तरतमः (१।१।५०) इति सूत्रे स्थानेग्रहणमेव । तद्धि तृतीयया विपरिणमय्य वाक्यभेदेन स्थानिनः प्रसङ्गे जायमानः सति संभवे स्थानत एवान्तरतम इत्यर्थकम् ।

त्वेऽपि प्राथमिकत्यागो निर्बीजोऽत आह—षष्ठीति । उक्तमेतत् ॥ १२ ॥

स्थान्यादेशभावप्रसङ्गात्तदग्रिमसूत्रमूलकत्वाच्च तदुक्तिरिति ध्वनयन्नाह—ननु चेतेत्यादाविति । केचित्तु नन्वित्यस्यैवमपीति शेषः । उक्तपरिभाषया प्रतीयमानस्याऽऽदेशवारणेऽपीति तदर्थः । तथा च स्थानिकृतदोषवारणेऽप्यादेशकृतातिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवेति भाव इत्याह । अकारोऽपीति । अपिना पक्षे स्थानत आन्तर्यात्प्राप्तैकारसमुच्चयः । उभयोस्तुल्यबलत्वादिति भावः । यत्र, चेतेत्यादिलक्ष्ये । स्थानिन आदेशैः सहेति शेषः । अनेकविधं, स्थानतदन्यकृतम् । आन्तर्यम् । अनियमप्रसङ्गनिवारणपूर्वकामिथोविरुद्धादेशसपादकतया नियामकत्वेन प्रसक्तम् । तत्रेति । प्राग्वत् । तयोर्मध्य इति शेषः । वाग्ध्निरित्यादौ स्थानत आन्तर्यस्य न नियामकत्वेन प्रसक्तिरिति सत्त्वेऽपि तस्य न गुणकृतान्तर्यतः प्राबल्यमिति परिभाषाक्षरार्थः । प्रागुक्तमेव फलम् । अनेकत्वस्य द्वादिपरार्धपर्यन्तेषु सत्त्वात्प्राचीनमतस्य सुयोजत्वेन भाष्यमतमनपेक्ष्य तन्मतेन वास्तव तद्विशेषस्वरूपमाह—स्थानार्थीति । तेषामेव समवादन्येषामत्रैवान्तर्भावसमवाच्चेति भावः । नन्वेवमपि वचनं निर्मूलमत आह—अत्रेति । परिभाषायामित्यर्थः । एकदेशेति । दामहायनान्ताच्चेत्यादौ दृष्टयेति शेषः । एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञानादिति भावः । स्थानेग्रहणे, प्रसङ्गवाचिनि । अनुवर्तमाने इति शेषः । अन्यथा तृतीयान्तसप्तम्यन्तयोरनन्वयः स्पष्ट एव । स्थानेग्रहण, कृष्ठादि स्थानवाचि । एवेन ज्ञापकादिनिवृत्तिर्न तु सूत्रस्येति ध्वनयितुं केवलस्य तस्य तत्त्वासंभवात्सूत्रद्वारा तस्य तत्त्वसुपपादयति—तद्धीति । स्थानेग्रहणं हीत्यर्थः । तृतीयया, तदन्तेन तृतीयार्थं सप्तमिति तत्त्वम् । विपरिणमयेत्यस्य सूचितेनेति शेषः । अन्यथा ल्यबन्नुपपत्तिः स्पष्टैव । वाक्यभेदेन योज्यमिति पाठे तु शेषपूरणं विना तेन तथा कृत्वा तेन योज्यं तद्धीत्यर्थकमित्यर्थः । प्रसिद्धपूर्ववाक्यार्थलब्धमर्थमनुवदति—स्थानिन इति । सति संभव इत्यनेनासंभवेऽ-

तमग्रहणमेवानेकविधान्तर्यसत्तागमकम् । स्थानतः स्थानेनेत्यर्थः । तत्र स्थानत आन्तर्यम् ' इको यणचि ' ( ६ । १ । ७७ ) इत्यादौ प्रसिद्धमेव । अर्थतः ' पदन्न ' ( ६ । १ । ६३ ) इत्यादौ । स्थान्यर्थाभिधानसमर्थस्यैवाऽऽदेशतेति सिद्धान्ताद्यर्थाभिधानसमर्थो यः स तस्याऽऽदेश इति तत्समानार्थतत्समानवर्णपादादीनां ते । 'तृज्वत्क्रोष्टुः' ( ७ । १ । ९१ ) इति च । गुणतो वाग्घरिरित्यादौ । प्रमाणतः ' अदसोऽसेः ' ( ८ । २ । ८० ) इत्यादौ । स्थानेऽन्तरतमसूत्रे ( १ । १ । ५० ) भाष्ये स्पष्टेषा ॥ १३ ॥

न्यस्यापि ग्रहो यथा वाग्घरिरित्यादाविति सूचितम् ॥ एवेनान्यान्यन्तर्यव्यावृत्तिः । ननु वाक्यभेदेन न फलभनेकविधान्तर्यसत्त्वं एव मानाभावात् । न च स्थानेग्रहण तथा ॥ प्रसङ्गे स्थानकृतान्तर्यवानित्यर्थेनैव सिद्धेः । तथा च तद्धसतीत्यादावव्यवस्थापत्तिरत आह—  
**हमक्षिति** । यद्येक स्थानकृतमेव तत्स्यात्तदाऽऽन्तर इत्येवसिद्धे तद्दानर्थक्य स्पष्टमेव । उक्तर्यस्य प्रतियोगिसापेक्षत्वात् । तथा चैकवाक्यतायामुक्तद्रोषापत्तिरिति वाक्यभेद आवश्यक इति भावः । ननु तत्र स्थान इत्यस्य तृतीयान्तार्थकत्वेऽपि परिभाषाया स्थानत इति पञ्चम्यन्तस्य सत्त्वेनार्थभेदापत्तिरत आह—**स्थानेनेति** । आद्यादित्वात्तृतीयान्तात्तसिरिति भावः । सति सभव इतिविशेषणसाफल्याय चतुर्णां क्रमेणोदाहरणान्याह—**तत्रेति** । चतुर्णां मध्य इत्यर्थः । ननु पदन्न इत्यादौ स्थानिनामेवानुपादानात्कथं तत्त्वमत आह—**स्थान्यर्थेति** । अर्थवत्येव स्थान्यादेशभावविश्रान्तेरिति भावः । **तत्समानेति** । तत्राऽऽदेशोत्वग्रहे स्थान्यर्थाभिधानसमर्थत्वग्रहे सति स्थानिन्यपि तदार्थाभिधानसमर्थत्वस्य तुल्यवित्तिवेद्यत्वेन ग्रहेणाऽऽदेशाक्षिप्तादेशसमानार्थेत्यर्थः । नन्वेव चरणादीनामपि तदापत्तिरत आह—**तत्समानेति** । आदेशसमानवर्णेत्यर्थः । तदपि भूयसा यथाकथञ्चिन्न तु सर्वांशेनेति भावः । ते, पदादयः । ननु पदन्न इत्यादेः अर्थवस्थार्थत्वेन स्थान्यदेशभाव एव तत्र नात आह—**तृज्वदिति** । इति च, इत्यादौ च । गुणशब्देनोक्तत्रितयातिरिक्तं धर्ममात्र तेनानान्तर्यमेवैतयोरित्यादिभाष्येण न विरोधः । बाह्यानां विवारादीनां साक्षाद्गर्णावृत्तित्वेऽप्यौपचारिक गुणत्वम् । तदाह—**गुणतो वाग्घरिरिति** । इदं च, कौमुद्या स्पष्टम् । आदिना कृष्णाद्धिरित्यादिपरिग्रहः । प्रमाणस्य ह्रस्वत्वादेर्वस्तुतो गुणत्वेऽपि ब्राह्मणवसिष्ठन्यायेन पृथगुक्तिरिति ध्वनयन्नाह—**प्रमेति** । **अदसोऽसेरिति** । अत्राऽऽन्तरतम्याद्-ह्रस्वव्यञ्जनयोर्ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घ इति भावः ॥ १३ ॥

ननु प्रोढवानित्यत्र 'प्रादूहोढ ( ६ । १ । ८९ । ३ वा० ) इति वृद्धिः  
स्यादत आह—

अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ १४ ॥

विशिष्टरूपोपादान उपस्थितार्थस्य विशेषणतयाऽन्वयसंभवे त्यागे  
मानाभावोऽस्या मूलम् । अत्रार्थः कल्पितान्वयव्यतिरेककल्पितः शास्त्री-  
योऽपि गृह्यत इति ' संख्याया अति ' ( ५ । १ । २२ ) इति सूत्रे  
भाष्ये स्पष्टम् । इयं वर्णग्रहणेषु नेति ' लस्य ' ( ७ । ४ । ७७ ) इत्यत्र  
भाष्ये स्पष्टम् । अत एवैषा विशिष्टरूपोपादानविषयेति वृद्धाः । एतन्मू-  
लकमेव ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये पठ्यतेऽल्लैवा-

नन्विति । एवमपीति शेषः । स्थानत आन्तर्यस्य प्राबल्यप्रतिपादनेऽपीति तदर्थः ।  
इत्यत्र, इत्यत्रापि । तथा चान्यत्रान्यथाऽतिप्रसङ्गस्तदवस्थ इति स्थान्यादेशभावप्रसङ्ग एव  
संगतिरिति भावः । परिभाषाया भाष्यमते मानमाह—विशिष्टेति । वर्णसमूहेत्यर्थः ।  
इदं च बक्ष्यमाणरीतिसिद्धार्थकथनम् । विशेषणेति । उपात्तशब्दरूपं प्रतीति भावः ।  
सभवे, सतीति शेषः । नन्वत्र प्रसिद्धत्वालौकिकार्थग्रहणम् । स च वाक्ये पदे वा । एव  
च प्रोढवान्पटुजातीयोयेत्यादावनया कथं वारणमत आह—अत्रेति । परिभाषायामि-  
त्यर्थः । अन्वयव्यतिरेकयोरपि लोकेऽनुपयोगेन वस्तुतोऽसत्त्वादाह—कल्पितेति ।  
शास्त्रवासनाकल्पितेत्यर्थः । कल्पित इति । प्रकृतिप्रत्ययादिबोधय इति शेषः । अपि-  
लौकिकसमुच्चायकः । संख्याया अतीति । तत्र हि ङितेश्चेति वार्तिकमनयोक्तरित्या  
प्रत्याख्यातम् । नन्वेवमुक्तरूपविशिष्टरूपोपादान एव प्रवृत्तौ मानाभावेन तथोक्तिरयुक्तेति  
भवत्वित्तीत्यादौ लक्ष्मीनारायणार्थकयशब्दादौ सावकाशो यणन स्यादत आह—इयं  
वर्णेति । लस्येत्यत्रेति । तत्र हि लादेशे सर्वप्रसङ्गाऽविशेषादिति दत्ताया लुनातीत्या-  
दावापत्तेरनया कृत वारण न वर्णग्रहणेऽपि खण्डितम् । अत एवेति । ततो वर्णग्रहण  
एतदप्रवर्तनादेवेत्यर्थः । उक्तार्थं मानान्तरमपि ध्वनयितुमाह—एतन्मूलेति । वर्णग्रहण  
एतदप्रवृत्तिमूलकमेवेत्यर्थः । वार्तिकमिति शेषः । एवेन मूलान्तरव्यावृत्तिः । अय भावः—  
यादि सर्वत्रास्याः प्रवृत्तिस्तर्ह्यलोऽनर्थकेनेति विशेषणमयुक्तम् । एतत्परिभाषाविरोधात् ।  
तस्माद्गणादिन्यत्रैवास्याः प्रवृत्तिरिति हनादौ पदाङ्गाधिकार इति तदन्तविधिना प्राप्तज्ञाना-  
दिग्रहणाभावाय तद्वार्तिकम् । तथा च वर्णसमुदायेन चेत्तदन्तविधिस्तर्ह्यर्थवतैवेति फलितम् ।  
एतेन न वर्णग्रहणेऽपि पूर्वापवादभूत परिभाषान्तरमिति । तत्र ज्ञापकसुत्रे इति सूत्रम् ।  
अन्यथा उ इतीत्यत्र अत्रो आनर्थक्याद्यणादेशस्यैवाप्रसङ्गे कि तेन । इदूतौ च सप्तम्यर्थ

मर्थकेन तदन्तविधिरिति । किं च 'स्वं रूपम्' ( १ । १ । ६८ ) इति शास्त्रे स्वशब्देनाऽऽत्मीयवाचिनाऽर्थो गृह्यते रूपशब्देन स्वरूपम् । एवं च तदुभयं शब्दस्य संज्ञीति तदर्थः । तत्रार्थो न विशिष्यस्तत्र शास्त्रीयकार्यासंभवात्किं तु शब्दविशेषणम् । एवं चार्थविशिष्टः शब्दः संज्ञीति फलितम् । तेनैषा परिभाषा सिद्धेति भाष्ये स्पष्टम् ॥ १४ ॥

नन्वेवमपि महद्भूतश्चन्द्रमा इत्यत्र 'आन्महतः' ( ६ । ३ । ४६ ) इत्यात्वापत्तिरत आह—

गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ १५ ॥

गुणादागतो गौणः । यथा गोशब्दस्य जाड्यादिगुणनिमित्तोऽर्थो इति निर्देशो वेत्यादि च सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तत्रैतदप्रवृत्त्यैव निर्वाहे वचनान्तरकल्पने गौरवात् । सूत्रमते परिभाषाया मानमाह—किं चेति । स्वरूपमिति । शब्दस्वरूपमित्यर्थः । एवं चेति । उभयग्रहणे चेत्यर्थः । तथा च पदार्थोपस्थिति सपत्नेति भावः । तदुभयमिति । तत्सूत्रघटकशब्दद्वयबोध्य द्वयमित्यर्थः । एवमप्रेऽपि । तदुभय ताभ्यां स्वरूपशब्दाभ्या गृह्यमाण द्वयमिति वा । एतदुभयमिति पाठस्तु सुगमः । तत्र, अर्थे । शास्त्रीयेति । प्रत्ययेन पौर्वापर्यासंभवात् । प्रातिपदिकादित्यनेनान्वयासंभवाच्चेति भावः । शब्दविशेषण, शब्दस्य विशेषणम् । अर्थ इत्यनुषज्यते । एव च, अर्थस्य तद्विशेषणत्वे च । तेनैषेति । तथा तदर्थेन सूत्रेणेत्यर्थः । ननु सूत्रस्य प्रत्याख्यानादयुक्तमिदमत आह—भाष्य इति । इत्यादिभाष्ये स्पष्टमित्यर्थः । अनेनाऽऽद्यप्रकारं एव तदा बोध्य इति सूचितम् । एतेन सूत्रप्रत्याख्यानात्सीरदेवोक्त रूपग्रहण ज्ञापकमिति चिन्त्यमिति भ्रान्तोक्त ब्रश्वादिमूत्रे भ्राजिग्रहणमिह ज्ञापकमिति सीरदेवोक्त चापास्तम् । सूत्ररीत्योपपत्त्याऽऽद्यस्यायुक्तत्वात् । ब्रश्वादिसाहचर्येण धातुसज्ञकाराजेरेव तत्र ग्रहणेन भ्राजिग्रहणस्योपक्षीणत्वेनान्त्यस्यायुक्तत्वात् । ऋकारस्य तदनुबन्धकत्वाच्चेति दिक् ॥ १४ ॥

एवमपीति । तत्र लौकिकशास्त्रोपार्थग्रहणेन तथा सर्वथाऽनर्थकवारणेऽपीत्यर्थः । अनेन स चार्थः कीदृगित्याशङ्क्यैतदुक्तिरिति पूर्वसगतिः प्रदर्शिता । महदिति । च्यर्थे चायम् । आत्वापत्तिरिति । मुख्यस्यैव ग्रहणमित्यत्र मानाभावादिति भावः । वाक्यार्थबोधफलकपदार्थबोधाय तत आगत इत्यणन्तो गौणशब्द इत्याह—गुणादिति । गुणहेतुकयथाकथञ्चिच्छब्दजन्यतादृशबोधविषय इत्यर्थः । तमेव सदृष्टान्तमाह—यथेति । गोनिष्ठजाड्यादिगुणसजातीयजाड्यादिगुणहेतुकारोपविषयगोत्वादिनिमित्तकप्रवृत्तिकतच्छब्दजन्यबोधविशेष्यको वाहीकरूपोऽर्थ इत्यर्थः । अभिव्यक्तेति सग्रहा-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड पुस्तकस्थः ।

बाहीकः । अप्रसिद्धश्च संज्ञादिरपि तद्गुणारोपादेव बुध्यते । मुखमिव प्रधानत्वान्मुख्यः प्रथम इत्यर्थः । गौणे ह्यर्थे शब्दः प्रयुज्यमानो मुख्या-  
र्थारोपेण प्रवर्तते । एवं चाप्रसिद्धत्वं गौणलाक्षणिकत्वं चात्र गौणत्वम् ।  
तेन प्रियत्रयाणामित्यादौ त्रयादेशो भवत्येव । तत्र त्रिशब्दार्थस्येतरविशो-  
षणत्वेऽप्युक्तरूपगौणत्वाभावात् ।

किं चायं न्यायो न प्रातिपदिककार्ये । किं तूपात्तं विशिष्यार्थोपस्था-  
याऽऽह—अप्रसिद्धश्चेति । नन्वस्य किं रूप किं च भेदेनोक्त्याऽस्य गुणनिमित्तकत्वा-  
भावेन गौणत्वाभावेनात्र कथं ग्रहणमत आह—संज्ञादिरिति । [ \* सज्जेति कर्मण्यङ् ]  
संज्ञा, आदिः प्रथमो बोधकोऽस्येत्यर्थः । तथा च संज्ञाबोध्य इति फलितम् । अपिनाऽनु-  
करणे शब्दरूपपरिग्रहः । अनेनाऽऽद्यशङ्का समाहिता । तद्गुणेति । तद्गुणारोपपूर्वक  
तद्धर्मारोपादेवेत्यर्थः । एव च गुणादागतत्वं तद्गुणयोरपि तुल्यमिति द्वितीयशङ्का समाहिता ।  
अत एव युष्मदादेः स्वरूपमात्राश्रयकार्याणामर्थाश्रये चेत्यादिवक्ष्यमाणरीत्योपसर्जनतायामिव  
संज्ञाया न प्रवृत्तिर्युष्मद्युपपद इत्यादावपि । एकाच्च प्राचामित्यादौ स्मादादीनामपि । एव-  
मन्यत्रापि बोध्यम् । यद्वाऽपिः प्रागुक्तसमुच्चायकः । तद्गुणेति । यद्वाचकशब्दप्रयोगस्तदीय-  
गुणेत्यर्थः । एतेन प्रसिद्धाप्रसिद्धयोरिति परिभाषान्तरमिति रत्नकृदुक्तमपास्तम् ।  
सादृश्ये हेतुमाह—प्रधानत्वादिति । प्रधानार्थान्तरप्रतीतिनिरपेक्षतया प्रतीयमानत्वादि-  
त्यर्थः । तादृशतादृशार्थबोधकत्वाच्छब्दस्यापि गौणत्व मुख्यत्वं च बोध्यम् । शाखादिभ्य  
इति यः । उपमेयमाह—प्रथम इति । प्राथमिकशक्तिजन्यबोधविषय इत्यर्थः । प्रथमत्वं  
सत्रोपपादयति—गौणे ह्येति । आरोपाय हि पूर्वं तदुपस्थितिरावश्यकतीति भावः ।  
मुख्यार्थेति । मुख्यार्थप्रवृत्तिनिमित्तारोपेणेत्यर्थः । आरोपितगोत्ववान्बाहीकसमभिव्या-  
हारे गोशब्दार्थ इति भावः । फलितमाह—एवं चेति । उभयोर्गुणनिमित्तकत्वे चेत्यर्थः ।  
चात्र परिभाषायाम् । अनेनान्यत्र नैवामिति सूचितम् । ईदृशव्याख्यानस्य फलमाह—  
तेनेति । तद्धर्माह—तत्रेति । प्रियत्रयाणामित्यत्रेत्यर्थः । इतरेति । अन्यपदार्थेत्यर्थः ।  
उक्तरूपेति । द्विविधेत्यर्थः । अत एवोपसर्जनप्रतिषेधो वार्तिककृता सर्वादिमुत्रे कृत  
इति भावः ।

ननूपसर्जनत्ववत्यापि गौणत्वव्यवहर्तृणा मतेऽयमितिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवात आह—  
किं चेति । ननु तद्वारणाय यदि पदाद्देश्यककार्ये प्रवृत्तिरित्युच्येत तर्हि श्वाशुरिरित्यादौ  
यदेव स्यात्, गोऽभवदित्यादौ प्रगृह्यसंज्ञा च स्यात् । एतेन यथाकथञ्चित्पदसम्बन्धिकार्ये  
प्रवृत्तिरित्यप्यपास्तम् । अन्त्यदोषापत्तेः श्वाशुरिरित्यादाविग्रनापत्तेश्च । अत आह—  
किं तूपात्तमित्यादि । विशिष्टेति । अर्थवत्परिभाषामूलकत्वादस्या अपि विशिष्टरूप

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. पुस्तकस्थ ।

१ क. ख. °वनात्र । २ क. ख. °म् । अपि. ।



पदं विशिष्टरूपं यत्र तादृशपदकार्यं एव । परिनिष्ठितस्य पदान्तरसंबन्धे हि गौर्वाहीक इत्यादौ गौणत्वप्रतीतिर्न तु प्रातिपदिकसंस्कारवेल्लायामित्यन्तरङ्गत्वाज्जातसंस्कारबाधायोगः प्रातिपदिककार्यं प्रवृत्त्यभावे बीजम् । श्वशुरसदृशस्यापत्यामित्यर्थके श्वाशुरिरित्यादावत इञः सिद्धय उपात्तमित्यादि । न च प्रातिपदिकपदं तादृशमिति वाच्यम् । तेन हि प्रातिपदिकपदवत्त्वेनोपस्थितिरिति तस्य विशिष्यार्थोपस्थापकत्वाभावात् ।

पोपादानविषयत्वमिति भावः । रूपमित्यस्योद्देश्यमिति शेषः । वर्णसमूहात्मकार्थवद्रूपमुद्देश्यमिति तदर्थः । यत्र, कार्ये । ननु तत्रैवेत्युक्तौ तु पदकार्येऽयं न्याय इत्यभियुक्तोक्त्यसंगत्यापत्तिः । तत्र पदकार्यं इत्युक्तौ तु पदस्यापि कार्ये निमित्तत्वभ्रमः स्यात् । अत आह—**तादृशेति** । वस्तुतः पदव्यपदेशरहितानिमित्तकेत्यर्थः । एव प्रातिपदिककार्यव्यवच्छेदाय । तत्र निषेधे हेतुमाह—**परीति** । स्वार्थे परिपूर्णमित्यादिभाष्योक्तेरिति भावः । हि, यतः । बीजमित्यत्रास्यान्वयः । **प्रातीति** । तस्य सुबादिकृतसाधुत्वरूपसंस्कारित्यर्थः । **बाधायोग इति** । उत्तरकालप्रतीतिकगौणत्वहेतुकप्रवृत्तिकगौणमुख्यन्यायेन बहिरङ्गेणेति भावः । ननु विशिष्टेत्यादिनैवेत्तसकलेष्टप्रयोगसिद्धावल विशेषणद्वयेन, अत इञिस्यत्रात एवोद्देश्यत्वादोदित्यत्र चौदन्तनिपातस्योद्देश्यत्वाद् अत आह—**श्वशुरेति** । वैषम्ये बीजाभावेनौदन्तनिपातवदत्राप्यदन्तप्रातिपदिकस्योद्देश्यत्वमिति विशिष्टरूपम्योद्देश्यत्वमस्त्येवेत्यातिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवेति भावः । इत्यर्थक इति । अनेनास्य विग्रहत्व निरस्तम् । अत इञः, अत इञितीञः । **उपात्तमिति** । तथा चादन्तरूप नोपात्तमिति नातिप्रसङ्ग इति भावः । नन्वेव तावदेवास्तु, अल द्वितीयविशेषणेनात आह—**आदीति** । अनेनेदं सूचितं द्वितीयविशेषणस्यापीदमेव कृत्यमिति । एतदेव प्रतिपादयितुं प्राथमिकरीत्या शङ्कतेन चेति । तादृशम्, उपात्तम् । तथा च तावन्मात्रे दत्तेऽपि नातिप्रसङ्गवारणमिति भावः । सूचितरीत्या सिद्धान्तमाह—**तेनेति** । प्रातिपदिकपदेनेत्यर्थः । हि, प्रसिद्धौ । इतेः षष्ठ्याश्च सत्त्वात् । सज्ञाशब्दे शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वस्य प्रसिद्धत्वादिति भावः । एव सत्याद्यविशेषणवैयर्थ्यं तु न । अदन्तप्रातिपदिकस्य विशिष्टस्य विशिष्यार्थोपस्थापकत्वादिनाऽतिप्रसङ्गतादवस्थ्यात् । एव च केवलस्यात इत्यस्य न विशिष्टरूपत्वमात्र प्रातिपदिकपदस्य न विशिष्यार्थोपस्थापकत्वमात्रमदन्तप्रातिपदिकस्य तादृशस्य नोपात्तत्वमात्रमिति बोध्यम् ।

नन्वेवं गोऽभवदित्यादावनया वारणं न स्यादोदित्यत्र निपातपदस्यापि सज्ञाशब्दत्वेन तदुल्लेखात् । किं चानुवृत्तस्य नोपात्तत्वमिति प्रागुक्तदोषनिरासे द्वितीयविशेषणव्यर्थमे-

निपातपदं तु चादित्वेनैव चादीनामुपस्थापकमिति तदुद्देश्यकार्यवि-  
धायके 'ओत्' ( १ । १ । १५ ) इत्यादावेतत्प्रवृत्त्या गोऽभवदित्यादौ  
दोषो न । अग्नीषोमौ माणवकावित्यत्र प्रसिद्धदेवताद्वन्द्ववाच्यग्नीषोम-  
पदस्य तत्सदृशपरत्वेऽन्तरङ्गत्वादीत्वषत्वे भवत एव । सदृशलाक्षणिका-  
ग्नीषोमपदयोर्द्वन्द्वे तन्नामकावित्यर्थके च न षत्वम् । आद्ये गौणलाक्ष-  
णिकत्वादान्त्येऽप्रसिद्धत्वात् । अत एवाग्नीषोमौ माणवकावित्यत्र गौण-  
मुख्यन्यायेन षत्ववारणपरम् ' अग्नेः स्तुस्तोमसोमाः ' ( ८ । ३ । ८२ )  
इतिसूत्रस्थं भाष्यं संगच्छते ।

वात आह—निपातेति । चादित्वेनैवेति । चत्ववात्वहत्वादिनेत्यर्थः । एवेन  
निपातत्वस्याखण्डोपाधिजातिशब्दरूपत्वस्य निरासः । अयं भावः—निपातत्व नाखण्डोपाधिरू-  
पम् । तदनङ्गीकारात् । नापि जातिरूपम् । द्योतकत्वादिना साकर्यात् । नापि शब्दरूपम् । अस्य  
योगरूढत्वेन प्रातिपदिकपदवच्छुद्धरूढत्वाभावाच्छब्दस्य च तत्रैव तत्त्वाङ्गीकारात् । अत  
एव पूर्वतो वैलक्षण्यसूचकस्तुरुक्त इति । कार्येति । प्रगृह्यसङ्गैत्यर्थः । एतदिति ।  
गौणमुख्यन्यायेत्यर्थः । गोऽभवदिति । गोभिन्नकर्तृकस्य गोसदृशकर्तृकत्वरूपेण भवनस्य  
प्रतीतिरत्र गौणत्वम् । यत्र च योगीश्वरशापादिना मुख्यगोरूपप्राप्तिस्तत्र चिन्नेष्यत इति  
भावः । दोषो न । प्रगृह्यत्वप्रयुक्तप्रकृतिभावो न । तथा च यद्यनुवृत्तस्य तत्त्वं न  
स्यात्तर्ह्यत्र दोषो दुर्निवारः । तथा च दोषवारणपरभाष्यासंगतिरिति तथाऽवश्यं वाच्य-  
मिति निपातपदमादायैवेतत्प्रवृत्तिर्न प्राग्वदिति ततोऽत्र वैलक्षण्यमेवेति भावः । नन्वेवमग्नी-  
षोमौ माणवकावित्यत्रार्पात्वषत्वे न स्यातामेतत्प्रवृत्तरेत आह—अग्नीति । प्रसिद्धेति ।  
गौणत्वस्य तदा निरासाय । देवताद्वन्द्वेति । देवताद्वयेत्यर्थः । अद्वय एवेति ।  
अत्र बीजमुक्तम् । नन्वेव भाष्यविरोधोऽत आह—सदृशेति । द्वन्द्वे इत्युभयान्वधि ।  
द्वितीयेऽपि लक्षणैव तत्तद्गुणाद्यारोपमूलकतत्तत्प्रवृत्तिनिमित्तारोपेण च बोध इति  
मञ्जूषाया स्पष्टमिति गौणत्व युक्तमेवेति भावः । न षत्वमिति । देवताद्वन्द्वभा-  
वादीत्वस्य प्राप्तिरेव नेति तदनुल्लेखः । एवमग्रेऽपि । नेत्वषत्वे इति पाठे तु यथोक्तहेतो-  
रीत्व न तथाऽनेन षत्व नेत्यर्थः । तदेव भाष्यमाह—अत एवेति । उक्तद्वयकत्वादेवे-  
त्यर्थः । एव चाग्नीषोमावित्यादौ प्रागुक्ते तयोरङ्गीकारे न भाष्यविरोध इति भावः ।

ननु परिनिष्ठितस्येत्यादिना यदुक्त तस्यायं भावः—विभक्त्यर्थस्य क्रियाकारकसंबन्धरूप-  
त्वेन तयोः संबन्धबोधः श्रुतिकृत इति श्रुतेर्वाक्यापेक्षया शीघ्रं प्रवृत्त्या प्रथमं तयोरन्वय-

गां पाठयेत्यादौ मुख्यगोपदार्थस्य पाठनकर्मत्वासंभवेन विभक्त्युत्पत्तिवैलायां प्रयोक्तृभिर्गौणार्थत्वस्य प्रतीतावप्यपदस्याप्रयोगेण बोद्धृभिः सर्वत्र पदस्यैव गौणार्थकत्वस्य ग्रहेणात्वं त्वं संपद्यतेऽमहान्महान्भूतस्त्वद्भवतीत्यादिभाष्यप्रयोगे त्वाद्यादेशदीर्घादीनां करणेन चास्य न्यायस्य पदकार्यविषयत्वमेवोचितम् । अन्यथा वाक्यसंस्कारपक्षे तेषु तदनापत्तिः । किं च शुक्लामित्युक्ते कर्म निर्दिष्टं कर्ता क्रिया चानिर्दिष्टे इत्याद्युक्त्वेहेदानीं गामभ्याज कृष्णां देवदत्तेत्यादौ सर्वं निर्दिष्टं गामेव कर्म देवदत्त एव कर्ताऽभ्याजैव क्रियेत्यर्थकेनार्थवत्सूत्रस्थभाष्येण कारकादिमात्रप्रयोगे योग्यसर्वक्रियाध्याहारे प्रसक्ते नियमार्थः क्रियावाचकादिप्रयोग इत्येतत्तात्पर्यकेण सामान्यतः क्रियाजन्यफलाश्रयत्वमात्र-

बोधः पश्चान्मिथो गा वाहीकमानयेत्यादौविति । इदमयुक्तम् । गा वाहीक पाठयेत्यादौ यत्र गौणार्थप्रादुर्भाव विना क्रियासंबन्ध एवासम्बन्धी तत्र पूर्वमेव गौणत्वावगतेरात्वाद्यनापत्तेस्तादवस्थात् । अत आह—**गामिति** । बेलाया, तत्प्राग्बेलायाम् । गौणार्थत्वस्य प्रतीताविति व्यस्तः पाठः । उभयेति नियमप्राप्त्या कर्मणि चेति निषेधप्रवृत्तेः । अत एव कर्तरि \* तृतीया । एव गौणार्थकत्वस्य ग्रहेणेत्यत्रापि बोध्यम् । **अपदस्येति** । तथा चानुपपत्त्यैवैतन्न्यायाप्रवृत्त्या कार्यप्रवृत्तिरिति भाव । अप्रयोगादेवाऽऽह—**बोद्धृभिरिति** । तथा च तेषां नानुपपत्तिलेशोऽपीति भाव । एव सिद्धेर्थ ऋषिसमतिमप्याह—**त्वमिति** । आदिना मैद्भवतीत्यादिपरिग्रहः । अन्यथा, अस्य पदकार्याविषयकत्वे । तेषु, गा पाठयेत्यादिषु । **तदनेति** । आत्वाद्यनेत्यर्थः । भाष्यप्रयोगेऽपीदं बोध्यम् । इदं च प्रयोक्तृणां तदा गौणार्थकत्वप्रतीतिमभ्युपेत्य । वस्तुतः साऽपि नेत्याह—**किं चेति** । आदिना देवदत्तेत्युक्ते कर्ता निर्दिष्टः कर्मक्रिये अनिर्दिष्टे अभ्याजेत्युक्ते क्रिया निर्दिष्टा कर्तृकर्मणी अनिर्दिष्टे इत्यस्य परिग्रहः । सर्वं निर्दिष्टमित्यस्येत्युक्तेनेति शेषः । अन्यथा क्व इत्यर्थकेनेत्यस्य चासंगतिः स्पष्टैव । **गामेवेति** । गामितिशब्दवाच्यमेव कर्मत्यादिक्रमेणार्थः । एवास्तदन्वयव्यञ्जकत्वात् । दत्तैवेति पाठः । आदिभ्या यथाक्रम क्रियाकारकयोः परिग्रहः । **प्रसक्तं इति** । एनेन सर्वत्र वाक्यमेव बोधकमिति पदार्थातिरिक्त. काश्चिद्वाक्यार्थोऽस्तीति सूचितम् । **सामान्यत इति** । क्रियात्वेनेत्यर्थः । मात्रपदेन विशेषव्यावृत्तिः । तदादिविवक्षायामित्यर्थः । अत एवाग्निमादिसंगतिः । अन्वाख्यान, कर्मणीत्यादिसूत्रेण । विशेष-

\* ड. प्रयोक्तृभिरिति ।

विवक्षायां द्वितीयादीनां साधुत्वान्वाख्यानमित्यर्थलाभेन पाठनक्रियान्वयकाले पदस्यैव गौणार्थत्वप्रतीतिः प्रयोक्तुरपि ।

एवमेतन्मूलकः “ अभिव्यक्तपदार्था ये ” इति श्लोकोऽपि पदकार्यविषयकः । ध्वनितं चेदं ‘ सर्वादीनि ’ ( १ । १ । २७ ) इति सूत्रे संज्ञाभूतानां प्रतिषेधमारभता वार्तिककृता ‘ पूर्वपर ’ ( १ । १ । ३४ ) इति सूत्रेऽसंज्ञायामिति वदता सूत्रकृताऽन्वर्थसंज्ञया तत्प्रत्याख्यानं कुर्वता भाष्यकृता च । अर्थाश्रय एतदेवं भवति शब्दाश्रये च वृद्ध्यात्वे इत्योत्सूत्रस्थभाष्यस्य लौकिकार्थवत्त्वयोग्यपदाश्रय एष न्यायस्तद्रहितशब्दाश्रये च ते इत्यर्थः । ‘ गीतः ’ ( ७ । १ । ९० ) इति यथाश्रुतसूत्रे

क्रियान्वय आह—पाठनेति । एवेन प्रातिपदिकन्यावृत्तिः । गौणार्थत्वप्रतीतिरिति । शेषे विभाषेति विकल्पेन नियमाप्रवृत्तिपक्षे कर्तृकर्मत्युभयत्र षष्ठ्या कर्मणि चेत्ति निषेधाप्रवृत्त्या समास इति भावः । अपिबोद्धसमुच्चायकः । वृद्धिसूत्रस्थभाष्यमप्यत्र मानमित्युदद्योते स्पष्टम् ।

एवमस्य कैयटाद्युक्तपदकार्यविषयकत्वं सुसमर्थ्याभिव्यक्तेति परिभाषान्तरमिति भ्रमं निरसितुं तत्राप्येवमेवेत्याह—एवमिति । उक्तन्यायवदित्यर्थः । एतन्मूलक इत्यनेन तस्या अन्यत्व निरस्तम् । श्लोकोऽपीत्यनेन तस्य कल्पितत्व सूचितम् । एवं सिद्धेऽर्थे मानान्तरमप्याह—ध्वनितमिति । ध्वनितमपीत्यर्थः । इदम्, अस्य न्यायस्य पदकार्यविषयकत्वम् । सर्वादीनीति सूत्र इति पाठः । पूर्वपरेतीति पाठः । तत्प्रत्याख्येति । सर्वेषां नामानि सर्वनामानीत्यन्वर्थसंज्ञया तदुभयप्रत्याख्यानमित्यर्थः । अत एवात्र सूत्रवार्तिकयोर्व्यत्यासोक्तिः । अन्यथा तस्यैव प्रत्याख्यानमिति भ्रमः स्यादिति भावः । कृता चेति । अन्यथा गुणयोगेन लाक्षणिकत्वरूपगौणत्वाभावेऽपि तन्मूलत्वेनाप्रसिद्धत्वादिकस्याप्यत्र ग्रहणस्योक्तत्वेन सर्वादिरूपसंज्ञाया अपि तथात्वेनानेनैव वारणे त्रितयासंगतिः स्पष्टैवेति भावः । नन्वेवमप्योत्सूत्रस्थभाष्यासंगतिरेवात आह—अर्थेति । वस्तुतो लौकिकार्थवत्त्वस्य वाक्य एव सत्त्वादाह—योग्येति । अर्थपदस्य लक्षणोति भावः । एतदेवमित्यस्यार्थमाह—एष न्याय इति । तद्रहितेति । लौकिकार्थवत्त्वयोग्यत्वसमानाधिकरणपदत्वरहितेत्यर्थः । मुख्यव्यपदेशरहितस्वार्थबोधकप्रातिपदिकरूपशब्दाश्रये इति यावत् । वस्तुतः पदव्यपदेशरहितस्य तत्रै निमित्तत्वेनाऽऽश्रयणामिति भावः । ते, वृद्ध्यात्वे । ननु शब्दाश्रये चेत्यस्यार्थरहितवर्णमात्राश्रये इति प्रतीयमानार्थः कुतो नेत्यत आह—गीत इति । यथाश्रुतेति । गकाराविवक्षायामसत्यामिति भावः । युक्त चैतत् । अस्यैव

विशिष्टरूपोपादानसत्त्वेनोक्तरीत्यैव तस्य भाष्यस्य व्याख्येयत्वादि-  
त्यलम् ॥ १५ ॥

‘अर्थवद्ग्रहणे’ ( प० १४ ) इत्यस्यापवादमाह—

अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च

तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ १६ ॥

‘येन विधिः’ ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये वचनरूपेण पठितैवा ।  
तेन राज्ञा साम्नेत्यादावल्लोपो दण्डी वाग्मीत्यादौ ‘इन्हन्’ ( ६ । ४ ।  
१२ ) इति नियमः सुपयाः सुस्रोता इत्यादौ ‘अत्वसन्तस्य’ ( ६ ।  
४ । १४ ) इति दीर्घः सुशर्मा सुप्रथिमेत्यादौ ‘मनः’ ( ४ । १ । ११ )

मतस्य सिद्धान्तत्वादिति बोध्यम् । व्याख्येयत्वादिति । यत्तु सर्वनामस्थानाम्श-  
साक्षिसप्रतिपदिकस्यौत इत्यनेन विशेषणात्तयोरपि विशिष्टशब्दाश्रयत्वात्तथा भाष्यार्थो  
न युक्त इति । तन्न । स्वार्थादिप्रयुक्तकार्येण पूर्णस्य पदस्यार्थप्रतिपादनाय प्रयोगार्हस्य  
पदार्थान्तरान्वये बाधप्रतिसधाने गौणार्थत्वप्रतीतिराक्षेप आक्षिप्तस्य वा शाब्देऽन्वये माना-  
भावश्चेति दिक् । तदाह—इत्यलमिति । नन्वनिनित्यस्यार्थवत्परिभाषापवादत्वेन तदु-  
क्त्वा गौणमुख्येति वक्तुमुचितामिति कथं पूर्वमुक्तमिदं तथा मूलमस्य वक्तव्यं नोक्त-  
मिति चेन्न । अर्थवद्ग्रहण इति परिभाषायमार्थस्य मुख्यस्य प्रधानन्यायेन ग्रहणे-  
नास्य न्यायस्य सिद्धत्वेनानतिरिक्तत्वात् । इदमेवः सूचयितुमेवमपीत्यपिशब्दघटि-  
तमुक्तं पूर्वपक्षे । तेन ह्यर्थप्रसङ्गात्तत्रैव पूर्वमाकाङ्क्षोदय सूचितः । अस्या  
भिन्नत्वे तु नन्वेवमित्येव वदेत् । तथा चैतदुक्तिं विना तदर्थानिश्चय इत्यपवादो दुर्वच  
इति तदर्थमेतदुक्तिः ॥ १५ ॥

तदेतद्ध्वनयन्नाह—अर्थवदिति । अपवादमित्यनेन पूर्वसगतिः सूचिता ।  
अर्थवतेत्यादितृतीयान्त विशेषणेनेत्यर्थकस्य सौत्रस्य येनेत्यस्य विशेषणम् । तद्ध्व-  
नयन्नाह—येनेति । वचनेति । वार्तिकेत्यर्थः । अनेनापूर्वत्वमस्याः सूचितम् ।  
अर्थवता चानर्थकेन चेत्युक्तेरनादिषु प्रत्येकमुदाहरणद्वयमाह—तेन राज्ञा साम्ने-  
त्यादिना । परिभाषाक्रमेणैवाऽऽद्यमर्थवतो द्वितीयमनर्थकस्येति बोध्यम् । अल्लोप  
इत्यादिप्रथमान्ताना सिद्ध इत्यत्रान्वयः । अल्लोप इत्यस्याल्लोपोऽन इतीत्यादिः ।  
नियम इति । तथा च सौ चेति दीर्घसिद्धिरिति भावः । सुस्रोता इति । अनागम-  
काना सागमका इति पक्षेऽनर्थकत्वं स्पष्टमेव । पक्षान्तरेऽप्यागमसनिधौ तद्विशिष्टस्यैवार्थ-  
वत्ताया न्याय्यत्वेन भाष्य उक्तत्वेन च तत्त्वम् । एतेनार्थवतो ह्यागम इति पक्षेऽयमर्थवाने-  
वेति चिन्त्यमिदमुदाहरणमिति तत्रत्यकैयटोक्तिरपास्तेति स्पष्टमुद्घोते । खण्डयितुं मता-

इति ङीन्निषेधश्च सिद्धः । अन्ये तु परिवेविषीध्वमित्यत्र ढत्वध्यावृत्तये क्रियमाणात् ' इणः षीध्वम् ' (८।३।७८) इत्यत्राङ्गग्रहणादर्थवत्परिभाषाऽनित्या तन्मूलकमिदमित्याहुः । 'विभाषेटः' (८।३।७९) इत्यत्रानर्थकस्यैव षीध्वमः संभवादत्रापि तस्यैव ग्रहणमिति भ्रमवारणायाङ्गादिति परे ॥ १६ ॥

ननु ' उश्च ' (१।२।१२) इत्यत्र ' लिङ्गसिचौ ' (१।२।११) इत्यत आत्मनेपदेष्वित्येव संबध्येतानन्तरत्वादत आह—

एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः  
सह वा निवृत्तिः ॥ १७ ॥

वाशब्द एवार्थे । परस्परांस्वितार्थकपदानां सहैवानुवृत्तिनिवृत्ती इत्यर्थः । एककार्यनियुक्तानां बहूनां लोके तथैव दर्शनादिति भावः ।

न्तरमाह—अन्ये त्विति । प्राञ्च इत्यर्थः । बेवीति । विषधातोर्विधिलिङि रूपम् । ढत्वेति । षीध्वनिमित्तकेत्यादिः । तन्मूलेति । तदानीत्यत्वमूलेत्यर्थः । आद्यन्ताभ्यामन्ये त्वाद्दुरित्याभ्या सूचितारुचिमाह—विभाषेट इति । आगमसनिधौ विशिष्टस्यैवार्थवत्त्वादिति भावः । अत्रापि । इणः षीध्वमितिप्रागुक्ततत्पूर्वसूत्रेऽपि । तस्यैवेति । अनर्थकस्यैव । अर्थाधिकारानुरोधात् । एव चापूर्वत्वमेवास्या इति प्रागुक्त सिद्धम् । नन्वर्थवत्परिभाषानुरोधाद्विभाषेट इत्यत्र षीध्वमोऽसबन्ध एवेत्यङ्गग्रहणं ज्ञापकमेवेति चेन्न । एकयोगेतिन्यायेन परेण तत्सबन्धस्याऽऽवश्यकत्वात् ॥ १६ ॥

अत एव तामेव तत्रोक्तामवतारयति—ननुश्चेत्यत्रेति । अनन्तरत्वादिति । तत्पदस्यैवाव्यवहितत्वादित्यर्थः । विकल्पान्वयासंभवादाह—वाशब्द इति । जातावेकवचन वाशब्दावित्यर्थः । ' वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चये ' इति कोशादिति भावः । वैवार्थ इति पाठान्तरम् । एकयोगेत्यस्य पदस्यार्थं शाब्द सूचयन्परिभाषार्थमाह—परेति । एतेनैकसबन्धनिर्दिष्टानामिति शाब्दस्तदर्थं सूचितः । यद्यपि तत्त्वमेकसूत्रनिर्दिष्टानामेव फलति तथाऽपि तथा न व्याख्यातमेकसूत्रनिर्दिष्टानामप्यनन्वितार्थाना सहानुवृत्त्याद्यापत्तेः । सहैवेति । न त्वेकस्य निवृत्तिरपरस्यानुवृत्तिरिति भावः । अस्य लोकन्यायसिद्धत्वमाह—एकेति । एतेन हन सिजिति सिज्ग्रहणमत्र ज्ञापकमन्यथा लिङ्गसिचावित्यतः सिजनुवृत्त्यैव सिद्धे किं तेनेति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् ।

यत्त्वत्र ज्ञापकं 'नेड्वशि' (७।२।८) इत्यत इडित्यनुवर्तमाने 'आर्धधातुकस्येद्' (६।२।३५) इत्यत्र पुनरिडग्रहणम् । तद्धि नेत्यस्यासंबन्धार्थमिति तन्न । 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इति सूत्रे भाष्ये तत्रत्येडग्रहणप्रत्याख्यानायेडग्रहणेऽनुवर्तमाने पुनरिडग्रहणस्येदो गुणरूपविकाराभावार्थकत्वस्योक्तत्वेन तद्विरोधात् । नञो निवृत्तिस्तु क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तत इति न्यायेन सिद्धा । वस्तुतस्तु 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इति सूत्रस्थभाष्यमेकदेश्युक्तिः । 'आर्धधातुकस्य' (७।२।३५) इति सूत्रस्थेडग्रहणस्य 'नेड्वशि' (७।२।८) इति सूत्रभाष्ये प्रत्याख्यानात् । तत्करणेन गुरुतरयत्नमाश्रित्यैतत्प्रत्याख्यानस्थायुक्तत्वात् ॥ १७ ॥

नन्वल्गुगधिकारः प्रागानङ् उत्तरपदाधिकारः प्रागङ्गाधिकारादित्यनुपपन्नमेकयोगनिर्दिष्टत्वात् । तथा 'दामहायनान्ताञ्च' (४।१।२७) इत्यादौ 'संख्याव्ययादेः' (४।१।२६) इत्यतः संख्यादेरित्यनुवर्तनेऽव्ययादेरिति निवृत्तमिति चानुपपन्नमत आह—

एकयोगनिर्दिष्टानामेकदेशोऽप्यनुवर्तते ॥ १८ ॥

भ्रान्तोक्तिं खण्डयति—यत्त्विति । अत्र, परिभाषायाम् । तत्त्वमुपपादयति—तद्धीति । पुनरिडग्रहणं हीत्यर्थः । तत्रत्येडिति । दीधीवेवीति सूत्रस्येत्यर्थः । विकारान्तरस्येष्टत्वादाह—गुणरूपेति । ननु नेत्यस्य निवृत्त्यर्थं तत्, स्पष्ट चेद नेड्वशीत्पत्र भाष्य इति कथमुक्तार्थकत्व तस्य तद्भाष्योक्तमत आह—नञ इति । न्यायेन, अनुपपन्नमेव वक्ष्यमाणेन । भ्रान्तोक्तेः सर्वथाऽसाङ्गत्य ध्वनयन्सिद्धान्तमाह—वस्तुतस्त्विति । प्रत्याख्यानादिति । नञो निवृत्तेरुक्तरीत्यैव सिद्धत्वेन तदनुवृत्त्यैव सिद्धत्वात् । एवं च भ्रान्तस्य सर्वथा भाष्यविरोधः स्पष्ट एव । प्रत्याख्यानस्थले दृष्टकल्पनाया अभावस्यान्यत्र सिद्धान्तितत्वादिति भावः । तत्करणेन, तत्र कृतेडग्रहणाश्रयणेन । गुरुतरयत्नमिति । उक्तनियमरूपमित्यर्थः । एतदिति । दीधीवेवीति सूत्रस्थेडग्रहणेत्यर्थः ॥ १७ ॥

नन्वित्यस्यैवमिति शेषः । उक्तपरिभाषाङ्गीकार इति तदर्थः । तथा च संगतिः स्पष्टा । तथा, एकयोगनिर्दिष्टत्वरूपहेतुनेत्यर्थः । चेति । एतेन चेन पौनरुक्त्य परिहृतम् । अनुपपन्नमिति । अस्य पुनरुक्तिः स्पष्टार्था । एकयोगेति । इडमनुवृत्तिलब्धम् । अपिरुक्तार्थसमुच्चायकः । तथा च विरोधान्नैकत्रोभयम् । किं तु क्वचित्था क्वचिदेवं लक्ष्याचुरोधादिति फलितम् । तदेतदौहः—क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तत इति । नन्वेकसूत्र-

एकत्रार्थे योगः संबन्धस्तेन निर्दिष्टयोः समुदायाभिधायिद्वे  
द्वनिर्दिष्टयोरित्यर्थ इति 'पक्षात्तिः' ( ५ । २ । २५ ) इति सूत्रे कैयटः ।  
तावन्मात्रांशे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलाह्मभ्यमिदम् । स्पष्टा चेयं ' दामहा-  
यनान्ताच्च ' ( ४ । १ । २७ ) इति सूत्रे ' औतोऽम्शसोः ' ( ६ । १ ।  
१३ ) इति सूत्रे च भाष्ये पूर्वा च ॥ १८ ॥

निर्दिष्टानामेकदेशानुवृत्तिर्दृश्यते यथाऽत इजित्यादाविज्पदमात्रस्य बाह्यादिभ्यश्चेत्यादाविति  
समासनिर्दिष्टानामित्येव तदर्थो वाच्यो न प्रागुक्तोऽर्थ इति समासनिर्देश एवानयोः प्रवृत्तिर्न  
व्यस्त इति प्रागुक्तव्यस्तोदाहरणासगतिरिति ध्वनयन्मतान्तरमाह—एकत्रार्थ इति ।  
इत्यर्थ इति । कथ पुनरेकयोगनिर्दिष्टयोरेकदेशोऽनुवर्तत एकदेशो नेति पक्षात्तिरितिसूत्र-  
स्थपूर्वपक्षभाष्यस्थस्य तस्येति शेष । तथा च समाधानपरपरिभाषाऽप्युक्ताशयेति तद्भावः ।  
कैयट इति । अनेनारुचि सूचिता । तद्धीजं त्वौतोऽम्शसोरितिसूत्रस्थभाष्यासगतिस्तथा-  
सति स्यात् । तत्र हि वा सुप्यापीत्यतः सुपोऽनुवृत्तिर्वाशब्दानुवृत्तिरुक्तन्यायेनाशक्येत्याश-  
ङ्क्याल्लुगुत्तरपद इति दृष्टान्तेनानेन न्यायेन तत्साधितमिति प्रागुक्तार्थ एव युक्तो नाय-  
मिति । वस्तुतस्तु प्रकृताशयेन तथोक्त कैयटेनेति न समाधानपरपरिभाषायास्तथार्थस्तदभि-  
प्रेत उक्तभाष्यविरोधात् । समासेऽपि तथाऽनुवृत्तौ किमु वाच्यमसमासेऽपि सेति तद्भाष्या-  
शय । एव च परिभाषयोरुभयत्र प्रवृत्तिः । वचन विनोक्तार्थस्य दुर्ज्ञेयत्वात् । एव च सकैयटो  
युक्त एव । एकसूत्रनिर्दिष्टानामिति सर्वथा नार्थ इति सूचनाय परमत्र तस्येच्छेत् । तस्मा  
दुक्तोऽर्थ एवेति सर्वत्र तेनै शङ्कायामनया समाधानमिति तत्त्वम् । एतदेव ध्वनयितुमुभयान्नेर्देशे  
तथाऽनुवृत्तौ बीजं तुल्यमिति सूचयितुमत्र बीजमाह—तावदिति । मात्रशब्दोऽवधारणे ।  
इदम्, उभयत्रेष्टसाधक प्रकृतवचनम् । अयं भावः—अर्थाधिकारपक्षेऽर्थस्यैकत्वादविच्छेदान्न  
स्यादेकदेशानुवृत्तिरित्येतत्पक्षाशयकपूर्वपरिभाषया पूर्वपक्षः । शब्दाधिकारे तु यस्यैव शब्दस्य  
स्वरितत्वप्रतिज्ञा तत्सदृशशब्दान्तरप्रतीतियोंगान्तरे, साऽपि भिन्नप्रतिज्ञासामर्थ्याद्विज्ञावधि-  
काऽपि क्वचिदित्येतत्पक्षाशयकोऽय समाधिरूपो न्यायः । तथा च भिन्नप्रतिज्ञाबलाद्विज्ञाव-  
धिकत्वमेकदेशे तद्वलात्तन्मात्रानुवृत्तिर्विशिष्टे तद्वलात्समानावधिकनदनुवृत्तिरिति परिभाषयो-  
र्द्वयोरर्थः फलित इति । एतेन तस्मादित्युत्तरेतीतिग्रहणमत्र ज्ञापकमन्यथा निर्दिष्टपदवत्तदनु-  
वृत्त्या सिद्धमिति सीरेद्वेोक्तम्, इको गुणेत्यत्र गुणवृद्धिग्रहण तथाऽन्यथा सपूर्णसूत्रद्वयानु-  
वृत्त्या सिद्धमिति भ्रान्तोक्त चापास्तम् । सूत्रे च भाष्य इति । चेन पक्षात्तिरिति  
सूत्रस्यापि सग्रहः । ननु पूर्वा कुत्र स्पष्टाऽत आह—पूर्वा चेति । उक्तसूत्रत्रय-  
भाष्यादाविति भावः । तेषु हि तथा पूर्वपक्षं कृत्वाऽनया समाहितम् ॥ १८ ॥

१ ड. °ल्यतस्तत्र सु° । २ क. °वृत्तिवच° । ३ ड. तथा । ४ ग. °मनेन स° । ५ क. ड. सूत्रादिस° ।



ननु 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) इत्यादिनेममित्यादावनु-  
नासिकः स्यादत आह—

भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न ॥ १९ ॥

'अणुदित्' (१।१।६९) सूत्रेऽप्रत्यय इत्यनेन सामर्थ्यात्सूत्र-  
प्राप्तं जातिपक्षेण प्राप्तं गुणाभेदकत्वेन च प्राप्तं नेत्यर्थः । अत एवाणु-  
दित्सूत्रे प्रत्ययादेशागमेषु सवर्णग्रहणाभावं प्रकारान्तरेणैवोक्तवैधं तर्हि  
सिद्धे यदप्रत्यय इति प्रतिषेधं शारितं तज्ज्ञापयति भवत्येषा परिभाषा  
भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं नेति । किं च ज्याद् ईयस इत्येवाऽऽन्त-

नन्वार्धधातुकेतिसूत्रस्थेऽग्रहणस्य गुणरूपविकाराभावार्थत्ववत्सवर्णग्रहणप्राप्तदीर्घाभावार्थ-  
त्वमपि कुतो नोक्तं तत्र भाष्ये । एव च \* प्रत्याख्यानमप्यसगतमिति चेन्न । भाव्यमाने-  
तिपरिभाषया निषेधात् । तद्ध्वनयस्तामेव तत्रत्यामवतारयति—ननु त्यदेति ।  
अनुनासिक इति । ग्रहणकसूत्रादिना तस्य ग्रहणे स्थानेऽन्तरेत्यनेन स एवेत्यर्थः ।  
नेयमपूर्वा किं तु सूत्रार्थसिद्धेत्याह—अणुदित् इति । अप्रत्यय इत्यनेन, नेत्यन्वयः ।  
ननु प्रत्यये निषिद्धेऽपि तेनाऽऽदेशादौ कथं निषेधोऽत आह—सामर्थ्यादिति ।  
तत्त्वं चानुपदमेव स्फुटी भविष्यति । ननु केन प्राप्तं तन्निषिध्यत इति चेत्तत्राऽऽदौ व्यक्ति-  
पक्ष आह—सूत्रेति । जातिपक्ष आह—जातीति । व्यक्तिपक्ष एवानुपसाधारण्ये-  
नाऽऽह—गुणेति । च प्राप्तमिति । प्राप्तं चेत्यर्थः । सवर्णानां ग्रहणमिति भावः ।  
तथा चाऽऽदेशादौ त्रिधा प्राप्तं तत्तत्सूत्रस्थाप्रत्यय इति निषेधेन न । सामर्थ्यादित्यर्थः ।  
अप्रत्यय इत्येतत्सामर्थ्यादिति पाठस्तु सुगम एव । उक्तं समूलयति—अत एवेति ।  
तेन सामर्थ्यात्तत्र तद्वारणेन परिभाषार्थसिद्धत्वादेवेत्यर्थः । प्रकारान्तरेणेति । आदे-  
शादौ ग्राहकसूत्रप्रत्याख्यानपक्षे जातिग्रहणप्राप्तस्यानुपसाधारण्येन गुणाभेदकत्वप्राप्तस्य च  
सवर्णग्रहणस्य वारणाय सूत्रमतेऽपि टिप्प्रत्यययोर्ज्ञापकानभिधानाभ्यां वारणेऽप्यन्यत्र तद्वा-  
रणायाऽऽवश्यकोक्तपरिभाषयेत्यर्थः । सिद्ध इति । सूत्रमतेऽपि सिद्ध इत्यर्थः ।  
ज्ञापयतीति । एकदेशानुमतिद्वारोक्तपरिभाषा बोधयतीत्यर्थः । एव चैतदर्थबोधकत्वेनैव  
तस्य सार्थक्यमिति नान्यत्रेवात्र ज्ञापकत्वमिति भावः । नेतीत्यस्येत्युक्तं भाष्य इति शेषः ।  
तत्रत्यैक्यटादिग्रन्थास्तदनुसारिणोऽत्रत्यसीरदेवादिग्रन्थाश्च चिन्त्या एवेत्यन्यत्र स्पष्टम् ।  
ननु गत्यन्तरसंभव एव परिभाषाबोधनमुक्तभाष्यीयमयुक्तमर्तोऽन्यत्र भाष्योक्तमेवाऽऽह—  
किं चेति । आन्तर्यतः, प्रमाणत आन्तर्यात् । इदं च सामान्यापेक्षं ज्ञापकं बोध्यम् ।

\* इ. पुस्तके नेड्वशीतिसूत्रस्थम् ।

वर्तते दीर्घे सिद्धे ' ज्यादादीयसः ' ( ६ । ४ । १६० ) इति दीर्घोच्चारणमस्या ज्ञापकम् । अणुदित्सूत्रे ज्यादादिति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टैषा । ' चोः कुः ( ८ । २ । ३० ) इत्यादौ भाव्यमानेनापि सवर्णग्रहणम् । विधेय उदित्करणसामर्थ्यात् । एतदेवाभिप्रेत्य भाव्यमानोऽणसवर्णाङ्ग गृह्णातीति नव्याः पठन्ति ॥ १९ ॥

नन्वेवमदसोऽसेः ( ८ । २ । ८० ) इत्यादिनाऽम् इत्यादौ दीर्घविधानं न स्यादत आह—

भाव्यमानोऽप्युकारः सवर्णान्गृह्णाति ॥ २० ॥

' दिव उत् ' ( ६ । १ । १३१ ) ' ऋत उत् ' ( ६ । १ । १११ ) इति तपरकरणमस्या ज्ञापकम् । ' तित्स्वरितम् ' ( ६ । १ । १८९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टैषा ॥ २० ॥

अस्य चारितार्थं तु स्पष्टमेव । अत एव क्रमेणाऽऽह—अणुदित् इति ज्यादादिति च । चेन ज्ञानोरितिसूत्रस्य समुच्चयः । अस्या अतिव्याप्ति निराचष्टे—चोः कुरिति । एतदेवेति । अनप्युदित् इति तत्सामर्थ्यमेवेत्यर्थः । न तु वास्तवस्तथा पाठो भाष्येऽदर्शनात् । एव चानाणि निषेध एवेति भावः । एतेन तथा पाठ धृत्वा सीरदेवादिव्याख्यानं भाष्यरीत्येय माऽस्त्विति भ्रान्तोक्त चासगतामिति ध्वनितम् ॥ १९ ॥

एवं तादृशेऽपि सर्वथानिषेधे । अनेन संगतिः प्रदर्शिता । न स्यादिति । उ इति-समाहारद्वन्द्वनिर्देश इति तु न युक्तमिति त्वन्यत्र स्पष्टमिति भावः । दिव उदिति । तित्स्वरितमित्यत्रैतस्यैतज्ज्ञापकत्वोक्तिपरभाष्यविरोधादेतत्तपरकरणसामर्थ्यादेव बुभ्यामित्यादौ भाविदीर्घव्यावृत्तिरिति सप्रसारणसज्ञासूत्रस्थकैयटादयश्चिन्त्या एवेति गूढाकृतम् । ज्ञापितेऽपि चारितार्थं तु बुभ्यामित्यादौ छ्वोरिति पूर्वमूठ्यपि तस्य ह्रस्वप्रवृत्त्या बोध्यम् । ननु छ्वोरित्यत्र कृडितीत्यनुवृत्तिपक्षे तत्रोठेव दुर्लभोऽत आह—ऋत उदिति । इद त्वान्तर-तम्याहकाराकारयोः स्थाने प्राप्तदीर्घव्यावृत्त्यर्थमिति चरितार्थमिति भावः । भाष्येऽपि क्वचिदेवमेव पाठ इति गूढाकृतम् । तित्स्वरितमिति । तत्र हि तिति प्रत्ययग्रहणमित्यस्य दकारेण प्रत्याख्याने सवर्णग्रहणादूत इद्धातोरित्यादौ प्राप्तदोषवारणायोक्तपरिभाषाश्रयणेऽदसोऽसे-रित्यत्रोक्तदोषमाशङ्क्यानया सज्ञापकया समाहितम् । एतेन पूर्वत्र भाव्यमानोऽणिति पाठ व्याख्याय दिव उदिति तपरकरणान्तस्यानित्यत्व स्वीकृत्याम् इत्यादौ न दोष इति सीरदेवोक्तमपास्त भाष्यविरोधात् ॥ २० ॥

ननु गवे हितं गोहितमित्यादौ प्रत्ययलक्षणेनाव्यादेशापत्तिरत  
आह—

वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥ २१ ॥

वर्णप्राधान्यविषयमेतत् । तत्त्वं च 'प्रत्ययलोपे' ( १ । १ । ६२ )  
इति सूत्रे 'स्थानिवत्' ( १ । १ । ५६ ) इत्यनुवृत्त्यैव सिद्धे प्रत्ययलक्ष-  
णग्रहणं प्रत्ययस्येतराविशेषणत्वरूपं यत्र प्राधान्यं तत्रैव प्रवृत्त्यर्थमित्ये-  
तत्सिद्धम् । वर्णप्राधान्यं च वर्णस्येतराविशेषणत्वरूपं प्रत्ययानिरूपि-  
तविशेष्यत्वरूपं च । तेन गोहितमित्यादाववादिर्न चित्रायां जाता  
चित्रेत्यादावण्योऽकारस्तदन्तान्डीविति डीप्च न । इयमल्विधौ स्था-  
निवत्त्वाप्राप्तावपि प्राप्तप्रत्ययलक्षणविधेर्निषेधिकेति स्पष्टं भाष्ये ॥ २१ ॥

वर्णप्रसङ्गाद्वर्णाश्रय इतिपरिभाषामवतारयति—नन्विति । द्विवचनबहुवचनान्तेन  
समासे तेन तदप्राप्तेराह—गवे हितमिति । दृष्टान्तार्थमिदमिति कश्चित् । आदिभ्यां  
रैकुलमित्यादावायादिसंग्रहः । वर्णाश्रये, विधौ कार्यं इति शेषः । तथा च बहुव्रीहि-  
रत्र बोध्यः । नन्वेवमतृणेडित्यादाविमादि न स्यादत आह—वर्णेति । वर्णप्राधान्याश्रय-  
कविधिप्रवृत्तिविषयमिदं वचनमित्यर्थः । ननु तादृशवचन एव किं मूलमत आह—तत्त्वं  
चेति । वर्णप्राधान्याश्रयकविधौ कार्येऽप्रत्ययलक्षणत्वं चेत्यर्थः । द्वितीयप्रत्ययग्रहणादय-  
मर्थो लभ्यते तल्लक्षणमित्येव सिद्धेरिति सीरदेवाद्युक्तेरसागत्यसूचनायाऽऽह—स्थानी-  
ति । यत्र, विधौ । प्राधान्यं, तत्त्वेनाऽऽश्रयणम् । तत्रैव, कर्तव्ये । प्रवृत्त्यर्थं, प्रत्यय-  
लोप इति सूत्रस्य । इत्येतत्सिद्धम् । इत्येतेन सिद्धमित्यर्थः । एतेन श्रवणेतिनिर्देशोऽत्र  
ज्ञापक इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । ननु प्रत्ययप्राधान्यवद्वर्णप्राधान्याङ्गीकारे गोहितमि-  
त्यादिसिद्धावपि चित्रेत्यादौ डीबापत्तिरकारस्य प्रातिपादिकविशेषणत्वाद्दत्त आह—वर्णेति ।  
चस्त्यर्थे । प्रत्ययेति । प्रत्ययनिष्ठप्रकारतानिरूपितेत्यर्थः । क्रमेणानयोः फले आह—  
तेनेत्यादि । चित्रेति । वार्तिकेन सधिवेलेत्यणो लुकि स्त्रीप्रत्ययलुकि टाप् । अण्योऽ-  
कार इत्यनेन द्वितीयप्रकारसत्ता सूचिता । तदन्तादित्यनेनाऽऽद्यस्यासत्त्व सूचितम् । डीप्च  
नेति । नः स्पष्टार्थः । क्वचित्तदपाठोऽपि । ननु भाष्यमते प्रत्ययलोप इत्यस्य नियमार्थत्वेन  
वर्णाश्रये प्राप्तिरेव नेतीय व्यर्थाऽत आह—इयमिति । अल्विधौ, यथा कथंचिदल्विधौ ।  
विधेरिति । तथा चाल्विधौ विध्यर्थं तत्सूत्रमिति वार्तिकमतेनेय न भाष्यमतेनेति भावः ।  
भाष्ये, तत्सूत्रस्ये ॥ २१ ॥

नन्वतः कृकामि ( ८ । ३ । ४६ ) इत्यत्र कमिग्रहणेन सिद्धे कंसग्रहणं व्यर्थमत आह—

उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ २२ ॥

इदमेवास्या ज्ञापकमिति कैयटादयः । कंसेस्तु न कंसोऽनभिधानात् । 'प्रत्ययस्य लुक्' ( १ । १ । ६१ ) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टैषा । 'ण्वुल्लुत्तुचौ' ( ३ । १ । १३३ ) इत्यादौ भाष्ये व्युत्पन्नानीत्यपि । इदं शाकटायनादिरीत्या । पाणिनेस्त्वव्युत्पत्तिपक्ष एवेति शब्देन्दुशेखरे निरूपितम् । 'आयनेयी' ( ७ । १ । २ ) इति सूत्रे भाष्ये स्फुटमेतत् ॥ २२ ॥

सिद्धे । धातौ सप्तमीनिर्दिष्टे तदादिग्रहणादयस्कंस इतिरूपे सिद्धे । उणादयः । तदन्तानि तदन्तत्वेनाभिमतानि वा । अव्युत्पन्नानीत्यस्याऽऽद्ये व्युत्पत्तिकार्याभाक्त्वन्तीत्यर्थः, अन्त्ये तु यथाश्रुत एव । इदमेवेति । कंसग्रहणमेवेत्यर्थः । एवेनार्थवत्सूत्रं ज्ञापकमिति सीरदेवाद्युक्तिनिरासः । बहुपटव इत्याद्यर्थं तस्याऽऽवश्यकत्वेन चारितार्थ्यात् । आदिना सीरदेवादिग्रहणम् । ननु नेदमपि ज्ञापकं कंसोरेचि कंस इति सिद्धेरत आह—कंसोस्त्विति । न कंसो, न कंस इति शब्दः । अत एव कमेः सः कंस इत्येव तत्र भाष्य उक्तम् । ननु कुत्रेयमुक्ताऽत आह—प्रत्ययस्येति । प्रत्ययस्य लुक्श्लुप इत्यादावित्यर्थः । आदिनाऽऽयनेयीतिसूत्रपरिग्रहः । युवोरनाकावित्यादाविति त्वपपाठः । तत्र हि प्रत्ययग्रहणाभावे कसीयपरशब्दयोरित्यत्र छयतोरिति वाच्यमवश्य प्रकृतिनिवृत्त्यर्थमन्यथा कृतेऽपि प्रत्ययग्रहणे सस्य, ओश्च लोपापत्तिरिति दोषोऽनया वारितः । ण्वुल्लिति । तत्र हि तृचश्चकाराभावे मात्रादिशब्दे दीर्घापादनं कृत्वा तत्समर्थनं कृतम् । नायं सिद्धान्त इत्याह—इदमिति । व्युत्पन्नानीत्युक्तमित्यर्थः । आदिना नैरुक्तादिसंग्रहः । सिद्धान्तमाह—पाणिनेस्त्विति । शब्देन्दुशेखरे, उणादय इत्यत्र । उणादय इति व्याकरणान्तरस्थसूत्रव्यवस्थापकम् । उणाद्यन्ता येन व्याकरणान्तरेण व्युत्पादिताः शब्दास्तत्र बहुलमिति वक्तव्यं वर्तमानाधिकारे च ते वाच्या भूतेऽपीति च वाच्यमिति सूत्रार्थः । स्वशास्त्रे तेषां साधुत्वबोधनं चैतावतैव कृतम् । सर्पिषा यजुषेत्यादौ षत्व तु बहुलग्रहणादेवेत्यादि तत्रैव स्पष्टम् । इदं समूलयति—आयनेयीति । तत्र हि शण्ठः कण्ठ इत्यादौ दोषवारणाय प्रातिपदिकविज्ञानाच्च भगवतः पाणिनेः सिद्धमित्युक्तम् । एतत्, अस्याव्युत्पत्तिपक्ष एवेत्येतत् । एवेन तदन्यव्यवच्छेदः । विस्तरस्तत एव बोध्यः ॥ २२ ॥

ननु देवदत्तश्चिकीर्षतीत्यादौ देवादेः सन्नन्तत्वादिप्रयुक्तधातुत्वाद्याप-  
त्तिरत आह—

प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य  
ग्रहणम् ॥ २३ ॥

‘यस्मात्प्रत्ययविधिः’ ( १।४।१३ ) इति सूत्रे यस्मात्प्रत्यय-  
विधिस्तदादि प्रत्यय इति योगो विमज्यते । गृह्यमाण उपतिष्ठत इति  
शेषः । तेन तदाद्यन्तांशः सिद्धः । तदन्तांशस्तु ‘येन विधिः’ ( १।१।  
७२ ) इत्यनेन सिद्धः । स च शब्दरूपं विशेष्यमादाय विशेष्यान्तरासत्त्वे ।

यत्तु प्रत्ययेन स्वप्रकृत्यवयवकसमुदायाक्षेपात्तद्विशेषणत्वेन तदन्त-  
विधिरिति तन्न । इयानित्यादौ तस्य तादृशसमुदायेन व्यभिचारेणाऽऽक्षे-  
पासंभवात् ।

देवादेः । सन्नन्तस्येति शेषः । सन् अन्तो यस्येति व्युत्पत्तेः । ( \* आदिभिर्देवदत्तो  
गार्ग्य इत्यादौ तद्वितान्तत्वादिप्रयुक्तप्रातिपादिकत्वादिपरिग्रहः । यद्यपि प्रत्ययग्रहणे  
यस्मात्स तदादितदन्तविज्ञानमित्येवमेकपरिभाषास्वरूपं भाष्ये पठित तथापि तत्रत्यं तद्व्याख्या-  
नमेव स्पष्टार्थमाह—प्रत्ययेति । एकपरिभाषाशब्दस्य भिन्नमूलप्रदर्शनेन ) परिभाषा समूल-  
यति—यस्मादिति । इष्टवाक्यार्थायाऽऽह—गृह्येति । तथा च प्रत्यये गृह्यमाणे  
यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीत्युपतिष्ठत इति वाक्यार्थः । तेन, योगविभागेन । तदाद्यन्तांश  
इति । तदादेरित्यन्तः समुदायघटकोऽवयवः सिद्ध इत्यर्थः । अवशिष्टलाभोपायमाह—  
तदन्तांशस्त्विति । ननु सर्वत्र विशेष्यानुक्तेः कथं तद्व्याप्त आह—स चेति ।  
तदन्तविधिरित्यर्थः । शब्दरूपमिति । शब्दानुशासनप्रस्तावादिति भावः ।

जीर्णोक्तिं खण्डयति—यच्चिति । स्वप्नेतिद्वयः । स्व, प्रत्ययः । इयानित्यादा-  
विति । आदिना, इरित्यादिपरिग्रहः । व्यतिस इयानिति, त्वपपाठः । तत्प्रयोगस्यैवाभावात् ।  
एवमग्रेऽपि । तस्य, श्रूयमाणप्रत्ययस्य । समुदायेन, सहेति शेषः । व्यभीति ।  
व्यभिचारे च द्वयोः साहित्यम् । यद्वा तादृशः स्वप्रकृत्यवयवको यः समुदायस्तद्रूपो य  
इनो विशेष्यस्तद्व्याभिचारेणेत्यर्थः । ( † अयं भावः—कृत्तद्धितेत्यादौ प्रत्ययमात्रस्य  
कार्यवारणाय तावत्तदन्तांशविधिः । तदन्तश्च मुख्यो द्विविधः । इष्टोऽनिष्टश्च । द्वितीयोऽपि  
द्विविधोऽधिको न्यूनश्च । तदुभयवारणाय तदादीति नियमः । विनिगमनाविरहात् ।  
तथा च ऋद्धस्य राज्ञः पुरुष इत्यादावधिकवन्न्यूनस्यापि समासव्यावृत्तिरिति स्वरभेदो न ।

यत्र प्रत्ययो निमित्तत्वेनाऽऽश्रीयते तत्र तदादेरित्यन्तांशमात्रोपस्थिति-  
तिरिति 'अङ्गस्य' ( ६ । ४ । १ ) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः । एवं यत्रापि  
पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्यय आश्रीयते तत्रापि तदादीत्यन्तांशोपस्थितिः परं  
तु तत्र पञ्चम्यन्तता । अत एव 'एङ्हस्वात्' ( ६ । १ । ६९ ) इति  
सूत्र एङन्तादित्यर्थलाभः ।

देवदत्तस्यापत्यमित्यर्थे देवदात्तिरिति च न । अत एव समुदायरूपावयवानां सुबन्तत्वेन पदस्य  
नेति ह्यवरट्सूत्रस्थभाष्यकैयटयोरुक्तम् । एवं चेष्टस्य तत्र ग्रहणम् । न च परिभाषाफ-  
लत्वेनाधिकनिरासस्यैव प्रदर्शानान्यूनव्यावृत्तिर्न तदभिमतोति वाच्यम् । प्राकरोदित्युपक्रमानु-  
शोधेन त प्रति तथैवोक्तत्वेन तस्योपलक्षणत्वात् । ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषो देवदत्तो गार्ग्या-  
यण इतिवत्प्रागुक्तव्यावृत्तेरपि सभवात्तुल्यत्वात् । अन्यथा न्यूनतापत्तेः स्पष्टत्वात् । नियमेना-  
धिकस्यैव व्यावृत्तिर्न न्यूनस्येत्युद्योतादिग्रन्थास्त्वनुपेति सूत्रस्थकैयटानुरोधेन इति न तद्वि-  
शेषः । क्वचित्तु सामर्थ्यादधिकस्यैव व्यावृत्तिर्न न्यूनस्य । तथा चौत्सर्गिकमिदं मुख्यतद्यव-  
हारविषयम् । अस्यापत्य युवेत्यादौ मुख्ये तत्त्वाभावेन परिभाषाविषयत्वस्यैवाभावेन च  
व्यावर्त्यत्वशङ्कैव नेति तत्र व्यपदेशिवद्भावेनेष्टसिद्धिरिति न दोष इति । )

ननु केऽणः, लुङ्लङ्लङ्क्षित्यादौ तदन्तग्रहणाभावात्समुच्चयो भासमानोऽयुक्तोऽन  
आह—यत्रेति । उक्तस्थल इत्यर्थः । तथा च व्यवस्थितत्वात् सर्वत्र समुच्चयः । मात्र-  
पदेन तदन्तांशव्यावृत्तिः । तत्र स्यतेत्यादिवक्ष्यमाणरीत्या तदन्तविधेः प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या  
इति निषेधादुपस्थिताङ्गादेरेवावधित्वेनान्वयादिति भावः । प्रत्ययविधौ तु नास्याः प्रवृत्ति-  
र्विहितप्रत्ययग्रहणविषयत्वादस्या इति बोध्यम् । एव च द्वे एते परिभाषे इति गूढाकृतम् ।  
तदादेरिति तत्र षष्ठ्यन्तम् । अङ्गस्यैतीति । तत्र ह्यङ्गस्येति सूत्रखण्डनाय स्वीकृते  
प्रत्यय इतिन्यासे प्राकरोदित्यादौ प्रादेः प्रागडादिव्यावृत्तये स्वीकृतैषैकदेशिना । उपस्थित-  
पूर्वस्येत्यस्यैवावधित्वेनान्वयादपञ्चम्या इति निषेधेन तदन्तविधिर्नेति तदाद्यन्तांशमात्रोप-  
स्थितिरिति स एव कार्याति न तत्राडादीति कैयट । अस्य मुख्य फलं त्वान्महत इति  
जातीयाशे । तत्र तदादेरित्यन्ताशोपस्थित्या महदन्तस्य तदादेरित्यर्थसिद्धिः । अत एवा-  
तिमहाप्रकारोऽतिमहाजातीय इत्यादिसिद्धिः । तदन्ताशस्तूक्करीत्या तत्र नेत्यादि बोध्यम् ।  
अत एव तयोर्न्यूनता निराचष्टे—एवमिति । यत्र, एङ्हस्वाद्द्रश्यामित्यादौ । अपी  
पूर्वसमुच्चयकौ । आश्रीति । यथा कथञ्चिन्निमित्तत्वेनेत्यादिः । एव तौल्येऽपि क्वचिद्वि-  
शेषमाह—परं त्विति । तत्र, एङ्हस्वादित्यादौ । पञ्चम्यन्तता, योग्यतया तदादेरि-  
त्यस्येति भावः । एतदेव विशिष्याऽऽह—अत एवेति । तत्र तदुपस्थित्यङ्गीकारादेवे-

१ ङ रित्यशशि° । २ ग अपिः परपदोत्तर योज्यः स च निमित्तत्वेनेत्यस्य समुच्चयकः ।  
अभिमतोऽपिः पूर्वसमुच्चयकः । एवं तौ° ।

अस्याः परिभाषायाः प्रयोजनान्तरं ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्य उक्तं परमगार्ग्यायण इति ।

त्यर्थः । अन्यथा विशेष्याभावात्तथाऽर्थो न स्यात् । कौमुद्युक्तप्रकारस्तु न युक्त इत्यन्यत्र स्पष्टमिति भावः । यत्र तु प्रत्यय एव कार्यित्वेन निर्दिष्टो वतुडतिडतरडतमतयकृतद्वित्तेत्यादौ तत्र तदादेस्तदन्तस्यै संघातस्य ग्रहणं भवतीति बोध्यम् ।

( \*नन्वस्या नोक्तं फलम् । अनुनासिकात्पर इत्यनेनेव परश्चेत्यनेनापि प्रत्ययानामन्तावयवत्वबोधनेन तत्र तद्वाचकान्तशब्देन बहुव्रीहिणा सनाद्यन्तावयवभाविन एव समुदायस्य ग्रहणेन देवादिव्यावृत्तिसिद्धेः । किञ्च प्रतीषिषतीत्यादावभ्यासान्तसमुदायस्याज्जनेति दीर्घादावणायोच्चारणभेदाच्छब्दभेदेन द्वित्वनिष्पन्नोत्तरभागस्य प्रत्ययाधिकारस्थत्वाभावेनाप्रत्ययतयाऽभ्यासान्तसमुदायस्याङ्गत्ववारणपक्षे सन्त्वस्य प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणत्वेन प्रत्ययमात्रग्रहणविषयैतत्परिभाषाया अप्रवृत्तेरिति चेन्न । अन्तशब्दस्य तत्र परसमीपबोधकत्वस्य कथजाद्यनुरोधेन तद्भाष्यानुरोधेन च स्वीकारात् । द्वितीयसनोऽप्रत्ययत्वमितिपक्षस्य प्रतीषिषेत्यादावप्रत्ययासिद्ध्याऽयुक्त्वाच्च । अत एवाङ्गसंज्ञासूत्रस्थभाष्यसंगतिः । अत्राऽऽदि-संज्ञासंज्ञाप्रतिपदिकत्वादिफलान्तरसत्त्वाच्च । तथा सत्यागमवन्मूलयुक्त्युक्तेस्तुल्यत्वापत्त्या प्रत्ययानामपि प्रकृतिग्रहणापत्तेश्च । तस्मात्तत्र परशब्दस्तत्पर एव । अनुनासिकात्परः पूर्णो तु ताभ्यामित्यत्र तु सामर्थ्यात्तयोस्तत्त्वेनाऽऽगमपरत्वम् ) । इदमेव ध्वनयितुमाह—  
अस्या इति । समुदिताया इत्यर्थः । तथाफलस्य पूर्वपक्षेऽत्र तत्र चान्यस्योक्तत्वादाह—  
प्रयोजनान्तरमिति । [ + अङ्गसंज्ञासूत्रस्थप्रयोजनापेक्षयाऽन्यत्प्रयोजनमित्यर्थः । ]  
प्रत्ययग्रहणं चापञ्चम्या इति वार्तिकेनेति शेषः । पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्ययो यत्र कार्यान्तरविधानायाचूद्यते तद्विघ्नस्थले प्रत्ययग्रहणं तदन्तविधेः प्रयोजनमिति तदर्थः ।

नन्वेव यजिञोश्चेत्यत्र ङचाप्प्रातिपदिकादित्यधिकारादपञ्चम्या इति निषेधापत्तिरिति चेन्न । यजिञोरिति पञ्चम्यर्थषष्ठ्या तस्य समानाधिकरणं तद्विशेष्यमिति तदविषयत्वात् । अत्र कैयटः—गार्ग्यायण इत्येवोदाहरणं न तु परमगार्ग्यायण इति । तथा सति पारमगार्ग्यायण इत्यनिष्टरूपापत्तेः । तदुपन्यासे बीजं तु प्रत्ययग्रहणे यस्मादिति नियमोऽत्रापि तदन्तविधावपेक्ष्य एव । एतत्सिद्ध एव च तदन्तविधिस्तत्रानूद्यत उक्तनियमबोध-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ ड. 'द्वितसनाद्यन्ता इत्या° । २ घ. 'म् । तदेतद्वधनयन्विशेषं वक्तुमा° । ३ ड. 'हणे च° । ४ घ. 'ति कथमिदमिति चे° । ५ ड. 'षष्ठयन्तस्य ।

परमगार्ग्यस्यापत्यमिति विग्रहेऽपि गार्ग्यशब्दादेव प्रत्ययौ न विशि-  
ष्टात् । निष्कृष्य तावन्मात्रेणैकार्थीभावाभावेऽपि वृत्तिर्भवत्येव । अत्र  
चेदं भाष्यमेव मानमित्यन्यत्र विस्तरः । प्रत्ययमात्रग्रहण एषा न तु  
प्रत्ययाप्रत्ययग्रहण इति ' उगितश्च ' ( ४ । १ । ६ ) इति सूत्रे भाष्ये ।  
इयमङ्गसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ २३ ॥

' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इति सूत्रे भाष्य एतद्घटकतदन्तांश-  
स्यापवादः पठ्यते—

प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ २४ ॥

नाथ । अन्यथा परमगार्ग्यशब्दात्फकि पारमगार्ग्यायण इति स्यादिति न्यायव्युत्पादनमेवेति ।  
अत्र गुरुचरणाः—स्वद्रीत्या परमश्चासौ गार्ग्यायणश्चेति भाष्योदाहरणार्थः । न हीदृशेऽर्थे  
परमगार्ग्यशब्दस्य प्रकृतित्वसभावनाऽपीति कथमेतन्न्यायप्रदर्शनमनेन भाष्येण । तस्माद-  
न्यथा भाष्याशय इति । तदाह—परमेति । \* गार्ग्यशब्दादेव, तदेकदेशादेव । स्पष्टार्थमे-  
व्यवच्छेद्यमेवाऽऽह—नेति । अनयेति भावः । ननु विशिष्टैकैकार्थीभावेऽवयवेनापि तस्य  
सत्त्वेऽपि न निष्कृष्य तावन्मात्रेण सोऽत आह—निष्कृष्येति । स एव वृत्तौ निमित्त-  
मित्यत्र न मानमिति भावः । एवः प्रत्यासत्तौ । अनुपसर्जनादिति सूत्रे कुम्भकारीशब्दैक-  
देशकारीशब्दादप्युत्पत्त्यापत्तिरिति शङ्कापरभाष्यस्यापि मानत्वात् । कैयटस्याप्यत्रैव तात्पर्य-  
मिति स्पष्टमुद्द्योते । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उगितश्चेति । तत्र ह्युगितः प्रातिपदिका-  
दिति पक्षेऽसिद्धिसत्त्वेऽप्युगिदन्तात्प्रातिपदिकादिति पक्षे निर्गोमती निर्यवमतीत्यसिद्धिरेवं  
परिहृता । इयमङ्गेति । तस्मिन्स्वण्डनाय तत्राऽऽहतेति भावः । अङ्गस्येति सूत्रे तु  
तत्स्वण्डनायैकदेशिनाऽऽहता तत एवाङ्गसंज्ञासूत्रस्वण्डनपरमपि भाष्यमेकदेश्युक्तिरिति  
बोध्यम् ॥ २३ ॥

एतद्घटकेति । प्रत्ययग्रहणे यस्मादित्येतद्घटकेत्यर्थः । अपवादः, निषेधः । ननु  
तत्र प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या इति पठ्यते तस्य चार्थ उक्त एवेति कथं प्रत्ययग्रहणे  
चापञ्चम्या इति परिभाषा पठ्यत इत्युक्तिरिति चेन्न । तथा पाठेनैतदर्थस्य फलितत्वेनास्या  
अपि फलितत्वात्तथोक्तिसागत्यात् । न च प्रत्यासत्या पञ्चम्यन्तनिर्दिष्टप्रत्ययाद्यत्र प्रत्ययवि-  
धितत्र स नेत्यर्थ एव युक्तः । समासप्रत्ययविधाविति तु सौत्रस्यैव निषेध इति न तेनास्थं

\* क. गार्ग्यशब्दादेवेति । परमगार्ग्यायण इत्यत्र प्रातिपदिकत्वं तु परस्परान्यतराघटितं  
यद्भक्तिद्वयं तत्प्रयोजकं यत्सुबन्तसमर्थं तद्विशिष्टो य. समुदायस्तस्य चेद्व्यति ताहि समासस्यैवोक्तं  
नियमात् । तद्विशिष्ट इत्यत्र विशिष्टत्वं च स्ववाच्यार्थान्वयप्रर्थवाचकत्वसम्बन्धेनेति ।



यत्र पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्ययः कार्यान्तरविधानाय परिगृह्यते तत्र तदन्तविधिर्नेत्यर्थः । यथा ' रदाभ्यां निष्ठातो नः ' ( ८ । २ । ४२ ) इत्यत्र । तेन दृषत्तीर्णेत्यादौ धातुतकारस्य न नत्वम् । तदन्तेत्यंशानुपस्थितावपि तदादीत्यंशस्योपस्थितौ रेफदान्तात्परस्य निष्ठातस्येत्यर्थ इति न दोषस्तदंशानुपस्थितौ आनाभावात् । तदन्तांशोपस्थितौ तूमयोरेकविषयत्वमेव स्यादिति दृषत्तीर्णेत्यादौ दोषः स्यादेव ।

' स्यतासी लृलुटोः ' ( ३ । १ । ३३ ) इत्यादौ लृलुटोः परयो-

गताथेति वाच्यम् । नितश्च तत्प्रत्ययादित्यस्य विकारावयवविहितप्रत्ययादेवात्रित्यर्थापत्त्यो-  
द्विकारौष्कादभि बुञ् एवाङ्गसज्ञाया वृद्धिस्वरापत्तेः । तदेतदध्वनयस्तमेव फलितमर्थमाह-  
यत्रेति । कार्यान्तरेति । अनेन विधिविषयतादृशप्रत्ययमादाय न प्रवृत्तिरिति सूचि-  
तम् । कार्यान्तरं चाऽऽदेशादिरूप प्रत्ययरूप वेत्यन्यदेतत् । परिगृह्यते, अनूद्यते । अ  
इति भिन्न पदमप्रे ( पे ) त्युक्तेः । तदेव फलितमाह—नेत्यर्थ इति । धातुतकारस्येत्यु-  
पलक्षणं तत्पूर्वदस्यापि । यत्तु कैयटादिना रेफदकाराभ्यामिति सिद्धान्ते व्याख्यात तदयुक्त-  
मिति ध्वनयितुम्, एव यत्रापीत्यस्य लक्ष्यान्तरं सूचयितुम्, ( एतद्वटकेत्युक्ति सफलयितु )  
च सूत्रार्थमाह—तदन्तेत्यंशेति । तदन्तस्येत्यंशेत्यर्थः । सौत्रक्रमानुरोधेनाऽऽह—  
रेफदान्तादिति । तदादेरिति शेषः । न दोषः, न तस्य नत्वम् । ननु प्रकृते तदभावे  
तस्याप्यनुपस्थितिः सनियोगशिष्टेति न्यायादत आह—तदंशेति । तदादेरित्यन्तांशेत्यर्थः ।  
गुणानामिति न्यायौदसनियोगशिष्टत्वाच्च तदप्रवृत्तेः । अत एव प्रागेतद्वटकेत्युक्तं तदभावे  
तदुपस्थितेः फलमप्यसाधारणमुक्तम् । एतत्परिभाषाया अभावे दोषमुपपादयति—  
तदन्तांशोपेति । अर्थः प्राग्वत् । रदाभ्यां परो यस्तदादिर्निष्ठान्तस्तस्य तकारस्य  
तत्पूर्वदकारस्य च नत्वमित्यर्थस्तथा सति स्यात् । तदाह—उभयोरिति । अंशयोरि-  
त्यर्थः । एकेति । यत्र तदन्तत्व तत्रैव तदादित्वमित्यर्थः । दृषत्तीर्णेत्यादिलक्ष्यसमभावात् ।  
असमवे खलु तयोर्भेदाविषयत्वाङ्गीकारः । अत एवैवः प्रयुक्तः । तेन च केवलेऽप्रवृत्ति-  
ध्वनिता । तथा च धातुतस्य तत्पूर्वदस्य च नत्वापत्तिस्तदवस्थैव । तदाह—दृषादिति ।  
नन्वेवमपि स्यतासी इत्यादावस्या अप्राप्त्या लृलुडन्ते तदादावित्यर्थापत्तिः । न हि  
पञ्चम्यन्तात्परत्वेन लृादिप्रत्ययस्तत्र विशेषितः । धातोरिति तु स्यतासिविशेषणमत आह—  
स्यतेति । आदिना सुपि च रोः सुपीत्यादिपरिग्रहः । परयोरित्यर्थ इति । तस्मि-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'र्थकथनेन तदभावमा' । २ घ. 'स्थितिरैक्योगानिर्दिष्टेति न्या' । ३ घ. 'यात्परि-  
भाषार्थनियोगत्वाच्च तदप्रवृत्तेरङ्गस्येति सूत्रभाष्याच्च । अ' । ४ क. 'कारात् । अ' ।

रित्यर्थे नियमेनावधिसाकाङ्क्षत्वेनोपस्थितधातारित्यस्यैवावधित्वेनान्व-  
यान्न तदन्तविधिः । ' ङ्याब्भ्यः ' ( ६ । १ । ६८ ) इत्यादौ तु न  
दोषः । तत्र कस्मादिति नियतावध्याकाङ्क्षाया अभावेन पञ्चम्यन्तस्य  
प्रत्ययविशेषणत्वाभावात् । अङ्गसंज्ञासूत्रे तु तदादेः प्रत्यये पर इत्यर्थे  
पञ्चम्यन्तस्य विशेषणत्वं स्पष्टमेव । अत एव ' उक्तमैकाभ्याम् ' ( ५ ।  
४ । ९० ) इत्यादिनिर्देशाः संगच्छन्ते ॥ २४ ॥

नन्वेवं कुमारी ब्राह्मणिरूपेत्यादौ घरूप ( ६ । ३ । ४३ ) इति

न्निति परिभाषयेति भावः । अवधीति । कस्मादितीत्यादिः । तस्य दिक्शब्दत्वादिति  
भावः । स्यतासिबिधानाय तस्याधिकृतत्वादाह—पस्थितेति । एवं च तस्य शब्दतः  
स्यतासिविशेषणत्वेऽप्यत्राप्यर्थत आवृत्त्या शब्दतो वा तत्त्वेनान्वय इति पञ्चम्यन्तस्य तद्वि-  
शेषणत्वेन निषेधप्रवृत्तिरिति भावः । एव सुपि चेत्यादावप्यन्यार्थमुपस्थिताङ्गादेरेव तत्त्वं  
बोध्यम् । तदाह—न तदन्तेति । द्वितीयाशस्तु केऽण इत्यादिप्रागुक्तवत्प्रवर्तत एवेति  
भावः । उक्तवार्तिकस्याख्यावसरे स्यतेत्यादौ धातोरित्याधिकारान्निषेधोऽयं सुवच इति कैय-  
टोक्तप्रकारस्तु चिन्त्य । तस्य स्यतासिविशेषणत्वादिति गूढाकूनामिति स्पष्टमुद्द्योते । नन्वेवं  
हलङ्घ्याभ्य इत्यादौ ङ्याब्भ्या प्रातिपदिकाक्षेपे पञ्चम्यन्तस्य प्रत्ययविशेषणत्वेन निषेधा-  
न्ङ्यन्तादावन्तादित्यर्थात्त्राभापत्तिरत आह—ङ्याब्भ्य इत्यादौ त्विति । हलङ्घ्याभ्य  
इति पाठान्तरम् । इत्याद्यश इत्यर्थः । सुतिर्सीत्यंशे तु निषेधप्रवृत्तिरस्त्येवेति भावः । तत्र,  
ङ्याबशे । अभावेन, परशब्दाभावात् । पञ्चेति । प्रातिपदिकस्य ङ्याब्बिशेषणत्वाभावा-  
दित्यर्थः । आक्षेप आक्षिप्तस्य शाब्देऽन्वये च न मानम् । तथा चोक्तपरिभाषयोभयोप-  
स्थित्या तथाऽर्थलाभ इति भावः । नन्वेव प्रत्ययसामान्यग्रहणेऽङ्गसंज्ञासूत्रेऽपि तदभावादस्या  
अप्राप्त्या दोषोऽत आह—अङ्गसंज्ञासूत्रे त्विति । सूत्रेऽपीति पाठेऽपि प्रागुक्तस्येति-  
समुच्चायकः । तदादेरिति । प्रागवत् । प्रत्यये पर इत्यर्थे नियमेनावधिसाकाङ्क्षत्वेनो-  
पस्थिततदादीत्यस्यैवावधित्वेनान्वय इति भावः । तत्र मानमाह—अत एवेति । तस्य  
तत्त्वेनैतत्प्राप्त्या तदन्तविषयभावादेवेत्यर्थः । अन्यथाऽङ्गत्वस्य तस्याभावेन दीर्घो न स्यादिति  
भावः ॥ २४ ॥

एवम् । पञ्चम्यन्तस्य प्रत्ययविशेषणत्वं एव तदन्ताशमात्रनिषेधाङ्गीकारे । ( \* अयं  
भावः—येन नाप्राप्तिन्यायेनोक्तनिषेधो वाचनिकतदन्तविधेरेवेति घरूपेत्यादावृत्तरपदस्य विशे-  
ष्यतया प्राप्ततदन्तविधिः स्यादेवेति ) । कुमारी ब्राह्मणिरूपेति । समानाधिकरणसमास-  
प्रदर्शनार्थं वाक्यभिदमुपात्तम् । न हि तथा सति तत्र तत्प्राप्तिः । तस्य तत्र रूढत्वात् ।

ह्रस्वापत्तिरित आह—

उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे न तदन्तग्रहणम् ॥ २५ ॥

‘हृदयस्य हृल्लेखयदणलासेषु’ ( ६ । ३ । ५० ) इत्यत्र लेखग्रहणात् । तत्र लेखेति न घञन्तमनभिधानात् । इयं च हृदयस्येति सूत्र एव भाष्ये स्पष्टा ॥ २५ ॥

नन्वेवं परमकारीषगन्ध पुत्र इत्यत्रेवातिकारीषगन्ध्यापुत्र इत्यत्र ‘ष्यङ्कः संप्रसारणं पुत्रपत्योः’ ( ६ । १ । १३ ) इति स्यादत आह—  
स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न ॥ २६ ॥

रूपं तु कुमारब्राह्मणिरूपेति । ब्राह्मणीशब्दे तसिलादिष्वितिपुवत्त्व बाधित्वा तेन ह्रस्वत्वं पूर्वत्र तु पुंवत्कर्मधारयेतिपुवत्त्वम् । घत्यागस्तु सज्ञाविधाविति निषेधसामर्थ्यात्तत्रापि तदभावसिद्ध्या बोध्यः । ह्रस्वापत्तिरिति । पुवद्भावाद्ध्रस्वत्व विप्रतिषेधेनेत्युक्तेः परत्वात् । तथा च कुमारब्राह्मणिरूपेति स्यादिति भावः । प्रत्ययग्रहण इति । परनिमित्तत्वेन प्रत्ययग्रहण इत्यर्थः । तेनोड इत्यत्र न दोषः । न तदन्तग्रहणमिति । अंशान्तरं तु फलसत्त्वे प्रवर्तते नान्यत्र । परिभाषाणां फलवत्त्वनियमात् । समुच्चयाभावस्य प्रागुक्तत्वाच्च । अत एव प्रकृतेऽप्रवृत्तिरान्महत इत्यादौ प्रवृत्तिरिति बोध्यम् ।

अत्र ज्ञापकमाह—हृदयेति । अन्यथाऽणैव सिद्धे लेखग्रहण व्यर्थं स्यात् । लेख इत्यणन्तमेव तत्र गृह्यत इति भावः । ननु तद्वज्रन्तं नाणन्तामित्यज्ञापकमत आह—तत्रेति । उक्तसूत्र इत्यर्थः । गृह्यत इति शेषः । अनभिधाने मान सूचयन्नाह—इयं चेति । तत्र ह्यणन्तत्वात्सिद्धिलेखग्रहणेन ज्ञापितयाऽनया वारिता । अत्रेदं बोध्यम्—उत्तरपदाधिकारे प्रत्यासत्त्या परनिमित्तभूतप्रत्ययस्यैव विशेष्यत्वेन तत्तद्रूपेण च ग्रहणे तदन्तग्रहणं नेत्यर्थः । ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात् । अतोऽपि घत्यागः । एव च ‘डचोऽनेकाचः’ ‘ह्रस्वोऽडचो गालवस्य’ ‘डचापोः सज्ञाछन्दसोः’ ‘खित्यन’ ‘पाते जे’ ‘रात्रेः कृति’ ‘रद्यञ्चतावप्रत्यये’ तानिषु क्वावित्यादौ न दोषः । उपसर्गस्य घञ्यमनुष्य इत्यत्र तु सामर्थ्यात्तदन्तविधिर्बोध्यः । एवमेकतद्धिते चेत्यत्र चकारकरणसामर्थ्येनोत्तरपदस्य पृथङ्-निमित्ततयाऽविशेष्यत्वेन तदन्तविध्यभावो बोध्य इति ॥ २५ ॥

एवमिति । अपीति शेषः । यद्वोक्तस्थल एव तदन्ताशमात्रे निषेधाङ्गीकार इत्यर्थः । दृष्टान्तेनेदं सूचितम् । यदि तदादिनियमस्तर्हि मुख्येऽपि न स्यादथ स न तदनुरोधात्तर्हि गौणेषुऽपि स्यादिति । इत्यत्र, इत्यत्रापि । नन्वनुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययग्रहण इत्यर्थो ग्रहणपदानुवृत्त्याऽ-

३ अंशान्तरमपि तत्र न फलाभावात्, असभवाच्च पूर्वाशोपस्थितेरन्त्यन्यभिचारित्वेऽपि तस्य न तद्व्यभिचारित्वमिति तावदंशोत्पत्तिरिति भावः । तत्र ज्ञा इतीद ग. पुस्तके पाठान्तरम् ।

विषयसप्तमीयम् । वः स्त्रीप्रत्ययः स्त्रियं प्राधान्येनाऽऽह तत्र तदादि-  
नियमो न । यस्त्वप्राधान्येनाऽऽह तत्र तदादिनियमोऽस्त्येवेत्यर्थः ।  
प्रत्यासत्त्या यस्य समुदायस्य स्त्रीप्रत्ययान्तत्वमानेयं तदर्थं प्रत्यनुपसर्ज-  
नत्वमेवैतत्परिभाषाप्रवृत्तौ निमित्तम् । तेनातिराजकुमारिरित्यादौ राजकु-  
मारीशब्दार्थस्यातिशब्दार्थं प्रत्युपसर्जनत्वेऽपि तदर्थं प्रत्यनुपसर्जनत्वात्त-  
दादिनियमाभावेन ह्रस्वसिद्धिः । अत एवात्र परिभाषायां न शास्त्री-  
यमुपसर्जनत्वमसंभवात् ।

अस्याः ' प्रत्ययग्रहणे ' ( ५०२३ ) इत्यस्यापवादत्वात्तदेकवाक्यता-  
पन्नत्वाच्चात्रापि ग्रहणपदसंबन्धेन स्त्रीप्रत्ययसामान्यग्रहणे विशेषग्रहणे

वश्यं वक्ष्यमाणया प्रतीयते स चायुक्तः । लक्ष्यभेदेनैकैव सूत्र एतत्प्रवृत्त्यप्रवृत्त्योरि-  
ष्टत्वात् । अत आह—विषयेति । तथा च तद्विषयके शास्त्रे स न, तद्विषयके,  
तु तत्रैव सोऽस्त्येवेत्यर्थः । तत्फलितमाह—य इति । तत्र, तद्विषयके । एवमग्रेऽपि । तद-  
न्ताशस्य तत्रैष्टत्वादाह—तदादिनियम इति । तदादिमात्रग्राहकपरिभाषेत्यर्थः । एव-  
मग्रेऽपि । यस्त्विति । अनेन चस्त्वर्थे व्युत्क्रमे चेति सूचितम् । यद्यपि तदादि-  
नियमेनोभयनिरासवदत्र तदभावेनोभयसग्रहस्तथाऽप्यनुपसर्जनादित्यधिकारसामर्थ्येनाधिक-  
स्यैव सग्रहो न न्यूनस्येति न पाक्षिककुम्भकारेयानिष्टमित्यन्यत्र स्पष्टं तत एव  
बोध्यम् । अतिप्रसङ्गनिरासायाऽऽह—प्रत्येति । तदर्थं, तत्समुदायार्थम् । एवमग्रेऽपि ।  
अनेनात्र तदन्ताशस्येष्टत्वं स्फुटमेवोक्तम् । एव च मिथस्तौ व्यभिचरितावित्यन्यतरनिषे-  
धेऽन्यस्याप्यभावो नेति बोध्यम् । अत्र, अस्याम् । अत एवेत्यस्यार्थमाह—असंभ-  
वेति । प्रत्यासत्त्या परिभाषाघटकस्त्रीप्रत्ययनिष्ठोपसर्जनत्वस्य शास्त्रीयोपसर्जनत्वविरुद्धत्वेनास-  
भवादित्यर्थः ।

एतत्प्रवृत्तिस्थलमाह—अस्या इति । उत्सर्गसमानदेशा अपवादा इति न्यायादिति,  
भाष्यः । ननु तस्य श्रमादौ व्यभिचरितत्वमत आह—तदेकेति । वाक्यैकवाक्यतेत्यर्थः ।  
तथा च गृह्यमाणे स्त्रीप्रत्यये सत्यनुपसर्जनविषये तदादिनियमो नान्यत्र तु तत्रैवास्त्येवे-  
त्यर्थः । अनुपसर्जन इत्येव विषयसप्तमीति न प्रागुक्तविरोध इति, बोध्यम् । सामान्यग्रहणं,  
गोस्त्रियोरित्यादि । विशेषग्रहणं, ष्यङ् इत्यादि । ग्रहणे चेति, षाठ् । वेति षाठेऽप्ययमे-

च प्रवृत्तिर्न तु स्त्रीप्रत्ययास्त्रीप्रत्ययग्रहणे । ध्वनितं चेदमर्थवत् । ( १ । २ । ४५ ) सूत्रे भाष्ये । इयं वाचनिक्येव ' ध्वङः ' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ २६ ॥

नन्वेव ' तरप्तमपौ घः , ( १ । १ । २२ ) इत्यादिना तरबन्तादेः संज्ञा स्यादत आह—

संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति ॥ २७ ॥

' सुप्तिङन्तम् ' ( १ । ४ । १४ ) इत्यन्तग्रहणमस्या ज्ञापकम् । न च प्रत्यययोः पदसंज्ञायामपि प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तग्रहणसंभवा-  
ज्ज्ञापितेऽपि फलाभाव इति वाच्यम् । पदसंज्ञायाः ' स्वादिषु ' ( १ । ४ । १७ ) इति विषये प्रकृतिनिष्ठतया पदग्रहणस्य प्रत्ययमात्रग्रहणत्वा-  
भावात् । ' सुप्तिङन्तम् ' ( १ । ४ । १४ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ २७ ॥

वार्थः । वा स्यादिति कोशात् । न तु स्त्रीति । अत एव पदस्य विभज्यान्वारूप्याने  
सरूपसमुदायादेरुविभक्तविकशेष इति पक्ष आबन्तसमूहस्याप्रत्ययान्तत्वेन प्रातिपादिकत्वा-  
दामि भिक्षा भिक्षा भिक्षा आम् अणित्यादौ सर्वविधिम्य इत्यामो लुकि विभक्तिपरत्वाभा-  
वादेकशेषा न स्यादिति सरूपसूत्रभाष्ये 'सगच्छते । अन्यथाऽनया समुदायस्याऽऽबन्तत्वेन  
प्रत्ययान्तत्वप्रयुक्तनिषेधेनाऽऽमोऽप्राप्तेस्तदसगतिः स्पष्टैव । किं च तत्रैतत्प्रवृत्त्यङ्गीकारे  
फलाभावात् । तदाह—ध्वनितमिति । ध्वङ इतीति । तत्र हि मुख्यदृष्टान्तेन  
गौणेऽतिप्रसङ्गोऽनया वारितः ॥ २६ ॥

एवमित्यस्यापीति शेषः । यद्वेत्युक्तप्रकारो वा । आदिना तौ सदित्यादि । संज्ञावि-  
धाविति । संज्ञाया विधायके शास्त्र इत्यर्थः । प्रत्यययोः सुप्तिङो । तदन्तेति ।  
प्रदेशोऽभित्यादिः । ज्ञापितेऽपि, तत्र तदन्तविध्यभाव इत्यादिः । फलाभाव इति ।  
चारितार्थाभाव इत्यर्थः । तथा च ज्ञापकत्वासगतिरिति भावः । स्पष्टेति । अस्म्येयमिति शेषः ।  
( + तत्र ह्यन्तग्रहणेनेय साधिता भगवता । तदाशयः कैयटेन प्रत्ययग्रहण इत्यनन्तरो-  
क्तपरिभाषया वर्णितः । शब्दरूप विशेष्यमादाय तत्सिद्धिरित्युभयतात्पर्यम् । एव च  
पूर्वसूत्रात्तदादीत्यन्तस्थानुवृत्तिर्नाभिमतता । अस्वरितत्वात् । अन्यथा तदनुवृत्त्या तद्विशेषण-  
तयैव तत्सिद्धिं ब्रूयात् । हयवरट्सूत्रस्यकैयटस्त्वर्थान्तरपर इति न विरोधः । अत एव  
संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहण इति सामान्यभूतज्ञाप्यार्थसिद्धिः । अन्यथा तत्रैव विशिष्य तदननु-  
वृत्तिबोधनेनैवान्तग्रहणसाफल्ये भाष्याद्यसगतिरिष्टार्थासिद्धिश्च स्यात् । न चैवमपि पूर्वसूत्र-

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तस्थ. ।

नन्ववतसेनकुलस्थितमित्यादौ नकुलस्थितशब्दस्य क्तान्तत्वाभावा-  
त्समासो न स्यादत आह—

ऋद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ २८ ॥

अस्याश्च कर्मणि क्तान्त उत्तरपदेऽनन्तरो गतिः प्रकृतिस्वर इत्यर्थके  
' गतिरनन्तरः ( ६ । २ । ४९ ) इति सूत्रेऽनन्तरग्रहणं ज्ञापकम् ।  
तद्धि, अभ्युद्धृतमित्यादावभावतिव्याप्तिवारणार्थम् । प्रत्ययग्रहणपरि-

भाष्यविरोधः । तत्र धात्वादिसज्ञावत्परिभाषाफलत्वेनानन्तरपदसज्ञाया अनुल्लेखनेन तदनुवृत्तेरेव  
तदभिमतत्वलाभादिति वाच्यम् । तथासिद्धिसभावनाया तस्या नासाधारणफलत्वमित्याशयेन  
तस्यागात् । समासस्य फलत्वकथनेन तुल्यतया तस्या अप्युक्तप्रायत्वात् । अनुनासिकात्पर  
इत्यनेनेव परश्चेत्यनेन प्रत्ययाना प्रकृत्यवयवत्वबोधनेन चरमावयवत्वेन बोधकान्तशब्देन  
बहुव्रीहिणा सुबाद्यवयवकावयविरूपसमुदायस्यैव तेन ग्रहणेन न्यूनाधिकन्यावृत्तिसिद्ध्या  
तदनुवृत्तेर्न फलमित्याशयाच्च । न चैवमन्तग्रहणसाफल्ये सुसिद्धिसूत्रभाष्यासगत्यापत्ति-  
रिति वाच्यम् । तस्य तत्र तावन्मात्रफलस्यान्यार्थमावश्यकोक्तपरिभाषयैव सिद्ध्याऽन्तग्रहणं  
व्यर्थमित्याद्याशयपरत्वात् । सनाद्यन्ता इत्यत्र त्वन्तशब्दः परसमीपबोधक इति न धातुसज्ञा-  
फलपरभाष्यविरोधः । इत एवारुच्या पूर्व तत्र धात्वित्युक्तिः । न च कृतेऽन्तग्रहणे तद-  
शाप्रवृत्त्याऽऽशान्तरस्याप्यप्रवृत्त्या न्यूनाधिकन्यावृत्तये तदनुवृत्तिरावश्यकति वाच्यम् ।  
उक्तोत्तरत्वात् । तथाऽधिकस्यैव व्यावृत्तेर्न न्यूनस्येत्यादि तु दूषितमेवेति । एधिषाष्टेत्यादौ  
षीष्टेत्यादेरपि व्यावृत्तिः सिद्धा सुबन्तसमुदायवत् । एव च धातुप्रातिपदिकेतिभाष्यमुप-  
लक्षणमेव । सुसिद्धन्तमितिसूत्रभाष्यप्रामाण्यात् । तस्मात्तत्र तदनुवृत्तिरेव फलाभावादस्विर-  
तत्वाच्चेति सिद्धम् । केवलप्रत्ययविषये मुख्यतद्व्यवहाराभावेन तत्परिभाषासंस्कृतोपदेशप्राप्ता-  
वपि व्यपदेशिवदित्यतिदेशेनेयानित्यादौ पदत्ववदस्यापत्य युवत्यादिविषये फगादिसिद्धिरिति  
तथा न्यूनव्यावृत्तौ तत्र दोषसभावनाऽपि न । तथाद्द्योतादिग्रन्थास्तु कैयटानुरोधिन इत्युक्त-  
मेव । तस्मात्तत्र तदनुवृत्तिपराः शेखरादिग्रन्थाः प्राचामनुरोधेनैव । यदि त्वनुनासिकात्परः  
पूर्वो तु ताभ्यामित्यत्र सामर्थ्यात्तयोस्तत्त्वेनाऽऽगमपरत्वेऽपि न परश्चेत्यत्र तथात्वम् ।  
प्रातिपदिकादित्यादिपञ्चम्या दिग्योगलक्षणत्वेनानेयताध्याहारप्रसङ्गे पूर्वव्यावृत्तये तस्य पर-  
समीपबोधकत्वलाभात् । किं च तथा सत्यागमवन्मूल्युक्तेस्तुल्यत्वात्प्रत्ययानामपि प्रकृति  
ग्रहणापत्तिरित्युच्यते तर्ह्यस्तु तथा पूर्वयुक्तेर्निर्दुष्टत्वेन भाष्योपलक्षणत्व एव तात्पर्यादिति  
दिक् ) ॥ २७ ॥

नन्वित्यस्यैवमपीति शेषः । क्तान्तत्वाभावादिति । प्रत्ययग्रहण इति परिभाष-  
येति भावः । अस्याश्चेत्यस्य ज्ञापकमित्यत्रान्वयः । कर्मणीति । कर्मणि यः क्तस्तदन्त  
इत्यर्थः । तत्त्वमुपपादयति—तद्धीति । अनन्तरग्रहण हीत्यर्थः । वारणार्थमित्यस्य क्रियत

भाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वाभावाद्देवाप्राप्तौ तद्व्यर्थं संदस्यां ज्ञापकम् । न चाभ्युद्धृतमित्यादौ परत्वात्, ' गतिर्गतौ ' ( ८ । १ । ७० ) इत्यनेनाभेनिघात एवेति वाच्यम् । पादादिस्थत्वेन पदात्परत्वाभावेन च तदप्राप्तेः । अनन्तरग्रहणे कृते तु तत्सामर्थ्याद्गत्याक्षिप्तधातुनिरूपितमेवानऽऽन्तर्यं गृह्यत इति न दोषः । न चाभ्युद्धृतमित्यादावभिना समासेऽनन्तरस्योदः पूर्वपदत्वाभावेऽपि स्वरार्थं तदिति वाच्यम् । ' कारकाहंत्त ' [ १ । २ । १४८ ] इति सूत्रे कारकादिति योगं विभज्य गतिग्रहणमनुवर्त्य कारकादेव परं गतिपूर्वपदं क्तान्तमन्तोदात्तमिति नियमेन थाथादिस्वराप्राप्त्या कृत्स्वरेणोद् उदात्तत्वसिद्धेः । तस्मादनन्तरग्रहणं व्यवहितत्विवृत्त्यर्थमेवेति ज्ञापकमेव ।

इति शेषः । उद्धृतस्य, तच्छब्दस्य । बाप्राप्तौ, अभेः स्वराप्राप्तौ । ज्ञापकत्वं विघटयति— न चेति । एवेन गतिरनन्तर इत्यस्य व्यवच्छेदः । तथा च चारितार्थ्याभावादज्ञापकत्वमिति भावः । तत्त्वे मानाभावादाह—पदादिति । नन्वनन्तरग्रहणे कृतेऽप्यसौ दुर्वारः । ज्ञापितथैतत्परिभाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वेऽभेस्तदानन्तर्यस्य सत्त्वात् । तथा चाचारितार्थ्यं तदवस्थमेत आह—अनन्तरेति । तत्सामर्थ्यात्, अनन्तरग्रहणसामर्थ्यात् । धातुल्लामोपायमाह—गत्याक्षिप्तेति । गृह्यत इति । अभिस्तु न तथेति भावः । ननु तस्यान्यार्थत्वेनैतदर्थत्वाभावेन ज्ञापकत्वासम्भवं इत्यस्तु तदर्थमपूर्वेयमित्याशयेनाऽऽश्नुते—न चेति । अभिना समास इति । धृतशब्दस्योच्छब्देन गतिसमासे पुरोहितमितिवद्गतिस्वरेणाऽऽद्युदात्तोद्धृतशब्दस्येति भावः । तत्, अनन्तरग्रहणम् । अन्यथा बहुव्रीहौ प्रकृत्येत्यतः पूर्वपदग्रहणानुवृत्त्याऽत्रोदात्तो न स्यात् । सति शिष्टथाथादिस्वरेणान्तोदात्तत्व स्यात् । सूत्रं त्वेकगतिके सफलम् । तत्र कृते तु तत्सामर्थ्यात्तदसम्बन्ध इति थाथादिस्वरतोऽप्यय सति शिष्टः । एव हि स्वरक्रमः समासान्तोदात्तत्वबाधकाव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरबाधककृत्स्वरबाधकथाथादिस्वरबाधको गतिरनन्तर इति स्वर इति । एव च तस्याधिकसग्रहार्थत्वेन ज्ञापकत्वासम्भवं इति भावः । गतिग्रहणमिति । गतिकारकोपेत्यतः । अग्रे समुदितानुवृत्तावपि योगविभागस्येष्टसिद्धयर्थत्वेन तस्यैवात्र सम्बन्धः । सूत्रमानादित्यतः क्तग्रहणं त्वनुवर्तत एवेति भावः । गते परं क्तान्तमिति शब्दार्थेन फलितमाह—गतिपूर्वेति । कृत्स्वरेणेति । गतिकारकोपपदादित्यनेनेति भावः । तदाऽपूर्व्याऽन्यार्थमावश्यक्यैतत्परिभाषयोद्धृतस्य कृदन्तत्वात्तस्य चाऽऽद्युदात्तत्वमुक्तमेव । एवं च तत्रेशोत्स्वरसिद्धिरित्यधिकसग्रहार्थत्वं न तस्यैत्यन्यथा चारितार्थ्याभावेनैवमेव तद्वाच्यमिति तत्त्वं सम्यगेव तदाह—तस्मादिति । ज्ञापकमिति । एकदेशद्वारा कृत्स्नपरिभाषाया इत्यर्थः ।

१ घ. पादादाति । २ ड. 'ति हत' । ३ क. ख. घ. ड. 'थेत्वेन । ४ क. ख. घ. ड. 'थेत्वेन' ।

यत्र गतिकारकसमाभिव्याहृतं कृदन्तं तत्र कृद्ग्रहणे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणमपिशब्दात्तदसमाभिव्याहृतस्य केवलस्यापीत्यर्थः । अन्यथाऽनया कृद्ग्रहणविषये परत्वात्प्रत्ययग्रहणपरिभाषाया बाध एव स्यादित्यपि-ग्रहणम् ।

अत एव सांकूटिनमिति ' गतिकारकूपपदानाम् ' ( प० ७५ ) इति कृद्ग्रहण इति च परिभाषाभ्यां कृदन्तेन समासे कृते विशिष्टादेशाणि सिध्यति न तु संकूटिनमितीति ' पुंयोगात् ' ( ४ । १ । ४८ ) इति सूत्रे भाष्योक्तं संगच्छते । अन्यथा तत्र केवलं कूटिन्नित्येतस्यापीनुणन्त-त्वात्ततोऽणि पाक्षिकदोषो दुर्वार एव स्यात् । स्पष्टं चेदं सर्वं 'समासेऽ-नन्पूर्वे ' ( ७ । १ । ३७ ) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः । ' गतिरनन्तरः '

परिभाषार्थमाह—यत्रेति । सर्थं वाक्यमिति न्यायेनाऽऽह—विशिष्टस्यैवेति । तदसमेति । तथा चापिना प्रत्ययग्रहणपरिभाषाया अन्यत्र समुच्चयो नान्यपूर्वस्य तत्र । एतेनानन्पूर्वग्रहणेन तत्सन्निधानेऽप्यपिना केवलसमुच्चय इत्युभयमेकत्रेत्यपास्तम् । अनन्पूर्वग्रहणस्य तत्रैव कृद्ग्रहणपरिभाषावृत्तस्थितिज्ञापकतया साफल्यम् । अप्रकृत्येत्यत्राप्यनापत्तेश्च । गत्यादिपूर्वस्य क्तान्तस्य समासस्यानन्पूर्वस्येत्यर्थापत्तेरिति भावः । स्यापीत्यर्थ इति पाठ । त्येतदर्थ इति क्वचित्पाठ । अन्यथा, अपिशब्दामावे । परत्वादिति । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेन तद्ग्रहणे तत्पूर्वस्यैव ग्रहणमित्यर्थावगमाद्विरोधेन परत्वमिति भावः । एतेन तदपवाद इयमिति सीरदेवोक्तं प्रत्युक्तम् । येन नेति न्यायाविषयत्वेन तत्त्वायो-गात् । व्यावचर्चीत्यादौ स्त्रीप्रत्यये चेति निषेधेन प्रत्ययग्रहण इत्यस्या अप्रवृत्तेरस्या-स्तत्र प्रवृत्तेरिति कैयटः । यद्यपि तथा तदादिनिर्यममात्रे निषिद्धे कृद्ग्रहणपरिभाषा विनाऽपि समुदायस्य तदन्तत्वात्तत्सिद्धिस्तथाऽपि तदधिकग्रहणाभावाय तद्विषयतासत्त्वमा-त्रेणावकाशो बोध्यः ।

अत एवेति । तत्समाभिव्याहारे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणमित्याद्यर्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । कृदिति । एतेनेय तद्विषयविषयसंग्राहिता । अत एवापिना तदर्थस्यापि सग्रह इत्येवा-स्त्विति कस्यचिदुक्तिः परास्ता । भाष्यासंगते । अन्यथा, उभयोरेकत्राङ्गीकारे । सर्वम्, आदित आरम्य यावदुक्तम् । तत्र हि क्त्वाकालकादिषु प्रतिषेध इत्येतत्स्वण्डनाय पक्षान्तरत्वेनोक्तप्रत्ययग्रहणपरिभाषाप्रसङ्गेनेदमुक्तम् । ननु तत्समाभिव्याहारे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणे पुरोहितामित्यादौ गतिरनन्तर इति न स्याद्विशिष्टस्य क्तान्तत्वेन ततो भेदाभावाद् अह—गतिरिति । पूर्वस्य, वस्तुतः पूर्वपदभूतस्य । नेदमनुवृत्तिपरं तदननुवृत्तेरुक्त-



( ६ । २ । ४९ ) इत्यत्र तु गतेः पूर्वपदस्य क्तान्त उत्तरपदे परे कार्य-  
विधानात्तत्समवधानेऽपि केवलस्य क्तान्तत्वेन ग्रहणं बोध्यम् । इयं च  
कृद्विशेषग्रहणे कृत्सामान्यग्रहणे च न तु कृदकृद्ग्रहण इति ' अनुपसर्ज-  
नात् ( ४ । १ । १४ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ २८ ॥

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च ॥ २९ ॥

पदमङ्गं च विशेष्यं विशेषणेन च तदन्तविधिः । ' येन विधिः ' ( १ ।  
१ । ७२ ) इत्यस्यायं प्रपञ्चः । तेनेष्टकचितं पक्केष्टकचितमित्यादौ  
' इष्टकेषीकामालानां चित ' ( ६ । ३ । ६५ ) इति ह्रस्वो महान्परमम-  
हान्परमातिमहानित्यादौ ' सान्तमहतः ' ( ६ । ४ । १० ) इति दीर्घः  
सिद्धः । अत एव तदुत्तरपदस्येति पाठोऽयुक्त इति भाष्ये स्पष्टम् । अत्र  
पदशब्देनोत्तरपदाधिकारः केवलपदाधिकारश्च । ' पादस्य पदाज्याति ' ( ६ । ३ । ५१ ) इत्यत्र न तदन्तग्रहणं लक्ष्यानुरोधादिति सर्वं ' येन  
विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ॥ २९ ॥

त्वात् । विधानादिति । तत्सामर्थ्यादिति शेषः । भाष्य इति । तत्र हि प्रधानेन  
तदन्तविधिर्यथा स्यात्कुम्भकारीति, अन्यथाऽत्र पूर्ववचनेनावयवादुत्पत्तिः स्यादित्युक्त्वाऽ-  
नया सघातादुत्पत्तिर्भविष्यतीति शङ्कित इदमुक्तम् ॥ २८ ॥

नन्वेवमपि पक्केष्टकचितमित्यादौ ह्रस्वादि न स्यादत आह—पदाङ्गेति । परिभा-  
षार्थमाह—पदमिति । तथा च विशेष्यविशेषणभावव्यवस्थार्थमिदमिति नापूर्वं तदाह—  
येनेति । अत्र पदशब्देनोत्तरपदाधिकारो न गृह्यते किं तु शुद्धपदाधिकार इति प्राचा  
मतमसगतमिति ध्वनयितुमाह—तेनेष्टेति । अङ्गाधिकारोदाहरणमाह—महानिति ।  
अत एवेति । परमातिमहानित्युदाहरणदानादेवेत्यर्थः । द्वितीयसमासे महदन्तत्वेऽपि  
तदुत्तरपदकत्वं नेति भावः । यद्यपि भाष्ये वार्तिककृत्नाऽऽज्ञौ तथा पठितं तदन्तविधेरपवादोऽ-  
यमुत्तरपदविधिरत एव तस्य चेति पुनरभिहितं तदन्तविधौ हि बहुचपूर्वेऽपि स्यात्तच्च  
नेष्टमिति वार्तिकाशयस्तदन्तविध्यपवादस्यापि विशेषण एव प्रवृत्तिस्तथाऽप्यग्रेऽल्लैवानर्थकेने-  
त्थेतद्व्याख्यावसरे किं पुनरत्र ज्याय इत्यादिनैवमुक्तम् । तदाह—भाष्य इति । येन  
विधिरित्यत्रैवेत्यर्थः । तथैवोदाहरणदानाशयमाह—अत्रेति । कारश्चेति । गृह्यत  
इति शेषः । नन्वेवमतिप्रसङ्गोऽत आह—पादस्येति । सर्वमिति । आदित आरम्य  
यदुक्तं तत्सर्वमित्यर्थः । पदाङ्गाधिकार इति वार्तिकव्याख्यावसरे सर्वमिदं तत्रो-  
क्तम् ॥ २९ ॥

नन्वेवमस्यापत्यमिरित्यादावदन्तप्रातिपदिकाभावादिञ्ज स्याद्  
आह—

व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ ३० ॥

निमित्तसद्भावाद्द्विशिष्टोऽपदेशो मुख्यो व्यवहारो यस्यास्ति स व्यप-  
देशी । यस्तु व्यपदेशहेत्वभावाद्द्विद्यमानव्यपदेशोऽसहायः स तेन तुल्यं  
वर्तते कार्यं प्रतीत्येकस्मिन्नसहायेऽपि तत्कार्यं कर्तव्यमित्यर्थः । तेनाका-  
रस्याप्यदन्तत्वात् क्षतिः । एकस्मिन्नित्युक्तेः समासन्नयन आकारस्य  
नाऽऽदित्वं दरिद्राधाताविकारस्य नान्तत्वम् । अन्यथा समासन्नयने भव  
इत्यर्थे ' वृद्धाच्छः ' ( ४ । २ । ११४ ) दरिद्रातेरिवर्णान्तलक्षणोऽश्च  
स्यात् । अत एव हरिष्वित्यादौ सोः पदत्वं न ।

लोकेऽपि बहुपुत्रसत्त्वे नैकस्मिन्ऋषेष्कनिष्ठत्वाद्द्विव्यवहारोऽयं मे ज्येष्ठः  
कनिष्ठो मध्यम इति किंत्वेकपुत्रसत्त्वं एव । अनेन शाशास्त्रीयस्याप्य-

एवम् । पदाङ्गाधिकार एवोभयत्र कार्याङ्गीकारे । क्वचित्त्वेवमपीति पाठः । तत्राप्ययमे-  
वार्थः । अत इजित्यस्योभयबहिर्भूतत्वाद्येन विधिरित्यत्र तस्य चेत्यादि नास्तीति भावः ।  
शेषपूरणेन व्याचष्टे—निमित्तेति । वेर्यमाह—द्विशिष्टेति । क्रमेणानयोर्यमाह—  
मुख्य इति । एकपदार्थमाह—असहाय इति । तेन, व्यपदेशिना । कार्यं प्रतीति ।  
कार्यार्थमेवातिदेशाङ्गीकारादिति भावः । तदेवाऽऽह—एकस्मिन्निति । तदर्थमाह—  
अस्तेति । तत्कार्यं, मुख्यकार्यम् । उक्तदोषमुद्धरति—तेनेति । अकारेति । भगवद्वाचक-  
स्येत्यर्थः । अपिना दक्षादिसमुच्चयः । समासन्नयने, तच्छब्दे । अन्यथा, एकस्मिन्नित्यस्या-  
भावे । अयं भावः—समासन्नयने यस्याचा वृद्धिरित्यंशसत्त्ववदादित्वस्यापि व्यपदेशिवद्भावेन  
स्वापेक्षया तत्र सत्त्वमिति तत्समुदायस्य वृद्धसज्ञा दुर्वारा । एवं दरिद्रातेरिवर्णस्यान्तत्वं  
स्वापेक्षयाऽस्तीति धातोरिवर्णान्तत्वमक्षतमिति । ननु तत्राऽऽदिग्रहणसामर्थ्येन मुख्यदेरेव  
ग्रहणमिति नायं दोषोऽत आह—दरिद्रातेरिति । फलान्तरमाह—अत एवेति ।  
एकस्मिन्नित्युक्तेरेवेत्यर्थः । पदत्व, पदत्वमपि । अन्यथा यस्माद्विहितस्तदादित्वस्याशास्त्री-  
यस्यानयाऽतिदेशात्तत्त्वं दुर्वारमिति भावः ।

एवमेव लोकन्यायेन सिद्धमित्याह—लोकेऽपीति । व्यवहारस्वरूपमाह—अयं मे  
ज्येष्ठ इति । एकपुत्रसत्त्वं एवेति पाठः । एकपुत्रत्व एवेति पाठे तु निमित्तसप्तमी कर्म-  
धारयाद्बहुव्रीहेर्वा त्वः । कैयट खण्डयितुं स्वसिद्धान्तमाह—अनेन चेति । चस्त्वर्थे ।  
तेनान्यत्रातिदेशे नैवमिति बोध्यम् । अपि. शास्त्रीयधर्मसमुच्चायकः । अत्र शास्त्रीयत्वं च  
शास्त्रविधेयत्वम् । अस्ति चैतद्घटकतदन्तत्वे । आद्यन्तवदित्यनेन तस्य विधानात् । नैवं

तिदेशः । अत एवेयायेत्यादावेकाच्त्वनिबन्धनद्वित्वसिद्धिः । अत एव  
मवतीत्यादौ भू इत्यस्याङ्गत्वम्, इयानित्यादौ कार्यकालपक्षे तद्धिता-  
न्तत्वनिबन्धनप्रातिपदिकत्वं च सिध्यति । अन्यथा यस्माद्धिहितस्तदा-  
द्वित्वाभावाद्भवति स्यात् ।

यत्तु योऽर्थवांस्तत्रार्थस्य त्यागोपादानाभ्यामेकाज्ज्यपदेशो यथेयाये-  
त्यादावर्थवतो धातोरयं वर्णरूप एकोऽजिति कैयटस्तन्न । तस्यैकपदा  
ऋगित्यत्र भाष्योक्तरीत्या मुख्यव्यवहारत्वात् । एकपदा ऋगित्यत्रार्थेन  
युक्तो व्यपदेश इति भाष्य उक्तम् । ऋक्त्वादेरर्थशब्दोभयवृत्तित्वेन तस्याः  
शब्दमात्ररूपं पदमेकोऽवयव इत्यर्थ इति तदाशयः । तस्मादेकस्मिन्स्त-  
न्मन्त्रारोपेण युगपद्यथा ज्येष्ठत्वादिव्यवहारो यथा च शिलापुत्रकस्य  
शरीरमित्यादावेकस्मिन्नारोपितानेकावस्थाभिः समुदायरूपत्वाद्यारोपे-  
णैतस्य शरीरमित्यादिव्यवहारस्तथाऽत्रैकाच्त्वादिव्यवहारोपपत्तिरि-

यस्माद्धिहितस्तदादित्व इति बोध्यम् । तत्फलमाह—अत एवेति । अशास्त्रीयस्यातिदेशा-  
देवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अस्याऽऽवश्यकता सूत्रयितुं फलान्तरमाह—अत एवेति ।  
व्यतिष्ठ इत्यादिपदत्वमित्यन्तोऽपाठः । लोके तत्प्रयोगस्यैवाभावादिति भावप्रकाशे विशदी-  
कृतम् । इयानित्यादाविति । आदिनाऽधुनेत्यादिपरिग्रहः । कार्यकालेति ।  
तस्यैव मुख्यत्वादिति भावः । अन्यथा, अशास्त्रीयातिदेशानङ्गीकारे । न स्यादिति ।  
तथा चैतदर्थं तथाऽवश्यं वाच्यम् । इयायेत्यादावप्ययमेव प्रकार इति कैयटाद्युक्तिरनुक्तै-  
वेति भावः ।

तदेवाऽऽह—यत्त्विति । तस्य, तथैकाच्त्वव्यवहारत्वेनाभिमतस्य । मुख्यव्यव-  
हारत्वादिति । तथा च तथोपपादनेन तत्र परिभाषायोजनं कैयटीयमनुक्तमिति भावः ।  
व्यवहारसत्त्वादिति पाठे तस्येत्यस्यार्थवत् इत्यर्थो बोध्यः । तदेव भाष्यमाह—एकेति ।  
युक्तत्वमुपपादयति—ऋक्त्वादेरिति । आदिना मन्त्रत्वादिपरिग्रहः । उभयेत्यनेन  
विशिष्टनिरासः सूचितः । तस्याः, ऋचः । इत्यर्थ इति । एकपदा ऋगित्यस्येति भावः ।  
तदाशयः, भाष्याशयः । उपसहरति—तस्मादिति । एकस्मिन्, पुत्रे । एकस्मिन्,  
शिलापुत्रके । वयःकृतावस्थानामपि प्राणिनिष्ठत्वेन वस्तुतस्तत्रासत्त्वादाह—आरोपि-  
तेति । समुदायरूपत्वेति । अनेकावस्थाविशिष्टशिलापुत्रकत्वेत्यर्थः । आदिनैकावस्था-  
विशिष्टशिलापुत्रकत्वपरिग्रहः । एतस्येति । अनेकावस्थाविशिष्टशिलापुत्रकस्यैकावस्था-  
विशिष्टमिदं शरीरमवयव इत्यादिव्यवहार इत्यर्थः । तथाऽत्रैकेति । इयायेत्यादावुक्तप्र-

तिलोकन्यायसिद्धेयम् । न चासहाय एवैतत्प्रवृत्तौ भवतीत्यत्र भू इत्य-  
स्याङ्गत्वानापत्तिः ससहायत्वादिति वाच्यम् । शपमादायाङ्गत्वे कार्ये  
यस्माद्विहितस्तदादित्वे तस्य ससहायत्वाभावाह्लोके विजातीयकन्यादि-  
सत्त्वेऽप्येकपुत्रस्य तस्मिन्नेवायमेव ज्येष्ठ इत्यादिव्यवहारवत् । न चैवं  
निजौ चत्वार एकाच इति भाष्यासंगतिरिकारस्यासहायत्वाभावेन  
तत्रैकाचत्वानुपपादनादिति वाच्यम् । एकस्मिन्नित्यस्यापर्यालोचनया  
तत्प्रवृत्तेः ।

अथवता व्यपदेशिवद्भाव इत्यत्रार्थवत्पदेनाप्यसहायत्वमुपलक्ष्यते ।  
अर्थबोधकेन शब्देन व्यपदेशिसदृशो भावः कार्यं लभ्यत इति तदर्थः ।  
प्रायोऽसहाय एवार्थवत्त्वात् । कुरुत इत्यादौ तशब्दाकारोऽचामन्त्य इति

कारद्वयेनेत्यर्थ । इति लोकेति । न तु कैयटोक्तरीत्येति भावः । अङ्गत्वेति । शब्-  
निरूपितेत्यादि । ससहायेति । शब्दानेति भावः । अङ्गत्वे कार्ये । जन्यजनकभावः  
ससम्बन्धः । तज्जनकीभूत इति यावत् । तदादित्वे, तद्व्यवहारे कर्तव्ये । तस्य, भू इत्यस्य ।  
ससेति । कार्यित्वेन सजातीयसहायसहितत्वाभावादित्यर्थः । निमित्तत्वेन विजातीयसहाय-  
सत्त्वेऽपि न क्षतिरिति भावः । लोकन्यायेनाप्येवमेव लभ्यत इत्याह—लोक इति ।  
एकपुत्रेति बहुव्रीहि । तस्मिन्नेव, एकस्मिन्पुत्र एव । न चैवम् । असहाय एवैतत्प्रवृत्तौ ।  
तत्र, इकारे । नुपेति । अनया परिभाषयेति भावः । तत्प्रवृत्तेः, उक्तभाष्यप्रवृत्तेः । एव च  
पूर्वपक्षशुक्तत्वेन तदसागत्य न दोषावहमिति भावः ।

नन्वर्थवता व्यपदेशिवद्भाव इति भाष्योक्तेः कैयटोक्तपरिभाषार्थ एव भगवदभिमत इति  
लभ्यते । सत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदस्यान्याय्यत्वादेव च कथं तत्खण्डनमत आह—अर्थ-  
वतेति । अपिनैकपदसमुच्चयः । तदर्थमेवाऽऽदौ शाब्दार्थमाह—अर्थेति । बोध्यबोधक-  
भावसंबन्धस्य मत्वर्थत्वमित्याह— बोधकेनेति । वत्यर्थमाह—सदृश इति । भाव-  
पदस्यार्थः कार्यमिति । तदर्थः, उक्तभाष्यार्थः । नन्वेवमपि कथमेतदुपलक्ष्य तेनात आह—  
प्रायोऽसहाय एवेति<sup>१</sup> । द्योतकसर्मभिव्याहारेऽधीत इत्यादौ धात्वादेः ससहायस्याथक्त्वद-  
र्शनादाह—प्राय इति । तथा च तत्र तयोऽसत्त्वेऽप्येतत्प्रवृत्तिविषये सर्वत्र तथा सत्त्वम-  
स्तीति तेनैतदुपलक्षणं सम्यगेवेति भावः । नन्वेवमपि कुरुत इत्यादावात्मनेपदस्याकारस्य  
टिसंज्ञा न स्यात्ससहायत्वेनास्या अप्रवृत्तेरन आह—कुरुत इति । एवं च विजातीय-  
सहायसत्त्वेऽपि न सजातीयसहायसत्ताऽऽत्मनेपदसंबन्धिनोऽन्त्यस्याचोऽभावादिति न दोष

व्यवहारे स आदिर्धस्येति व्यवहारे चासहाय एवेति तत्र व्यपदेशिब-  
द्भावेन टिसंज्ञासिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३० ॥

ननु गर्गादिभ्यो विहितो यञ्तदन्तविधिना परमगर्गादिभ्योऽपि  
स्यादत आह—

ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति ॥ ३१ ॥

इयं च समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेध उगिद्वर्णग्रहणवर्जमिति वार्तिक-  
स्थप्रत्ययांशानुवादः । अत एवायं प्रत्ययविधिविषय एव । अत एव  
'येन विधिः' ( १।१।७२ ) इति सूत्रभाष्ये प्रत्ययविधिभिन्ने  
'अप्नुन्' ( ६।४।११ ) इत्यादौ गृह्यमाणप्रातिपदिकेनापि तदन्तविधिप्र-  
तिपादनं स्वसा परमस्वसेत्याद्युदाहरणं च संगच्छते । अत एव च तदन्त-  
विधिसूत्रे भाष्ये समासेत्यादिनिषेधस्य कथनवदस्य न कथनम् । सोऽपि

इति भावः । नन्वचामन्त्य इति व्यवहारः प्रकृतिमादायापि सुलभोऽत आह—स आदि-  
रिति । तत्र, तशब्दाकारे । एतेनेदं परिभाषान्तरमित्यप्यपास्तम् । तदाह—इत्यन्य-  
त्रेति । उदद्योतादावित्यर्थः ॥ ३० ॥

यद्यपि पदाङ्गैत्यस्य येनेति सूत्रप्रपञ्चत्वात्तत्प्रसङ्गेन तत्र प्राग्दोषस्फूर्तेस्तदग्रे ग्रहणवतेति  
वाच्यं न व्यपदेशिवदेकेति युक्तं तथाऽपि परिभाषाघटके तस्य चेत्यशो श्रुते तदन्यत्र तत्रैव  
प्राग्दोषोपस्थितिर्न तु मूलभूतत्वेनोपस्थितसूत्र इति सा पूर्वमुक्ता । न चैवमपि तदग्रे तद-  
तिव्याप्तिनिवारकाग्रिमपरिभाषैव वक्तुं युक्ता नेयमिति वाच्यम् । तदनन्तरं तत्सूत्रातिव्याप्ति-  
रूपदोषस्यैव प्रागुपस्थितिर्न तदतिव्याप्तिदोषस्येत्येतदुत्तरमेव तदुक्तेः । तदेतदभिप्रेत्याऽऽह—  
ननु गर्गेति । गर्गादीनामधिकृतप्रातिपदिकविशेषणत्वेन येनेत्यस्य प्राप्तेरिति भावः ।  
अपिः केवलसमुच्चायकः । तत्र व्यपदेशिवद्भावे बोध्यः । ग्रहणवता, विशिष्य तत्तद्रूपेणो-  
च्चारणवता । इदं च सूत्रस्य येनेत्यस्य विशेषणम् । एवमग्रेऽपि । इदं समासप्रोति च भिन्नं  
वचनद्वयमिति जीर्णोक्तिश्चिन्त्येति ध्वनयितुमाह—इयं चेति । अत एव, तदशानुवाद-  
त्वादेव । अयं, ग्रहणेतिनिषेधः । उक्तं समूलयति—अत एवेति । अस्याः प्रत्ययवि-  
धिविषयत्वादेवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अपिरगृह्यमाणप्रातिपदिकसमुच्चायकः । उदाहरणं च,  
तत्प्रतिपादनं च । अत्र युक्त्यन्तरमाह—अत एव चेति । अस्य, ग्रहणवतेतिनिषे-  
धस्य । ननु प्रत्ययविधावितिनिषेधस्यागृह्यमाणप्रातिपदिकतत्सूत्रेऽपि प्रवृत्तेः कथमस्य तद-  
नुवादकत्वमत आह—सोऽपीति । प्रत्ययविधावित्यपीत्यर्थः । अपिरस्य समुच्चायकः ।

निषेधो विशिष्य तत्तद्रूपेण गृहीतप्रातिपदिकसूत्र एव । ध्वनितं चेदम् 'असमासे निष्कादिभ्यः' ( ५ । १ । २० ) इति सूत्रे भाष्ये । अत्र च ज्ञापकं 'सपूर्वाच्च' ( ५ । २ । ८७ ) इति सूत्रम् । अन्यथा 'पूर्वादिभिः' ( ५ । २ । ८६ ) इत्यत्र तदन्तविधिनैव सिद्धे किं तेन ॥ ३१ ॥

नन्वेवं 'सूत्रान्ताद्ठक्' ( ४ । २ । ६० ) 'दशान्ताद्भुः' [ ५ । २ । ४५ ] 'एकगोपूर्वात्' [ ५ । २ । ११८ ] इत्यादेः केवलसूत्रशब्द-दशशब्दैकशब्दादिव्वपि प्रवृत्तिर्व्यपदेशिवद्भावात्स्यादत आह—

व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ ३२ ॥

पूर्वात्सपूर्वादिनिरित्येकयोग एव कर्तव्ये पृथग्योगकरणमस्या ज्ञापकम् । न च 'इष्टादिभ्यः' ( ५ । २ । ८८ ) इति सूत्रेऽनुवृत्त्यर्थं तथा पाठोऽत एवानिष्टीत्यादिसिद्धिरिति वाच्यम् । ज्ञापकपरमाव्यप्रामाण्येनानिष्टीत्यादिप्रयोगाणामनिष्टत्वात् । एकयोगेऽपि तावत् उत्तरत्रानुवृत्तौ बाधकामावाच्च । अत एव 'नान्तादसंख्यादेः' ( ५ । २ । ४९ ) इति चरितार्थम् । अन्यथा पञ्चम इत्यादावपि व्यपदेशिवद्भावेन संख्यादिविशिष्येत्यस्य व्याख्या—तत्तदिति । गृहीतेति । बटुनीहिगर्भ. कर्मधारय. । कस्तु वैकल्पिकत्वान्न । एव च समन्यासत्वमुभयोः सिद्धमित्यत इमित्यादौ तदन्तविधि सिद्ध इत्यु-गिद्वर्णेत्यत्र नापूर्वं वर्णग्रहणमिति बोध्यम् । ननु तत्र प्रातिपदिकग्रहणाभावात्कथमेतदत आह—ध्वनितमिति । तत्र ह्यसमासग्रहणप्रयोजनोक्त्यवसरे प्राग्वतेष्टमित्यत्र तदन्तविधौ परमनिष्कशब्दाद्ठन्सिद्धिरिति फल ग्रहणवतेति निषेधो न विशिष्य प्रकृत्यनिर्देशादिति सिद्ध एव तदन्तविधिरिति खण्डितम् । यदि च तस्य साधारणत्वं स्यात्तदा तद्विषयत्वसत्त्वेन भाष्यासगति स्पष्टैव । एव वाक्यार्थमुक्त्वाऽत्र मूलमाह—अत्र चेति । अन्यथा, एतदभावे । सिद्धे, कृतपूर्वात्त्यादिप्रयोगे सिद्धे ॥ ३१ ॥

एवम् । प्रातिपदिकेन तदन्तविधिमात्रनिषेधाङ्गीकारे । तथा च व्यपदेशिवद्भावस्यातिव्याप्तिः । आदिना गोशब्दपरिग्रहः । अर्थस्य स्पष्टत्वाज्ज्ञापकमाह—पूर्वादिति । मान्योक्त दोष खण्डयति—न चेष्टेति । तथा पाठः, पृथक्सूत्रपाठ । अत एव, इष्टादिभ्यश्चेत्यत्र सपूर्वादित्यस्यानुवृत्तेरेव । ज्ञापकपरिति । येन विधिरितिसूत्रस्थोक्तसमानाकारतथाभाष्येत्यर्थः । इदं चैकयोगनिर्देशाना सह वेतिन्यायावलम्बेनोक्तम् । एकदेशोऽपीतिन्यायावलम्बेन तेषामिष्टत्वेऽप्याह—एकेति । इदं च प्राकप्रतिपादितम् । प्राचामनुरोधेनात्र ज्ञापकान्तर सूचयन्नुक्तार्थं द्रवयति—अत एवेति । प्रातिपदिकेन तन्निषेधादेवेत्यर्थः । इतीति । इतिसूत्रमित्यर्थः । अन्यथा, एतन्निषेधाभावे । प्राचीनोक्त्यसगति

त्वात्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । इयं च प्रातिपदिकग्रहण एव न तु प्रातिपदि-  
काप्रातिपदिकग्रहणे । तेन ' उगितश्च ' ( ४ । १ । ६ ) इत्यत्र न  
दोष इति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम् । इयं ' ग्रहणवता ' ( प० ३१ ) इति  
च परिभाषा प्रत्ययविधिविषयैवेति ' असमासे निष्कादिभ्यः ' ( ५ । १ । २० )

ध्वनयितुं विशेषविवक्षयाऽतिप्रसङ्गवारणद्वारा सिद्धान्तमाह—इयं च प्रातीति । ग्रहण-  
वतेत्यनुवृत्त्या यथाकथञ्चिद्ग्रहणवता प्रातिपदिकेन व्यपदेशिवद्भावो नेत्यर्थाङ्गीकारादिति भावः,  
( \* न तु पूर्ववत् । ) तदर्थमपि तथा क्रमादर इत्यपि बोध्यम् । उगितश्चेति । उगि-  
त्त्वस्थ प्रत्ययादिसाधारणत्वात्प्रातिपदिकादित्यस्यानुवृत्तावपि सूत्रे तस्य स्वरूपेणानुच्चारणा-  
च्चेति भावः । तत्रैव, उगितश्चेत्यत्रैव । तत्र ह्युगितः प्रातिपदिकाद्गुणित्वाद्ग्रहणवतद्वैयर्थ्यमुक्त्वा  
द्वितीयपक्षस्य व्यपदेशिवद्भावेन समर्थनावसर एतत्परिभाषाप्रावृत्तिवारणाय कण्ठतस्तथोक्तम् ।  
पूर्ववदेव सिद्धान्तान्तरमाह—इयं ग्रहेति । परिभाषेति । प्रत्येकान्वयाभिप्रायमेकवच-  
नम् । एवमग्रेऽपि । असमास इति । तत्र ह्यसमासग्रहणप्रयोजनोक्त्यवसर आर्हादगोपुच्छे-  
त्यत्र तदन्तविधौ पारमगोपुच्छिकमित्यत्र ठक्प्रतिषेधाट्टञ्फलमिति खण्डनाय विधौ प्रतिषेधः,  
प्रतिषेधश्चायमित्युक्तम् । तेन चानयोर्द्वयोस्तद्विषयता स्पष्टमेव ध्वनिता । अन्यथा तदन्त-  
विधिदौर्लभ्येन केवलेऽसाधनेन च तदसगति स्पष्टैव । एव चात एव नान्तादित्यादिप्राचो-  
क्तिरसङ्गतैव । अत्र तदनुवादस्त्वेतत्सिद्धान्ताभावे यथाश्रुतार्थाभिप्रायकस्तदसगतिध्वननफ-  
लक उक्तार्थस्य सर्वाभिमतत्वध्वननफलकश्च । अत एव शब्दरत्ने तदवतरणमध्य उक्तम् ।  
एव च स्पष्टमेवेत्यग्र इति केचिदिति शेषो बोध्य इति तत्त्वम् । यत्तु प्रत्ययविधीत्यस्य  
प्रत्ययकर्मकविधीत्यर्थवत्प्रत्ययसबन्धिभावरूपविधीत्यप्यर्थः । अत एव विधौ प्रतिषेधः  
प्रतिषेधश्चायमित्येवोक्त भाष्ये न तु प्रत्ययेत्यपीति । अत एव च येन विधिरित्यत्र ज्ञाप-  
कस्य सजातीयापेक्षत्वात्सूत्रोपात्तान्ताद्यादिशब्दविषयत्वमेवास्य कैयटेनोक्तम् । अत एव  
पूर्वादिनिरित्येव तदन्तविधिना सिद्धे सपूर्वाच्चेत्यस्य ग्रहणवतेतिपरिभाषाज्ञापकत्वं कैय-  
टोक्त सगतमिति तत्र । एवमप्युगित इत्यतो नान्तादित्यत्रावैलक्षणेनोक्तसिद्धान्तेन तदर्थ-  
मवश्याश्रयणीयेन तत्रैतत्प्रवृत्तेर्दुर्वचत्वात् । अत एव स कैयटोऽत्र समंतित्वेन नालेखि ।  
नान्तादित्यादौ त्वसरूपादेरिति विशेषणसामर्थ्यात्सूत्रवैयर्थ्याद्वा व्यपदेशिवद्भावाप्रावृत्तिरिति  
बोध्यम् । ननु समासप्रत्ययविधावित्यस्य विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासमात्रतात्पर्यग्राहकतया  
नान्तादित्यादाविवात्रापि तदन्तविधिसम्भवेनान्तग्रहणसामर्थ्यादेव केवलेऽप्रवृत्ताविद् व्यर्थम् ।

\* वनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थ ।

१ ग °ति । जातविक° । २ घ. ड. °ल्यपि । अ° । ३ ड °त्व च कै° । ४ घ. 'द्वेऽस' ।  
५ ड. °मतत्वेनाऽऽले° । ६ ड. °ले खितः । ना° । ७ घ. °याऽदि° ।

इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः । तेन 'अहन्' ( ८।२।६८ ) इत्यादेः परमाहञ्शब्दे केवलाहञ्शब्दे च प्रवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३२ ॥

ननु 'वान्तो यि' ( ६।१।७९ ) इत्यादौ यादौ प्रत्यय इत्यर्थः कथ-  
मन्त आह—

यस्मिन्विधिस्तदादावलग्रहणे ॥ ३३ ॥

तदन्तविधेरपवाद इयम् । वाचनिक्येषा 'येन विधिः' ( १।१  
७२ ) इत्यत्र भाष्ये पठिता । अस्याश्च स्वरूपसती सप्तमी निमित्तम् ।  
अत एव 'नेङ्वाशि कृति' ( ७।२।८ ) इत्यादौ षशादेः कृत इत्य-  
र्थलामः । इयं च 'आर्धधातुकस्येद्' ( ७।२।३५ ) इति सूत्रे  
चलादेरित्यादिग्रहणसामर्थ्याद्विशेषणविशेष्ययोरुभयोः सप्तम्यन्तत्व एव  
प्रवर्तते । तेन 'ङः सि धुट्' ( ८।३।२९ ) इत्यादौ सादेः पक्वस्येति

एतेन ग्रहणवतेतिनिषेधात्तदन्तविधिर्दुर्लभ इत्यपास्तम् । किं च परमादित्यादिभ्य इवा-  
नभिधानेन केवलेऽप्रवृत्तेर्व्यर्थमेवेदमिति चेन्न । विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासतास्पर्शग्राहक-  
तया समासेत्यादिप्रतिषेधवचनवदस्याप्यावश्यकत्वात् । सूत्रवार्तिकभाष्यारूढतास्पर्शग्राहका-  
भावेऽपि तदन्तविधिकल्पनेऽतिप्रसङ्गापत्तेः । अत एवो गिद्वर्णग्रहणवर्जमित्यादेश्वारितार्थम् ।  
अनभिधानेनात्र प्रत्याख्यानं तु न चमत्कारमावहतीति दिक् । तदाह—इत्यन्यत्रेति ।  
उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ३२ ॥

एवं सप्रपञ्चं तदन्तविधिं प्रतिपाद्य तत्प्रसङ्गात्तदपवादमवतारयति—नन्विति । कथ-  
मिति । तदन्तविधेः प्रसङ्गादिति भावः । अत एवाऽऽह—तदन्तेति । पठितेति ।  
कात्यायनेनेति शेषः । अलग्नग्रहण इत्यस्यालो ग्रहण उच्चारण इति नार्थः । प्रत्याहारग्रहणे  
दोषापत्तेः । किं त्वल. प्रतिपादकशब्द इत्यर्थः । अत एवेकोऽर्चीति सूत्रे भाष्येऽपि किं  
व्यञ्जने मा भूदित्यत्र व्यञ्जनादाविति भगवता व्याख्यातम् । यद्यपि परिभाषायामत्र यस्मि-  
न्निति विना तस्मिन्नितिसूत्रस्थतस्मिन्नितिवन्निर्वाहस्तथाऽपि विशेषमाह—अस्याश्चेति ।  
स्वरूपेति । न तु स्वार्थविशिष्टेति भावः । तत्र मानमाह—अत एवेति । स्वरूपस-  
त्सप्तम्या एतन्नमित्तत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा तस्याः षष्ठ्यर्थत्वाच्च स्यादिति भावः । विशेष-  
धान्तरमाह—इयं चेति । नन्वेव तीषसहेत्यादावेतदप्रवृत्त्यापत्तिविशेष्यस्याऽऽर्धधातुक-



नार्थः । ' तीषसह ' ( ७ । २ । ४८ ) ' सेऽसिचि ' ( ७ । २ । ५१ )  
इत्यादौ यथा तादेरित्याद्यर्थलामस्तथा शब्देन्दुशेखरे निरूपितम् ॥३३॥

घटपटं घटपटावित्यादिसिद्धय आह—

सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति ॥ ३४ ॥

' द्वन्द्वश्च प्राणि ' ( २ । ४ । २ ) इत्यादिप्रकरणाविषयः सर्वो द्वन्द्व  
इत्यर्थः । ' चार्थे द्वन्द्वः ' ( २ । २ । २९ ) इति सूत्रेण समाहारेतरेतर-  
योगयोरविशेषेण द्वन्द्वविधानाङ्गायसिद्धेयम् । ' तिष्यपुनर्वस्वोः ' ( १  
२ । ६३ ) इतिसूत्रार्थं बहुवचनस्येति ग्रहणमस्या ज्ञापकम् । तद्धीर्क्  
तिष्यपुनर्वस्वित्यत्र तद्ध्यावृत्त्यर्थम् । न चैवमप्यत्र ' जातिरप्राणिनाम् '

स्यात्त्वादत् आह—तीषेति । शब्देन्दुशेखर इति । वलादेरित्यनुवृत्तविशेषणीभूत-  
वल्पदार्थस्य सौत्रत्वात्तन्कारेण विशेषणात्काररूपवलादेरिति वाच्योऽर्थः । एतत्फलितार्थः सः ।  
सप्तमी तु प्रथमार्थ एव । एव सेऽसिचोत्यादावपीति हि तत्रोक्तम् । वस्तुतस्तु तकाराव्यव-  
हितपरकेच्छत्यादे परवलाद्यार्थधातुकस्येडिति सूत्रार्थान्न काऽपि कल्पनेति बोध्यम् । इदमेव  
ध्वनयितु तत्रालमित्युक्तम् । एव हुञ्जलभ्यो हेर्धिरित्यत्र हलीत्यनुवृत्त्या हलादेर्हेरिति व्याख्या-  
नपक्षे हल्ग्रहणानुवृत्तिसामर्थ्याद्धिस्तदन्तत्वासभवात्तल्लाभ इति बोध्यम् ॥ ३३ ॥

प्रागुक्तातिदेशप्रसङ्गादेवाग्रिमोति ध्वनञ्चाह—घटेति । नन्वत्र जातिरप्रेतिनित्यैक-  
वद्भावेन नोभयमिति चेन्न । जातिप्राधान्ये तस्यैव सत्त्वेऽपि व्यक्तिप्राधान्य उभयमित्यस्य  
स्वीकारात् । अनुपदमेवैतद्व्यक्ती भविष्यति । इत्यादीति । इत्युभयादीत्यर्थः । आदिना  
बाभ्रवशालङ्कायन बाभ्रवशालङ्कायनावित्यादिपरिग्रहः । सर्वो द्वन्द्व इति । ननु सर्व-  
पदोक्त्या द्वन्द्वश्च प्राणीत्यादिप्रकरणविषयस्यापि वैकल्पिकत्वापात्तिरत आह—द्वन्द्वश्चेति ।  
अन्यथा तत्प्रकरणवैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तदविषयता च तदप्राप्त्या । सा च तन्निमित्ताभावेन  
पर्युदासेन जातिप्राधान्य एवेत्यादिना चानेकया । अत एव सर्वत्वोक्तिः । तथा च सर्वत्वं  
चार्थे द्वन्द्व इत्येतदक्षयनिष्ठ न तु लक्षणनिष्ठम् । अस्या न्यायसिद्धार्थबोधकत्वेन सर्वशब्दस्ये-  
दृशसकृच्चद्रूचिताया एव युक्तत्वाच्चेति भावः । इदमेव ध्वनयन्नत्र मूलमाह—चार्थ इति ।  
अविशेषेण, तत्प्रकरणाविषयलक्ष्यविशेषानादरेण । न्यायसिद्धेऽर्थे लिङ्गमप्याह—तिष्येति ।  
ज्ञापक, ज्ञापकमपि । क्वचित्तथैव पाठः । तदुपपादयति—तद्धीति । बहुवचनस्येतिपदं  
हीत्यर्थः । तिष्येति समाहारद्वन्द्वः । क्लीबता स्फुटयितुमिदशब्दः । तस्य चोदितमित्यर्थः ।  
तदिति । द्विवचनेत्यर्थः । अन्यथा पुनर्वस्वोर्द्वित्वात्सामान्यसूत्रेणतरेतरद्वन्द्वे सदा बहुव-  
चनस्यैव सत्त्वेनोक्तप्रयोगस्यैवाभावात्तदानर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः । सर्वशब्दः सफल्यन्तुक्त-  
मेव प्रतिपादयितुं शक्नोते—न चैवमिति । तेन चार्थे द्वन्द्व इत्यस्य वैकल्पिकत्वबोधनेऽपी-

( २।४।६। ) इति नित्यैकबद्धावेन बहुवचनमाव दिवं सूत्रं व्यर्थ-  
मिति वाच्यम् । तद्वैकल्पिकत्वस्याप्यनेन ज्ञापनात् । न चैते प्राणिन  
इति वाच्यम् । आपोमयः प्राण इति श्रुतेरद्धिर्विना ग्लायमानप्राणा-  
नामेव प्राणित्वात् । स्पष्टं चेदं ' तिष्यपुनर्वस्वाः ' ( १।२।६३ )  
इति सूत्रे भाष्ये । अत एव ' द्वन्द्वश्च प्राणि ' ( २।४।२ ) इत्यादेः  
प्राण्यङ्गादीनामेव समाहार इति विपरीतनियमो न ॥ ३४ ॥

सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते ॥ ३५ ॥

' व्यत्ययो बहुलम् ' ( ३।१।८५ ) इति सूत्रे भाष्ये बहुलमिति  
योगविभागेन ' षष्ठीयुक्तश्छन्दसि ' ( १।४।९ ) इति सूत्रे वेति  
योगविभागेन चैषा साधिता । तेन प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यतीत्यादि  
सिद्धम् । युध्यत इति प्राप्नोति ॥ ३५ ॥

त्यर्थः । अत्र, तिष्येति लक्ष्ये । एते चाप्राणिनः । अप्राणिजातिवाचिना समाहार एवेति नियमा-  
ङ्गीकारात् । एव च बहुवचनग्रहणस्य सार्थक्येऽपि सूत्रमेव व्यर्थं भवतीति भावः । अत  
एवाऽऽह—इदमिति । तिष्यपुनरित्यर्थः । तद्वैकल्पिकेति । जातिरप्राणिनामिति वैकै-  
त्यर्थः । अत्र लक्ष्य इति शेषः । यावता विनाऽनुपपत्तिस्तावन्मात्रस्य ज्ञाप्यत्वात् । तेन  
जातीत्यस्य न वैयर्थ्यम् । यद्वा जानिप्राधान्य एव स नियमो व्यक्तिप्राधान्ये तूमयमित्येवं-  
फलितवैकैत्यर्थः । एव च न त्रयाणां मध्ये कस्यापि वैयर्थ्यम् । अपिना चार्थ इत्यस्य तेन  
तत्त्वस्य सग्रहः । अनेन, तिष्येति सूत्रेण । चैते, तिष्यादयः । तथा च तयोः सार्थक्येऽपि  
तदविषयत्वात् तद्वैकल्पिकत्वज्ञापनमिति भावः । आपोमय इति । अत्राप्यशब्दसमा-  
नार्थादांप्रकृतिकासुन्नतादाप शब्दान्मयट् । आपोमयमिदं सर्वमापोमूर्तिः शरीरिणामितिवत् ।  
छन्दस वेति भावः । ग्लायमानेति । बहुव्रीहि । स्पष्टमिति । प्रागुक्तं परिभाषादि-  
सर्वमित्यर्थः । तत्कृत्यावसर इति भावः । नन्वेतेषां प्राणित्वपक्षे तद्वैकल्पिकत्वज्ञापनेऽपि  
द्वन्द्वश्चेत्यादीनां समाहारः प्राण्यङ्गादीनामेवेति नियमार्थत्वेनेदं तिष्यपुनर्वस्विति प्रयोगाभावा-  
द्बहुवचनस्येति व्यर्थमेवात आह—अत एवेति । बहुवचनग्रहणादेवेत्यर्थः । अन्यथोक्त-  
रीत्या तदानर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः ॥ ३४ ॥

विभाषाप्रसङ्गादेवाऽऽह—सर्वं इति । न केवलं समाहारद्वन्द्व एवेति भावः । विकै-  
ल्प्यन्त इति पाठः । अत्र मानमाह—व्यत्येति । एकसूत्रेण विकरणव्यत्ययविधानादाह—  
योगेति । ततोऽपि लाघवादाह—षष्ठीति । एव च व्यत्ययो बहुलमित्यपि न वक्तव्य-  
मिति भावः ॥ ३५ ॥

१ ग. °न बहुवचनस्थैत्यनेन । चै° । २ छ. °दापवप्र° । ३ घ. °क.बाज्ञा° । ४ घ. छ.  
°कल्पन्त ।

ननु 'क्षियः' (६।४।५९) (८।२।४६) इत्यादाविय-  
ङ्गुथमत आह—

प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ ३६ ॥

क्षिय इतीयङ्गनिर्देशोऽस्या ज्ञापकः । तत्रैव प्रातिपदिकत्वनिबन्धन-  
विभक्तिकरणादनित्या चेयमिति 'क्षियो दीर्घात्' (८।२।४६)  
इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

ननु रामावित्यादौ वृद्धौ कृतायां कार्यकालपक्षेऽपि कथं पदत्वं  
यस्माद्विहितस्तदादितदन्तत्वाभावाद्बुभयत आश्रयणेऽन्तादिवत्त्वाभावा-  
दत आह—

एकदेशविकृतमनन्यवत् ॥ ३७ ॥

अनन्यवदित्यस्यान्यवन्नेत्यर्थः । तत्रान्यसादृश्यनिषेधेऽन्यत्वाभावः  
सुतराम् । अत एव तादृशादर्थबोधः । अन्यथा शक्तावच्छेदकानुपूर्व्य-

प्रागुक्तातिदेशप्रसङ्गादेव तथेति सूचयन्नाह—ननु क्षिय इति । सौत्रप्रयोग इति  
भावः । कथमिति । अनुकरणतया शब्दपरत्वेनाधातुत्वादिति भावः । निर्देश इति ।  
स सौत्रनिर्देश एवेत्यर्थः । नन्वेवं तत्र विभक्तिरेवाऽऽदौ न स्यादिति तदनुपपत्तिरेवात्  
आह—तत्रैवेति । क्षिय इति सौत्रप्रयोग एवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अतिदेशप्रसङ्गादेव तथेत्याह—नन्विति । अफल्त्वात्पूर्वं न पदत्वमित्याह—  
वृद्धाविति । स्वादिष्णितिपदादिसज्ञासु यथोद्देशस्यैव सत्त्वेऽपि सुसिद्धन्तमिति पदत्वे  
कार्यकालत्वस्यैकाचो द्वे अन्तादिवच्चेति सूत्रभाष्यादौ स्पष्टत्वादाह—कार्यकालपक्षेऽपीति ।  
अपिना यथोद्देशसमुच्चयः । निरपिपाठे त्मूलक्षणमिदं तस्यापि । तदनुक्तिर्वाज तु कैयटरीत्या  
तत्पक्षस्याप्रयोजकत्वम् । फल तु रामौ पश्येत्यादौ निघातादीति बोध्यम् । ननु तथाऽपि  
सुबन्तत्वेन तत्त्वमत आह—यस्मादिति । अतिप्रसङ्गनिरासाय तदादिनियमाश्रयवृत्तेरिति  
भावः । नन्वन्तादिवद्भावेनोभयं सुवचमत आह—उभयत इति । प्रकारान्तरमप्यन्यत्र  
स्पष्टम् । विकृतमिति । भावे क्तः । बहुव्रीहिः । सामान्ये नपुंसकम् । आहिताग्न्यादिः ।  
कर्मकान्तेन तृतीयासमासः पूर्वनिपातभियां कैयटादिनोक्तः । नन्वनन्यवदित्यस्यान्यभि-  
न्नवदित्यर्थेऽसंभवे वैयर्थ्यं चास्या अत आह—अनन्येति । नन्वेवमन्यसादृश्यनिषेधेऽ-  
प्यन्यत्त्वसत्त्वादन्यद्वेषस्तदवस्थ एवात आह—तत्रेति । एकदेशविकृत इत्यर्थः ।  
अन्यत्त्वाभावः, अन्यत्वनिषेधः । केचित्तु वृत्तिविषयेऽत्रान्यशब्दस्य धर्मपरत्वेन सत्तुपा-

१ घ. कालेति । फ° । २ क. क. म् । अत्र हेतुः—य° । ३ क. क. °ति । अनुवृत्तेरिदं  
रज्जुमिति भा° । ४ घ. °ति । कर्मणि क्तः । ५ घ. °दिः । दू° ।

ज्ञानात्ततो बोधो न स्यात् । एवं च राम इति मान्तस्य यस्माद्विहित-  
स्त्रत्त्वम् औ इत्यस्य परादिवत्त्वेन सुप्त्वामिति तदादितदन्तत्वमार्थसमाज-  
ग्रस्तम् । छिन्नपुच्छे शुनि श्वत्वव्यवहारवन्मान्ते तत्त्वं लोकन्यायसि-  
द्धम् । अत एव ' प्राग्दीव्यतः ' ( ४ । १ । ८३ ) इति सूत्रे भाष्ये  
दीव्यतिशब्दैकदेशदीव्यच्छब्दानुकरणमिदमित्युक्त्वा किमर्थं विकृतनि-  
र्देश एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषैकदेशविकृतमनन्यवदि-  
त्युक्तम् । एतेनायं न्यायः शास्त्रीयकार्य एव शास्त्रीयविकार एवेत्यपा-  
स्तम् । विकृतावयवनिबन्धनकार्यं तु नायम् । छिन्नपुच्छे शुनि पुच्छवत्त्व-  
व्यवहारवद्विकृतावयवव्यवहारस्य दुरुपपादत्वात् । एवमक्तपरिमाणग्र-

चान्यत्वस्यैव निषेधोऽनयेत्याहुः । अत एव, फलितान्यत्वाभावादेव । तादृशात्, विकृतात् ।  
अन्यथा, अन्यत्वे । बोधो नेति । इदं च मञ्जूषाया स्पष्टम् । एव च, सुतरामन्यत्वा-  
भावे च । नन्वेवमपि तदन्तत्वं कथमत आह—तदन्तेति । अत्र मूलमाह—छिन्नेति ।  
तत्त्वं, यस्माद्विहितस्त्रत्त्व व्यवहाररूपम् । लोकन्यायसिद्धमिति । भूयोवयवदर्शनं  
जातिव्यञ्जकमिति मूलकोक्तरूपलोकन्यायेत्यर्थः । एतादृशाश्रयण प्रमाणयति—अत एवेति ।  
लोकन्यायसिद्धैतदङ्गीकारादेवेत्यर्थः । विकृतेति । इकाराभावरूपविकारविशिष्टनिर्देश  
इत्यर्थः । एतदेवेति । लोकन्यायसिद्धार्थाश्रयणमेवेत्यर्थः । ज्ञापयति, बोधयति ।  
परिभाषात्वेनात्राऽऽश्रयण सूचितम् । एतेनायं न्यायोऽपि स्थानषष्ठीनिर्दिष्ट एवेत्यपास्तम् ।  
भवत्येषेति । एव चैकदेशविकृतोऽपर्यथबोधकः । अन्यथा न्यायेन शब्दस्वरूपाभेदप्रति-  
पादनेऽप्युक्तरित्युऽर्थाबोधकत्वेनार्थस्यावधित्वं न स्यादिति तात्पर्यम् । एतेनेति ।  
लोकन्यायसिद्धस्य प्राग्दीव्यत इत्यनेन ज्ञापितत्वेनेत्यर्थः । तत्रोभयारेभावादिति भावः ।  
नन्वेवं विकृतावयवप्रयुक्तमपि कार्यं स्यादत आह—विकृतेति । व्यवहारवदिति पाठः ।  
दुरुपपेति । जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनस्यैतदव्यञ्जकत्वादिति भावः । व्यवहाराभाव-  
दिति पाठे तूक्तहेतोर्यथा तत्र तद्व्यवहाराभावस्तथाऽत्र तद्व्यवहारो दुरुपपाद इत्यर्थः । एवम्,  
तत्रेव । अक्तेति । अत्र परिमाणमानुपूर्वीविशेषोऽपि [ \* तथा च परिच्छिन्नानुपूर्वी-  
विशेषकसङ्गिभूतशब्दग्रहणेऽपीत्यर्थः । भाष्ये ] परिमाणेत्युपलक्षणं च परिच्छेदकमात्रस्य ।  
तथा च परिच्छिन्नपरिच्छेदकार्यग्रहण इत्यर्थः । अत एव द्रोणादिवत्सख्याया अपि

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ क. 'तत्त्वं तत्त्व । २ घ. 'र्थः । अस्या अत्र ऽऽभ' । ३ घ. 'कारलागेनाभावरूपाविशि' ।  
४ घ. 'र्षगामीति तच्चार्थः ।

हणेऽपि नायम्, उक्तयुक्तेः । एतत् 'येन विधिः' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्यकैयटयोर्ध्वनितम् ।

यत्र त्वर्थं तदधिकं वा विकृतं तत्र जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनाभावेन तत्त्वाप्रतीतौ कार्यसिद्धयर्थं विकृतानलरूपावयवत्वप्रतीत्यर्थं च स्थानिवत्सूत्रम् । क्वचित्तु लक्ष्यानुरोधान्न्यायानाश्रयणम् । तेनाग्नीयादित्यादिसिद्धिः । स्पष्टं च क्वचिन्न्यायाप्रवृत्तिः 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'

शाष्ये दृष्टान्तत्वेनोल्लेखः । उक्तेति । उक्तरीतेरित्यर्थः । जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनस्य सर्वकादौ सत्त्वेऽपि सर्वाद्यानुपूर्वीविशेषोपादानेन क्रियमाणसर्वनामसज्ञायास्तत्र तत्त्वंतदन्त-स्वयोरभावेन दुरुपादत्वादिति यावत् । अत्र मानमाह—एतदिति । अव्यवहितोक्तमित्यर्थः । भाष्येति । इदमुपलक्षणं यस्मात्प्रत्ययविधिरित्यत्रत्यभाष्यादेरपि । तत्र हि पञ्चदशोणादिदृष्टान्तोक्तस्थले तदभावमाशङ्क्य तदेकदेशभूत तद्ग्रहणेन गृह्यत इति परिभाषयाऽऽहोरिति ज्ञापितया समाहितम् । ( \* तत्र भूतशब्द उपमार्थः । एकदेशसादृश्यं च मध्यपातित्वेन । तद्वक्ष्यति तन्मध्येति । यदागमा इति त्वमध्यपातिविषय इति भेदः । यद्यत्परिमाणग्रहणेऽप्येकदेशविकृतन्यायप्रवृत्तिस्तर्हि तत्र मूलयुक्तिसाम्येन विनिगमनाविरहेण च न्यूनसमाधिकरूपत्रिविधविकारस्यापि ग्रहणेन शास्त्रे लोपस्याविकारत्वेऽपि प्राग्दीव्यत इति भाष्यप्रामाण्यादभावस्य विकारत्वेन ग्रहणवदाधिकस्यापि तत्त्वेन ग्रहणादधिक ) गड्वादिसत्त्वेऽपि शूनः श्वत्ववर्द्धकजधिकस्य सर्वकस्य सर्वशब्दत्वमक्षतमेवेति भाष्यासंगतिरेवातस्तथाऽर्थ इति तदाकृतमिति भावः ।

नन्वेवमन्यत्र सर्वत्र न्यायप्रवृत्तौ तेनैव सिद्धे स्थानिवत्सूत्रं व्यर्थमत आह—यत्र त्विति । अर्थम्, एरुरित्यादिना । तदधिक, ज्वरत्वेरत्यादिना स्त्रिन्यादौ । तत्रेति । उभयत्रेत्यर्थः । अस्य सिद्धयर्थमित्यादावन्वयः । फलान्तरमाह—विकृतेति । इदमुभयमनेनासिद्धामिति ह्युक्तमिति भावः । नन्वेवमप्यनयाऽभीयादित्यादौ भान्त उपसर्गत्वेन परादित्वेनेष्वेन ह्रस्वापत्तिदोषोऽत आह—क्वचिच्चिति । [ + अक्तपरिमाणस्थलेऽधिकविषय एवैतदप्रवृत्तिर्न न्यूनविषय इत्यभिमानः ] । न्यायेति । एतन्न्यायेत्यर्थः । उक्तद्रढयितु सामान्यरूपेण दृष्टान्तमाह—स्पष्टं चेति । न्यायेति । न्यायत्वावच्छिन्नन्यायेत्यर्थः । तत्र हि जसृशसोः पररूपबाधाय प्रथमयोरिति योगविभागेऽप्यतिप्रसङ्गपरिहारत्याऽऽश्रितमध्येपवादन्यायव्याख्यावसरे न्यायश्चाय न तु वचन यद्वक्ष्यति यद्येतदस्तीति न

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ ।

१ घ. °त्वव्यवहारयोर्दुरुपादत्वेन दुर्बलत्वादिति या° । २ क. ङ. °म् । यदि तत्रैतदप्रवृत्तिस्तर्ह्यधिकगड्वा° । ३ घ. °दकेऽधिकस्योपजनेऽपि स° । ४ घ. °रूपावा° ।

( ६ । १ । १०२ ) इत्यत्र कैयटेन दर्शितेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३७ ॥

हि वचनस्यासत्तासभावना न्यायस्तु क्वचित्कश्चिदाश्रीयते इति युज्यते वक्तुमिति तेनोक्तम् । वस्तुतोऽपीयादित्यादेरनभिधानमेव । अभिधानेऽपि यथा तत्र तदप्राप्तिस्तथाऽन्यत्र स्पष्टम् । एव च क्वचिदिति न सिद्धान्तोक्तिः किं तु कैयटानुरोधेन । अत एव तद्दृष्टान्तकथनं सफलम् । ( \* एवमक्तेत्यादिनोक्त चाधिकवत्तुल्यन्यायान्न्यूनविषयेऽप्येतदप्रवृत्तिलाभात् ) । श्रायसशब्दादणन्ताद्विवचने श्रायसावित्यत्र वृद्धौ सान्तस्योगित्वेनानेन न्यायेनाङ्गतया परस्य परादित्वेन सर्वनामस्थानतया च प्राप्तस्य नुम पूर्वसन्नित्वेनाच परेतिस्थानिवत्त्वेन तत्रैव + भाष्ये वारणाद्भाष्यसमताऽपीयम् । एतदभावे त्वङ्गत्वमेव दुर्लभमित्यादि शब्देन्दुशेखरे स्पष्टमिति बोध्यम् । तदाह—अन्यत्रेति ॥ ३७ ॥

\* धनश्चिह्नान्तर्गतोप्रन्थो घ पुस्तकस्थ । + भाष्ये ट्यस्यत्रे परिभाषासमाप्तिपर्यन्तमय प्रन्थो घ पुस्तके—वारण कृतमियय न्याय आश्रयक । एतदभावऽङ्गत्वमेव तत्र दुर्लभमिति तदसगते । गुडोदकनिर्जरसावित्याद्यर्थं चाऽऽवश्यक इत्याहु । वस्तुतस्त्वस्थ न्यायस्य लक्ष्यसिद्धयर्थमावश्यकत्वेऽप्युक्तभाष्यप्रामाण्यादक्तपरिमाणग्रहणे नैव प्रवृत्ति तद्विषये मध्यवातत्व इष्टसिद्धयर्थं तन्मध्यपतित इति ज्ञापकनिर्द्धपरिभाषास्वीकार । अमध्यवर्तित्वे तत्सिद्धयर्थं लोकज्ञापकसिद्धाया यदागमा इतिपरिभाषाया स्वीकार । द्रोणादाना न्यूनविक्रयोरप्रवृत्तिमुक्त्वा प्रकृते दार्ष्टान्तिक उभयसूत्रेऽधिके कथमित्येवाऽऽशङ्क्य शब्दान्तरेणाऽऽद्योक्ता । न तु न्यूने कथमिति शङ्काऽपि । द्वितीया तु तादृशविषयैव न न्यूनविषयेति स्पष्टमेव दाधा ध्विति सूत्रभाष्ये । सर्वाद्युपादानवद्वावेत्युपादानात् । घुसज्ञाया अक्तपरिमाणनिष्ठत्वात् । एवं चास्य न्यायस्योभयविधाविक्रमिन्नयावद्विषयत्वं समं न्यूनसाधारण तत् सिद्धम् । किञ्चिकस्य विकारत्वमपि न शाल्मसिद्धलोपवत् । एव च तत्रैतदविषयता युक्तैव । तथा समन्यूनविकारशास्त्रीयभावरूप एव । तथाऽपीह विकारो द्विविधः । लौकिकः शास्त्रीयश्च । प्राग्दीव्यत इति सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यात् । शास्त्रीयोऽपि द्विविधः । लोपादिकृतोऽभावरूप भादेशरूपश्च । द्वितीयोऽपि द्विविधः । एकस्थानिक पूर्वापरस्थानिकश्च । अयं द्विविधोऽपि विद्यमानैकदेशापगमाविद्यमानैकदेशोपगमरूपत्वेनावान्तरभावाभावरूपतया प्रत्येक द्विविधः । तत्र भावरूपसर्वान्त्यभिन्नसर्वविधविकारेऽप्यस्य प्रवृत्तिर्नान्त्यविकारे । तत्र यदनन्यत्व यत्राऽऽनेय तदेकदेशमात्रविकारात् । जातिन्यङ्गकभूयोवयवदर्शनमित्मूलकच्छिन्नपुच्छदृष्टान्तेन तत्रैतत्प्रवृत्तिलाभात् । अन्तादिवचेति सूत्रस्थभाष्याच्च । तत्र हि गुडोदकमित्यादावुकारादिरूपतदेकदेशमत्र विकारमादायैतत्प्रवृत्त्योदकत्वमभिप्रेत्योकारान्ते पूर्वपदत्वमन्तवत्त्वेनेत्युक्तम् । तथा सौमन्द्रेऽन्तरङ्गत्वाद्गणेऽव्यपवर्गेण नेन्द्रस्येति व्यर्थं सत्पूर्वोत्तरपदेतिपरिभाषाज्ञापकमित्युक्तम् । अन्यथा मान्तेऽभावमादायानेन पूर्वपदत्ववदेव द्वन्द्वेऽभावमादायोत्तरपदत्वन् तत्सार्थक्ये भाष्यासगति स्पष्टैव । तथाऽनेनैवोकारान्त पूर्वपदत्वस्यापि सिद्ध्या तद्भाष्यासगतिः स्पष्टैव । तदेकदेशमात्रविकारबन्ध च तदेकदेशाविकारत्वे सति तदेकदेशविकारत्वम् । मात्रसमभिव्याहारे तथैव व्युत्पत्ते । तथा चानेन त भावरूप गृहीत्वा निर्जरसावित्यादिसिद्धिः । अभावरूप त गृहीत्वा गुडोदकमित्यादिभिद्धिः । समावित्यादौ मान्ते तत्त्वमप्यभावमादायैवानेन कार्यकाले सिद्धम् । पदसज्ञाया निशिष्टरूपोपादानेनाभिधानेनाक्तपरिमाणनिष्ठत्वात् ।

पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥ ३८ ॥  
 पूर्वात्परं बलवत् । विप्रतिषेधशास्त्रात्पूर्वस्य परं बाधकमिति यावत् ॥ ३८ ॥  
 नन्वेवं भिन्धकीत्यत्र परत्वाद्धिना बाधितोऽकज्ज स्यादत आह—  
 पुनःप्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम् ॥ ३९ ॥

निषेधप्रसङ्गादाह—पूर्वपरेति । इत आरभ्योपसजनिष्ठेतिपर्यन्तमस्यैव क्रमेण प्रपञ्च-  
 स्तदाह—पूर्वादिति । परिभाषाया हेत्वनुकेराह—विप्रेति । एवमग्रेऽपि । ननु बलव-  
 त्त्वमात्रोक्त्या नेष्टसिद्धिरत आह—पूर्वस्येति ॥ ३८ ॥

एवं परस्य पूर्वबाधकत्वाङ्गीकारे । भिन्धकीत्यत्र परत्वाद्धिना बाधितोऽकज्ज स्यादिति  
 पाठ । भिन्धीत्यत्र परत्वात्तातडा बाधितो धिर्न स्यादिति त्वपपाठः । अचश्चेति सूत्रस्थभा-  
 ष्यकैयटादिविरोधान् । तत्र ह्यचसमुदायनिवृत्त्यर्थमूकाल इत्यत्राज्ग्रहणं तैत तितउच्छन्न-  
 मित्यादौ दीर्घात्पदान्ताद्धेति वा तुङ्नेति भाष्ये । परत्वादीर्घलक्षणे वैकल्पिके तुकि सकृद्रतावि-  
 तिन्यायाद्भ्रस्वलक्षणः पुनर्न प्रवर्तते । यतौ नेदशे विषये पुनं प्रसङ्गन्यायः । नित्यविकल्पयो-  
 र्विरोधात् । पश्चाज्जातेन पूर्वेण पूर्वजातस्य परस्य प्रवृत्त्यफलत्वलक्षणबाधप्रसङ्गात् । तस्मा-  
 द्विकल्पविधिप्रवृत्तैर्वैयर्थ्यापत्त्या नित्यस्य बाध एव । क तर्हि पुनःप्रसङ्गविज्ञानमिति  
 चेत् । शृणु । यत्र पूर्वं विधिः पर न बाधते तत्र क्वचित्तदाश्रीयते । यथा भिन्धकीत्यादौ पर-  
 त्वाद्धौ कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानादकच् । न हि तत्र ध्यकचप्रवृत्त्योर्विरोधः । एवमीजतुरि-  
 त्यादावपि बोध्यम् । तदुक्तं लुट् प्रथमस्येति सूत्रे भाष्ये ।

‘ हारौरसः कृते टेरे यथा द्वित्व प्रसारणे ।

समसस्थेन नार्थोऽस्ति सिद्धा स्थानेऽर्थतान्तरा ’

इतीति कैयटेनोक्तमितीति केचित् । वस्तुतस्त्वयुक्तः स कैयट ई च द्विवचन इतिसूत्र-  
 धमाष्यकैयटवृत्तिहृदत्तादिग्रन्थविरोधात् । तत्र ह्यक्षी ते इन्द्र पिङ्गले इत्यादावाक्षि औ

इममेव प्रकारमभिप्रेत्य वृक्ष इत्यदौ परादिबत्त्वेन सुप्वातदन्तत्वेन पदत्वमुक्तम् । अन्यथा तदस-  
 ग्गतेरपि स्पष्टैव । यथोद्देशे तु मनोरमायुक्तप्रकारेणैव पदत्वम् । एवरीत्या श्रायसावित्यादैः सान्ता-  
 शब्देनाङ्गत्व सम्भावितम् । तथाऽपि यस्मात्प्रत्ययविधिसनदादातिविशिष्टरूपपरिग्रहेण क्रियमाणाङ्ग-  
 ज्ञाया अक्तपरिमाणनिष्ठत्वस्य यस्मात्प्रत्ययविधिरितिसूत्रे कण्ठतो भगवतोऽकत्वेन तत्रैतदप्रवृत्त्याऽ-  
 ङ्गत्वं तत्र दुर्लभमेवेति तद्भाष्यमेकदेश्युक्तिरेव । एवमुपसर्गादिसंज्ञाया अपि सर्वनामादिसंज्ञावदक्त-  
 परिमाणनिष्ठतयाऽनेन न्यूनोऽभावेनाभीत्यादित्यादौ न दोष इति क्वचिदित्यादि कैयटानुरोधेन । एवं  
 चाभीत्यादिस्यथाभिधानमेव । उभयत इति तत्सिद्धेश्चेति बोध्यम् । तदाह—अन्यत्रेति भाष्या-  
 दावित्यर्थः ॥ ३५ ॥

नन्वेवं तिसृणामित्त्वत्र परत्वात्तिस्रादेशे पुनश्चाद्यादेशः स्यादत आह—

सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्वाधितं तद्वाधितमेव ॥ ४० ॥

तत्र क्वचिच्चरितार्थयोरेकस्मिन्युगपदुभयोः कार्ययोरसंभवेन बाधः

इति स्थिते नुमः परत्वादीकारे सकृद्गतिन्यायात्पुनस्तदभावे शीभावे पूर्वसवर्णे रूपसिद्धिरित्युक्तम् । भवद्रीत्या तु तत्र पुनःप्रसङ्गविज्ञानस्य विषयो नापरस्य । किं च साक्षात्प्र-  
मृतीनीतिमूत्रस्थभाष्यकैयटविरोधः । तत्र हि ' च्यन्तस्य प्रतिषेधो वाच्यः ' लवणीकृत्य ।  
अन्यथाऽत्र परत्वाद्विकल्पः स्यात् । नित्या गतिसङ्गेष्यते । न वा पूर्वेण कृतत्वाद्स्त्वनेन  
विभाषा पूर्वेण नित्या भविष्यति परत्वाद्विकल्पेऽपि तदभावे पुनःप्रसङ्गविज्ञानान्नित्यविधि-  
प्राप्त्या न दोष इत्युक्तम् । भवद्रीत्या तु तत्र सकृद्गतिन्यायस्य विषयो नापरस्य । स्पष्टं  
चेदं भावप्रकाशे । तस्मादेतदन्वतरन्यायाश्रयणे लक्ष्यानुरोध एव बीजमिति तत्त्वम् ।  
इदमेव ध्वनयितुमग्रे वक्ष्यति तत्र लक्ष्यानुसारादित्यादि । तत्रत्योद्घोतस्तु कैयटानुरोधेन ।  
तद्भाष्य त्वेवमपि सुयोजम् । एव च प्रचुर. स पाठोऽपि युक्त एव । योजना त्वित्यम्—  
भिन्धीत्यत्र धिर्न स्यात् । तत्र हेतुगर्भविशेषणमाह—परत्वात्तातडा बाधित इति । यतः  
पक्षान्तरे भिन्तादित्यादावित्यादि । लक्ष्ययो सांज्ञात्येनैक्यात् । विकल्पशास्त्रस्य लक्ष्यद्वये  
तात्पर्येणोभयलक्ष्यकत्वाच्च । अत एव पुनःप्रसङ्गेतिन्यायसचारेण सिद्धान्तोक्तिसंभारिपि ।  
न चैव भिन्तादित्यत्रापि तदापत्तिः स्थानिवत्त्वादिति वाच्यम् । प्रतिलक्ष्यं लक्षणभेदेन  
तद्विषयतातंङ्शास्त्रस्याऽऽनर्थक्यापत्तेः । एतेन भवताच्चिनुतादित्यादौ चरितार्थमित्यपास्तम् ।  
तत्राप्यतो हेरुतश्चेति लुक्ः प्राप्तत्वाच्च । किं च परिभाषाणामिष्टसिद्धिमात्रफलकत्वम् ।  
अत एव कुरुतादित्यत्र पुनर्लुगभावः सकृद्गतिन्यायेन साधितो विप्रतिषेधसूत्रे कैयटेन ।  
अन्यथाऽन्तरङ्गानपीतिन्यायेन परादपि लुको बलवत्त्वेन तदसगतिः स्पष्टैव । एव चैतन्न्या-  
याश्रयणे लक्ष्यसिद्धेरेव मूलत्वेनात्रैवाशभेदेनोभयोरश्रयणमपि सुवचमितीति बोध्यम् ॥३९॥

एवं, सर्वत्र पुनःप्रसङ्गविज्ञानाङ्गीकारे । पुनरिति । स्थानिवद्भावेनेति भावः ।  
सकृदिति । गतौ शास्त्रयोः प्राप्तौ सत्यां यो विप्रतिषेधस्तस्मिन्सति सकृदेकवारं  
यद्वाधितं तद्वाधितमेवेत्यर्थः । यद्वा गत्यभिन्ने विप्रतिषेधे । अन्यत्र लब्धाषकाशयोरेकस्मिन्यु-  
गपदसमावितप्राप्तेरेव विप्रतिषेधपदार्थत्वेनोक्तत्वात् । अन्यत्प्राग्वत् । पूर्वपरिभाषार्थस्तु स्पष्ट इति  
नोक्तः । तथा च लक्ष्यानुरोध एवान्यतरन्यायाश्रयणे बीजमिति नोक्तदोष इति भावः ।  
अनयोरन्त्यमूलं प्रत्यासत्त्याऽऽह—तत्रेति । तयोर्मध्य इत्यर्थः । क्वचित्, अन्यतरावि-  
षये । एकस्मिन्, लक्ष्ये । असंभवप्रसङ्गयोरविरोधाय कार्यशास्त्रयोर्निवेशः । असंभवे-



कामावात्पर्यायेण तृजादिवच्छास्त्रद्वयप्रसङ्गे नियमार्थं विप्रतिषेधसूत्र-  
मिति सकृद्भूतिन्यायसिद्धिः । यथा तुल्यबलयोरेकः प्रेष्यो भवति स  
तयोः पर्यायेण कार्यं करोति । यदा तमुभौ युगपत्प्रेषयतो नानादिक्षु  
च कार्ये तदोभयोर्न कराति यौगपद्यासंभवात्तथा शास्त्रयोर्लक्ष्यार्थयोः  
क्वचिल्लक्ष्ये यौगपद्येन प्रवृत्त्यसंभवादप्रतिपत्तौ प्राप्तायामिदं परविध्यर्थं,  
तत्र कृते यदि पूर्वप्राप्तिस्तदपि भवत्येवेति पुनःप्रसङ्गविज्ञानसिद्धिरिति  
विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ।

यत्तु कैयटादयो व्यक्तौ पदार्थं प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपपुवाद्बुभयोरपि  
शास्त्रयोस्तत्तल्लक्ष्यविषययोरचारितार्थ्येन पर्यायेण द्वयोरपि प्राप्तौ परमे-  
वेति नियमार्थमिदमिति सकृद्भूतिन्यायसिद्धिः । अत्र पक्ष एतन्नियमव-  
शादेतल्लक्ष्यविषयकपूर्वशास्त्रानुपप्लव एव । जातिपक्षे तूद्देश्यतावच्छेद-  
काक्रान्ते क्वचिल्लक्ष्ये चरितार्थयोर्द्वयोः शास्त्रयोः सत्प्रतिपक्षन्यायेन

नेति । विरोधादिति भाव । बाधकाभावादित्यनेनोत्सर्गापवादवैधर्म्यं दर्शितम् । स च दृष्टान्त-  
दार्ष्टान्तिकयोः पर्यायप्रसङ्गे हेतु । वचनद्वयप्रामाण्यादिति तदाशयः । ननु शास्त्रप्रसङ्गोऽपि  
कार्यार्थ एवेति कार्ययोर्युगपदसभवे कथं शास्त्रयोः प्रसङ्गोऽत आह—तृजादीति ।  
एव च युगपदसभवः पर्यायेणोभयप्रसङ्ग इति तात्पर्यम् । तथा च पक्षे प्राप्त्यां  
तन्त्रान्तरप्रसिद्धनियमविधिरेवायमित्यप्राप्ताशपरिपूरकत्वमेवास्येतरनिवृत्तिस्त्वार्थो तद्द्योतक  
एवकार इति बोध्यम् । आद्यमूलमाह—यथेति । अस्य न करोतीत्यत्रान्वयः ।  
ननु तदाज्ञोल्लङ्घनेन तावचरितार्थावत आह—तुल्येत्यादि करोतीत्यन्तेन ।  
तथा च तुल्यबलत्वादेव पर्यायेणैव प्रेरणया प्रेष्यस्य मिथोऽविरुद्धकार्यकरणेन स्वामिनौ  
चरितार्थौ यथा तद्वदिति भाव । एकत्र तत्सभवादाह—नानेति । उक्त आशयः ।  
तत्रापि प्रदेशे सभवादाह—दिक्ष्विति । कार्ये, स्त इति शेषः । यौगेति । तयोर्यौग-  
पद्येनासभवादित्यर्थः । लक्ष्यार्थेति । अन्यत्र लक्ष्ये चरितार्थयोरित्यर्थः । इदं, विप्रति-  
षेधसूत्रम् । तत्र, परस्मिन् ।

कैयटादय इति । आदिना सीरदेवहरदत्तकौस्तुभकृदादयः । अभिधेयवाच्यर्थशब्दस्या-  
जहल्लिङ्गत्वादाह—पदार्थ इति । प्रतिर्वीप्सायाम् । उपप्लवस्तेषामाविर्भावः । अपिर्विष-  
ययोरित्यग्रे योज्यः । द्वितीयोऽपि प्राप्तावित्यग्रे । मिथः समुच्चायकत्वेन यथाश्रुतावेव वा ।  
इदं, विप्रतिषूत्रम् । एवमग्रेऽपि । नन्वेव तद्विषयकपूर्वलक्षणस्याप्रमाणत्व स्यादत आह—  
अत्रेति । नियमपक्ष इत्यर्थः । एतदिति । विप्रतिषेधसूत्रेत्यर्थः । क्वचित्, तत्तद-  
विषये । सदिति । साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः । तत्र यथा मिथः  
प्रतिबन्धादनुमितिद्वय नैवमत्रापीति भावः । अप्यप्राप्तौ, अप्राप्तावपि । यथाश्रुत वा । शास्त्रं

युगपदुभयासंभवरूपविरोधस्थल उभयोरप्यप्राप्तौ परविध्यर्थमिदमिति पुनःप्रसङ्गविज्ञानसिद्धिरित्याहुस्तत्र । व्यक्तिपक्षे सर्वं लक्ष्यं शास्त्रं व्याप्नोति न जातिपक्ष इत्यत्र मानाभावात् । न ब्राह्मणं हन्यादित्यादौ जात्याश्रयसकलव्यक्तिविषयत्वार्थमेव जातिपक्षाश्रयणस्य भाष्ये दर्शनात् । अत एव सरूपसूत्रे भाष्ये जातौ पदार्थेऽनवयवेन साकल्येन विधेः प्रवृत्तेर्गौरनुबन्ध्य इत्यादौ सकलगवानुबन्धनासंभवात्कर्मणो वैगुण्यमुक्तम् । द्रव्यवादे चासर्वद्रव्यावगतेर्गौरनुबन्ध्य इत्यादावेकः शास्त्रोक्तोऽपरोऽशास्त्रोक्त इत्युक्तम् । किं च न हि भाष्योक्ततुजादिदृष्टान्तस्य व्यक्तिपक्ष एव सर्वविषयत्वं न जातिपक्ष इत्यत्र मात्रमस्ति । अपि च व्यक्तिपक्षेऽप्यन्यव्यक्तिरूपविषयलाभेन चरितार्थयोरियं व्यक्ति-विरोधात्स्वविषयकत्वं न कल्पयतीति वक्तुं शक्यम् । जातिपक्षेऽपि

कर्तृ । सर्वं लक्ष्यं कर्म । ननु व्याख्यानमेव तत्र मानमते आह—न ब्राह्मेति । व्यक्तीति । व्यक्तिविषयकत्वार्थमित्यर्थः । सर्वब्राह्मणहनननिषेधायेति यावत् । भाष्ये, एकशेषसूत्रस्ये । तत्रैवं हेत्वन्तरं सूचयन्नाह—अत एवेति । जातिपक्षस्य व्यापकत्वा-देवेत्यर्थः । अनवयवेनेत्यस्य व्याख्या—साकेति । जात्याश्रया व्यक्तिविशेषा अवयवा इत्युच्यन्ते । तथा च व्यक्तिविशेषानालम्बनेनेति तदर्थो बोध्यः । एवं च साकल्यं फलितम् । सकलेति । देशकालादिभेदेनाऽऽनन्त्यादिति भावः । गवानुबन्धनेति पाठः । गोः पुंस्त्वात् । वैगुण्यमिति । तथा च फलानवाप्तिरिति भावः । प्रत्युत वैपरीत्ये मानमस्तीत्याह—द्रव्येति । चस्त्वर्थः । एकः शास्त्रोक्त इति । एकः शब्दः प्रत्य-र्थनिवेशित्वादेकं द्रव्यं गोरूपं बोधयेत्तस्य केनचिदनुबन्धे कृते शास्त्रार्थसपत्न्या परैस्तेन वाऽन्यदा गवान्तरानुबन्धोऽशास्त्रार्थः स्यादित्यर्थः । त्वन्मते त्वेतदमंगतिः स्पष्टैव । पक्षद्वय-साधारण्येन प्रतीयमानं विप्रतिषेधसूत्रभाष्यमपि विरुद्धमित्याह—किं चेति । अयं भावः—उक्तभाष्यं पक्षद्वयसाधारण्येन दृष्टान्तभेदेन पर्यायाप्रतिपत्ती ये प्राप्ते तदाश्रयेण तद्वचनोपपत्तिर न तु जातिव्यक्त्याश्रयेणेति स्पष्टमेव । अन्यथा जातिपक्षप्रवृत्तामप्रतिपत्ति-मुपक्रम्य ब्रव्यादिदोषशङ्कापरभाष्यासंगत्यापत्तेः । अनवकाशत्वेनैषा न परत्वेन व्यवस्थेति कैयटाद्युक्त्यसंगत्यापत्तेश्च । अग्रे तुजादितुल्यताया एव तेषु प्रतिपादनाच्च । न हि तुजादयो व्यक्तिपक्ष एव सर्वविषया अपि तु जातिपक्षेऽपीति । त्वदुक्तयुक्तिद्वयमपि मियो व्यभि-चरितमित्याह—अपि चेत्यादिगमकाभाव इत्यन्तेन । अन्येति । विरोधा-धारान्येत्यर्थः । इयं, विरोधाधारभूता । कत्वमिति । चरितार्थयोः शास्त्रयोरिति भावः ।

१ इ 'तस्तत्र हेतौ हेतुमाह । २ इ. 'व मानाभावे हे' । ३ ग. 'चिदात्मने कृ' । ४ ग. 'गालम्भोऽशा' । ५. 'गालम्भेऽशास्त्रार्थसपत्न्याऽऽह—किंचेति ।

तज्जात्याश्रयतद्व्यक्तिविषयकत्वमेव नैतद्व्यक्तिविषयकत्वमित्यत्र विनिग-  
मकाभावः । तत्र लक्ष्यानुसारात्कचिच्छास्त्रीयदृष्टान्ताश्रयणं कचिच्छौ-  
किकदृष्टान्ताश्रयणमिति भाष्यसंमतमार्ग एव युक्त इति बोध्यम् ।

द्वयोः कार्ययोर्यौगपद्येनासंभव एव विप्रतिषेधशास्त्रोपयोगी । इदम्  
'इको गुण' ( १ । १ । ३ ) इति सूत्रे कैयटे स्पष्टम् । यथा शिष्टा-  
दित्यादौ तातङ्गशाभावयोर्युगपत्प्रवृत्तौ स्वस्वनिमित्तानन्तर्यासंभवः ।  
यद्यपि तातङ्गादेः स्थानिवत्त्वेनास्त्येव तत्तथाऽप्यादेशप्रवृत्त्युत्तरमेव स,  
न तु तत्प्रवृत्तिकाले । एवं नुम्प्रवृत्तयोः प्रियक्रोडूनीत्यादौ युगपदसं-  
भवो 'यदागमाः' ( प० ११ ) इत्यस्य नुम्प्रवृत्त्युत्तरं प्रवृत्तेः । एवं  
मिन्धीत्यत्र तातङ्गधिभावयोर्युगपदेकस्थानिसंबन्धस्याङ्गरूपनिमित्तान-

तद्व्यक्तीति । मियोऽविषयव्यक्तीत्यर्थः । नैतदिति । विरोधाधारव्यक्तीत्यर्थः । शास्त्र-  
स्येति शेषः । उपसंहरति—तत्रेति । तयोर्मध्य इत्यर्थः । तस्मादित्यादिः । कचित्,  
तिसृणामित्यादौ । शास्त्रीयदृष्टान्तः, तृजादिरूपः । कचित्, मिन्धीत्यादौ । लौकिक,  
दूतरूपः । युक्त इति । अत एव कुरुतात्वमिति कैयटोक्तसकृद्गतिन्यायोदाहरणसगतिः ।  
अन्यथा कुरुशब्दाद्धेलुगितिवचनस्य तातङ्गभावपक्षे चारितार्थेऽपि कुरुशब्दाद्धेस्तातङ्गिति-  
वचनस्थानवकाशत्वेन विप्रतिषेधाप्रसक्त्या तदसगतिः स्पष्टैवेति दिक् ।

भाष्यस्य एकस्मिन्नित्यस्य लक्ष्य इत्यर्थोऽभिमतो न तु कार्यद्वययोगिनीति सूचयितु-  
माह—द्वयोरिति । अन्यत्र लब्धावकाशयोरित्यादिः । एतेनैकस्य कार्यद्वययोगित्त्रव्य-  
वच्छेदः । शास्त्रोपेति । शास्त्रप्रवृत्त्युपेत्यर्थः । कैयट इति । नावश्यं द्विकार्ययोग एव  
विप्रतिषेधः किं तर्ह्यसंभवोऽपीति भाष्ये द्विकार्ययोगत्वाभावे केवलोऽप्यसंभवो विप्रतिषेध  
इति हि तेनोक्तम् । तमुपपादयति—यथेति । आदिना शाभावपरिग्रहः । तत्,  
तत्तदानन्तर्यम् । सः, स्थानिवत्त्वपदवाच्यः स्थानिवद्भावः । एतेनान्यतरस्मिञ्जाते निमित्त-  
विधातादन्यतरन्न स्यादिति दृष्ट्यादीना विरोधोपपादनमपास्तम् । इदमेव ध्वनयितुं बहुषु  
तमुपपादयति—एवमित्यादिना । एवं, स्वस्वनिमित्तानन्तर्यासंभवरूपोक्तप्रकारेण ।  
प्रवृत्तेरिति । अङ्गत्वसपादकस्थानिवत्त्वस्य तृज्वद्भावप्रवृत्त्युत्तरं प्रवृत्तेश्चेत्यपि बोध्यम् ।  
एवं, पूर्वमेव । प्रकारान्तरमप्यत्र सभवतीति प्राचामुक्तिमनुसृत्याऽऽह—युगपदिति ।  
ननु बुद्धिविपरिणामस्य सिद्धान्तत्वेन वास्तवस्थानिसंबन्धः कापि न, प्रकृत उभयबुद्धिप्राप्ता-  
वपि वाचः क्रमवृत्तिश्चादौच्छिकक्रमेण स्थितिः सभवतीति नेद युक्तमनः पागुक्तमेवाऽऽह—  
अङ्गरूपेति । तुटोरपीत्यस्यासंभवादावन्वयः । पूर्वात्परं प्रवरमि यस्या सार्वत्रिकतामाह—

न्तर्यस्य चासंभवो बोध्यः । नुम्नुटोरपि नुत्त्यजादिविभक्तयानन्तर्यबाधो नुमि ह्रस्वान्ताङ्गबाध इत्यसंभवाद्विप्रतिषेधः । क्वचिदिष्टानुरोधेन पूर्वशास्त्रे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात्स्वरितेनाधिकं कार्यमित्यर्थात्पूर्वमेव भवति । तेन सर्वे पूर्वविप्रतिषेधाः संगृहीता इति 'स्वरितेन' ( १ । ३ । ११ ) इति सूत्रे भाष्ये । विप्रतिषेधसूत्रस्थपरशब्दस्थेष्टवाचित्वात्तत्संग्रह इति विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये ॥ ४० ॥

नन्वेवमैधत इत्यादौ परत्वाद्विकरणे 'अनुदात्तङितः' ( १ । ३ । १२ ) इत्यादिनियमानुपपत्तिस्तेन व्यवधानादत आह—

विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ ४१ ॥

अत्र 'वृद्धभ्यः स्यसनोः' ( १ । ३ । ९२ ) इति सूत्रेण स्ये विभाषाऽतङ्गविधानं ज्ञापकम् । अन्यथा स्यव्यवधाने नियमाप्रवृत्तौ सामान्य-

क्वचिदिति । पूर्वविप्रतिषेधविषय इत्यर्थः । अनेन परस्यैव निरासो न नित्यादेस्तुल्य-जातीयत्वात् । किं च यादृशदौर्बल्ये प्रसक्ते प्राबल्याय स्वरितत्व प्रतिज्ञायते तादृशमेव दौर्बल्य तेनापनीयते । तदेतदध्वनयन्नाह—पूर्वमेवेति । तेन तथार्थेन । प्रकारान्तर-माह—विप्रेति । तत्संग्रह इति । सकलपूर्वविप्रतिषेधसंग्रह इत्यर्थः । नन्वेव स्वरितेनेति सूत्र तथार्थकमपि व्यर्थमिति चेन्न । अन्यार्थं तथार्थकस्य तस्याऽऽवश्यकत्वस्य तत्र भाष्य एव स्पष्टत्वात् । उपायस्योपायान्तरादूषकत्व हि तदाकूतमिति भावः ॥ ४० ॥

एवं, पूर्वविप्रतिषेधविषयादन्यत्र सर्वत्र परस्य पूर्वबाधकत्वे । एधत इत्यादाविति । आदिना पचत इत्यादिसंग्रहः । पचत इत्यादाविति त्वपपाठः । धातुपाठे प्राक्पाठित्यागे मानाभावात् । अत एवानुदात्तेति दोषसंगतिः । तदपि प्रागेव सूत्रपाठे पाठितम् । स्यादेः पर-त्वाल्लस्य तिवादिषु सस्त्विति शेषः । यथा नियमतः स्यादेः परत्व तथा स्यादितो लादेश-न्नामिति बोध्यम् । तेन, विकरणेन । अत्र, परिभाषायाम् । स्थे, परत इति शेषः । अताङ्गि-तिच्छेदः । परस्मैपदेति तदर्थः । तडित्यस्याऽऽत्मनेपदोपलक्षणत्वात् । एवमुक्ते, फल तु तस्य प्रतिप्रसवविधित्वसूचनम् । तडिति च्छेदः, परस्मैपदविकरणेन पक्षे तङ्गिविधानमित्यर्थ इति कश्चित् । क्वचित्तु विकल्पविधानमिति पाठः । तत्र विकल्पेन परस्मैपदविधानमित्यर्थः । उपपा-दनपर्यालोचनया त्वयमेव पाठो युक्त इति भाति । तत्त्वमुपपादयति—अन्यथेति । परिभाषाविरह इत्यर्थः । नियमेति । अनुदात्तङित इत्यादीनामित्यर्थः । सामान्येति ।

शास्त्रेणोभयसिद्धौ विकल्पविधानं व्यर्थं स्यात् । अत्रार्थे ज्ञापिते तु स्य इति तत्र विषयसप्तमी बोधयेति ' अनुदात्तङितः ' ( १ । ३ । १२ ) इत्यत्र भाष्यकैयटयोः स्पष्टम् । विकरणव्यवधानेऽपि नियमप्रवृत्तेरिदं ज्ञापकमिति ' शब्देः शितः ' ( १ । ३ । ६० ) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितम् । वस्तुतोऽस्माज्ज्ञापकात् ' अनुदात्तङितः ' ( १ । ३ । १२ ) इत्यादिप्रकरणं तिबादिविधेकवाक्यतया विधायकम् । तत्र ' धातोः ' ( ३ । १ । ९१ )

प्राक्प्रवृत्तेन तिप्तस्त्रीत्यनेनेत्यर्थः । उभयेति । पदद्वयेत्यर्थः । विकल्पेति । विकल्पेन परस्मैपदविधानमित्यर्थः । नन्वेवमपि स्य इति परसप्तमीति तदानी तदभावेन तदप्राप्त्या चारिताध्याभावात्कथं ज्ञापकत्वमत आह—अत्रेति । अस्मिन्नर्थे इत्यर्थः । तत्र, सूत्रे । इतीति । उक्त सर्वमित्यर्थः । मतान्तरमाह—विकरणेति । प्रवृत्तेरिति । परिभाषाया इत्यर्थः । इदं, प्रागुक्तं, तद्विकल्पविधायकं सूत्रम् । ध्वनितमिति । तत्र ह्युपसर्गनिमित्तकनियमेऽङ्घ्र्याय उपसंख्यानं न्यविशतेत्युक्तम् । यदि तथेयं भवेत्तर्हि प्राङ्नियमे नित्यस्वाङ्घ्रिकरणेऽङ्घ्र्याय इति वार्तिकं व्यर्थं स्यात् । इदानीं तु परत्वनित्यस्वाभ्यां द्वाभ्यां यथासख्यं प्राग्विकरणे नित्यस्वादङ्घ्र्याय चानया द्वितीयया विकरणस्याव्यवधायकत्वेऽप्यत्र व्यवहितत्वान्न प्राप्नोतीति तत्सफलम् । लावस्थायामङ्घ्र्यानाश्रित्य चेदं बोध्यम् । इत एवारुच्या यदि पुनरिय परिभाषा विज्ञायेतेत्यनुदात्तेत्यत्र सिद्धान्तभाष्योक्तम् । अत आह—वस्तुत इत्यादि तत्रमिदन्तेन । अस्मात्, प्रागुक्ततद्विकल्पविधायकसूत्रात् । एकेति । वाक्यैकवाक्यतयेत्यर्थः । अत एव भाष्येऽपि लस्य तिबादयो भवन्तीत्युपस्थितिदं भवत्यनुदात्तेत्याद्युक्तम् । अत एव कार्यकालाक्ष इदं बोध्यं यथोद्देशे वाक्यभेदस्यैव सत्त्वात् । सा चेत्य धातोर्लस्य स्थाने तिबादयो भवन्ति ते चानुदात्तङितो लस्य स्थाने तादृशा भवन्ति येषां जातानामात्मनेपदसज्ञा भवतीति । अयं भावः—कार्यकालेऽप्यनुदात्तङित् इत्यादिप्रकरणमेव स्वाकाङ्क्षया तेनैकवाक्यतामनुभवति । भाष्ये परिभाषेत्यस्य तद्वदित्यर्थः । यथा परिभाषा कार्याकाङ्क्षावशात्तेनैकवाक्यतापन्ना तथा तदपि स्वाकाङ्क्षावशात् । आकाङ्क्षोत्थापके च लिङ्गत्वव्यवहारः । प्रकृते च तस्य तदाकाङ्क्षोत्थापकावात्मनेपदत्वादिना बोधकौ तौ शब्दाविति तत्र लिङ्गत्वव्यवहारः । एतेन सर्वत्र परिभाषालिङ्गविधेः परिभाषाकाङ्क्षोत्थापक विधौ दृष्टं न चात्र तथा विधिसूत्र आत्मनेपदत्वादिनाऽनुपस्थितेरेव च यदि पुनरिति भाष्यमयुक्तमित्यपास्तम् । उक्तरीत्या भाष्योपपत्तेः । एव च भूवादय इति सूत्रस्य वातुपदस्य नियमेषु सवन्धार्थं मण्डूकप्लुतिर्विभक्तिविवरिणामश्र्व नाऽऽश्र्वणीयाविति । तदेतदाह—तत्रेति । तिबादिसूत्र इत्यर्थः । लावस्थायां स्यादावस्या

इति विहितपञ्चमिति तत्समानाधिकरणम् । 'अनुदात्त' ( १ । ३ । १२ )  
इत्यादि विहितविशेषणमेव । एव च लावस्थायां स्येऽपि तद्व्यवधाने  
तद्भ्रसिद्धिः । शब्दादिभ्यस्तु पूर्वमेव नियमः ।

यद्वा लमात्रापेक्षत्वाद्न्तरङ्गा आदेशा लकारविशेषापेक्षत्वात्स्यादयो

आवश्यकत्वात् । उत्तरसूत्रानुरोधाच्चेति भावः । एव च, विहितविशेषणत्वे च ।  
स्येऽपीति । यद्यप्यत्र पक्षे परत्वान्नित्यत्वाच्च तित्त्वादिविधिः । स्यादिविधिस्तु न नित्यः ।  
शब्दान्तरेण लक्षणान्तरेण च प्राप्ते । तादृशानित्यत्वानाश्रयणेऽपि द्वयोर्नि-  
त्ययो. परत्वात्स एव । अन्तरङ्गत्वमप्याद्यप्रकाराभावेऽपि तृतीयान्त्यरीत्या द्विवि-  
धतुरीयरीत्या च तस्मै । न चापवादत्वं स्यादिविधेर्विशेषविहितत्वादिति वाच्यम् ।  
चारितार्थ्यात् । अत एव परत्वविषयः । अत एव च स्येऽपीति स्यमात्रोल्लेखः ।  
तासावपवादत्वस्य सुवचत्वात् । एव च कथं लावस्थायां स्यः किमर्थं च विहितविशेषणत्वम् ।  
अत एवानुदात्तामिति सूत्रभाष्यसंगति । तथाऽपि श्यनादितः स्यादयोऽन्तरङ्गाः काऽन्तरङ्गता  
लावस्थायामेव विधानादिति स्यतेतिसूत्रमाप्योक्त्याऽऽर्धधातुक इत्यस्याऽऽयादय इत्यतोऽ-  
नुवृत्त्याऽऽर्धधातुकत्वोवस्थाया स्यादय इत्यस्यान्तरङ्गास्त इत्यर्थिकयाऽऽर्धधातुकत्व  
विशेषण नोपलक्षणमित्याशयिकया सूत्रस्थतदनुवृत्तेश्च सामर्थ्याल्लावस्थायामेव तत्प्रवृत्ति ।  
अन्यथा तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव विहितविशेषणावश्यकत्वम् । एव च तत्र भाष्येऽ-  
न्तरङ्गशब्दो गौणः । अत एव काऽन्तरङ्गतेति प्रश्नो न तु कथमिति । बहिरङ्ग-  
शब्दस्य परिभाषायाश्चानुक्तिश्च । एव च परिभाषायाः स विषय एव न । एतेनोक्तपक्ष-  
चतुष्टयासंभवात्तद्भाष्यतत्पक्षयोरसंगत्यापत्तिरित्यपास्तम् । उक्तरीत्योपपादनात् । तत्रत्यकै-  
यटस्य तु प्रमाद एवेत्यन्यत्र विस्तर । ताडिति । आत्मनेपदेत्यर्थं । एधिप्यत इत्यादा-  
विति भावः । ननु शब्दादिव्यवाये तत्सिद्धिरपि तत्फलं कुनो नोक्तमत आह—शब्दादि-  
भ्यस्त्विति । कर्त्रादौ सार्वधातुके तद्विधानादिति भावः । नियमः, तत्त्वेनान्याभिमतो  
वाक्यैकवाक्यतया विधिः ।

एवं तदनुवृत्तिमभिप्रेत्य लादेशानामन्तरङ्गत्वमनैपेक्ष्य च तस्य विहितविशेषणत्वमुक्तम् ।  
तदनुवृत्तावनुपदोक्तद्विविधैतदाश्रयणेनेदानी वैपरीत्येन धातोरिति परपञ्चम्यामपीष्टसिद्धि-  
रिति वक्तु पक्षान्तरमाह—यद्वेति । कैयटानुरोधेनाऽऽह—लमात्रेति । वस्तुतस्त्वत्र  
मात्रशब्देन परनिमित्तमात्रव्यवच्छेदः । तथा चापरनिमित्तकत्वादित्यर्थं । आदेशाः, लादेशाः ।  
लकारेति । लकाररूपो यो विशेष परस्तदपेक्षत्वादित्यर्थं । परनिमित्तकत्वादिति यावत् ।  
एव चानुपदोक्त द्विविधमन्तरङ्गत्वमेव तेषामनेनोक्तमिति बोध्यम् । यथाश्रुत तु न युक्तं

बहिरङ्गा इति दिग्योगलक्षणपञ्चम्यामपि न दोषः । अत्र पक्षे 'वृद्भ्यः  
स्य' ( १ । ३ । ९२ । ) इति सूत्रं स्थविषय इति व्याख्येयम् । आत्म-  
नेपदशब्दादौ भाविसंज्ञाऽऽश्रयणीयेति तत्त्वम् । भिन्नवाक्यतया सामान्य-  
शास्त्रविहितानां नियमे तु लुगादिनेव नियमेन जातनिवृत्तिरङ्गीकार्या ।  
भुक्तवन्तं इति मा भुक्था इति ब्रूयात्किं तेन कृतं स्यादिति न्यायस्तु  
नात्र शास्त्र आश्रयितुं युक्तो नियमादिशास्त्राणां वैयर्थ्यापत्तेः । ध्वनितं  
चेदं 'स्थानेऽन्तरतमः' ( १ । १ । ५० ) इति सूत्रे भाष्ये । शास्त्रानर्थक्यं  
तु वृद्धिसंज्ञासूत्रे भाष्ये तिरस्कृतम् । सामान्यशास्त्रेणोत्पत्तिस्तु सरूप-

कैयटश्च चिरस्य इत्यनुपदमेवाग्रे स्फुटी भविष्यति । न दोष इति । शब्दादेरिव  
स्यादितोऽपि तस्य प्राक्प्रवृत्तेस्तत्रापि न दोष इत्यर्थः । अत्र पक्षे, सिद्धान्तपक्षान्तरस्यात्-  
द्वितीयपक्षे । व्याख्येयमिति । तस्य परत्वासम्भेदादिति भावः । नन्वेवमपीतरेतराश्रयोऽत्र  
पक्षे प्राक्तेषामसत्त्वेन तत्संज्ञयोर्दुर्वचत्वादत आह—आत्मनेपदेति । न चावान्तरवा-  
क्यार्थबोधोत्तर तेषां लस्थानिकत्वज्ञानादात्मनेपदादिसंज्ञोत्तरमेवैकवाक्यताऽस्तु किं भावि-  
संज्ञाश्रयणेनेति वाच्यम् । तस्य तत्रोपस्थितौ तावत्पर्यन्त तेनासेबद्धतयाऽवस्थाने सान्ना-  
भावात् । अन्तरङ्गतया तेन सबन्धानुभवोत्तरमेव तिवादिभिः संज्ञानुभवाच्चेति भावः ।  
चरमपक्षस्योक्त तत्त्व प्रतिपादयितुमाद्यपक्षयोर्दोषानाह—भिन्नेत्यादिगौरवमित्य-  
न्तेन । नियमे त्विति पाठः । नियमे त्वङ्गीक्रियमाण इत्यर्थः । ननु जातनिवृत्तौ भुक्त-  
वन्तमिति न्यायविरोधोऽत आह—भुक्तेति । यो भुक्तवन्तं प्रति तथा ब्रूयात्तेन किं  
साधितं स्यादपि तु न किमपीति लौकिकन्यायार्थः । भुक्था इति । निरनुस्वारः  
पाठः । लुङो रूपमेतत् । नियमादीति । आदिना निषेधादिपरिग्रहः । उक्तार्थस्य  
तस्यात्रानाश्रयणस्य सूत्रारूढस्य भाष्यारूढत्वमपि । निर्मूलत्वनिरासायाऽऽह—ध्वनित-  
मिति । तत्र हि तस्यान्यसिद्धादेशनिवर्तकत्व इष्टशब्दमात्रनिवृत्त्यसिद्धौ तद्वैयर्थ्यमुक्तन्या-  
येनोक्तोक्त वेति समाहितम् । तत्र वाशब्देनायमर्थः सूचितः । अन्यथा पक्षान्तरानुक्ते-  
स्तदसंगतिः स्पष्टैव । ननु नियमादिशास्त्रवैयर्थ्यं इष्टापत्तिरत आह—शास्त्रेति । प्रमाणभूत  
आचार्यो दर्भपाणिरित्यादिग्रन्थेनेति भावः । नन्वेकस्याः प्रकृतेरेकप्रत्ययानामव्यवहितपर-  
त्वासम्भेदानुत्पत्तिरेवाऽऽदौ सर्वेषां दुर्लभेति कथं जाहानां नियमेन निवृत्तिरत आह—  
सामान्येति । तुश्चार्थोनया कार्येत्यग्रे योज्यः । सरूपेति । तत्र हि यथैव बहवो

१ घ. तत्संज्ञयो° । २ घ. यणं हू° । ३ घ. °ढ भा° । ४ घ. °ढमपि । ५ घ. °त्र द्यादे° ।  
६ क. निर्वैर्लक्षि° । घ. °निवृत्त्यसि° । ७ क. °तप्रवृत्त्यस° ।

सूत्रस्थकैयटरीत्या प्रधानानुरोधेन गुणभेदकल्पना तावत्प्रकृतिकल्प-  
नया कार्या प्रत्ययनिवृत्तौ च तत्कल्पितप्रकृतेरपि निवृत्तिः कल्प्येति  
गौरवमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ४१ ॥

परान्नित्यं बलवत् ॥ ४२ ॥

कृताकृतप्रसङ्गित्वात् । तत्राकृताभावकस्याभावकल्पनापेक्षया क्लृ-  
प्ताभावकस्यैव तत्कल्पनमुचितमिति नित्यस्य बलवत्त्वे बीजम् । तदाह—  
कृताकृतप्रसङ्गि नित्यं तद्विपरीतमनित्यम् । अत एव तुदतीत्यादौ परा-  
दपि गुणान्नित्यत्वाच्छप्रत्ययादिर्भवति ॥ ४२ ॥

यद्यक्तिसंबन्धितया पूर्वं प्रवृत्तिस्तद्यक्तिसंबन्धितयैव पुनः प्रवृत्तौ  
कृताकृतप्रसङ्गित्वमित्याशयेनाऽऽह—

शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ ४३ ॥

इदं ' शब्देः शितः ' ( १ । ३ । ६० ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तत्र  
हि न्यविशतेत्यत्र विकरणे कृते तदन्तस्याङ्कृते धातुमात्रस्येत्यङ्गनित्य  
इत्युक्तम् ॥ ४३ ॥

येन एव प्रकृतयोऽपीत्यत्र भाष्य एकैकस्यापत्यस्य प्रकृत्यर्थेन योगात्प्रधानभेदे च गुणा-  
वृत्त्या गार्ग्यशब्दानामेवैकशेषः क्रियत इति तेनोक्तम् । प्रातिपादिकोद्देशेन तद्विधानात्प्रा-  
तिपदिकार्थस्य तत्र विशेषणत्वाद्गुणतेति तदाशयः । तदाह—प्रधानेति । किंचैकस्मा-  
दनेकेषु परत्वासभवादित्यपि बोध्यम्—निवृत्तौ चेति । च कल्प्येत्यग्रे योज्यः ।  
एवं च दोषत्रयं तत्र सिद्धम् । तत्केति । प्रत्ययकल्पितेत्यर्थः । यदि तु लुगादिवाङ्मि-  
मेनाप्यनुत्पत्तिरेवान्वाख्यायते तदाऽऽद्यपक्षावपि निर्दुष्टावित्यादि बोध्यम् । तदाह—  
अन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ४१ ॥

कृतेति । तथा चाऽऽवश्यकत्वमिति भावः । कृताकृतप्रसङ्गित्वस्य बलवत्त्वप्रयोजक-  
त्वं न वाचनिकं किं तु युक्तिसिद्धमित्याह—तत्रेति । परनित्ययोर्मध्य इत्यर्थः ।  
तत्कल्पनमिति । अभावकल्पनमित्यर्थः । उचितमिति । उपस्थितिलाघवादिति  
भावः । इति, इदम् । नित्यस्य, आवश्यकस्य । अत्राऽऽद्यांशफलमाह—अत एवेति ।  
आदिभ्या रुणद्धीत्यादौ श्रमादिपरिग्रहः ॥ ४२ ॥

द्वितीयाश प्रपञ्चयितुमाह—यद्यक्तीति । तद्यक्तीति । गुणान्नित्यैकादेश इत्याश-  
येन सार्वधातुकमपिदितिभाष्योदाहृते च्यवन्त इत्यादौ संध्यावन्दनादौ चेत्यर्थः । एवं च  
न्यायभूतेय न वाचनिकीति भावः । इदं, न्यायरूप वचनम् । त्यङ्गिति । एतन्न्यायसत्त्वात्  
कृतेति शेषः ॥ ४३ ॥



एतत्तुल्यन्यायेनाऽऽह—

शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम् ॥ ४४ ॥

एतन्मूलकमेवाऽऽह—

लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ ४५ ॥

अतिदेशविषय इयमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेनोक्ता ॥ ४५ ॥

यदा तु शास्त्रव्यतिरेकेण तद्विधेयकार्ययोरेव नित्यत्वादिविचारे यदाऽपि व्यक्तिविशेषाश्रयणामावस्तदाऽऽह—

क्वचित्कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यता ॥ ४६ ॥

कृते द्वितीये नित्यत्वेनाभिमतस्य पुनः प्रसङ्गमात्रं नित्यत्वव्यवहारे प्रयोजकं न तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्गोऽपि तथेति भावः ॥४६॥

तुल्यन्यायेनेति । प्रागुक्तवचनमूलभूतयुक्तिवृत्त्यतयेत्यर्थः । यद्यक्तिसन्धितया पूर्वं प्रवृत्तिस्तद्व्यक्तिसन्धितयाऽप्राप्त्या कृताकृतप्रसङ्गित्वाभाव इति हि प्रागुक्ते वचने मूलम् । तच्च शब्दान्तरात्प्राप्नुवदादावपि वृत्त्यमिति भावः । वतश्चेति । विधेरिति शेषः । एव च तद्विपरीतमित्यस्यैव प्रपञ्चभूते एते इति बोध्यम् । इय भाष्ये स्पष्टा ॥ ४४ ॥

एतदिति । उक्तपरिभाषाद्वयमूलकमेवेत्यर्थः । एवेनापूर्वत्वनिरासः । लक्षणान्तेति । उपदेशान्येनेत्यर्थः । तदाह—अतीति । असिद्धवदिति । असिद्धवदत्राभादित्यत्रेत्यर्थः । तत्र हि कुर्व इत्यादौ नित्यत्वात्प्रागुकारलोपस्ततो गुण । कृते हि तत्र प्रत्ययलक्षणेन गुण इत्येतन्न्यायेनानित्य स इत्युक्तम्—कैयटेनेति । अनेनात्र भाष्याक्तंत्वानिरास । अत एवैतन्मूलकमेवेत्यवतरण उक्तम् ॥ ४५ ॥

नन्वेव तुदतीत्याद्यसिद्धिरेव शब्दान्तराल्लक्षणान्तरेण च तत्र कृते प्राप्तेरत आह—यदा त्विति । शास्त्रव्यतीति । अनेन लक्षणान्तरेणेत्यस्याविषयता सूचिता । व्यक्तिविशेषेति । यद्यक्तीत्याद्युक्तेत्यर्थः । अनेन तन्न्यायद्वयाविषयता सूचिता । तदाऽऽहेति । तदाऽऽहेत्यर्थः । क्वचिदिति । तुदतीत्यादावित्यर्थः । मात्रपदेन शास्त्रव्यक्तिविशेषैतदुभयवैशिष्ट्यस्य कार्यं व्यवच्छेदः । अपि सार्वत्रिकयद्यक्तीत्यादिसमुच्चायकः । परिभाषान्तर वक्तु मात्रपदव्यवच्छेद्यत्वेन सभावितपूर्वान्याधिकाशघटितमस्या आशयमाह—कृत इति । अभिमतस्य, कार्यस्य । मात्रपदव्यवच्छेद्यमाह—न त्विति । बाधकाबाधितत्वेऽपि कारणान्तराभावेन फलानुपहिततन्निरासायाऽऽह—फलोपेति । प्रसङ्गोऽपीति पाठः । अपिः प्रागुक्तसमुच्चायकः । तेन तस्यापि व्यवच्छेदः । अत एव पूर्वसगतिः । तथा, तद्व्यवहारे प्रयोजकः ॥ ४६ ॥

तदाह—

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् ॥४७॥

क्वचित्तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्ग एव गृह्यते तदाह—

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम् ॥४८॥

सप्तमे कैयटेनैतदुपष्टम्भकं लोकव्यवहारद्वयमुदाहृतम् । वालिसुग्रीव-  
योर्युध्यमानयोर्भगवता वालिनि हतेऽपि सुग्रीवस्य वालिनः प्राबल्यं  
न व्यवहरन्ति । मगवत्सहायैः पाण्डवैर्जये लब्धेऽपि पाण्डवानां प्राबल्यं  
व्यवहरन्ति चेति । सर्वं चेदं लक्ष्यानुरोधाद्वावस्थितम् ॥ ४८ ॥

‘ लुटः प्रथमस्य ’ ( २ । ४ । ८५ ) इति सूत्रे भाष्ये

स्वरभिन्नस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ ४९ ॥

इति पठ्यते । यत्र त्वेकस्यैव कार्यस्य परत्वं नित्यत्वं च तत्रेच्छयाऽ-  
न्यतरत्तदुभयं वा तस्य बलवत्त्वे नियामकमुल्लेख्यम् । अत एव तत्र तत्र

तदाहेति । अधिकाशाशयकमाहेत्यर्थः । एव च तत्प्रपञ्चभूतैवेयमिति भावः । यस्य  
चेति । कार्यस्येत्यर्थः ॥ ४७ ॥

एवेन प्रागुक्तप्रसङ्गव्यावृत्तिः । गृह्यते इति । तद्व्यवहारप्रयोजकत्वेनेति भावः । अपि-  
स्ताद्विपरीतप्रागुक्तरूपसमुच्चायकः । अनयोर्न वाचनिकत्वं किं तु लोकन्यायसिद्धत्वमि-  
त्याह—सप्तम इति । स्वमोर्नपुंसकादिति सूत्र इत्यर्थः । तत्र हि तत्कुलमित्यत्रात्व-  
लुकोः प्राप्तौ परादत्वान्नित्यत्वाल्लुगित्युक्तेऽनित्यो लुक् । न हि कृतेऽत्वे प्राप्नोति । अमा  
भाव्यमित्युक्तं भाष्ये । एतदुपेति । उभयोपेत्यर्थः । वालीति । सत्सप्तमी निर्धारणे  
षष्ठी वा । मगवता, श्रीरामेण । वालिन इति पञ्चमी । व्यवहरन्ति, शूरमानिन इति  
शेषः । मगवदिति । वासुदेवेत्यर्थः । प्राबल्य, कौस्वेभ्य इति शेषः । नन्वेवमप्य-  
तिप्रसङ्गः सर्वेषां तदवस्योऽत आह—सर्वं चेदमिति । कृताकृतेत्यारभ्य यदुक्त-  
मित्यर्थः ॥ ४८ ॥

प्रथमस्येतीति । इत्यादिसूत्र इत्यर्थः । आदिनाऽऽद्युदात्तश्चेत्यादिसूत्रपरिग्रहः ।  
श्वः कर्तेत्यादौ तास्यनुदात्तेदित्योपाद्य तस्य ङादिभिर्धिप्रतिषेधविचारे द्वयोर्नित्यत्वमुक्त्वा  
निघातस्यानित्यत्वमुक्त्वादीनामेवमनित्यत्वमुक्तं तत्र भाष्ये । स्वरभिन्न-  
स्येति । स्वरेण भिन्नस्येत्यर्थः । रूपवत्स्वरोऽपि श्रुतिभेदेहेतुत्वाच्छब्दान्तरत्वमेव करो-  
तीति भावः । विशेषमुभयसाधारणमाह—यत्र त्विति । तदुभयं, परत्वनित्यत्वोभयम् ।

परत्वान्नित्यत्वाच्चेति भाष्य उच्यते । वस्तुतस्तत्र परत्वादित्युक्तिरेकदेशिनः । स्पष्टं चेद् विप्रतिषेधसूत्रे कैयटे । 'णौ चङि' ( ७।४।१ ) इति ह्रस्वापेक्षया नित्यत्वान्तरङ्गत्वयुक्तद्वित्वस्य प्रथमतः प्रवृत्तौ नित्यत्वादित्येव भाष्य उक्तम् । एवं नित्यान्तरङ्गयोर्बलवत्त्वमपि यौगपद्यासंभव एवेति बोध्यम् ॥ ४९ ॥

नित्यादप्यन्तरङ्गं बलीयोऽन्तरङ्गे बहिरङ्गस्यासिद्धत्वात् । तदाह—  
असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ ५० ॥

अन्तर्मध्ये बहिरङ्गशास्त्रीयनिमित्तसमुदायमध्येऽन्तर्भूतान्यङ्गानि

तस्य, कार्यस्य । तत्र तत्रेत्यस्य भाष्य इत्यत्रान्वयः । तत्र, भाष्ये । एकदेशिन इति । नित्यानित्ययोर्विप्रतिषेधासंभवादिति भावः । तदाह—स्पष्टं चेद्गमिति । तत्र हि कार्यमित्यत्रार्थं कृत्यः करणयोग्यं कार्यं तुल्यबलं च तथेति नित्यानित्योत्सर्गापवादान्तरङ्गबहिरङ्गेष्वस्य सूत्रस्याव्यापार इत्युक्तं तेन । एव च तत्र नित्यत्वादित्येव वाच्यम् । यत्राप्युभयसंभवः प्रकारान्तरेण तत्रोक्तरीत्या विकल्पेनेष्टसिद्धावपि प्रथमोपस्थितत्यागो नोचित एव । तदाह—णौ चेति । भाष्ये, णौ चङीति सूत्रे । एवमिति । परस्येवेत्यर्थः । बोध्यमित्यत्रान्वयः । यद्वा विशेषान्तरमाह—एवमिति । उक्तवदित्यर्थः ॥ ४९ ॥

अपिः परससुञ्चायकः । यत्तु सीरदेवादयो नित्यादप्यन्तरङ्गं बलीय इति परस्वफलं न स्वपूर्वम् । अत एवान्तरङ्गबहिरङ्गयोरित्यस्य नाजानन्तर्यं इति न निषेधः । अन्तरङ्गत्वाच्चुको दीर्घस्य नित्यत्वात्प्राप्तावपि परत्वादीर्घस्यैव प्राप्तेः । तत्र । युक्त्यन्तरस्यानुपदमेव वक्ष्यमाणत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—अन्तरङ्ग इति । कर्तव्य इति शेषः । बहिरङ्गस्य, नातस्य तत्कालप्राप्तिकस्य चेति शेषः । वाक्यार्थबोधे पदार्थधियो हेतुत्वादादौ तामाह—अन्तरित्यादिनिरूपितमित्यन्तेन । तत्राऽऽदावन्तःशब्दार्थमाह—मध्य इति । कस्येत्याकङ्क्षायामाह—बाहिरिति । उपस्थितत्वादिति भावः । शास्त्रीयेति । तद्घटकेत्यर्थः । अन्तर्भूतानीति शेषपूरणम् । तत्त्व च पूर्वस्थितत्वात्परनिमित्ताभावादस्वत्वात्पूर्वोपस्थितत्वाद्वा । अत्र तृतीयं घटकत्वेन सरूपया वा । अन्त्यमपि प्राक्रियाक्रमेण प्रयोगीयोश्चारणक्रमेण च । आद्यमप्येव द्विधा । निमित्तानीत्यर्थं निमित्तशब्दः स्थान्यादेर्विशेषणपरोऽपि । कार्यानुभववतस्तत्त्वेनानाश्रयणस्यान्यत्र विधिषु न हि कार्यातिन्यायेन स्वीकारवदिहापि तस्य स्वीकारेण स्थान्यादेस्तत्त्वाभावेऽपि तद्विशेषणस्य तत्त्वेनाऽऽश्रयणाद्भाष्यसंमतत्वञ्च । यद्यपि गुणानामितिन्यायेनेह तदप्रवृत्त्या तस्यापि तद्विशेषणस्थेवानाश्रयणे

निमित्तानि यस्य तदन्तरङ्गम् । एवं तदीयनिमित्तसमुदायाद्बहिर्भूताङ्गकं बहिरङ्गम् । एतच्च ' खरवसानयोः ' ( ८ । ३ । १५ ) इति सूत्रेऽसिद्धवत्सूत्रे च माष्यकैयटयोः स्पष्टम् ।

अत्राङ्गशब्देन शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यते शब्दशास्त्रे तस्यैव प्रधान-

मानाभावात्तस्य तत्परत्वमपि सभवति तथाऽव्यनित्यतया गुणानामित्यस्याप्रवृत्तिः । च्छि कार्यात्यस्य लोकसिद्धैश्च । इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति । तत्र सर्वान्त्यपक्षेण तत्त्वं युगपत्प्रवृत्तौ पूर्वप्रवृत्तिनियामकमेव न तु परत्वाज्जातस्य बहिरङ्गस्य तादृशेऽन्तरङ्गे कार्येऽसिद्धतानियामकम् । तावतेष्टसिद्धावपि लोकतस्तथैव लाभात् । तत्र कृते पुनर्बहिरङ्गप्राप्तौ भवत्येव तत् । अन्यथा तु न तत् । आद्यपक्षेण तु तत्त्वं तत्रैवासिद्धतानियामकम् । आङ्ग्रहणात्तथैव लाभात् । अङ्ग एव तदनन्तरं बहिरङ्गं नैव । एव चेदमुभयं युगपत्प्राप्तिविषयकम् । द्विविधसर्वाद्यपक्षेण तत्त्वं तु क्वचित्पूर्वप्रवृत्तिनियामकं क्वचिदसिद्धतानियामकम् । अत एवेदं जातयौगपद्यस्वमात्रप्राप्तिकत्वरूपत्रितयविषयकम् । अत एव तदनन्तरं क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिन्न । एतल्लामस्तु लोकतो ज्ञापकाच्च यथायथ बोध्यः । लक्ष्यातुरोधेन सर्वेषां व्यवस्थेति न दोषः कापि । एतदन्यपक्षद्वये तु तत्त्वमसिद्धतानियामकं जातस्यैवेति पुनर्बहिरङ्गस्य प्रसङ्ग एव न । ऊटग्रहणात्तथैव लाभात् । एव चेद द्वयं युगपत्प्राप्तिविषयकं न । तत्राऽऽद्य पक्षः पट्येत्यादौ क्रमेणान्वाख्यानं । अन्यलक्ष्याप्यग्रे द्रष्टव्यानि । द्वितीयः पञ्चावेदमित्यादौ । तृतीयाद्यः स्योन इत्यादौ । तद्वितीयो विश्वौह इत्यादौ । तुरीयाद्यः सप्तवोढ इत्यादौ । तदन्त्यो विभज्यान्वाख्याने पट्येत्यादौ प्रादुद्रवदित्यादौ चेति बोध्यम् । अङ्गशब्दः सङ्गविशेषस्य शरीरावयवस्य वा न वाची किं तूपकारकवाची तदाह— निमित्तानीति । बहुवचनं लक्ष्याभिप्रायम् । बहुव्रीहिणा सर्वलिङ्गत्वमनयोः सिद्धम् । एवमिति । उक्तरीत्येत्यर्थः । तदीयेति । अन्तरङ्गशास्त्रीयेत्यर्थः । इदं शेषपूरणलभ्यम् । बहिरिति । बहिर्भूतान्यङ्गानि यस्येत्यर्थः । बहिःशब्दार्थो बहिर्भूतत्व तच्चोक्तवैपरीत्येन । एव च परस्परापेक्षया व्याप्यनिमित्तकमन्तरङ्गं व्यापकनिमित्तकं च बहिरङ्गमित्युत्सर्गः । अल्पनिमित्तकं बहुनिमित्तकं चेति यावत् । उक्तार्थं समूलयति—एतच्चेति । उक्तार्थद्वयमित्यर्थः । खरेति । तत्र ह्यन्तरङ्गं बहिरङ्गमिति प्रतिद्वैन्द्रिभाविनावेतावर्थावित्युक्तम् ।

निमित्तत्वस्यार्थादावपि सत्त्वेन तत्कृतातिप्रसङ्गं निराचष्टे—अत्राङ्गेति । परिभाषायामित्यर्थः । निमित्तमेवेति । सप्तम्याद्यन्तोपात्तप्रयोगस्थशब्दरूपमेव निमित्तमित्यर्थः । तस्य, शब्दस्य । एवं च प्रधानाप्रधानयोरितिन्यायेन सामान्यरूपेण विशेषग्रहणमिति

त्वात् । तेनार्थनिमित्तकस्य न बहिरङ्गत्वम् । अत एव ' न तिसृचतसु ' ( ६ । ४ । ४ ) इति निषेधश्चरितार्थः । अन्यथा स्त्रीत्वरूपार्थनिमित्तकतिस्रपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वाच्चाद्यादेशे तदसंगतिः स्पष्टैव । अत एव त्रयादेशे स्रन्तस्य प्रतिषेध इति स्थानिवत्सूत्रस्थभाष्यवार्तिकादि संगच्छते । एतेन गौधेरः पचेदित्यादावेयादीनामङ्गसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वाद्दलि लोपो न स्यादिति परास्तम् । एयादेशादेरपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च ।

ननु 'येन विधिस्तदन्तस्य' ( १ । १ । ७२ ) इति सूत्रे भाष्य 'इको यणचि' ( ६ । १ । ७७ ) इत्यादावपि तदन्तविधौ स्योन इत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्यणो गुणबाधकत्वमिष्यते तन्न सिध्येत्, ऊनशब्दमाश्रित्य यणा-

भावः । तेन, तद्ग्रहणेन । रङ्गत्व, परिभाषाप्रवृत्त्युपयोगीति शेषः । अत्रार्थे पाणिनिसंमतिं ध्वनयितुमाह—अत एवेति । तस्य तत्त्वानङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथा, तस्य तत्त्वाङ्गीकारे । तदसंगतिः, निषेधवैयर्थ्यम् । एव पाणिनिसमत उक्तार्थे भाष्यवार्तिका-रूढत्वमप्याह—अत एवेति । उक्तोऽर्थः । त्रयेति । त्रेस्त्रय, इति त्रयादेशे कार्ये स्रन्तस्य स्थानिवत्त्व नेति वार्तिकार्थः । न चैव समानाधिकरणसमासाद्बहुव्रीहिरिति वार्तिकस्य विप्रतिषेधपरतयोक्तस्य स्वप्ननाय स्वपदार्थे कर्मधारयोऽन्तरङ्गोऽन्यपदार्थे बहुव्रीहि-बहिरङ्ग इति वर्णो वर्णेनेति सूत्रे भाष्योक्त विरुध्येतेति वाच्यम् । तथा सत्यपीष्टसिद्ध्याभावेन विप्रतिषेधपरता संखण्ड्येष्टिपरतायास्तदग्रे व्यवस्थापितत्वेनैतदशे सूक्ष्मेक्षिकाया अकरणेन तस्यैकदेश्युक्तित्वादिति भावः । एतेनेति । सप्तम्याद्यन्तोपात्तप्रयोगस्थशब्दरूपनिमित्तस्थैवात्र ग्रहणेनेत्यर्थः । पचेदित्यादाविति पाठः ॥ पचेरन्वित्यपपाठः । सोयुटोऽनङ्गाधिकारस्थत्वात् । प्रसिद्धत्वाद्भवेदित्यस्य त्यागः । एयादीनि । आदिना इयादेशादिपरिग्रहः । बहुवचन लक्ष्याभिप्रायम् । परास्तमिति । सज्ञाया. प्रयोगस्थशब्दरूपत्वाभावादिति भावः । वैपरीत्यमेव प्रत्युतास्तीत्याह—एयादेशादेरिति । रपरेति ॥ तथा च प्रागुक्तद्वितीयप्रकारेण तत्त्व बोध्यम् ।

ननु तद्वत्सङ्गाकृतमपि तस्य भाष्याद्यारूढमिति कथमत्र तस्यैव ग्रहणमित्याशयेन शङ्कते—नन्विति । इको यणिति । शब्दानुशासनप्रस्तावाच्छब्दरूप विशेष्यमादायेति भावः । इष्यते, सिद्धान्त इति शेषः । विप्रतिसूत्रे भाष्योक्तेरिति भावः । इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति । तच्चेति । वर्णमात्राश्रयत्वेन वार्णस्यान्तरङ्गत्वमिष्ट तदापि चेत्समुदायाश्रित तदेष्टसिद्धिर्न स्यादिति भावः । तत्र हेतुमाह—ऊनेति । अस्य यत इत्यादिः । तदादिविधिरपि स्यादत्र पक्षे । अनेन यणो बहिरङ्गत्व गुणस्थान्तरङ्गत्वं तृती-

देशो नशब्दमाश्रित्य गुण इत्यन्तरङ्गत्वाद्गुण एव स्यादित्युक्तम् । अत्र कैयटः—सिवेर्बाहुलकादौणादिके नप्रत्यये गुणवलोपोठां प्रसङ्ग ऊडपवादत्वाद्वलोपं बाधते गुणं त्वन्तरङ्गत्वाद्बाधते । गुणो ह्यङ्गसंबन्धिनीमिगलक्षणां लघ्वीमुपधामार्थधातुकं चाऽऽश्रयति । ऊद्तु वकारान्तमङ्गमनुनासिकादि च प्रत्ययमित्यल्पापेक्षत्वाद्दन्तरङ्गः । तत्र कृते यणगुणौ प्राप्नुत इति । एवं च संज्ञापेक्षस्यापि बहिरङ्गत्वं स्पष्टमेवोक्तमिति चेत् ।

न । तदन्तविधावपि बहुपदार्थापेक्षत्वरूपबहिरङ्गत्वस्य गुणे सत्त्वेन तत्र दोषकथनपरभाष्यासंगतेः । बहिरङ्गान्तरङ्गशब्दाभ्यां बह्वपेक्षत्वालपापेक्षत्वयोः शब्दमर्यादयाऽलाभाच्च । तथा सत्यसिद्धं बह्वपेक्षमल्पापेक्ष इत्येव वदेत् । अत एव विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये गुणाद्यणादेशोऽन्तरङ्गत्वादित्यस्य स्योन इत्युदाहरणं न तु गुणाद्वन्तरङ्गत्वादित्युक्तम् । त्वद्रीत्या तदपि वक्तुमुचितम् । प्राथम्यात्तदेव वा वक्तुमुचितम् । मम

याद्यपक्षेण प्रदर्शयते । गुणं एव, पुगन्तेत्यनेन । गुणवेति । स्थानिक्रमेण गुणस्य पूर्वनिपातः । बाधत इत्यस्य पुनरुक्तिरनुषङ्गाकल्पनजलाघवाय । तयोस्तत्त्वे आह—गुणो ह्यङ्गेति । इकारस्येति शेषः । संज्ञाया अप्यत्र तत्त्वेन ग्रहणे प्रकारमाह—त्यल्पापेक्षेति । गुण पञ्चकाश्रय ऊडतु चतुष्काश्रय इति विवेकः । तत्र कृते, ऊठि कृते । प्राप्नुत इत्यग्र ऊनशब्दमित्याद्युक्तिरनुसंधेया । प्रकृतमाह—एवं चेति । तथादोषोक्तौ चेत्यर्थः । प्रसङ्गादन्यदपि निराकर्तुमाह—स्यापीति । अपिर्बहुपदार्थापेक्षममुच्चायक ।

तदन्तेति । एव संज्ञादिबहुपदार्थापेक्षत्वेन तत्त्वाङ्गीकार इत्यादि । बह्विति । उक्तरीत्या पदार्थपञ्चकापेक्षत्वात् । यणस्त्विगन्ताजादिशब्दद्वयमात्रापेक्षत्वमित्यन्तरगत्वमिति भावः । तत्र, तदन्तविधौ । दोषेति । उक्तरीत्या गुण एव स्यादिति दोषेत्यर्थः । इदं चाम्युपेत्य तदुक्तमन्तरङ्गत्वमुक्तम् । वस्तुतस्तदेव नेत्याह—बहिरङ्गेति । ननु तत्तात्पर्येण लाक्षणिकप्रयोगोऽत आह—तथेति । तत्तात्पर्येण प्रयोगे सतीत्यर्थः । इत्येवेति । निर्बाजलक्षणानौचित्यादिति भावः । उक्तार्थं द्रढयति—अत एवेति । तथातदार्थाभावाद्वेत्यर्थः । उदाहरणमिति । दत्तमिति शेषः । न त्विति । तत्रैवेति शेषः । ऊडन्तरङ्गत्वादित्युक्तमिति । अन्तरङ्ग बलीय इतिपरिभाषाफलकथनावसर इति भावः । त्वद्रीत्या, कैयटरीत्या । उचितमिति । तथा तयोस्तत्त्वयो सत्त्वादिति भावः । ननूपलक्षण तत्तस्यापीत्यत आह—प्राथम्यादिति । तेन तस्यैवोपलक्षणतया ग्रहणसंभवात् । तदेवेति । तावताऽपि च तस्याः सफलत्वसिद्धेरिति भावः । मम त्विति ।

त्वन्तरङ्गपरिभाषया तद्वारणासंभवात्तन्नोक्तम् । किं च सिद्धान्ते नित्य-  
त्वाद्गुणात्पूर्वमूद्, गुणस्तूठि यणा बाधितत्वादनित्यः । ऊनशब्दमा-  
श्रित्येत्यादिभाष्येण च परिभाषायामङ्गशब्देन सप्तम्याद्यन्तोपात्तं  
शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यत इति स्पष्टमेवोक्तम् । यत्तु कैयटेन तदन्तवि-  
धिपक्षे परत्वाद्गुणः प्राप्नोतीत्युक्तं तत्तूनशब्दमाश्रित्येत्यादिभाष्यासंगत्या  
चिन्त्यम् ।

बलि लोपेऽन्तरङ्गपरिभाषा न प्रवर्तत इति तु न युक्तम् । तत्सूत्र-  
भाष्य एव ब्रश्चादिषु लोपातिप्रसङ्गमाशङ्क्योपदेशसामर्थ्यान्न १ न च  
वृश्चतीत्यादौ चारितार्थ्यं, बहिरङ्गतया संप्रसारणस्यासिद्धत्वेन पूर्वमेव

अस्य मत इति शेषः । तद्वारणेति । उठा गुणवारणेत्यर्थः । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वसाधकतथा-  
र्थानाश्रयणेन समत्वादिति भावः । तत्, प्राथमिकम् । ननु भाष्यान्वयानुषण्णस्या  
कैयटोक्तमावश्यकमत आह—किं चेति । यत इति शेषः । सिद्धान्त इत्यनेन तदा तद-  
सिद्धिरपि दोष इति भाष्याशय इति सूचितम् । यणेति । यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं  
बिहन्यते तदप्यनित्यमिति न्यायेनेति भावः । उक्तार्थे तद्भाष्यविरोधमप्याह—ऊनेति ।  
यत इत्यादिः । ण चेति । उक्तमित्यग्रे चो योज्यः । द्यन्तोपात्तमिति पाठः । आदिना  
पञ्चम्यादिपरिग्रहः । अयं भावः—उक्तरीत्याऽङ्गशब्दो निमित्तपरो न तु स्थान्यादिपरोऽपि ।  
निमित्तत्व चात्र शास्त्रे न हीतिन्यायेन विधिषु यथा कार्यानुभवविशिष्टमात्रस्य नाङ्गी  
क्रियतेऽन्यस्य त्वङ्गी क्रियते तथाऽत्रापीति न स्थानिन आगामिनश्च तत्त्वेन ग्रहणमन्यस्य  
तद्विशेषणस्य तु तत्त्वेन ग्रहणमस्त्येवाग्रहणे मानाभावात् । यद्यपि गुणानामिति न्यायेन  
प्रकृते तदप्रवृत्त्या परादिनिमित्तवस्थान्यादेरपि ग्रहणं सुवच तस्याऽप्यनित्यत्वाद्गुणानामित्य-  
स्याप्रवृत्तिः । न हि कार्यान्त्यस्य लोकासिद्धत्वं चेति स्थान्यादिभिन्नस्य सर्वस्य ग्रहणम् ।  
\* [ अत एवान्तरङ्गानपीतिज्ञापकपरभाष्यसंगति । तथा च तत्र पक्षे यणनिमित्तोनशब्दा-  
वयवत्वेन नशब्दस्य ततो ] बहिष्वाभावः । गुणनिमित्तनशब्दादूनशब्दस्य बहिर्भूतोकारघटि-  
तत्वात्तन्निमित्तत्वाद्यणो बहिरङ्गत्वमिति । परत्वादिति । तदा द्वयोः समत्वादिति भावः ।  
भाष्येति । अन्तरङ्गत्वबहिरङ्गत्वबोधकभाष्येत्यर्थः ।

गौधेरादौ केनचिदुक्तसमाधिप्रकारस्य तद्विषयतामात्रेणात्रापि सत्त्वात्कैयटश्चिन्त्य एवे-  
त्याशयिका कस्यचिदुक्ति खण्डयति—वलीति । अमित्यत्वादिति भावः । तत्सूत्रेति ।  
लोपो व्योरिति सूत्रेत्यर्थः । श्चादिष्विति । आदिना त्रीत्यादिग्रहणम् । ल्यबन्तस्योक्ता-

\* धनुश्चिह्नान्तगतो ग्रन्थो च पुस्तकस्यः ।

तत्प्राप्तेरिति भाष्योक्तेः । यत्तु नलोपस्य षट्संज्ञायामसिद्धत्वात्पञ्चेत्यत्र 'न षट्' (४।१।१०) इति निषेध इति तच्चिन्त्यम् । नलोपस्य हि पदसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वं वाच्यम् । तच्च न । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणात् । पञ्चेत्यत्र निषेधस्तु स्त्रियां यत्प्राप्नोति तन्नेति व्याख्या-  
नसामर्थ्येन भूतपूर्वषट्त्वमादायेति बोध्यम् । अत एव कृति तुग्रहणं चरितार्थम् । वृत्रहभ्यामित्यादौ पदत्वनिमित्तकत्वेऽपि नलोपस्य बहिरङ्गत्वाभावात् । भ्यामः पदसंज्ञानिमित्तत्वेऽपि नलोपस्य तन्निमित्तकत्वाभावात् । परम्परया निमित्तत्वमादाय बहिरङ्गत्वाश्रयणे तु न मानम् । ध्वनितं चेदं 'नलोपः सुप्' (८।२।२) इति सूत्रे

ध्वनयः । आदिना वृकणादिपरिग्रहः । संप्रसारणस्य, तडादेः । तत्प्राप्तेः, वलोपप्राप्तेः । उक्तकैयटोक्तिवन्नलोपः सुप्स्वरोतिसूत्रस्थकैयटोक्तिमपि खण्डयति—यत्त्विति । असिद्धत्वादिति । बहिरङ्गत्वेनेति शेषः । निषेध इति । टाप इति भावः । एवमग्रेऽपि । तच्चिन्त्यमित्यस्य दुर्वचत्वादिति शेषः । तत्त्वमेवाऽऽह—नलोपस्य हीति । नन्वेवं पञ्चेत्यत्र टाबापात्तिस्तद्वस्थैव । न च नलोपः सुप्स्वरोति निर्वाहः । षट्संज्ञाया नलोपासिद्धत्वस्याफलत्वस्य भाष्ये तत्रैव सूत्र उक्तत्वात् । अत आह—पञ्चेत्यत्रेति । संज्ञाकृतत-  
न्नाभावे सूत्रसमतिमप्याह—अत एवेति । उक्तोऽर्थः । चारितार्थं युक्ति-  
माह—वृत्रेति । नलोपेत्यस्य मध्यमणिन्यायेनान्वयः । भावादिति । तत्कृततत्त्वाना-  
श्रयणात् । अन्यथा किञ्चिन्मित्तके तुकि पदत्वहेतुकनलोपस्य बहिरङ्गासिद्धत्वेनैव सिध्द्या  
तदानर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः । ननु नलोपस्य न संज्ञाकृत तत्त्व किं तु किमो बहिर्भूत-  
भ्यामिति तत्त्वमेनात आह—भ्याम इति । पदेति । तत्पुरुषः । तन्निमीति ।  
भ्यामिति त्वर्थः । साक्षादिति भावः । नन्वेवमपि परम्परया तत्त्वमस्त्येवात आह—पर-  
म्परयेति । नलोपे भ्याम इति शेषः । नन्वेनमप्यप्रतिषिद्धमिति न्यायेन तदङ्गीकारः कृति-  
तुग्रहणं प्रत्याख्यात च परम्परया तत्त्वमादाय तत्त्वाश्रयणस्य क्वचिदावश्यकत्व चात आह—  
ध्वनितमिति । तत्र हि तुग्विधौ वृत्रहभ्यामिति फलमुक्त्वा तुग्विधौ चोक्तं किमुक्तं  
संनिपेत्यादिना कृन्मेजन्त इति सूत्रे ग्रामणिकुलमित्यादौ तुगभावफलकत्वेनोक्तया सनिपात-  
परिभाषया खण्डित न तु तत्रैव संज्ञाविधौ षञ्च ब्राह्मण्य इत्यादौ टाबुनिषेधरूपप्रयोजनस्य  
तुग्विधौ वृत्रहभ्यामित्यादिप्रयोजनस्य च खण्डिकात्वेन कैयटोक्तयाऽनया । तथा चायमेव  
तदाशयः । तथा च क्वचिद्भाष्यादिप्रामाण्यात्तदङ्गीकारेऽप्यत्र भाष्यप्रामाण्यात्तदनङ्गीकार



भाष्य इति तत्रैव भाष्यप्रदीपोद्द्योते निरूपितम् ।

अन्तरङ्गे कर्तव्ये जातं तत्कालप्राप्तिकं च बहिरङ्गमसिद्धमित्यर्थः । वृश्चत्यादिषु पदसंस्कारपक्षे समानकालत्वमेव द्वयोरिति बोध्यम् । एतेनान्तरङ्ग बहिरङ्गाद्वलीय इति परिभाषान्तरमित्यपास्तम् । एनामाश्रित्य विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये तस्याः प्रत्याख्यानाच्च । अन्तरङ्गशास्त्रत्वमस्या लिङ्गम् ।

इयं च त्रिपाद्यां न प्रवर्तते त्रिपाद्या असिद्धत्वात् । अस्यां च बाह ऊटसूत्रस्थमूदग्रहणं ज्ञापकमित्येषा सपादसप्ताध्यायीस्था । अन्यथा संप्रसारणमात्रविधानेन लघूपधगुणे 'वृद्धिरेचि' (६।१।८८) इति वृद्धौ विश्वौह इत्यादिसिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । सत्यां ह्येतस्यां बहिरङ्ग-

इति भावः । एतेनान्यथा तत्र कैष्टेनोक्तं चिन्त्यम् । तदाह—तत्रैवेति । नलोप इति सूत्र एवेत्यर्थः ।

एव पदार्थं निश्चित्य वाक्यार्थमाह—अन्तरङ्ग इति । नन्वेव लोपो व्योर्वलीतिसूत्रस्थप्रागुक्तभाष्यविरोधः । तत्र हि वलोपस्योपदेश एव प्राप्स्या तदानी संप्रसारणादेर्जाततत्कालप्राप्तिकत्वयोरभावेनासिद्धत्वासम्भवादत् आह—वृश्चत्यादीति । आदिना पटव्यादिपरिग्रहः । एव च तत्पक्षौशयकमेव तदिति न विरोध इति भावः । कैष्टप्रभृतिदीक्षितान्तोक्तिं खण्डयति—एतेनान्तेति । अर्थद्वयस्यानयैव क्रौडीकारादफलत्वेनेत्यर्थः । नन्वर्थभेदाच्छब्दभेदे तद्भेदः फलित एवात् आह—एनामिति । असिद्धमितीमामित्यर्थः । तस्याः, अन्तरङ्गमित्यस्याः । तर्थाचोत्तरमुनिप्रामाण्यात्तथैवोचितमिति भावः । परिभाषायां लिङ्गवत्त्वानियमादाह—अन्तरङ्गेति ।

कैयटाद्यर्वाचीनान्तोक्तिं न चेत्यादिना खण्डयितुं सिद्धान्तमादावाह—इयं चेत्यादिदिगित्यन्तेन । नन्वस्या न सपादसप्ताध्यायीस्थत्वाभिति हेत्वसिद्धिरत् आह—अस्यां चेति । तत्त्वमुपपादयति—अन्यथेति । एतदभाव इत्यर्थः । संप्रेति । वसोः संप्रेत्यतोऽनुवृत्त्येत्यादि । मात्रपदेनोठो व्यावृत्तिः । लघूपधगुणे हेतुरयम् । परिभाषाङ्गीकारे तत्सार्थक्यमाह—सत्यामिति । ह्येतस्यामिति पाठः । हिस्त्वर्थे । बहिरङ्गेति । न च भसज्ञाकृत तत्त्व वाच्यम् । तच्च न । तद्धि नाऽऽश्रीयत इति कथं तत्त्वमिति वाच्यम् । ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्याद्यजदिप्रत्ययनिमित्तभत्वनिमित्तकत्वेन परम्परया यजादिप्रत्ययनिमित्तकत्वाश्रयणेन तत्त्वस्यात्र सुवचत्वात् । यथैव पूर्वापराविरोधस्तथाऽनुपदमेवोक्तम् । न चैवमपि परनिमित्तकत्वस्य तुल्यत्वात्कथं तत्त्वम् । कप्रत्ययावधीत्यादिविशेषणबाहुल्येन तस्या-

संप्रसारणस्यासिद्धत्वाल्लघूपधगुणो न स्यात् । न च 'पुगन्त' ( ७ । ३ । ८६ ) इति सूत्रे निमित्तमिको विशेषणमत एव भिनत्तीत्यादौ न गुणः, एवं च 'नाजानन्तर्ये' ( प० ५१ ) इति निषेधात्कथं परिभाषाप्रवृत्तिरिति वाच्यम् । प्रत्ययस्याङ्गांश उत्थिताकाङ्क्षत्वेन तत्रैवान्वयात् । पुगन्तेत्यादौ कर्मधारयाश्रयणेन प्रत्ययपराङ्गावयवलघूपधारूपेको गुण इति 'इको गुणवृद्धी' ( १ । १ । ३ ) इति सूत्रभाष्यसंमतेऽर्थे भिनत्तीत्यादावदोषाच्च । अकारान्तोपसर्गेऽनकारान्ते चोपपदे बहेर्वाहेर्वा ण्विचिचावनभिधानान्न स्त एव । वार्यूह इत्यादि तूहतेः क्विपि बोध्यम् । धातूनामनेकार्थत्वान्नार्थासंगतिः । प्रौह इत्याद्यसाध्वेव वृद्धेरप्राप्तेः । अस्योहस्याऽऽनर्थक्यान्न 'प्राडूहोढो' ( ६ । १ । ८९, ३ वा० ) इत्यस्यापि प्रवृत्तिः ।

धिकनिमित्तकत्वेन सख्याकृतत्वेन तत्त्वसत्त्वात् । उभयथाऽपि परस्थितत्वेन तत्त्वाच्च । तुरीयस्य तु नाय विषयः । युगपदन्वारुयानेऽपि कार्ययोर्यौगपद्याभावात् । उभयोर्यौगपद्य एव तद्विषयताङ्गीकारात् । न स्यादिति । तथा च वृद्धचभावे रूपासिद्धिरिति वृद्धचर्धमूठ-ग्रहणमिति साफल्यमिति भावः । नाजेत्यशे सिद्धान्तरीत्याऽन्याशे प्राचीनरीत्या तत्त्व विघटयति—न चेति । निमित्त, सार्वधातुकादिकम् । न गुण इति । येन नाव्यवधानमिति न्यायादिति भावः । एवं चेति । तस्य तद्विशेषणत्वेनाचोऽन्यानन्तर्यसत्त्वे चेत्यर्थः । तत्रैवेति । अङ्ग एवेत्यर्थः । तथा चाङ्गस्य तदानन्तर्यमत्त्वेऽपि नाच इति न दोष इति भावः । नन्वेव तत्पराङ्गावयवस्येको गुण इत्यर्थे भिनत्तीत्यादौ दोष एवेति तदन्यथानुपपत्त्या तदङ्गीकार आवश्यक इत्ययं दोषस्तदवस्थ एवात आह—पुगन्तेत्येति । प्रकृतमाह—कर्मति । लघ्वी चासावुपधा चेतीत्यर्थः । प्रत्ययेति । सार्वधातुकादीत्यर्थः । इदं चाङ्गविशेषणम् । नन्वेवमपि प्रौहः शाल्यूह इत्यादिसिद्धचर्धमूठविधान सफलम् । आद्येऽन्यथा पररूपप्रसङ्गोऽन्य ऊरूपदीर्घश्रवणं न स्यात् । एव च कथ ज्ञापकतेत्यत आह—अकारान्तोपेति । नकेति । उपसर्गे तद्विन्ने चेत्यर्थः । वाशब्दः समुच्चये । वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चय इति कोशात् । यथासख्यमन्वयः । ज्ञापकपरभाष्यप्रा-माण्यादिति भावः । नन्वेव वार्यूह इत्याद्यसिद्धिरत आह—वारिति । ऊहतेरिति । वृद्धचर्धादिति भावः । तदाह—धातूनामिति । नन्वेवं प्रौह इत्याद्यपि स्यात्तथाऽत आह—प्रौह इति । वृद्धेरिति । ऊठोऽभावादिति भावः । नन्वेवमपि प्राडूहोढेत्यनेन वृद्धिः सुलभाऽत आह—अस्योहेति । शसन्तैकदेशस्येत्यर्थः । तस्य समुदायाद्विधेस्तस्य तत्त्वस्य कथमप्यप्राप्तेरिति भावः ।

न च कार्यकालपक्षे त्रिपाद्यामेतत्प्रवृत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम् । पूर्वं प्रति परस्यासिद्धत्वादन्तरङ्गाभावेन पूर्वस्य तन्निरूपितबहिरङ्गत्वाभावात्तया तस्यासिद्धत्वप्रतिपादनासंभवात् । न चानया पूर्वस्यासिद्धत्वात्तदभावेन तं प्रति परासिद्धत्वं 'पूर्वत्र' ( ८ । २ । १ ) इत्यनेन वक्तुमशक्यमिति वाच्यम् । एवं हि विनिगमनाविरहादुभयोरप्यप्रवृत्त्यापत्तेः । किं च पूर्वत्रेत्यस्य प्रत्यक्षत्वेन तेनाऽऽनुमानिकया अस्या बाध एवोचितः । अतः कार्यकालपक्षेऽपि त्रिपाद्यामस्या अनुपस्थितिरेव । अत एव कार्यकालपक्षमेवोपक्रम्योक्तयुक्तीरुक्त्वाऽतोऽयुक्तोऽयं परिहारो न वा बहिरङ्गलक्षणत्वादितीत्युक्तं विसर्जनीयसूत्रे भाष्ये सिद्धान्तिना । त्रिपादीस्थेऽन्तरङ्गे कर्तव्येऽयं परिहारो न युक्त इति तदर्थः । किं तु वचनमेवाऽऽरब्धव्यमिति तदाशयः । अत एव निगाल्यत इत्यादौ लत्वार्थं तस्य दोष

प्रागुक्तं सर्वं यथोद्देशपक्षे न कार्यकालपक्ष इति' कैयटाद्युक्ति खण्डयति—न चेति । तदसिद्धत्वरूपहेत्वभावादिति भावः । एतत्प्रवृत्ति, असिद्धमित्यस्याः प्रवृत्तिः । पूर्वमिति । पूर्वत्रासिद्धमित्यनेनेति भावः । तथा, तत्रोपस्थितयाऽनया । तस्य, बहिरङ्गस्य पूर्वस्य । चानया, असिद्धं बहिरित्यनया । एवं हीति । द्वाभ्यामिधः प्रवृत्तिप्रतिबन्धे क्रियमाणे हीत्यर्थः । अन्यतरस्य तत्त्वस्येष्टत्वेऽप्यन्यतरस्यानिष्टत्वादाह—आपत्तेरिति । एव तदभावमभ्युपेत्योक्तम् । प्रत्युत विनिगमकमस्तीत्याह—किं चेति । यत इति शेषः । प्रत्येति । सूत्रेषु पाठाच्छ्रवणत्वेनेत्यर्थः । तेन, पूर्वत्रेत्यनेन । अस्या ज्ञापकसिद्धत्वेनाऽऽनुमानिकीत्वम् । उपसहरति—अत इति । हेतुद्वयादित्यर्थः । अपिर्यथोद्देशपक्षसमुच्चायकः । एवमुक्तेऽर्थे भाष्यसंमतिमप्याह—अत एवेति । उभयत्राप्येतदनुपस्थितोरिष्टत्वादेवेत्यर्थः । एवेन यथोद्देशपक्षव्यावृत्तिः । उपक्रम्येत्यनेनोपसंहारस्य यथोद्देशपरत्व निरस्तम् । तयोरैकरूप्यस्यौचित्यात् । क्युक्तीः पूर्वं प्रति, एवं हि, किंचेतिप्रागुक्तयुक्तीरित्यर्थः । अत इत्यारभ्य भाष्यमुपसंहारपर युक्तित्रयादिति तदर्थः । विसर्जेति । खरवसानयोरितिसूत्र इत्यर्थः । एकदेशयुक्तत्वनिरासायाऽऽह—सिद्धान्तीति । न युक्त इति । सयोगान्तस्य रदाभ्यामित्यादौ यत्रयत्रोक्तः स सर्वो न युक्त इत्यर्थः । वचनमिति । एकवचनं प्रकृताशयेन जातौ वा । वचनानीत्यर्थः । तानि च विसर्जनीयोऽनुत्तरपद इत्यादीनि बोध्यानि । उक्तस्य सिद्धान्तभाष्याशयत्वे गौरवं परिहर्तुमाह—अत एवेति । तत्रैतदसंचारादेवेत्यर्थः । लत्वेति । अचीति वा लत्वे-

इति वचनमेवाऽऽरब्धम् । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वाणिगलोपात्पूर्वं वैकल्पिक-  
लत्वे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । येऽपि लक्ष्यानुरोधादानुमानिक्याऽप्यन्तरङ्ग-  
परिभाषया प्रत्यक्षसिद्धस्य पूर्वत्रैत्यस्य बाधं वदन्ति तेऽपि लक्ष्यैकच-  
क्षुर्भिर्नाऽऽदर्तव्या इति दिक् ।

अत एव 'ओमाङ्गोश्च' ( ६ । १ । ९५ ) इत्याङ्गग्रहणं चरित्रार्थम् ।  
तद्धि खट्वा आ ऊढेत्यत्र परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वाद्गुणे  
कृते वृद्धिप्राप्तौ पररूपार्थम् । साधनबोधकप्रत्ययोत्पत्त्यनन्तरं पूर्वं  
धातोरुपसर्गयोगे पश्चात्खट्वाशब्दस्य समुदायेन योगाद्गुणस्यान्तरङ्ग-

स्यर्थः । आरब्धम् । वार्तिककृतेति शेषः । अन्यथा तत्रैतत्प्रवृत्तौ । एवं च प्राप्ताणिकं  
गौरवं न दोषायेत्यर्थः । कैयटाद्युक्तिं खण्डयति—येऽपीति । तथा च युक्त एवायं परि-  
हार इति भावः पूर्वपक्षस्य । वस्तुतस्तु प्रत्यक्षस्य प्राबल्यात्तथा वक्तुमेवाशक्यम् । एतेन  
लक्ष्यैकचक्षुषा तदादरो युक्त इत्यपास्तम् । उक्तयुक्तेः । भृगवदतिरिक्ते तत्त्वाभावात् ।  
शास्त्रस्यास्मदादीन्प्रति प्रवृत्तेश्च । एव च तथा हरदत्ताद्यर्वाचीन्तान्तोक्तिस्तत्र तत्रासंगतैवेति  
बोध्यम् । तदाह—दिगिति ।

ननुक्तज्ञापकेनाऽऽद्यार्थलाभेऽपि नान्त्यार्थलाभोऽतः स निर्मूलोऽत आह—अत  
एवोमेति । द्वितीयार्थस्वीकारादेवेत्यर्थः । विभज्यान्वारुयान एवात्र समकालप्राप्तिसंभव  
इत्याह—खट्वेति । गुणे कृते, आद्गुणे कृते । वृद्धीति । वृद्धिरेचीत्यनेनेति भावः ।  
ननु न गुणस्यान्तरङ्गत्वमलपापेक्षत्वेन । उभयोरुभयापेक्षत्वेनै तस्य समत्वात् । नाप्याद्यप्र-  
कारद्वयेन । तस्यासत्त्वात् । तुरीयान्त्यप्रकारेण प्रत्युत पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वस्य  
सवर्णदीर्घ एव सत्त्वाच्च । निमित्तानां कार्याणां च यौगपद्यसत्त्वात् । अत आह—  
साधनेति । रूपेति । तच्छब्देत्यर्थः । समुदायेनेति । उपसर्गद्योत्यार्थसहितैघात्वर्थ-  
केन आ ऊढेत्यनेनेत्यर्थः । तस्य क्रियाकाङ्क्षात्वादुपसर्गस्य पृथगर्थाभावाच्च । एव च  
तुरीयाद्यप्रकारेणान्तरङ्गत्वं धातूपसर्गकार्यस्य गुणस्यैव न तु तस्य यथाकथञ्चित् । धातूपसर्ग-  
कार्यत्वं तु नान्तरङ्गताप्रयोजक प्रेद्ध इत्यादौ व्यभिचारात् । धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्ग-  
मित्यस्य तु नायं विषयः । स ह्यनुपदमेव स्फुटी भविष्यति । न चोपसर्गयोगे दीर्घनिमित्तम-  
प्युपस्थितमेवेति वाच्यम् । तस्य परनिमित्तोपस्थितावपि पूर्वनिमित्तानुपस्थितेः । अत एव  
सप्तम्याद्यन्तेत्यत्राऽऽदिशब्दः पञ्चमीसग्राहकः प्रागुक्तः । न चैवमपि तुरीयान्त्यरीत्या  
दीर्घस्य तत्त्वमाद्यरीत्या गुणस्येति द्वयोरन्तरङ्गयोः परत्वादीर्घ एवेति तद्वैयर्थ्यमेवेति वाच्यम् ।  
गुणस्य नित्यत्वात् । तत्रै सवर्णत्वस्यापि निमित्तत्वेन सरुयाकृततत्त्वस्य गुणे सत्त्वाच्च ।  
ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्येन धातूपसर्गकार्यत्वस्य तत्त्वाप्रयोजकत्वेऽपि तदुपोद्बलकत्वस्यान्त्य-  
प्रकारस्यैकपद एव वा स्वीकाराच्च । तत्प्रामाण्याद्न्यत आद्यस्य बलवत्त्वमिति तु न । पठ्ये-

त्वामिति 'संप्रसारणाच्च' (६।१।१०८) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । एहीत्यनुकरणस्य शिवादिशब्दसंबन्धे तु नास्य प्रवृत्तिर्ज्ञापकपरसंप्रसारणाच्चेति सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येनानित्यं प्रकृतिवदनुकरणमित्यतिदेशमादाय लब्धाङ्त्व एतदप्रवृत्तेः ।

यत्तु पूर्वं धातुरूपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेन । उपसर्गेण तत्संज्ञकशब्देन । साधनेन कारकेण तत्प्रयुक्तकार्येण । अत एवानुभूयत इत्यादौ सकर्मकत्वात्कर्मणि लकारसिद्धिरिति तन्न । क्रियायाः साध्यत्वेन बोधात्साध्यस्य च साधनाकाङ्क्षतया तत्संबन्धोत्तरभेव

त्यादिसिद्धावपि प्रादुर्भवदित्याद्यसिद्ध्यापत्तेः । अयज इन्द्रमित्यादौ तु गुणस्थैव द्विविधमन्तरङ्गत्वमस्तीति न दोषः । अत एव धातूपसर्गयोर्यत्कार्यं तदन्तरङ्गमिति प्रतिज्ञाय कुत एतदिति प्रश्ने तथोपपादित भाष्य इति भावः । नन्वेहीतिवदेत्याद्यनुकरणके शिवसबोधनके एहीत्यनुकरणके शिवघटितषष्ठीसमासे वा शिव एहीत्यादावाङ्ग्रहग सफलम् । तत्र हि प्रकृतिवदितिन्यायेनाऽऽङ्त्वाद्धिं बाधित्वा तत्प्रवृत्तेः । एतेनानुकार्ये एकादेशशास्त्रप्रवृत्त्याऽन्तवद्भावेनाऽऽङ्त्वलाभेऽप्यनुकरणे तदभाव इत्यपास्तम् । एव च कथं ज्ञापकत्वमत आह—

एहीतीति । नास्य, ओमाडोश्चेत्यस्य । नानित्यमिति । तत्त्व च तस्याऽऽवश्यक, अत एव यत्तदेतेभ्य इति निर्देशसगतिः । भाष्यप्रामाण्यमनित्यत्वेऽप्रवृत्तौ च हेतुः । लब्धाङ्त्व इति बहुव्रीहि । अभिव्यक्तपदार्था य इति न्यायोऽप्यत्र निवारको बोध्यः । वस्तुतस्त्वाङ्त्वस्य तत्रैकदेशनिष्ठत्वेऽपि समुदायानिष्ठत्वेन प्रकृत्यधर्मत्वात्पररूपस्याऽऽङ्मन्त्रकार्यत्वाच्चात्रातिदेशस्थैवासम्भवं इति भाष्यं यथाश्रुतं सम्यगेव । अत एवाभिव्यक्तितिन्यायस्याप्यविषयः । फलाभावात् । एव चेदं प्राचामनुरोधेनेति बोध्यम् ।

ननु वहधातोः क्त उदेतिसिद्धावाङ्गत्वाशब्दयोर्युगपदन्वये गुणदीर्घयोर्युगपद्भाष्योक्तसंप्रधारणा युक्ता । स एव न । धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गं पूर्वं हि धातुरूपसर्गेण युज्यते, पश्चात्साधनेनेति सुदृक्त्वाद्गतिर्गतावित्यत्र भाष्योक्तेरिति कथं ज्ञापकत्वमित्याशयेनाऽऽह— यत्त्विति । मतान्तैरविरोधाय कैयटाद्यभिमतं तदर्थमाह— उपेत्यादि । साधनशब्दस्य करणमात्रपरत्वभ्रमनिरासायाऽऽह—कारेति । तावताऽप्यर्थासिद्धेराह—तदिति । प्रत्ययेनेत्यर्थः । अत एवेति । तयोर्योगयोः पूर्वापरीक्षावनियमादेवेत्यर्थः । सुखमिति शेषः । आदिनोपास्यते गुरुरित्यादिपरिग्रहः । क्रियाया इति । धातुत इति शेषः । साध्यस्य, तत्त्वेन प्रतीयमानस्य । साधनेति । आदौ नियमत इति शेषः । साध्यत्व च निष्पाद्यत्वरूपमेवेति तयोर्मिथो निरूप्यनिरूपकभावादिति भावः । काङ्क्षतयेति । काङ्क्षत्वादिति पाठान्तरम् । तत्संबन्धोत्तरेति । साधनप्रयुक्तकार्यसंबन्धोत्तरमित्यर्थः ।

निश्चितक्रियाबोधेन साधनकार्यप्रवृत्त्युत्तरमेव क्रियायोगनिमित्तोपसर्ग-  
संज्ञकस्य संबन्धौचित्यात् । अत एव 'सुट्वात्पूर्वः' (६।१।१३५) इति सूत्रे  
पूर्व धातुरुपसर्गेणेत्युक्त्वा नैतत्सारं पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुप-  
सर्गेणेत्युक्त्वोक्तयुक्त्याऽस्यैव युक्तत्वमुक्तं साधनं हि क्रियां निर्वर्तयती-  
त्यादिना भाष्ये ।

उपसर्गद्योत्यार्थान्तर्भावेन धातुनैवार्थाभिधानादुक्तेषु कर्मणि लका-  
रादिसिद्धिः । पश्चाच्छ्रोतुर्बोधाय द्योतकोपसर्गसंबन्धः । एवं चान्तर-

एवस्तत्पूर्वव्यवच्छेदाय । एवमग्रेऽपि । तत्संबन्ध विर्णौ साध्यत्वेन प्रतीतरपर्यवसानादिति  
भावः । तदाह—निश्चितक्रियेति । निश्चिते साध्यत्वे तेन प्रतीयमानत्वरूपक्रियात्व-  
निश्चये सौदृशक्रियेत्यर्थः । अत्र हेतुविभक्त्यन्ताना क्रमेणोत्तरोत्तरहेतुत्वम् । क्रियायो-  
गेति । क्रियाविशेषणीभूतार्थद्योतकत्वेत्यर्थः । ज्ञकस्य, शब्दस्य । साध्यत्वेन निश्चयं  
विना क्रियायोगविहितोपसर्गसंज्ञकशब्दैर्योगाज्ञानादिति भावः । अत एवेति । उक्तहे-  
तोरेवेत्यर्थः । सुट्कादित्युपलक्षणं गतिर्गतावित्यस्यापि । पूर्वं हीति पाठ उभयत्र ।  
इत्युक्त्वा, इत्याद्युक्त्वा । साधनेनेत्यादेरुक्त एवार्थः । उक्तयुक्त्या, क्रियाया इत्याद्युक्त-  
युक्त्याशयेन । अस्यैव, द्वितीयमतस्यैव । एव चोक्तार्थक निर्युक्तिक तदश्रद्धेयमिति भावः ।  
साधनं हीति । तृतीयान्त पूर्वांवायि । क्रिया, तत्प्रतीतिम् । साधनयोगेन हि साध्य-  
त्वेन धात्वर्थस्य प्रतीतिः । साध्यत्वस्य साधनत्वनिरूप्यत्वात् । क्रियायोगे चोपसर्गत्वात् ।

नन्वेव प्रक्रान्तधातूपसर्गाकार्यान्तरङ्गत्वस्य कथं सिद्धिरत आह—उपेति । द्योत्येति ।  
अनुभवादीत्यर्थः । एव उपसर्गसंज्ञकशब्दसंबन्धनिवृत्तये । अर्थाभीति । तद्विशिष्टव्या-  
पाराभीत्यर्थः । उक्तेषु, अनुभूयते सुखमित्यादिषु । पश्चात्, लादिसिद्धयन्तरम् । द्योत-  
कोपेति । तद्द्योतकतत्संज्ञकशब्दसंबन्ध इत्यर्थः । अयं भावः—वक्ता धातोरेव विशिष्ट-  
मर्थं बुद्धौ कृत्वा साधनसंबन्धप्रयुक्तकार्यप्रत्यययोगेन तत्र साध्यत्वावगतौ श्रोतुर्बोधाय  
क्रियायोगनिमित्तोपसर्गसंज्ञकशब्दयोगं करोति, अन्यथा केवलधातुतः सर्वत्राप्रतीयमानतया  
श्रोतुस्तत्तद्बोधो न स्यादिति । एव च पूर्वमुपसर्गयोगो नाम तदर्थसंबन्ध, ततस्तत्संज्ञक-  
शब्दयोगात्पूर्वं साधनप्रयुक्तकार्यप्रत्यययोग, तत उपसर्गसंज्ञकशब्दयोग इति वचनद्वयार्थ  
इत्येकवाक्यतैव द्वयोर्न मिथो विरोधः । एतेन तयोर्यथाश्रुतार्थकत्वेऽप्यध्ययने प्रत्यय इत्या-  
दिनिर्देशेन क्वचित्साधनप्रयुक्तकार्यात्प्रागुपसर्गनिमित्तककार्याप्रवृत्तेर्ज्ञापनेन पूर्वं धातुः साध-  
नेनेत्यस्य तद्विषयत्वमपरस्य तद्व्यविषयत्वमिति न विरोध इति दीक्षिताद्युक्तमपास्तम् ।  
एकवाक्यतयैव निर्वाह एवमनौचित्यात् । तद्ध्वनयन्नाह—एवं चान्तेति । उक्तार्थ-

१ ड. 'तुतृतीयान्ता' । २ ड. 'र्गत्वम् । न' । ३ घ. 'निरपेक्ष्यैव । अ' । ४ क. 'त्रतत्र  
सा' । ५ घ. 'तुस्तद्वा' ।

ङ्गतरार्थकोपसर्गनिमित्तः सुट् संकृतीत्यवस्थायां द्वित्वादितः पूर्वं प्रवर्तते ततो द्वित्वादि । अत एव प्राणिदापयतीत्यादौ णत्वं ' यदागमाः ' ( प० ११ ) इति न्यायेन समाहितं भाष्ये ।

अत एव प्रत्येति प्रत्यय इत्यादिसिद्धिः, । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वात्सवर्ण-दीर्घे रूपासिद्धिः । यदुपसर्गनिमित्तकं कार्यमुपसर्गाश्रितं विशिष्टोप-सर्गनिमित्तकत्वात्तदन्तरङ्गम् । यत्तु न तथा तत्र पूर्वागतसाधननिमित्त-कमेवान्तरङ्गम् । अत एव ' न धातु ' ( १ । १ । ४ ) इति सूत्रे प्रेङ्गसिद्धौ चेत्यर्थः । उपसर्गार्थस्यान्तरङ्गत्वमुक्तरीत्या बोध्यम् । एव च पूर्वापस्थितान्तर्भूतार्थ-कनिमित्तकत्वात्सुडादेस्तत्त्वं बाह्यसाधनप्रयुक्तकार्यप्रत्ययनिमित्तकत्वाद्वित्वादेर्बाहिरङ्गत्वम् । अयमेव धातूपसर्गोः कार्यमन्तरङ्गमित्यस्य विषयः । अत एवैतत्प्रतिपक्षभूतमर्थं यदुपेत्या-दिना वक्ष्यतीति भावः । निमित्तः, निमित्तकः । सकृ इत्यवस्थाया सुडिति कैयटोक्तेरुक्त-रीत्याऽयुक्तत्वमिति ध्वनयन्नाह—संकृतीति । तत इति । एवं च सुट्कात्पूर्वं इत्यादि न वक्तव्यमिति भावः । पूर्वं ततः साधनयोग इत्युक्तार्थं द्रढयति—अत एवेति । पूर्वमुपसर्गयोगे तु प्रागेवान्तरङ्गत्वाणत्वसिद्ध्या शङ्काया एवाभावः । अज्ञानेन शङ्कायामपि तथा समाधेर्वाच्यत्वेन न्यायेन तत्साधनं व्यर्थमेव स्यादिति भावः । ननु त्रैपादिकेऽन्तरङ्ग-एतदप्रवृत्त्या पूर्वत्रैतिणत्वासिद्धत्वेन पुगेवाऽऽदाविति भाष्य युक्तमेव । किं च सरुयाकृततत्त्वेन पुकोऽपि तत्त्वम् । एव चोभयोरन्तरङ्गयोर्नित्यत्वात्पुगादौ । किं च तद्भाष्यप्रामाण्यात्तुरी-यात्तृतीयस्य प्राबल्यमिति चेन्न । तत्र पक्षे णिच एवाऽऽदौ दौर्लभ्यात् । एव च तन्निमित्तस्यैव सत्त्वेन तत्सिद्धिस्तदानीं तत्र पक्षे । सिद्धान्ते तु तद्विना साधनप्रत्ययासभवेन तेन तदाक्षेपेण तस्य भावार्थकत्वेन पूर्वमुत्पत्तिरिति न्यायं विना तत्सिद्धिरिति दिक् ।

एव भाष्यैसमते सूत्रसमतिमपि ध्वनयन्नाह—अत एवेति । उक्तार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथेति । उक्तार्थानङ्गीकार इत्यर्थः । अत्रोभयत्र द्विविधौद्यरीत्याऽन्तरङ्गत्वम् । षट्ठ्व्यस्तीत्यादावपीदमन्तरङ्गत्व बोध्यमिति न पूर्वविरोधः । नन्वेव न धात्वातिसूत्रभाष्यवि-रोधोऽन आह—यदुपेति । अत्रान्वयव्यतिरेकाभ्यामुपसर्गस्य तद्भावभावितामात्रेणापि निमित्तता बोध्या न तु सूत्रे तस्य तत्त्वेनोल्लेखोऽपेक्षित एवेत्याग्रहः । अत एव तत्र लादिसिद्धिरिति बोध्यम् । साक्षादर्थाश्रितत्वस्य सर्वत्राभावादाह—विशीति । समुदि-तोपेत्यर्थः । एवं चार्थवत्परिभाषयाऽर्थस्यापि निमित्तत्व बोध्यम् । यत्तु न तथेति । उपसर्गावयवर्णसंबन्धिकार्यमुपसर्गानाश्रितत्वेन सुतरा तदर्थाश्रित नेत्यर्थः । तत्र, तद्विषये । पूर्वा-गतेति । एव च पश्चादागतपदान्तरनिमित्तकस्य स्वट्ठ्वोढेत्यादौ नान्तरङ्गत्वमिति भावः । साधनेति । साधनप्रयुक्तप्रत्ययेत्यर्थः । एवेन भिन्नपदवाच्यकारकसंबन्धनिमित्तकव्यावृत्तिः ।

१ घ णत्व स्यादिति भा० । २ ड, घ्यसभवेन । सू० । ३ ड, धातुरायाथ० । ४ घ, ड, ०म् । यद्यस्ति ।

इत्यत्र गुणो बहिरङ्ग इति भाष्य उक्तम् । किं च पूर्वमुपसर्गयोगे धातु-  
पसर्गयोः समास ऐकस्वर्याद्यापत्तिरिति ' उपपदमतिङ् ' ( २ । २ ।  
१९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । भावार्थप्रत्ययस्यापि पूर्वमेवोत्पत्तिः ।  
अत एव ' णेरध्ययने ' ( ७ । २ । २६ ) इति निर्देशः संगच्छते । इदं  
च सामान्यापेक्षं ज्ञापकं भावतिङ्गोऽपि पूर्वमुत्पत्तेः । अन्यथा तत्र समा-  
सापत्तिः । तिङ्गि त्वतिङ्गिति निषेधान्न दोषो यदि भावतिङ्ग्युपसर्गयो-

उक्तमिति । न धात्वितिनिषेधस्यान्तरङ्गत्वमुक्तत्वेति भावः । यच्चितिप्रते दोषान्तरमाह—  
किं चेति । एत इति शेषः । समासे, सहेतियोगविभागेन कुगतीति वा । आदिनैकपद्य  
परिग्रहः । नन्वेवमप्यध्ययनमित्याद्यसिद्धिस्तत्र साधनप्रयुक्तप्रत्ययाभावादत आह—  
भावार्थेति । तदर्थककृतोऽपीत्यर्थः । पूर्वमिति । उपसर्गसङ्गशब्दयोगादिति शेषः ।  
एव च तत्राप्यन्तरङ्गत्वात्कार्यं उपसर्गयोग इति ततस्तत्कार्यमिति नाधिना धातोः समास  
इति भावः । नन्वेवमप्युक्तनिर्देशस्य सजातीयपेक्षज्ञापकत्वेन भावतिङ्गन्ते दोष एवात  
आह—इदं चेति । उक्तनिर्देशरूपमित्यर्थः । उत्पत्तेरित्यस्येष्टत्वादिति शेषः ।  
अन्यथा, पूर्वं तदुत्पत्त्यनङ्गीकारेणोपसर्गयोगे । तत्र, तद्विषये । धातुनोपसर्गस्येति शेषः ।  
वस्तुतो विशेषापेक्षत्वेऽपि न दोषस्तत्र तद्योगस्यैवाभावादित्याह—यद्गीति \* । अप्रदं

\* यदीतीत्यस्याग्रे च पुस्तकेऽय ग्रन्थ—एतेन विरुद्धपक्षद्वयप्रतिपादक भाष्यद्वय निबो विरु-  
द्धमित्यपास्तम् । भाष्यस्य पक्षाभेदस्यैव गृह्याभिमतत्वेन विरोधस्यैवाभावात् । तथा हि—उपपद-  
मिति सूत्रे गतिरित्यत्र चातिङ्प्रहणात्सुप्सुपेति निवर्त्य गतिकारकोपदानामितिपरिभाषां प्रत्याहयाय  
बधेतज्ज्ञाप्यते केनेदानीं समासो भविष्यति । समर्थेन । यद्येव धातुपसर्गयोरपि समासः प्राप्नोति  
पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेनेति । नैतदस्ति । पूर्वं धातु साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण ।  
साधनं हि क्रिया निर्वर्तयति । तामुपसर्गो विशिनष्टि । अभिनिर्वृत्तस्य चार्थस्योपसर्गेण विशेष  
ज्ञाप्यो वक्तुमित्युपपदमतिङ्गिति सूत्रे भाष्यम् । तदर्थस्तु—यद्येतादिति । अतिङ्गित्यस्य समासविशे-  
षणतया शब्देनोत्तरपदस्यानुपादानात्प्रश्नः । समर्थेनेति । उपपदस्य सुबन्तत्वेन सुविल्यनुवत्या वा  
पदविधित्वेन समर्थपरिभाषोपस्थानात् । यद्येवमिति । ततश्चैकस्वर्यादिप्रसङ्गः । न चातिङ्गित्यस्य  
पर्युदासत्वेन तिङ्भिन्नप्रत्ययान्तः समास इत्यर्थान्न दोषः । अपिपठिप्रतीत्यादौ प्रकृष्टा पठनेच्छेत्सा-  
द्यथके सन्नन्तधातुनोपसर्गस्य समासापत्तेर्दुर्वारत्वात् । तिङ्भिन्न. कृतप्रत्यय एवेत्यत्र न मानम् ।  
तथा सत्युपपद कृदित्येव सूत्रयेत् । धातुप्रकृतिर्कृत्वातिरिक्तसाजात्यस्य कृतस्वप्यभावाच्च । पूर्वं  
धातुरिति । उपसर्गेण, तत्संज्ञकेन शब्देन । ततस्तयोः सामर्थ्यमास्ति, उपसर्गार्थविशिष्टायाः  
क्रियायाः साधनेन योगात् । नैतदस्तीति । पूर्वं धातुरुपसर्गेणेतन्नास्तीत्यर्थः । अन्यथा  
नैष दोष इत्येव वदेत् । पूर्वं धातु साधनेनेति । साधनेन, कर्तृकर्मरूपकारकेण ।  
साध्यत्वेन प्रतीतस्य पूर्वं साधनाकाङ्क्षोदयेन तत्सम्बन्धस्यान्तरङ्गत्वात् । ततश्च  
पूर्वं साधनाभिवायिप्रत्ययोत्पत्तिः । पश्चात्साधनसंसृष्ट एव धातुरुपसर्गेण युज्यते न केवळ  
इति तयोः समासाभावः । तत्र कृदन्तेन समासो भवत्येव तिङ्गन्तेन त्वतिङ्गितिनिषेधान्न



## गोऽस्तीत्यलम् ।

बोध्यम्—नेर्विशः सृष्ट्येत्यादेर्ने परस्वयोग्याद्विशोः संपूर्वत्वयोग्यात्पृचेरित्यादिक्रमेणार्थः । गोसदाय इत्यादावपि सद्योत्यार्थविशिष्टाद्धातोः कर्मणि बोद्ध उपपदेऽर्ण ततः समा योगे गतिसमास उपपदेन योग उपपदसमासो बोध्यः । सर्वथाऽपि भिन्नपदवाच्यकारकबोधक-  
षदसंबन्धस्तूक्तप्रनाड्योपसर्गसंज्ञकशब्दयोगोत्तरमेव संप्रसारणाच्चेति सूत्रस्थोक्तमाध्यप्रामाण्या-  
दिति तत्त्वम् । तदाह—अलमिति ।

भवति । पूर्वं धातोः साधनेन योगे युक्तिमाह—साधनं हीति । क्रिया, तत्प्रतीतिम् । निर्वर्तयति, निष्पादयति । न च धातोर्भू सत्तायामित्यादितो व्याकरणाद्गृहीतशक्तिकस्य तत्प्रतीतिः कारकसंबन्धे विनाऽपि सिद्धैवेति वाच्यम् । साध्यत्वविशिष्टस्य कारकसंबन्धसाध्यत्वात्क्रियान्तराकाङ्क्षानुन्था-  
पकतावच्छेदकवैजात्यरूपमपि साध्यत्व पश्चादेव ज्ञायते । पाक इत्यादौ क्रियान्तराकाङ्क्षात्थापनस्य साधनसंबन्धोत्तरमेव जायमानत्वेन तदनुत्थापनस्यापि तदुत्तरकालिकस्यैव प्रहीतुमौचित्यात् । उपसर्गस्य तु क्रियागतविशेषयोकत्वरूपक्रियायोगनिमित्तत्वम् । लकाराणामपि कारकार्थकतायाः शान्नासिद्धत्वात्तत्संबन्धेनैव साध्यत्वबोध उपसर्गसंबन्धे समासो दुर्वारः । न च काल्पनिक तत् । विभक्तैरपि काल्पनिकमेव तादित्यर्थस्यार्थवत्सूत्रे भाष्यकैयटयो स्पष्टत्वादिति वाच्यम् । तेषा भावा-  
र्थकत्वस्यापि सत्त्वेन तत्प्रतीतित्वे नियामकत्वात् । किं चात्र साधनस्य संख्याविशिष्टत्वनियमात्त-  
न्निमित्तकतिङ्पूर्वमिति न दोषः । अत एवाध्यैयातामित्यादौ लावस्थायामाव्यपि पूर्वं न वृद्धिः । साधनकार्यस्याऽऽताम एव पूर्वं प्रवृत्तेः । साध्यस्य साधकाङ्क्षानैयत्येनान्तरङ्गत्वात् । ततो वार्णा-  
दाङ्गमितीयोडि यणि वृद्धाविष्टसिद्धेः । न चैवमपि परमगार्ग्यस्यापत्यमित्यर्थे परमगार्ग्यायण इत्यादौ परमसृष्टस्यापि गार्ग्यस्य केवलस्यापत्येनैकार्थीभावाद्गार्ग्यशब्दादेव फल, अत एव पकाराकारस्य न वृद्धिरिति येन विधिस्तदन्तस्येति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्, तद्वीत्याऽत्रापि धातूपसर्गयोः समासो दुर्वार, तिङ्ार्थरहितेनापि सामर्थ्यसत्त्वादिति वाच्यम् । तिङ्ा कर्त्रादियोकत्वेन विशिष्टस्य धात्व-  
र्थतया तस्य वक्तुमशक्यत्वात् । ता, साध्यत्वेन गृहीताम् । उपसर्गं, तत्संज्ञकशब्दः । द्योतकत्वेन विशिनष्टीत्यर्थः । तत्र युक्तिमाह—अभिनिर्वृत्तस्य चेति । निष्पन्नज्ञानस्येत्यर्थः । विशेषः, विशेषणं प्रकर्षादिः । उपसर्गेण, प्रजयतीत्यादौ । शक्यो वक्तु, शक्यो द्योतयितुम् । बोद्धारं प्रतीति शेषः । नन्वेव सन्स्करतुरित्यादौ सुटोऽन्तरङ्गत्व सुट्कात्पूर्वं इति भाष्योक्त भज्येतेति चेन्न । तत्र भाष्य एव समाहितत्वात् । एव हि तत्र भाष्यम् । धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम् । पूर्वं धातुपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेनेति । नैतत्सारं पूर्वं धातुः साधनेनेत्यादिविशेषः शक्यो वक्तुमित्यन्तमुक्त्वा सत्यमेवमेतत् । यत्त्वसौ धातूपसर्गयोरभिसंबन्धस्तमभ्यन्तरं कृत्वा धातुः साधनेन युज्यते । भवश्य चैतदेव वक्तव्यम् । यो हि मन्यते पूर्वं धातु साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेति । भास्यते गुरुणैत्यकर्मकं, उपास्थते गुरुरिति केन सकर्मकं स्यादिति । अस्यायमर्थः—सत्यमित्यादिना पूर्वं धातुः साधनेनेत्यङ्गीकृत्यान्तरङ्गत्व सुटो दर्शयति । धातूपसर्गयोरभिसंबन्धः । तत्संबन्धकृतत्वेन योऽस्तत्तवाभिमतस्त केवलधातुरेवाभ्यन्तरं कृत्वा स्वार्थत्वेनाङ्गीकृत्य तस्य साध्यत्वबोधाय कारकेण युज्यते तत् उपसर्गेण । एव च सकृत्स् इत्यस्यामवस्थायामन्तरङ्गतार्थकसशब्दनिमित्तत्वाद्द्वित्वाय-  
पक्षयाऽन्तरङ्गः सुडित्यर्थः । एव च प्रकृष्टजयार्थकधातोः प्रत्यये कृते पश्चाद्योतकोपसर्गसंबन्ध इति बोध्यम् ।

यत्तु विशेषापेक्षात्सामान्यापेक्षमन्तरङ्गं विशेषापेक्षे विशेषधर्मस्या-  
धिकस्य निमित्तत्वात् । यथा 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' ( ७ । २ । ६६ )  
इत्यत्र रुदादित्वं सार्वधातुकत्वं च । तत्र सार्वधातुकत्वज्ञानाय प्रकृते-  
र्धातुत्वज्ञानं प्रत्ययस्य प्रत्ययत्वज्ञानं चाऽऽवश्यकमिति यासुडन्तरङ्गः ।  
एतेन यत्, 'अनुदात्तङितः' ( १ । ३ । १२ ) इति सूत्रे कैयटेनोक्तं  
लमात्रापेक्षयाऽन्तरङ्गास्तबादयो लकारविशेषापेक्षत्वाद्बहिरङ्गाः स्यादथ  
इति तत्परास्तम् । विशेषापेक्षत्वेऽपि तस्य सामान्यधर्मनिमित्तकत्वा-  
भावेन तत्त्वस्य दुरूपपादत्वाद् । परनिमित्तकत्वेन स्यादीनां बहिरङ्ग-  
त्वाच्चेति तन्न । विशेषस्य व्याप्यत्वेन व्यापकस्यानुमानेनोपस्थितावपि  
तस्य निमित्तत्वे मानाभावेनाधिकधर्मनिमित्तकत्वानुपपादनात् । माष्य  
एवंविधान्तरङ्गबहिरङ्गभावस्य काप्यनुल्लेखाच्च ।

दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—यत्त्विति । अधिकस्य, सामान्यधर्मतः । कत्वं चेति ।  
निमित्तमिति शेषः । तत्र सामान्यधर्मनिमित्तत्वमप्यस्तात्याह—तत्रेति । उक्तसूत्र इत्यर्थः ।  
धातो. प्रत्ययस्य चाधिकाराद्घातुविहितप्रत्ययसंज्ञकतिङोदेस्तत्संज्ञाविधानादिति भावः ।  
प्रकृतेः, रुदादेः । प्रत्ययस्य, तिङः । इतिर्हेतौ । तथा च यत्सामान्यधर्मापेक्षशास्त्रापेक्षया  
काश्चिद्विशेषधर्मोऽधिभो निमित्तकोटौ यत्र विशेषापेक्षशास्त्रेऽस्ति तत्ततो बहिरङ्गमिति  
फलितम् । एव चेद्बहिरङ्ग इति यासुटस्तत्त्वं सिद्धम् । तदाह—यासुडिति । एतेनेत्य-  
स्यार्थमाह—विशेषेति । तस्य, स्यादिविधेः । तत्त्वस्य, बहिरङ्गत्वस्य । नन्वेवमनुदात्त-  
ङित इति प्रकरणस्य लादेशविधेकवाक्यतापक्षे यदि पुनरित्यादिना भाष्योक्ते लाव-  
स्याया स्यादथ इति पक्षे विहितविशेषणत्वेन निर्वाहेऽपि फलान्तरे बह्वपेक्षत्वेन लादेशानां  
बहिरङ्गत्वात्कथं स्यादिषु निर्वाहोऽत आह—परेति । तथा च प्रागुक्तीत्या विपरीत  
तत्त्वं न तु तथा । बह्वपेक्षत्वेन तत्त्वं तु नैवेत्युक्तमिति भावः । अनुमानेनोपेति ।  
तत्र तस्यैव सभवादिति भावः । तस्य, व्यापकस्य । मानेति । शब्दानुयातत्वादातिप्रस-  
ङ्गादेरभावाच्चेति भावः । अधिकेति । एकैक पद्व्यन्तमुभयत्र निमित्तमिति समनिमि-  
त्तकत्वात्प्रकारान्तरं तु नैवात्रेति भावः । ननु सभवात्रेण तस्य निमित्तत्वमूरी क्रियते रूपा-  
सिद्ध्यर्थमन्यथानुपपत्त्याऽत आह—माष्य इति । यासुट्नु नित्यत्वात्तत्र बोध्यः ।  
अर्दीतौ तु यासुटि कृतेऽनपृक्तत्वेनाप्राप्त्याऽनित्याविति तत्त्वम् ।

यत्तु मतुप्सूत्रे भाष्ये पञ्च गावो यस्य सन्ति स पञ्चगुरित्यञ्च मतुप्प्राप्नोतीत्याशङ्क्य प्रत्येकमसामर्थ्यात्समुदायादप्रातिपदिकत्वात्समासात्समासेनोक्तत्वादिति सिद्धान्तिनोक्ते नैतत्सारमुक्तेऽपि हि प्रत्ययार्थ उत्पद्यते द्विगोस्तद्धितो यथा पाञ्चनापितिरिति पूर्वपक्षयुक्तिः । 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ( ४ । १ । ८८ ) इति लुग्विधानात्तद्धितार्थद्विगोस्तद्धितो भवति पञ्चगुशब्दश्च द्विगुरिति तदाशयं कैयटः । ततो द्वैमातुरः पाञ्चनापितिः पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इत्यादौ सावकाशद्विगोर्बहुव्रीहिणा प्रकृते परत्वाद्वाध इत्याशयेन नैव द्विगुः कस्तर्हि बहुव्रीहिरिति सिद्धान्तिनोक्तं तत्रैवकाशमजानानोऽपवादत्वाद्विगुः प्राप्नोतीति पूर्वपक्षी । अन्यपक्षार्थे सुबन्तमात्रस्य विधीयमानबहुव्रीहेः संख्यायास्तद्धितार्थे विधीयमानो द्विगुर्विशेषविहितत्वाद्वाधकः प्राप्नोतीति कैयटः । ततः सिद्धान्त्येकदेश्याह । अन्तरङ्गत्वाद्वहुव्रीहिः । काऽन्तरङ्गता, अन्य-

नन्वन्यहेत्वसिद्धिर्मतुप्सूत्रे भाष्य एव तस्य स्पष्टत्वादित्याशङ्कानिरास ध्वनयन्दूषयितुं तद्भाष्यमनुवदति—यच्चित्यादिना कैयट इतीत्यन्तेन । त्याशङ्क्येति । तदाशङ्कां श्रुत्वा । ननु किं समासादापाद्यतेऽथ वा वाक्यादन्येऽपि किं प्रत्येकमुत समुदायात्तत्र न मध्य इत्याह—प्रत्येकमिति । असामर्थ्यात्, मिथोपेक्षत्वेन । नान्त्य इत्याह—समुदेति । नाऽऽद्य इत्याह—समेति । नेति शेषः सर्वत्र । हि, यतः । पञ्चाना नापितानामपत्यमिति तद्धितार्थद्विगोरपत्य इति अनपत्य इति निषेधान्न लुक् । यद्यपि तद्धितार्थ इति विषयसप्तमी सिद्धान्ते न तु वाच्य इति, अत एव तत्र तद्धितस्तथाऽपि पूर्वपक्षी वाच्य इत्येवार्थं मन्यत इति न दोषः । पूर्वपक्षयुक्तिरित्यग्रे द्विगोरिति पाठः । विधानात् । ज्ञापकादिति शेषः । अन्यथोक्तार्थत्वात्तदभावे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तद्धितार्थद्विगोरिति पाठः । नन्वेवमपि पञ्चगुशब्दो बहुव्रीहिर्न द्विगुरत आह—पञ्चेति । समासान्तस्त्वानित्यत्वान्न । द्विगोर्लुगिति मतोर्लुगिति तु न । अप्राग्दीव्यतीयत्वादिति भावः । तदाशयं, पूर्वपक्षयुक्त्याशयम् । कैयट इति । अस्याऽऽहेति शेषः । एवमग्रेऽपि । उक्तस्य पूर्वपक्षयुक्तिस्वं ध्वनयति—तत इति । अस्योक्त इत्यत्रान्वयः । सावकाशेति । तत्राप्राथम्यान्तत्वेन बहुव्रीह्यप्राप्तेः । प्रकृते, पञ्चगुरित्यादौ । परत्वादिति युक्तः पाठः । तमिति । द्वैमातुरः पाञ्चनापितिरित्यादिरूपमुक्तमित्यर्थः । ननु द्विगोरप्यन्यतद्धितार्थे सावकाशत्वात्कथं तत्त्वमतोऽपवादत्वमुपपादयति—अन्येति । तथा चापवादत्वादित्यस्य विशेषविहितत्वमाश्रादित्यर्थं इति भावः । सिद्धान्त्येकेति । किञ्चिदशे तत्त्वं किञ्चिदशेऽतत्त्वमिति भावः ।

पदार्थं बहुव्रीहिर्विशिष्टेऽन्यपदार्थं द्विगुस्तस्मिंश्चास्य तद्धितेऽस्तिग्रहणं क्रियत इति । अधिकास्त्यर्थापेक्षमत्वर्थनिमित्तो द्विगुर्बहिरङ्ग इति कैयट इति ।

नैषा सिद्धान्त्युक्तिरेतावताऽप्यपवादत्वाहानेः । अचू सामान्यापेक्ष-  
णो विशिष्टसवर्णाजपेक्षदीर्घेण बाधदर्शनात् । किं चोक्तरीत्या परत्वे-  
नैव बाधसिद्धेः । किं चात्राधिकापेक्षत्वेनैव बहिरङ्गत्वं न केवलविशे-  
षापेक्षत्वेनेति नैतद्भाष्यारूढं विशेषापेक्षस्य बहिरङ्गत्वम् । अत एव

पूर्वोक्तेरेकदेश्युक्तित्व त्ववकाशाज्ञानादेव । अन्यपदार्थे, तन्मात्रे । विशिष्टे, विशे-  
षणविशिष्टे । ननु कथं तत्र द्विगुः, तद्धितार्थ इत्येव हि तत्रोक्तमत आह—तस्मि-  
न्निति । अस्य द्विगोरर्थद्वारा निमित्तभूते तस्मिंस्तद्धिते मतुब्धिघायकेऽस्तिग्रहणं क्रियत  
इत्यर्थः । अधिकेति । बहुव्रीहिनित्तान्यपदार्थापेक्षयाऽधिको योऽस्त्यर्थस्तदपेक्षो यो  
मतुस्तदर्थनिमित्तक इत्यर्थः । इति कैयट इतीति । अस्य बहुव्रीहिस्वीकर्तृत्वेन  
सिद्धान्तित्वप्रकारोक्त्युक्तेरेकदेश्युक्तित्वमिति भावः ।

एवमनूद्य खण्डयति—नैषेति । यत्तु तत्सूत्रे भाष्ये ततोऽन्तरङ्गत्वादित्यादिकमाहैषा  
सिद्धान्त्युक्तिर्नैत्यर्थः । एतावता, अधिकार्थापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वेऽपि । प्यपेति । पूर्व-  
पक्षयुक्तापवादत्वाहानेरित्यर्थः । तद्वीत्यैवाधिकापेक्षत्वेऽपि बाधकत्वमित्येतावन्मात्रेण वा ।  
तत्र हेतुमाह—अजिति । विशिष्टेति । विशिष्टोऽधिको यः सर्वणस्तत्पदार्थप्रवृत्ति-  
निमित्तं साधण्यं तद्विशिष्टो योऽच् तदपेक्षेत्यर्थः । यद्वा विशिष्टस्त्वमेवाऽऽह—  
सवर्णोति । अन्तरङ्गबहिरङ्गभावस्तु नात्र, सिद्धान्ते संज्ञाकृततत्त्वानाश्रयणादिति बोध्यम् ।  
इदमभ्युपेत्य । वस्तुतोऽपवादत्वमेव नास्तीत्याह—किं चोक्तेति । सावकाशत्वस्य तत्रो-  
क्तिरूपयेत्यर्थः । एव चान्तरङ्गत्वपर्यन्त धावनं व्यर्थमेवेत्यासिद्धान्तोक्तिरेवेयं प्रकारांश इति  
भावः । नन्वस्यैकदेश्युक्तित्वेऽप्यनेन सामान्यापेक्षे विशेषापेक्षादन्तरङ्गमिति सूचितमेवा-  
न्यथोक्तिसंभव एव न स्यात् । एव च कैयटदीक्षिताद्युक्तिर्युक्तैव । अत आह—किं  
चात्रेति । द्विगावित्यर्थः । अधिकेति । अधिकनिमित्तत्वेनेत्यर्थः तस्यापि प्राक्खण्डि-  
तत्वात् । यद्वा, एकदेश्युक्तित्वेन तदनुरोधित्वमेवास्येति यथाश्रुतमेव । रङ्गत्वमिति ।  
अस्तीति शेषः । केवलेति । अधिकापेक्षत्वशून्येत्यर्थः । विशेषेति । केवलेत्यादिः ।  
एवं च भाष्यस्योक्तिसंभव इति न तथाऽङ्गीकार इति भावः । ननुभयसत्त्वे तदेवाभिमत  
नैदमत्र किं मानमत आह—अत एवेति । तदनभितत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा तदप्युक्तं

१ ख. घ. ङ. 'दि स आहे' । २ ड. 'व सवर्णाचो विशेषणम् । अ० । ३ क. ङ. 'तं तु  
तदत्रैव किं । घ. न तत्रेद किं ।

सुबन्तसामान्यापेक्षो बहुव्रीहिस्तद्विशेषापेक्षो द्विगुरिति नोक्तं भाष्ये । न चार्थकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणादिदमयुक्तम् । एकदेश्युक्तिव्येनादोषात् । अत एवास्तिग्रहणं नोपाध्यर्थं किं त्वस्तिशब्दान्मतुबर्थामिति त्वदभिमतं बहिरङ्गत्वमपि द्विगोर्नास्तीति प्रतिपाद्य सिद्धान्तिना मत्वर्थे द्विगोः प्रतिषेधो वक्तव्य इति वचनेनैतत्सिद्धमित्युक्तम् । अत एव 'तदोः सः सौ' ( ७ । २ । १०६ ) इति सूत्रेऽनन्ययोरिति चरितार्थम् । अन्यथा प्रत्ययसामान्यापेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वादन्यस्यात्वेऽनन्यस्यैव सत्त्वे सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । 'पादः पत्' ( ६ । ४ । १३० ) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोरप्येतदन्तरङ्गत्वाभाव एव सूचित इति सुधियो विभावयन्तु ।

नन्वेवमसुसुवदित्यत्र लघूपधगुणादुवङ्कोऽल्पनिमित्तत्वाभावादुवङ्

स्यात्, प्रथमोपस्थितत्वात्तदेव वोक्त स्यादिति भावः । इदम् । इदमपि तथा बहिरङ्गत्वसंयोजनमपि । अत एव, एकदेश्युक्तित्वादेव । नोपेति । तदभावेऽपि शब्दशक्तिस्वाभाव्याद्बहुव्रीहिवदस्यर्थविषयकत्वलाभादिति भावः । एतुबिति । अस्तिमानित्यादौ । त्वदभीति । सिद्धान्त्येकदेश्यभीत्यर्थः । तथा सति तयोः समत्वादिति भावः । अपिरपवादत्वसमुच्चायकः । सिद्धान्तिना । तत्त्वेन, तदाभिमतैकदेशिना । एतत्, पञ्चगुरित्यादिरूपम् । अस्य सिद्धान्तत्वे तूक्तरीत्या परत्वेनैव निर्वाहे वचनाङ्गीकारो व्यर्थ एव स्यात् । तस्मादुक्तस्थले सावकाशद्विगोः परत्वात्तत्र बहुव्रीहिणा षाध इति तत्त्वमिति भावः । सूत्रानारूढत्वमपि तस्याऽऽह—ऽत एवेति । अन्यथा, तदङ्गीकारे । प्रत्ययेति । विभक्त्यर्थः । भाष्याद्यनारूढत्वमपि द्रव्यत्वाह—एतद् इति । एतदन्तरङ्गेति । सामान्यापेक्षत्वरूपान्तरङ्गेत्यर्थः । तत्र हि निर्दिश्यमानपरिभाषाप्रयोजनकथनावसरेऽरुदितामित्यादावित्तामाद्योः सप्रधारणायां परत्वादित्माह—इत्यान्तरङ्गत्वं तामादीनामुक्तम् । कैयटेन च प्राग्लादेशेऽप्यो धात्वधिकारात्तेषां तत्त्वमुपपादितम् । तत्सत्त्वे, तु तदधिकारेऽपि तेषां तत्त्व सिद्धमेवेति तथोक्तिरफला स्यादिति भावः ।

एवमिति । प्रागुक्तज्ञापकद्वयेन जाततत्त्वत्वात्प्राप्तिकयोरिव यथासिद्धान्तरङ्गत्वादेरङ्गीकार इत्यर्थः । तत्राऽऽद्यज्ञापकेन जातस्येत्यस्येव पूर्वविहितत्वाद्यल्पनिमित्तत्वयोर्लाभः । अल्पनिमित्तत्वमपि सख्यया लब्धम् । येन विधिरितिसूत्रस्थोक्तभाष्यप्रामाण्याद्भट्टकत्वेनेत्यस्यापि लाभः । अल्पनिमित्तस्य तत्त्वे परनिमित्तस्यैवाभावेनानैमित्तिकस्य तत्त्व कैमुतिकन्यायेन सिद्धमिति तस्यापि लाभः । द्वितीयज्ञापकेन प्रक्रियाक्रमेण पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वस्य लाभ इति बोध्यम् । इत्यत्र, इत्यादौ । निमित्तेति । इदमुपलक्षणं प्रागुक्तप्र-

न स्यादिति चैत् । न । तत्रान्तःकार्यत्वरूपान्तरङ्गत्वसत्त्वात् । अन्तः-  
कार्यत्वं च पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वमङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वात् ।

इदमन्तरङ्गत्वं लोकन्यायसिद्धमिति मनुष्योऽयं प्रातरुत्थाय प्रथमं  
स्वशरीरकार्याणि करोति ततः सुहृदां ततः संबन्धिनाम् । अर्थानामपि  
जातिव्यक्तिलिङ्गसंख्याकारकाणां बोधक्रमः शास्त्रकृतकल्पितस्तत्क्रमेणैव  
च तद्बोधकशब्दप्रादुर्भावः कल्पित इति तत्क्रमेणैव तत्कार्याणीति पट्व्ये-  
त्यादावन्तरङ्गत्वात्पूर्वं पूर्वयणादेशः परयणादेशस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्ध-  
त्वादित्यनेन 'अचः परस्मिन्' (१।१।५७) इतिसूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ।  
तदपि युगपत्प्राप्तौ पूर्वप्रवृत्तिनियामकमेव यथा पट्व्येत्यत्र पदस्य विभ-  
ज्यान्वाख्याने । न तु जातस्य बहिरङ्गस्य तादृशोऽन्तरङ्गोऽसिद्धतानिया-

करमात्रस्य । प्रत्युत गुणस्य प्रक्रियाक्रमेण प्रागुक्त तदस्तीति स एव स्यात् । तत्र,  
उवाङ् । अन्तःकार्यत्वस्यानेकविधत्वात्प्रागुक्तरीत्या तस्य तत्त्वस्य दुर्वचत्वाच्चाऽऽह—  
अन्तःकार्यत्वं चेति । पूर्वोपेति । लौकिकप्रयोगीयोच्चारणक्रमेण पूर्वश्रुतनिमित्तक-  
त्वमित्यर्थः । यथाश्रुते तस्य प्रागुक्तत्वेन प्रक्रियाया गुणनिमित्तस्यैव प्रागुपस्थित्या  
चासगतिः स्पष्टैव । ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रागुक्तमपि स्पष्टत्वाय नियामकमाह—अङ्गेति ।

नन्वस्य पूर्ववन्न ज्ञापकसिद्धत्वम् । किं चाच्चाऽऽहग्रहणसिद्धार्थेन न निर्वाहस्तत्र प्रक्रियया  
पूर्वोपस्थितत्वस्यैव धर्मिग्राहकमानलब्धत्वात् । पट्व्येत्यादौ यद्यपि तत्सम्भोऽस्ति तथाऽपि  
तदप्रवृत्तिः । परयणादेशाभावापत्तेः । तत्रासिद्धत्वस्य बोध्यताप्रयोजकत्वात् । यत्रान्तरङ्गे कृते  
बाहिरङ्ग न तत्रैव तद्विषयत्वस्य तन्मानलब्धत्वाच्च । प्रादुर्भवदित्यादावगतेश्च । एव च कथ-  
मेतत्सत्त्वमत आह—इदमिति । शरीरेति । तस्य सुखादिसाक्षात्कारायतनत्वात् ।  
सुहृदामिति । तस्य प्रथमोपस्थितिहेतुत्वात् । संबन्धिनामिति । अवश्यकर्तव्यत्वा-  
दिति भावः । कल्पित इति । अनेन वस्तुतो युगपदुपस्थितिः सूचिता । अनेन प्रका-  
रेण तु निमित्तस्य प्रागुपस्थित्याऽन्तरङ्गत्वप्रतिपादनम् । दृष्टान्तेऽप्येवमेव । तत्क्रमेणैव  
चेति । बोधक्रमेणैव चेत्यर्थः । पट्व्येत्यादाविति । विभज्यान्वाख्यान इति भावः ।  
अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वात् । पूर्वं पूर्विति । परयणादेशात्पूर्वमित्यर्थः ।  
बाहिरङ्गेति । पश्चादुपस्थितनिमित्तकत्वेनेत्यर्थः । असिद्धत्वात्, प्रागप्राप्ते । इत्यने-  
नेति । ग्रन्थेनेत्यर्थः । तदपीति । तत्र भाष्ये स्पष्टमुक्तमिदमन्तरङ्गत्वमपीत्यर्थः ।  
युगपदिति । प्रादुर्भवदित्यादाविति भावः । पूर्विति । अन्तरङ्गस्येत्यादिः । अत्र दृष्टान्त  
माह—यथेति । पट्व्येत्यत्र, पट्व्येत्यादौ । एवेनोभयोरुभयं व्यवच्छेद्यमाह—न त्विति ।

मकं प्रागुक्तलोकन्यायेन तथैव लाभादिति 'वाह ऊह' (६।४।१३२) सूत्रे कैयटे स्पष्टम् । अत एव वास्वार्त्त्यादौ बलि लोपो यणः स्थानिवत्त्वेन वारितोऽचः परस्मिन्नित्यत्र माष्यकृता । क्रमेणान्वाख्याने तूक्तोदाहरणे पूर्वप्रवृत्तिकत्वमप्यन्तरङ्गत्वं बहिरङ्गस्यासिद्धत्वमपि निमित्ताभावादप्राप्तिरूपं बोध्यम् ।

यत्त्वेवंरीत्या पूर्वस्थानिकमप्यन्तरङ्गमिति तच्चिन्त्यम् । स्रजिष्ठ इत्यादौ विन्मतोर्लुकि टिलोपस्यापवादविन्मतोर्लुक्प्रवृत्त्या जातिपक्षाश्रयणेन तादृशे, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपे तद्भाष्योक्ते कर्तव्ये । \* तत्रापीष्टसिद्धेः सत्त्वादाह—प्रागुक्तेति । मनुष्योऽयमित्यादिसंबन्धिनामित्यन्तेत्यर्थः । तस्य युगपदुपस्थित्यादिविषयत्वात् । एवं चानन्तरं यदि बहिरङ्गप्राप्तिस्तर्हि भवत्येव तत्, अन्यथा नेति दृष्टान्ततो लब्धम् । न त्वन्यत्रैव क्वचित्स्वप्रवर्तकं क्वचित्स्वनिवर्तकं तदितीति मावः । अत एवेति । तस्य तत्र तदनियामकत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथाऽसिद्धत्वाद्धारणे तदसंगतिः स्पष्टैव । न चैवमपि प्रागुक्तीत्याऽसिद्धमित्यस्याः प्रवृत्तिर्दुर्वीरोति वाच्यम् । परनिमित्तकत्वेनोभयोः समत्वेनातत्त्वात्, प्रकारान्तरस्याभावाच्च, प्रत्युत पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वस्य यणि सत्त्वाच्च । न पदान्तेति निषेधस्तु न, स्वरदीर्घयलोपेष्विति निषेधादिति मावः । नन्वेवमपि क्रमेणान्वाख्याने कथ परिभाषया निर्वाहो भाष्याद्युक्तोऽत आह—क्रमेणेति । उक्तोदाहरणे, षड्येत्यादौ । प्रादुद्भवदित्यादौ तूभयथाऽपि प्रागुक्तीतिरेवेति बोध्यम् । पूर्वप्रेति । असदिग्धप्रथमप्रेत्यर्थः । 'पूर्वयणादेशस्य बोध्यम् । तत्र कर्तव्ये परयणादेशस्य' इति शेषः । द्प्रप्राप्तिरिति । तदानीमित्यादि । एवं चोक्तमाष्यस्य साधारण्येन युगपत्क्रमेण वीपस्थितिविषयत्वेऽप्यन्तरङ्गप्रवृत्त्युत्तरबहिरङ्गप्रवृत्तिविषयत्वमन्त्येन तु बहिरङ्गप्रवृत्त्युत्तरान्तरङ्गप्रवृत्तिविषयत्वमिति नैवव्यवच्छेद्यपरप्रागुक्तग्रन्थविरोधः । अत्रान्तरङ्गत्वं न प्रागुक्तरूपमसम्भवात् । पूर्वप्रवृत्तिकत्वेन तु न तत्त्वम् । अङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वात् । किं तु पूर्वस्थितनिमित्तकत्वरूपम् । अत एव तुः प्रयुक्तः । पूर्वत्व च यथाकर्थंचित् । तस्य साधारणत्वात् । अत एव दृष्टान्तसंगतिः । दृष्टान्तेऽप्यत्र पक्षे क्रमेणोपस्थितावप्यासत्तिवशादेव पूर्व पूर्व तत्तदुपस्थितिरिति बोध्यम् ।

दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—यत्त्विति । स्रजिष्ठे स्रग्विन्दाब्दान्मतुप् । लुकीति । विन्मतोरिति विनो लुकि सतीत्यर्थः । यद्वा, आदिना गविष्ठ इत्यादिपरिग्रहाद्यथाश्रतमेव । सूत्रेण तेनेति शेषः । अग्रे तु तस्मिन्नपरमेव । टिलोपेति । स्रज इति मावः । ननु विषयभेदेन टिलोपस्य भिन्नत्वात्पूर्वटिलोपस्य तेन बाधेऽप्यपरबाधः कथमत आह—जातीति ।

\* इ. पुस्तके—भसिद्धतानियामकत्वेऽपि इति पाठान्तरम् ।

वारणप्रयासस्य ' प्रकृत्यैकाच् ' ( ६ । ४ । १६३ ) इतिसूत्रप्रयोजन-  
खण्डनावसरे भाष्यकृतकृतस्य नैष्कल्यापत्तेः । त्वदुक्तीत्या विन्मतोर्लुको  
बहिरङ्गासिद्धत्वेनानायासतस्तद्वारणात् । भाष्य ईदृशरीत्या बहि-  
रङ्गासिद्धत्वस्य क्वाप्यनाश्रयणाच्च । परिभाषायामङ्गशब्दस्य निमित्तपर-  
त्वाच्च ।

इयं चोत्तरपदाधिकारस्थबहिरङ्गस्य नासिद्धत्वबोधिकेति ' इच एका-  
चोऽम् ( ६ । ३ । ६८ ) इतिसूत्रभाष्ये पूर्वपक्ष्युक्तिरिति सा नाऽऽद-  
र्तव्या । परंतप इत्यादावनुस्वारे नासिद्धत्वं मुमस्त्रिपाद्यां तदप्रवृत्तेः ।

अनेपेक्षितविषयभेद टिलोपशास्त्र लुक्का बाध्यते । तन्न्यायस्य तथैव स्वरूपात् । तथा च  
नाप्राप्ते टिलोप आरम्यमाणः स इति न्यायसंचारः । प्रयासेति । तस्य स्वरसतो लामा-  
दिति भावः । कृतस्येति । प्रकृत्यैकाजिति सूत्र इति भावः । बहिरिति धर्मपरम् ।  
एवमग्रेऽपि । तत्र प्रयासपदोक्तेरत्र तद्विपक्षमाह—अनायासत इति । तद्वारणा-  
दिति । प्राप्तपुनष्टिलोपवारणसमवादित्यर्थः । ननूपायस्योपायान्तरादूषकत्व उपाया इत्युप-  
येति च हर्युक्तेरत आह—भाष्य इति । नन्वेवमप्यप्रतिषिद्धमतुमतमिति न्यायेन तद-  
प्यस्त्वत आह—परीति । तत्र तस्य तत्परत्वस्य प्रतिपादितत्वाच्चेत्यर्थः ।

इयं चेति । असिद्ध बहिरङ्गमिति चेत्यर्थः । पूर्वपक्ष्युक्तिरिति । पूर्वपक्षिण  
उक्तिरित्यर्थः । इति, एवरूपा । तत्र योक्तिः सा पूर्वपक्षिण इति हेतोर्नाऽऽदर्थव्येत्यन्वयः ।  
समासेऽप्युद्देश्यविषयभावप्रतीतिर्नासगतिः । तत्र हि कथं भाव्यमिहेति प्रश्ने श्रियमन्यमिति  
भाव्यमिति सिद्धान्त्युक्तौ स्वमोरिति लुक्कुतो नेति पूर्वपक्ष्युक्तौ नाप्राप्ते लुक्क्यम्बिधेरस्याऽऽ-  
रम्भात्सुपो धात्वितिवत्स्वमोरित्यस्याप्यनेन बाध इति बाध्यसामान्यचिन्तया सिद्धान्त्युक्तौ  
बाध्यविशेषचिन्तयैतद्विषय आद्यस्य नाप्राप्तिर्नान्त्यस्येति वैषम्यमिति तदुक्तौ पूर्वस्थितनि-  
मित्तकमन्तरङ्ग परस्थितनिमित्तक बहिरङ्ग पूर्वत्वादि च यथाकथंचिदित्याशयिकाया तत्रा-  
प्यसिद्ध बहिरङ्गमिति निर्वाह इति सिद्धान्त्युक्तौ नैवेहेत्तरपदाधिकारे विज्ञमतु शक्या  
द्विषतपः परतप इत्यत्र हि दोषः स्यात् । तस्माच्छ्लेषन्यमित्येव भाव्यमित्युक्तिः पूर्वपक्षिण ।  
कार्यकालपक्षेऽपि त्रैपादिकेऽन्तरङ्ग एतदप्रवृत्तेर्विसर्जनीयसूत्रे भाष्ये वार्तिकखण्डकसिद्धा-  
न्त्युक्ते, यथोद्देशपक्षेण तस्य सुसाधत्वाच्चेति भावः । एतदेव ध्वनयन्नाह—परमिति । त्वं  
मुम इति । अत्र घटकत्वेन तत्त्वं बाध्यम् । तदप्रवृत्तेरिति । सर्वथा तदप्रवृत्तेरित्यर्थः ॥



नव्यमतेऽपि यथोद्देशपक्षाश्रयणेनान्यथासिद्धोदाहरणदानेन तस्य तदु-  
क्तित्वमावश्यकमित्याहुः । आभीयेऽन्तरङ्ग आभीयस्य बहिरङ्गस्य समा-  
नाश्रयस्य नानेनासिद्धत्वमसिद्धत्वादित्यासिद्धवत्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ।  
एवं सिचि वृद्धेर्येन नाप्राप्तिन्यायेनान्तरङ्गबाधकत्वमूलकं न सिच्यन्त-  
रङ्गमस्तीति 'इको गुण' ( १।१।३ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५० ॥

नन्वेवमक्षयूरित्यादौ बहिरङ्गस्योठोऽसिद्धत्वावन्तरङ्गो यण् न  
स्यादत आह—

नाजानन्तर्यं बहिष्ट्वप्रकल्पितः ॥ ५१ ॥

नव्यमतेऽपि दीक्षितादिमतेऽपि । अन्ययेत्यस्य व्याख्या—यथोद्देशेति । तथा च तद्रूपं  
यत्प्रकारान्तरं तेन सिद्धेत्याद्यर्थः । दाहरेति । तत्रैतदप्रवृत्तेः परंतप इत्याद्युदाहरणे-  
त्यर्थः । तस्य, उक्तभाष्यस्य । तदुक्तित्वं, पूर्वपक्षयुक्तित्वम् । आहुरिति । भाष्यसि-  
द्धान्ताह्वयादिन इत्यर्थः । समानाश्रयेति । व्याश्रयस्य तु भवत्येवेति भावः ।  
नानेनेति । असिद्धमिति वचनेनेत्यर्थः । असिद्धत्वात्, आभीयासिद्धत्वात् । भाष्य  
इति । तत्र हि वसुसप्रसारणमज्विधौ सिद्धं वाच्यमन्यथाऽऽभीयासिद्धत्वाद्बहिरङ्गा-  
सिद्धत्वाच्चाहोपादीनि पपुषश्चिच्युष्यो लुलुष इत्यादौ न स्युरित्युक्त्वाऽसमानाश्रय-  
त्वेनाऽऽद्य सखण्ड्य बहिरङ्गमन्तरङ्गमिति च प्रतिद्वन्द्विभाविनावेतावर्थादित्यादिनाऽ-  
न्त्यमपि खण्डितम् । तस्याय भावः—इयं परिभाषा वाह उद्सूत्रस्थत्वादाभीयेत्ये-  
तस्या कर्तव्याया समानाश्रयस्य बहिरङ्गसप्रसारणस्याऽऽभीयत्वेनासिद्धत्वमिति निमित्ताभावा-  
दप्रवृत्तिः । तत्प्रत्याख्यानं त्वनित्यत्व शरणमिति । यस्यासिद्धत्व तन्निमित्तनिमित्तकत्वं  
परिभाषाया अपि भाष्यप्रामाण्यादिति समानाश्रयत्व बोध्यम् । अत एव परम्परया निमित्तत्वेन  
तत्त्वं क्वाचित्क प्रागुक्तम् । आहोपादीनामन्तरङ्गत्व त्वल्पनिमित्तकत्वेन पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेन च  
बोध्यम् । एव, पूर्ववत् । सिचि वृद्धेरित्यस्य बाधकत्वेऽन्वयः । अन्तरङ्गेति । गुणेत्यर्थः ।  
तस्य तत्र च सखण्ड्या घटकत्वेन चाल्पनिमित्तत्वेन बोध्यम् । ज्ञापकमप्यत्रातो हलादेरि-  
त्यत्रादग्रहणं णिश्चिप्रतिषेधश्च । अन्यथाऽकोषादित्यादौ गुणेऽलघुत्वाद्दशरथीदित्यादौ  
गुणायादेशयोर्यान्तत्वात्तद्भावसिद्धिरिति तद्व्यर्थम् । तेनानेनायीदित्यादौ वृद्धिसिद्धिः ।  
अन्यथा गुणायादेशयोर्यान्तत्वान्न स्यादिति बोध्यम् ॥ ५० ॥

एवं, सिजाभीयत्रिपाद्यन्यत्र प्रागुक्तान्यतमान्तरङ्गत्वेन तत्प्रवृत्त्यङ्गीकारे । बहिर-  
ङ्गेति । यपिनित्ताचो बहिर्भूतक्विब्रनिमित्तकस्योठ इत्यर्थः । अत्र च परैस्थितनिमित्तक-  
स्वरूप बहिरङ्गत्व पूर्वस्थितनिमित्तकत्वरूपमन्तरङ्गत्व बोध्यम् । अत्र, परिभाषायाम् । यद्यपि  
भाष्ये यदयं षत्वतुकोरसिद्ध इत्याहेत्युक्तं तथाऽपि षत्वग्रहणं समासनिर्दिष्टत्वान्न तु ज्ञापक

अत्र 'षत्वनुकोः' (३।१।८६) इति सूत्रस्थतुग्रहणं ज्ञापकम् । अन्यथाऽधीत्य प्रेत्येत्यादौ समासोत्तरं ल्यप्प्रवृत्त्या पूर्वं समासे जाते तत्र संहिताया नित्यत्वाल्ल्यबुत्पत्तिपर्यन्तमप्यसंहिततयाऽवस्थानासंभवेनैकादेशे ल्यपि तुगपेक्षया पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गत्वमिति प्रेद्ध इत्यादौ गुणो बहिरङ्ग इति ग्रन्थेन 'न धातुलोप' (१।१।४) इति सूत्रे 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टम् ।

यत्तु षत्वग्रहणमपि ज्ञापकम् । अन्यथा कोऽसिचदित्यादौ पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वेन बहिरङ्गस्यैकादेशस्यासिद्धत्वेन षत्वाप्रवृत्तौ किं

वक्ष्यमाणयुक्तेरत आह—तुग्रहणमिति । तत्त्वमुपपादयति—अन्यथेति । परिभाषानङ्गीकार इत्यर्थः । समासस्य पूर्वत्वे हेतुमाह—समेति । तत्र, समासे । अपिना तदनन्तरं सुतरा तदसंभवेः सूचितः । तन्नित्यत्व तदसंभवे हेतुः । तद्वैयर्थ्यं, तुग्रहणवैयर्थ्यम् । ननु पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वं बहिरङ्गत्वे हेतुस्तदेव दुर्बलं भाष्यानुक्तत्वात्, प्रागुक्तबहिरङ्गत्वसाधकभिन्नत्वाच्चात आह—पदेति । इत्यादाविति । आदिनोपेद्ध इत्यस्य सग्रहः । तृतीयान्तमव्यवहितेनैवान्वेति । तत्रैव तत्सत्त्वान् । लोप इति सूत्र इति । तत्र ह्यार्धधातुकनिमित्ते लोपे गुणवृद्धी नेत्यर्थे प्रेद्ध इत्यादावतिप्रसङ्गमाशङ्क्येत्यसमाहितम् । ननु तत्र नेदृश बहिरङ्गत्व किं तु यदुपसर्गनिमित्तकमित्यादिना प्रागुक्तरूपमत एव वस्तुतस्तथा स्थितमपि तथा तत्र नोक्तमत आह—संयोगान्तस्य लोप इति सूत्रे चेति । तत्र हि यणो लोपमाशङ्क्य प्रतिषेधाद्युक्त्वा दध्यत्रेत्यादौ बहिरङ्गो यणदेशोऽन्तरङ्गो लोप इति समाहितम् । तत्र चैकपदीयवर्णाश्रयत्वं लोपस्य पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयाश्रितत्वं यणः स्पष्टमेव । यद्यपि तत्र न पदद्वयस्य तत्त्वमुक्त तथाऽपि तल्लक्ष्ये पदद्वयाश्रयो यण् । द्वे पदे आश्रित्य सर्वर्णदीर्घत्वमपि भवत्याहुणोऽपीति भाष्यस्य संप्रतिसूत्रस्थस्यापीदमेव तात्पर्यम् । एव प्रागपि । एव च न तत्त्वेन तत्त्व किं तु तत्र परनिमित्ताभावकृतानैमित्तिकत्वेनाधीत्येत्यादौ सरूपया घटकत्वेन वाऽरूपनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वं बोध्यम् । पदद्वयसंबन्धीत्यस्य विशेषणस्य तत्रानुपादानेऽपि लक्ष्ये वस्तुतस्तत्त्वस्य सत्त्वेन विशेष्यस्य तत्त्वेन घटकत्वनिर्वाहः ।

कैयटदीक्षिताद्युक्तिं स्रण्डयति—यच्चिवति । अपिना प्रागुक्तसमुच्चयः । आदिना कोऽस्येत्यादिपरिग्रहः । एकादेशस्य, पूर्वं जातस्य । त विना तस्यैवाप्राप्तेः । त्वाप्रवृत्तौ,

१ क. 'भवसमुच्चयः । त° । २ ग. °कृतानाकान्तत्वा° । ड. 'इत्वासा° । ३ क. ख. घ. °दीर्घगुणेऽपी° । ४ ड. °बन्धित्वस्य ।

नेति तन्न । इणः पूर्वपदसंबन्धित्वेन षत्वस्यापि पदद्वयसंबन्धिवर्णाद्व-  
 ापेक्षत्वेनोभयोः समत्वात् । एकादेशस्य पराद्विवत्त्वेनौसिचदित्यस्य  
 षत्त्वेन सस्य पदादित्वाभावात् 'सात्पदाद्योः' (८।३।१११)  
 त्यनेन निषेधः । त्रैपादिकेऽन्तरङ्गे कार्यकालपक्षेऽपि बहिरङ्गपरिभा-  
 षाया अप्रवृत्तेः पूर्वमुपपादितत्वाच्च ।

परिभाषार्थस्तु, अचोऽन्यानन्तर्यनिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्तव्ये जातस्य

गः परत्वाभावात् । इणः, ओकारस्य । अजपीणमध्येऽन्तर्गतः । अपिरेकादेशसमुच्चा-  
 कः । तदाह—भयोरिति । ननु समत्वेऽपि माऽस्तु षत्वग्रहणं सिचदित्यस्यैकदेशवि-  
 त्तन्यायेन षत्त्वेन सात्पदाद्योरितिनिषेधनेष्टसिद्धेरत आह—एकेति । पदादीति ।  
 ऋरस्येति शेषः । नन्वशास्त्राद्ये निषेधप्रवृत्तिप्रतिबन्धे कथमतिदेशः । एव च तदर्थमेव ।  
 षत्त्वप्रतिबन्धोऽपि शास्त्रीय कार्यं तर्ह्युक्तरीत्यौसिचदित्यस्य षत्त्वेनेणः पूर्वपदासत्र-  
 वत्त्वेन द्वयोरसमत्वाज्ज्ञापक युक्तमेव । किंच न पदद्वयसंबन्धिवर्णाद्व्यापेक्षत्वेन तत्त्वमु-  
 ग्हेतो । किं स्वल्पनिमित्तत्वादिनेति तत्र षत्वस्यैव तत्त्वाद्युक्तमेव तत् । तथा घटक्त्वाङ्गी-  
 रे न मानम् । तुकोऽज्ञापकत्वं इष्टापत्तिर्वक्ष्यते । अत एव सामान्यतो भगवतोक्तमत-  
 दाह—त्रैपेति । अपिर्यथोद्देशसमुच्चायकः ।

यत्तु हरदत्तसीरदेवादयो द्विवचनान्तेन समासः, द्वयमस्तीत्यव्याहारः । तथा चाचोरा-  
 न्तर्ये यत्र द्वयमस्ति बहिरङ्ग प्रवृत्तमन्तरङ्ग प्राप्नोति, अन्तरङ्ग प्रवृत्त बहिरङ्ग वा तत्र  
 हेरङ्गपरिभाषा नेति परिभाषार्थः । तथा चान्तरङ्गे बहिरङ्ग उभयत्र वाऽचोऽजानन्तर्ये  
 हेरङ्गपरिभाषाप्रवृत्तिर्नेति फलितमित्याहुः । तत्र । एतज्ज्ञापकपरकृतितुगग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः,  
 शवेदमित्याद्यसिध्यापत्तेः, न घातुलोप इति सूत्रस्थभाष्यविरोधापत्तेः, धर्मिग्राहकप्रानवि-  
 वापत्तेश्च । यदपि सीरदेवादयः सहिताधिकारिणे कार्ये कर्तव्ये प्रागुक्तस्थले तस्य तदा-  
 न्तर्ये तदप्रवृत्तिरित्यर्थान्तरमाहुः । तदपि न । अक्षरमर्यादया तथाऽर्थालाभात्,  
 काद्यान्त्यदोषावारणात्, ज्ञापितेऽपि तस्याचारितार्थ्याच्च । यत्तु कैयटमान्यादय-  
 स्त्वचनान्तेन समासो न तु तथा गौरवात्, फलाभावोच्च । एवं चोत्तरकालप्र-  
 त्तकेऽच आनन्तर्ये तत्प्रतियोगिकानन्तर्ये निमित्तत्वेनाऽऽश्रिते तदप्रवृत्तिरित्यर्थमाहुः ।  
 न । अनुपदोक्ताद्यान्त्यदोषद्वयापत्तेरत आह—परीति । अच इति सबन्धसामान्ये  
 ङी न तु स्थानषष्ठी मूलविरोधापत्तेः । अन्तरङ्गे, आनन्तर्ये चान्वयः । अस्यः तस्यान्यप्रतियोगि-  
 नानन्तर्य इत्यर्थः । ज्ञापकस्य सजातीयविषयत्वादाह—जातस्येति । परिशेषादाह—

बहिरङ्गस्य बहिष्प्रकृतृत्तिर्न । बहिष्पदेन बहिरङ्गम् । तस्य भावो बहिरङ्गत्वं तत्प्रयुक्तासिद्धत्वस्य न प्रकृतृत्तिः, न प्राप्तिरिति । असिद्धं बहिरङ्गमित्युक्त्वा नाजानन्तर्यं इति वक्ष्यामीति भाष्योक्त्या तत्रत्यस्यान्तरङ्ग इत्यस्यानुवृत्तिसूचनात् । तेन पचावेदमित्यादौ न दोषः । अन्तरङ्गस्याचूस्थानिककार्यस्थैत्वस्यान्यानन्तर्यनिमित्तकत्वाभावात् । जातस्य

बहिरङ्गस्येति । यद्यपि तादृशेऽन्तरङ्गे कार्ये बहिःशब्देन परिभाषा गृहीत्वा तदप्रवृत्ति-  
रित्यर्थः सुवचस्तथाऽपि त्वात्सगतिर्जातस्येति तत्सजातीयार्थालाभश्च स्यादत आह—  
बहिष्पदेनेति । भाव इत्यग्रे बहिष्त्वामिति शेषः । क्वचित्पथा पाठ एव । तदर्थमाह—  
बाहिरिति । ब्रह्मणाऽपि तस्य निषेद्धमशक्यत्वादाह—तत्प्रेति । नन्वन्तरङ्ग इत्यस्य  
लाभ उक्तार्थलाभः । स एव न । अक्षरमर्थादया तदप्रतीतिः । ऐच्छिकार्थकल्पने तु  
किमिति प्राचोक्तार्थत्यागोऽत आह—असिद्धमिति । इति भाष्योक्त्येति ।  
विशिष्टभाष्योक्त्येत्यर्थः । एष च भाष्यानुपूर्व्येवेदशीति तत्र क्त्वाप्रत्ययेन तदानन्तर्य-  
मत्रानुवृत्त्यर्थमुक्तमन्यथा क्त्वान्तासगतिः स्पष्टैव । तदाह—तत्रेति । यदशेन वारणं तत्सू-  
चयितु तद्रूप तेनेत्यस्यार्थमाह—अन्तरङ्गेति । यद्यपि धातोरिति प्रकृतमधिकार-  
प्राप्त तत्र तथाऽपि तद्विहितविशेषणम् । एव च तत्र तत्त्वमपरनिमित्ताभावकृतानैमित्तिकत्वेन  
पूर्वनिमित्तकत्वेनाश्रयनिमित्तकत्वेन वा बोध्यम् । जातस्येतिमात्रस्य फलमाह—जातेति । यत्तु  
सीरदेवादयोऽसिद्धमित्येकस्या एवाङ्गीकारेऽयज इन्द्रमित्यादौ दोषोद्धारः पदसंस्कारपक्षेण ।  
यदाहुः 'सुविचार्यं पदस्यार्थं वाक्यं गृह्णन्ति सूरयः, इति । युक्तं चैतत् । अन्यथा तत्र  
पक्षे भिन्नपरिभाषाङ्गीकारेऽपि शब्दपरविप्रतिषेधेनान्तरङ्गत्वात्प्राप्त गुण बाधित्वा दीर्घ एव  
स्यान्न्यायतो वचनस्य प्राक्ख्यादित्याहुः । तन्न । तावताऽप्यन्यत्रानिर्वाहात् । शब्दतः पर-  
स्वमादाय विप्रतिषेधसूत्राप्रवृत्तेरचः परेतिसूत्रे भाष्ये ध्वनितत्वाच्च । तदेतद्भवनयंस्तस्य  
फलान्तरमाह—धियतीति । आदिना प्रादुद्रुवदित्यादिसग्रहः । अत एवाभ्ययत्र तत्रो-  
क्तमेवान्तरङ्गत्व बोध्यम् । यद्यपीयङ्विधावजादौ प्रत्यय इति धातोर्विशेषणमिति न तस्या-  
न्यानन्तर्यं तथाऽपि विशेषणतया तस्य तदस्त्येव । यदि तु प्राधान्येनाच एवान्यानन्तर्येत्या-  
द्यर्थः सभवात् । इयङ्विधौ तु न तथेति विभाव्यते तदाऽऽद्यमेव प्रस्युदाहरणम् । अत  
एवोद्घोतविरोधो न । पुगन्तेत्यत्र सिद्धान्ते प्राधान्येनाप्राधान्येन च न तस्य तदाश्रयण-  
मिति नोद्ग्रहणज्ञापकत्वपरर्भाष्यासंगतिः । दीक्षितमते त्वयमपि तत्र दोषो बोध्यः । एते-  
नेयङ्विधावचोऽन्यानन्तर्यानाश्रयणादिद फल चिन्त्यम् । यथाकथञ्चित्तत्त्वे तु प्रागुक्तोद्ग्रहण-

१ घ. क. °ध. । तथा च । २ क. °स्येत्यस्य । ३ क. क. °रोधोऽपि न । ४ इ. च त° ।  
५ घ. °ति चोठ° । ६ क. °भाष्यस° । ७ ग. °र्यानिमित्तकत्वादि° ।

बहिरङ्गस्येत्युक्त्याऽयज इन्द्रं धियतीत्यादौ बहिरङ्गदीर्घगुणादेरसिद्धत्वं सिद्धम् ।

अत एवेण्डिशीनामाहुणः सवर्णदीर्घत्वाच्छडन्तस्यान्तरङ्गलक्षणत्वादित्यादि संगच्छते । अत एव 'ओमाङोश्च' ( ६ । १ । ९५ ) इत्याङ्ग्रहणं चरितार्थम् । तद्धि शिव आ इहीति स्थिते परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा धातूपसर्गकार्यत्वेनान्तरङ्गत्वाद्गुणे वृद्धिबाधनार्थम् ।

न चाक्षयूरित्यत्र यणि कृत ऊठोऽसिद्धत्वाद्वालि लोपापत्तिरिति वाच्यम् । अचोऽन्यानन्तर्यानिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्तव्ये कृते च तस्मिन्वद-

ज्ञापकपरस्वग्रन्थाधिरोध इत्यपास्तम् । ननु प्रादुद्भवदित्यादौ सार्वधातुकेतितिबिनिमित्तकगुणात्प्राग्निन्यत्वाच्चाङि द्विर्वचनेऽचीति निषेधादुवङ्भावे द्वित्वात्परत्वाच्छ्रुपधगुणो दुर्वार इति चेन्न । अन्तरङ्गत्वाद्धित्वस्यैव प्राप्तेः । तस्य तत्त्व च प्रयोगीयोच्चारणेत्याद्युक्तरीत्या । द्वित्वादुपधाकार्यस्य प्राक्त्वयेऽपि यथा न दोषस्तथाऽन्यत्र स्पष्टम् । दीर्घेति । सवर्णदीर्घल-  
भूपधगुणादेरित्यर्थः ।

अत्रार्थे बार्तिकमपि प्रमाणयति—अत एवेणिति । जातस्येत्यर्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अत्राऽऽद्यं विप्रतिषेधसूत्रमन्त्यं कृडिति, चेतिसूत्रमम् । आदिना बहिरङ्गेण सिध्यतीत्यादिपरिग्रहः । अन्यसूत्रमप्यत्रार्थे प्रमाणयति—अत एवोमेति । अन्यथा तदानर्थक्य ध्वनयितुमाह—तद्धीति । विभज्यान्वारुयान, इदम् । धतूपेति । क्रियाभाः साध्यतया धातुतः प्रतीत्या सर्वतः प्राक्साधनाकाङ्क्षानैयत्येन तद्बोधकप्रत्ययोत्पत्त्यनन्तर प्राक्स्वार्थद्योतकत्वेन, साकाङ्क्षतया धातोरुपसर्गयोगे ततः शिवशब्दस्य समुदायेन योगाद्गुणस्यान्तरङ्गत्वामिति सप्रसारणाच्चेतिसूत्रभाष्योक्त्या प्रागुक्तया धातूपसर्गकार्येऽपि प्रक्रियाक्रमेण पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वं न तु तत्त्वेन । एतेन पञ्चमान्तरङ्गत्वस्याभावेनेदं चिन्त्यमित्यपास्तम् । न ह्येकैकमेवेति न्यायेनास्य, तस्य तादृशार्थज्ञापकताऽपि प्रागुक्ताऽविरुद्धा । अन्यथाऽऽनर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः ।

हरदत्तादिकैयटादिमतस्माधारण दोषं स्वमत आशङ्कते—न चेति । अतः एवैवमित्यनुक्तिः । असिद्धत्वात्, परस्थितनिमित्तकत्वेन बहिरङ्गत्वेनासिद्धं बहिरित्यनेन । निषेधस्तु न कस्यापि मते । पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गस्य वलिलोपस्याच्चसंबन्धिकार्यत्वाभावात् । यणस्तेनैवासिद्धत्वं तु न । समत्वेनातत्त्वात् । कैयटहरदत्तादिमतेन समाधत्ते—अच इति । कृते चेति । न मु न इतिवदिति भावः । त्येतैर्दथात्, प्रकृतपरिभाषार्थात् । एतदङ्गी-

न्तरङ्गं प्राप्नोति तत्र च कर्तव्ये नासिद्धत्वमित्येतदर्थान् । असिद्धपरि-  
भाषाया अनित्यत्वेन तद्वारणे त्वस्या वैयर्थ्यं तेनैव सिद्धेः । अत एव  
'नलोपः सुप्' (८।२।२) इति सूत्रे कृति तुग्रहणं चरितार्थम् ।  
अन्यथा वृत्रहभ्यामित्यादौ बहिर्भूतभ्यामिन्मित्तकपदत्वाश्रयत्वेन बहि-  
रङ्गतया नलोपस्यासिद्धत्वेन सिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । मम तु तुक्यजा-  
नन्तर्यसत्त्वान्न दोषः ।

न चैवं सति 'ह्रस्वस्य पिति' (६।१।७१) इति सूत्रस्थमाष्य-  
विरोधः । तत्र हि ग्रामणिपुत्र इत्यत्र 'इको ह्रस्वोऽङ्ग्यः' (६।३।६१)  
इति ह्रस्वे कृते तुकमाशङ्क्य ह्रस्वस्य बहिरङ्गासिद्धत्वेन समाहितम् ।  
नाजानन्तर्य इत्यस्य सत्त्वे तत्र तदप्राप्तेरसंगतिः स्पष्टैवेति वाच्यम् । तेन  
माष्येणास्या अनावश्यकत्वबोधनात् । एतज्ज्ञापकेनान्तरङ्गपरिभाषाया  
अनित्यत्वबोधनस्यैव न्याय्यत्वात् । अत एव 'अचः परस्मिन्' (१।१  
५७) इति सूत्रे माष्ये पटु ई आ इत्यत्र परयणादेशस्य तयाऽसिद्धत्वा-

कर्तुं बृहद्विवरणकारोक्तिं खण्डयति—असिद्धेति । अनित्यत्वेनेत्यस्याप्राप्त्येति शेषः ।  
तद्वारणे तु, लोपापत्तिवारणे तु । अस्या, नाजानन्तर्य इत्यस्याः । तेनैव, अनित्यत्वेनैव ।  
इष्टापत्तिं खण्डयति—अत एवेति । परिभाषासत्त्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा, अनित्यासिद्ध-  
परिभाषयैव निर्वाहादेतदनङ्गीकारे । त्वाश्रयत्वेन, तन्निमित्तकत्वेन । तथा च परम्परया  
निमित्तत्वेन बहिरङ्गत्वस्य काचित्कस्यात्रापि स्वीकार इति भ्यामिन्मित्तकत्वेन परनिमित्त-  
कत्वाद्बहिरङ्गत्व बोध्यम् । नलोपस्यासिद्धत्वेनेति पाठः । न चानित्यत्वात्तदप्रवृत्तिः । इष्ट-  
स्थलेऽप्यप्रवृत्तौ न्यायस्य निर्विषयतापत्तेः । अत एवेत्युक्तमर्थमाह—मम त्विति ।  
परिभाषाङ्गीकर्तुरित्यर्थः । तुकि, ताद्विधायके ह्रस्वस्येति सूत्रे । अजेति । अचोऽन्यानन्त-  
र्याश्रयणसत्त्वादित्यर्थः । तथा चानसिद्धत्वेन तद्वारणाय तदावश्यकमिति भावः ।

चैवं सति । परिभाषाङ्गीकारे सति । तुकमिति । प्रत्ययलक्षणेन किममाश्रित्येति  
भावः । बहिरिति । ततो बहिर्भूतोत्तरपदनिमित्तकत्वेन परनिमित्तकत्वादिति भावः ।  
एवं सतीत्युक्तार्थमाह—नाजेति । तत्रेति । ग्रामणिपुत्र इत्यत्र ह्रस्वे बहिरङ्गासिद्ध-  
त्वाप्राप्तेरुक्तभाष्यासंगतिरित्यर्थः । अस्याः, नाजानन्तर्य इत्यस्याः । ननूक्तादिफलानां  
ज्ञापकानां च सत्त्वात्कथमनावश्यकत्वमत आह—एतदिति । नाजानन्तर्य इत्येतज्ज्ञाप-  
कत्वाभिमतं षत्वतुकोरिति तुग्रहणेनेत्यर्थः । न्याय्यत्वादिति । वचनाकल्पनजलाघवा-  
दिति भावः । एवः परिभाषाव्यवच्छेदाय । न्याय्यत्वमेवोपपादयति—अत एवेति ।  
अस्या अनावश्यकत्वेनासत्त्वादेवेत्यर्थः । तथा, असिद्धपरिभाषया । अनयेति पाठान्तरम् ।

पूर्ववर्णादेशः साधितः । अत एवैषा परिभाषा भाष्ये पुनः कापि नोल्लिखिता ।

अत एवान्तरङ्गपरिभाषामुपक्रम्य विप्रतिषेधसूत्रेऽस्या बहूनि प्रयोजनानि सन्ति तदर्थमेषा परिभाषा कर्तव्या प्रतिविधेयं दोषेष्वित्युक्तं 'सप्रसारणाच्च' [ ६ । १ । १०८ ] इति सूत्रे भाष्ये । प्रतिविधानं च परिभाषाविषयेऽनित्वत्वाद्ययणमेवेति ध्वनितमित्यलम् ॥ ५१ ॥

साधित इति । एतस्सत्त्वे तु निषेधात्तदसगति स्पष्टैव । ननु नेद युक्तम् । एतस्सत्त्वेऽपि प्रागुक्तीत्या तत्राप्राप्तेरत आह—अत एवेति । उक्तोऽर्थः । पुनः कापि, विप्रतिषेधसूत्रातिरिक्ते ।

नन्वेवमपि तत्र फलार्थमुल्लेखेनाऽऽवश्यकत्वमेव । न हि बहुषुल्लेख एवाऽऽवश्यकत्वसाधकोऽतिप्रसङ्गापत्तेरत आह—अत एवान्तेत्यादिभाष्य इत्यन्तेन । सप्रसारणाच्च-तिसूत्रे भाष्येऽन्तरङ्गपरिभाषामुपक्रम्येष्टुक्तमित्यन्वयः । इतीति किं तदाह—विप्रेति । इदं तर्हि प्रयोजनं पृक्षा अत्रेत्यत्र विभज्यान्वारूप्याने वृक्ष अम् अत्रेति स्थिते रुवे द्वयोर्भुगप्राप्तौ प्राहुद्वयदित्यत्रेवोत्वादान्तरङ्गत्वात्पूर्वं र्वसवर्णदीर्घो नावश्यमिदमेव फलमित्यादिः । अस्याः, अन्तरङ्गपरिभाषायाः । ननु नैतावैतैतदभावसिद्धिरनेन फलानामन्यप्रतिविधानानां च तत्रोक्तत्ववन्नाजानन्तर्य इत्यस्या अपि तत्त्वेन तत्रोक्तत्वाद्त आह—प्रतीति । परिभाषाविषये, असिद्धपरिभाषार्थे । एवेन विप्रतिषेधसूत्रोक्तप्रतिविधाननिरासः । ध्वनितमिति । प्रतिविधेयं दोषेष्विति विधिप्रत्ययान्तप्रकृतिकैकवचनान्तैर्बहुवचनान्तप्रयोगेणेति शेषः । तथेष्टत्वे तु दोषेषु प्रतिविधानान्युक्तानीत्येव वदेत् । तत्रोक्तत्वात्तत्र नैव वदेत् । तस्मात्सर्वदोषेष्वेक प्रतिविधानं ततोऽन्यत्कार्यमिति तदर्थः । तथा तु तदनित्यत्वमेक नान्यथा । विप्रतिषेधसूत्रस्य भाष्योक्तिरकदेशिन इति तत्तापर्यम् । गौरवात्तथाप्रतिपादकसीरदेवादयोऽपि चिन्त्या एव । अक्षदूरित्यादावपि तदनित्यत्वादेव निर्वाह इति तदर्थमप्यस्या आवश्यकता न । अत एव निर्मूलाऽपि । मूलशैथिल्यात् । तुगेकादेशयोः प्रत्येकं निमित्तद्वयापेक्षत्वेन संज्ञाकृततत्त्वानाश्रयणेनान्यथा वा समत्वात् । प्रत्युत तुक एव बहिरङ्गत्वात् । अन्यस्य तत्त्वस्य दुर्वचत्वात् । तथाघटकत्वाङ्गीकारेऽतिप्रसङ्गापत्तेश्च । एव चैतज्ज्ञापकपर विप्रतिषेधे परमितिसूत्रस्थं भाष्यमेकदेश्युक्तिरेव । अत एव तत्र भाष्ये ज्ञापकानुपपादनं सामान्योक्तिश्च । अत एव तुग्रहणमावश्यकमेवेति भावः । नन्वेव बृहद्विवरणोक्तेरीषत्समर्थनेऽपि कृति तुग्रहणवैयर्थ्यापत्तिरेवेति चेदिष्टापत्तेः । सनिपातपरिभाषयेष्टसिद्धिमाश्रित्य भाष्ये तस्य प्रत्याख्यानादिति केचित् । तस्या अनित्यत्वमेव तेन ज्ञाप्यत इति तस्य न वैयर्थ्यमिति सीरदेवादयः । वस्तुतस्तु संज्ञाकृतं बहिर्भूतनिमित्तकसंज्ञाकृतं व्यवहितनिमित्तकृतं

नन्वेवं गोमत्प्रिय इत्यादौ पदद्वयनिमित्तकसमासाश्रितत्वेन बहिरङ्गं लुकं बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वाद्बलञ्चादिलोपे नुमाद्यः स्युरत आह—  
अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधते ॥ ५२ ॥

अत्र च 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' ( ७।२।९८ ) इति सूत्रं ज्ञापकम् । स्वकृतमित्यादौ लुगपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वाद्बिभक्तिनिमित्तकेन 'त्वमावेकवचने' ( ७।२।९७ ) इत्यनेन सिद्ध इदं व्यर्थं सदेतज्ज्ञापकम् । ननु तव पुत्रस्वत्पुत्र इत्यादौ तवममादिबाधनार्थं तदावश्यकमिति चेत् । एवं तर्ह्यत्रत्यमपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिस्तज्ज्ञापिकेति भाष्यकृतः ।

च बहिरङ्गत्व नाऽऽश्रीयत इत्यर्थज्ञापकतया तत्साफल्यस्य प्रागुक्तत्वेनासिद्धपरिभाषया वृत्रहभ्यामित्यादेः सिद्धत्वभावः । तया सिद्धिमाश्रित्य तत्प्रत्याख्यातमिति त्वन्यदेतदिति न दोषः । एव चासिद्धेत्यादि न दोष इत्यन्ता प्रागुक्तिः प्राचा तथाबहिरङ्गत्वमङ्गीकुर्वतामर्वाचीनानामनुरोधेन । अत एव पूर्वापरग्रन्थविरोधो न । किं चैतत्सत्त्वेऽपि कृते चेत्यादिविद्वितीयार्थानुपयोगः । अक्षद्विरित्यत्रोठोऽसिद्धत्वाद्बलि लोपप्राप्तेरचः परेतिस्थानिवद्भावेन सुवारत्वात् । प्रत्यैषिषन्नित्यादौ जुसोऽभावाय पञ्चमीसमासस्याऽऽवश्यकत्वात् । प्रविगणय्येत्याद्यर्थं तदानित्यत्वेऽपीष्टस्थले प्रवृत्तेरप्रत्य्यूहात् । पूर्वस्मान्निमित्तत्वेनाऽऽश्रितादितिकैयटस्योद्द्योते दूषितत्वात् । स्वविधावित्यस्य स्वोद्देश्यकविधौ प्रवृत्तेः । न च न पदान्तेति निषेधः । उक्तोत्तरत्वात् । एव च तथार्थकरण प्रागुक्तोद्द्योतादौ च षष्ठ्यमीसमासानङ्गीकर्तृमतानुरोधेनेति न तद्विरोध इति सुबोध्यम् । तदाह—इत्यलमिति ॥ ५१ ॥

एवम्, अनित्यासिद्धपरिभाषायाः सिजादाविवाजानन्तर्य एवानङ्गीकारे । आदिना गोमत्पतिरित्यादिसग्रहः । साश्रितत्वेन, तत्प्रयोज्यत्वेन । परम्परया तत्त्वस्य कचिदङ्गीकारात् । अन्तरङ्गत्वात्, समासान्तर्गतैकदेशनिमित्तकत्वादित्यादिः । आदिना दीर्घादिपरिग्रहः । गानपीति । अपिः परनित्यसमुच्चायकः । अत्र च, परिभाषाया च । तत्त्वमेव विशदयति—त्वदिति । आदिना त्वया कृतस्वदीय इत्यादिसग्रहः । लुगेति । उक्तेरित्येति भावः । एकवचन इत्यस्यार्थपरत्वादाह—विभक्तीति । अष्टन आ इत्यतोऽनुवृत्तेः । तत्फलं तु युष्मद्बलित्यपुत्र इत्यादौ त्रिपदबहुव्रीहौ नेति भावः । इदं, प्रागुक्तं सूत्रम् । एतदिति । परिभाषेत्यर्थः । कचिदेतद्रहितः पाठः । एत्रमग्रेऽपि । आदिना तुभ्य हित त्वद्वित तवाय स्वदीय इत्यादिपरिग्रहः । अग्रिमादिना तुभ्यादिसग्रहः । तेषां तद्भाषकत्वात् । तत्, सूत्रम् । अत्रत्येति । प्रत्ययोत्तरेतिसूत्रस्थेत्यर्थः । तत्रत्येति पाठान्तरम् ।

१ ड. तथा । २ क ख. 'त्यूहः । पू । ३ ख ग. घ ङ 'गुयो' । ४ घ 'मत्यतीत्या' । ५ ग. ङ. 'वृत्तेरिति भावः । त । ६ ड. 'स्यादित्रि' । ७ ड. 'ब्रीह्यादावादेशाभाव इति बोध्यम् । इ' ।



युष्मदादिभ्य आचारक्विप् तु न । संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतापरमाव्यप्रा-  
माण्यात् । ' ह्रस्वनद्यापः ' ( ७ । १ । ५४ ) इति नुद्धविधायकसूत्रस्थ-  
प्राचोक्तेन हलन्तेभ्य आचारक्विबभावाच्च । एवमेवैकार्थकाभ्यां  
प्रातिपदिकेभ्यां प्रातिपदिकप्रकृतिकणिचोऽप्यनभिधानं बोध्यम् । एतेन  
तत्राऽऽदेशार्थं प्रत्ययग्रहणं चरितार्थमित्यपास्तम् ।

ननु मपर्यन्तानुवृत्तिरपि सर्वादेशत्ववारणेन चरितार्था । न चोत्स-

यत्त्र सूत्र न ज्ञापकं प्रत्ययग्रहणस्य किञ्चिदौ तत्सपादकतया साफल्यत् । किं तूत्त-  
रपदग्रहणमिति प्राञ्चस्तत्वण्डथितु भाष्ये प्रागुक्त यथाश्रुतं संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकत्वं सम-  
र्थयन्नुभयविषये तदनुवृत्तेस्तत्त्व द्रढयति—युष्मेति । आचारेति । प्रातिपदिकप्रकृति-  
केत्यादिः । न केवलमिदमेव साधकं किं त्वन्यदप्यस्तित्याह—ह्रस्वेति । तत्र हि  
कास्प्रत्ययादित्यामोऽत्र ग्रहणं सानुबन्धकत्वान्न । मस्येत्वाभावस्तु न तत्फल फलाभावात् ।  
यतः प्रत्ययान्तादयं विधीयते तत्र नास्ति विशेषो मिदचोऽन्त्यादिति परत्वे प्रत्ययः  
परश्चेति वाऽऽस्कासोरामविधानाच्चेत्युक्तम् । प्रत्ययान्ता अजन्ताः । हलन्तेभ्य आचा-  
रक्विप् न । सर्वप्रादिपदिकेभ्य इत्यस्यैकीयमतत्वात्तन्मताश्रयणेऽप्येतद्वाप्यात्तेभ्यस्तदभाव  
एवेति कैयटः । अवगल्भादौ त्वकारान्तरस्य प्रश्चिष्टस्यानुबन्धत्वस्वीकारान्न हलन्ततेति  
तद्भावः । एवमेवेति । किञ्चदेवेत्यर्थः । एकार्थकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां, युष्मदस्मद्भ्याम् ।  
हरदत्तमतनिरासायाऽऽह—प्रातीति । तदा हि प्रागुक्तानुवृत्तैव भवेत् । अपिनाऽत्य-  
न्तस्वार्थिकतरवादेरपि संग्रहः । अनभिधानमिति । आद्यहेतोरिति भावः ।  
( \* अत्र बोध्यमित्यनेन सूचिताऽरुचिस्तु तस्यैकदेश्युक्तत्वरूपोक्तैवेति नेदं युक्तमिति )  
प्राचोक्तं खण्डयति—एतेनेति । किञ्चाद्यभावेनेत्यर्थः । तत्रेति । किञ्चादौ त्वमादेशा-  
र्थमित्यर्थः ।

यत्तु कैयटादयस्तदनुवृत्तिः केवला न ज्ञापिका । तदभावे ह्यादेशान्तराणामपि बाधकौ  
तौ सर्वादेशौ स्यातामनेकाल्त्वात् । उत्सर्गसमानेति तु भ्रमादौ व्यभिचरितम् । तस्मात्त-  
वादीनां प्रसङ्ग इत्यर्थद्वारा स्थानिप्रकल्पत्यर्थं या तवाद्यनुवृत्तिस्तत्सहिता तदनुवृत्तिर्ज्ञापिका ।  
केवला हि तदनुवृत्तिर्लाघवाय स्यात् । गरीयसी हि तवाद्यनुवृत्त्या स्थानिप्रतीतिरिति  
तज्ज्ञापनाय न भवेदिति तदयुक्तम् । अतिगुरुत्वाज्ज्ञापितेऽपि तवाद्यनुवृत्तेः सार्थक्यस्य  
दुरुपपादत्वाच्च । तदेतद्ब्रूयन्नाह—नन्विति । अपिः सूत्रसमुच्चायकः । मुन्यसमतत्वेना-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड. पुस्तकस्थः ।

१ ग. ननु तद्वाप्यस्योक्तरीत्यैकदेश्युक्तिर्वेन कथमिष्टसाधकत्वमत आह—हर° । ड. पुस्त-  
कोऽप्येवमेव पाठान्तरम् ।

र्गसमानदेशा अपवादा इति न्यायेनासिद्धवत्सूत्रस्थभाष्यसंमतेन मपर्य-  
न्तस्यैवाऽऽदेशे सिद्धे तदनुवृत्तिर्व्यर्थेति वाच्यम् । तस्य श्रमकजादौ  
व्यभिचारादिति चेन्न । श्रमि मित्वेन बहुचि पुरस्ताद्ग्रहणेनाकाचि  
प्राक्टेग्रहणेन तस्य बाधेऽप्यत्रोत्सर्गस्य त्यागे मानाभावात् । अत एव  
' तस्मिन्नपि च ' ( ४ । ३ । २ ) इत्यनेन युष्माकाद्यादेशविधानं  
चरितार्थम् । अन्यथाऽऽकङ्कादेशमेव विद्ध्यत् । आकङ्कि तवकाद्यादे-  
शयोरेतदपवादयोरुक्तन्यायेनान्यादेशत्वापत्तिः । अतस्तद्विधानमिदमेव  
च तज्ज्ञापकम् ।

यद्यपि विरोधे बाधकत्वमिति वार्तिकमतेऽयं न्यायो भाष्यकारस्तु  
विनाऽपि विरोधं सत्यपि संभवे बाधकत्वमिच्छतीत्यनमिहितसूत्रस्थ-

ग्रामाण्यनिरासायाऽऽह—असिद्धवदिति । तदनुवृत्तिः, मपर्यन्तग्रहणावृत्तिः ।  
तस्य, उत्सर्गसमानेति न्यायस्य । आदिना बहुचो ग्रहणम् । श्रमीति । अवयविनोऽधि-  
करणत्वविवक्षया सप्तमी । यद्वा तस्य बाधेऽपीत्यत्रान्वयः । अत एव बहुचीत्यादिसंगतिः ।  
पुरस्तादिति । तद्विधिसूत्र इति भावः । एवमग्रेऽपि । तस्य, उत्सर्गेतिन्यायस्य । अत्र,  
त्वमयोः । उत्सर्गस्य, बाधाभावे सर्वत्र प्रवर्तमानस्योत्सर्गेतिन्यायस्य । अत एव वक्ष्यति—  
उत्सर्गः स्वी क्रियत इति । प्रत्युत तदङ्गीकार एव मानमित्याह—अत एवेति । तस्य  
त्रादशसार्वात्रिकत्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथा, तत्र व्यभिचारेण तस्यैवानङ्गीकारे ।  
प्रतिपत्तिच्छाघवायाऽऽह—आकङ्किति । अन्यथाऽकङ्कमेव विद्ध्यत् । अस्य क्त्वाद्-  
न्यादेशत्वेऽप्यपवादयोरनेकाल्त्वात्सर्वादेशत्वसिद्धिरिति भावः । तद्वचनयन्नाह—आक-  
ङ्किति । क्रियमाणे सतीति शेषः । उक्तेति । उत्सर्गेत्यर्थः । तद्विधान, युष्माकाद्या-  
देशविधानम् । ननु तस्य भाष्यसंमतत्वतत्साफल्यकारित्वयोरपि मूल एव कुठारोऽत आह—  
इदमेव चेति । युष्माकाद्यादेशविधानमेव चेत्यर्थः । ज्ञापिते चारितार्थं तूक्तमेव ।

उक्तमेव शङ्कासमाधिभ्यां द्रढयति—यद्यपीत्यादिना । कैयटग्रन्थमाह—  
विरोधे । तत्रैव । अयमिति । उत्सर्गेतीत्यर्थः । विरोधोऽप्यपवादत्वेन बाधे कारणं  
न विशेषविधानमेव । स च समानदेशत्वे सत्येव घटते नान्यथेति तन्मते तस्याऽऽवश्यकत्वमिति  
भावः । विनापीति । अपिना विरोधसमुच्चयः । अग्रिमापिनाऽसंभवसमुच्चयः । बाधकत्व-  
मिति । विशेषविधानमात्रेणेति श्रेष्ठः । तत्रकौण्डिन्यन्यायमूलकेन येननेति न्यायेनेति भावः ।  
ननु सत्यपीत्याद्यपिभ्यामसंभवे विरोधस्यापि बाधहेतुत्वस्योक्तत्वान्न्यायाभावोऽत्र मते दुर्बचोऽत्र

कैयटरीत्या नाथ नियमस्तथाऽपि युष्माकाद्यादेशविधानज्ञापित उत्सर्गः  
स्वी क्रियत एवेति प्रकृते न दोषः । एतद्भाष्यमपि तत्स्वीकारे मानम् ।  
एवं च मपर्यन्तानुवृत्तिस्त्वत्कृतमित्यादौ मपर्यन्तस्याऽऽदेशविधानार्था ।  
तत्र चान्तरङ्गत्वात् ' त्वमौ ' ( ७ । २ । ९७ ) इत्येव सिद्धे व्यर्थं  
सैतज्ज्ञापिका । ज्ञापिते त्वस्मिन्नेतद्विषये तवादीनामप्राप्त्या तदपवाद-  
त्वाभावेन मपर्यन्तस्यैवाऽऽदेशार्थं सा चरितार्थेति तदाशयः । यत्तु  
हरदत्तेनान्तरङ्गप्रवृत्तौ प्रत्यय उत्तरपदे च मपर्यन्तासंभवेन तदनुवृत्ति-  
व्यर्था सती ज्ञापिकेत्युक्तं तन्न । अन्तरङ्गाणामप्यपवादवाध्यत्वेन तद्विषये

आह—नायं नियम इति । एवं च तैनानिर्वाहान्मपर्यन्तानुवृत्तिः सफलेति कथं तस्या  
ज्ञापकतेति भावः । उत्सर्गः, उक्तोऽर्थः । एवेतीति । एवेनास्वीकारव्यवच्छेदः ।  
अन्यथा तदानर्थक्यापत्तिरेवेति भावः । प्रकृते, त्वादिविषये । ननु यथोत्तरं मुनीनां प्रामा-  
ण्यादनियम एव युक्तो नोत्सर्गस्वीकारोऽत आह—एतदिति । मपर्यन्तप्रहणानुवृत्ति-  
ज्ञापकपरोक्तभाष्येत्यर्थः । एव च द्वयोः समत्वेनेष्टतो व्यवस्थायां युष्माकाद्यादेशविधान-  
सहकृतभाष्येण प्रकृते तथैवाङ्गी क्रियत इति तदनुवृत्तिज्ञापकता सुस्था । तदाह—एवं  
चेति । प्रकृते तन्न्यायाङ्गीकारेण त्वत्पुत्र इत्यादौ बाधकबाधनार्थेन सूत्रेण निर्वाहेण  
सूत्रसाफल्ये चेत्यर्थः । विधानार्थेति । अस्य वाच्येति शेषः । तत्र, त्वत्कृतमित्यादौ ।  
चान्तरङ्गत्वादिति । उक्तरीत्या लुगपेक्षयेत्यादिः । तत्र तदनुवृत्तेः सूत्वादिति  
भावः । अस्मिन्, अन्तरङ्गानपीति न्याये । एतद्विषये, प्रत्ययोत्तरपदयोरित्येतद्विषये ।  
अप्राप्त्या, विभक्तिपरत्वाभावात् । अभावेन, असंभवेन । उत्सर्गेति न्यायाविषयत्वेनेति  
शेषः । एवेनाधिकव्यावृत्तिः । तदाशयः, भाष्याशयः । एतेन कैयटमते ज्ञापितेऽपि  
तवाद्यनुवृत्तेः सार्थक्यस्योपपादयितुमशक्यत्वेन कैयटाद्युक्त चिन्त्यमेवेति प्रागुक्त सूचि-  
तम् । अन्तरङ्गेति । अस्यान्तरङ्गेतिन्यायाभावे प्रागित्यादिः । पदे च, परत इति  
शेषः । न्तासंभवेन, क्वचित्त्वमयोः क्वचित्त्वादेर्जातत्वान् । तत्राऽऽद्ये तथेष्टसि-  
द्धावप्यन्त्ये दोष एवेत्याशयेनाऽऽह—अन्तरङ्गेति । अपिर्नित्यादिसमुच्चायकः ।  
तथा चापवादप्रत्ययोत्तरेति विषये तवादेरप्राप्तौ मपर्यन्तसंभवेन तत्राधिकव्यवच्छेदाय तद-  
नुवृत्तेः साफल्येन ज्ञापकत्वासंभव इति मदुक्तरीत्या न्यायाश्रयणेनैव तत्त्वोपपादनं युक्त-  
मिति भावः । ननु यथा स न्यायो वार्तिकमते तथा युष्माकाद्यादेशविधानमपि तद्रीत्यैवेति

तदप्रवृत्तेः । वस्तुत इदं ज्ञापकं वार्तिकरीत्यैव । भाष्यरीत्या तु वाचनिक एवायमर्थ इत्याहुः ।

इयं 'सुपो धातु' (४।२।७१) इति लुग्विषयैवेति केचित् । 'एङ्हस्वात्संबुद्धेः' (६।१।६९) न यासयोः (७।३।४५) इतिसूत्रस्थाकरप्रामाण्येन लुङ्मात्रविषया । आद्ये हे त्रपु इत्यादा-  
बनेन न्यायेन लोपं बाधित्वा लुग्भवतीति भाष्य उक्तम् । अन्त्येऽन्तर-  
ङ्गांश्च विधीन्सर्वोऽपि लुग्बाधते न तु सुब्लुगेव ।

कथं भाष्यमते ज्ञापकत्वनिर्वाहोऽत आह—वस्तुत इति । इदं, मपर्यन्तग्रहणानु-  
वर्तनम् । अस्य सर्वस्याऽऽशयस्तु यद्यपीत्यादिनोक्त एव । एवं चेदं भाष्यमपि तद्वीत्यैवेति  
सावः । एवव्यवच्छेद्यमाह—भाष्येति । आहुरिति । अनेनारुचिः सूचिता । एवं  
सति वाचनिकत्वमपि निष्फलम् । असिद्धमित्येतस्यानित्यत्वेनैव सिद्धेर्यद्यन्तरङ्गातिरिक्तेऽ-  
स्याः फल न तदेतीति दिक् ।

केचिदिति सचितारुचिमाह—एङ्गिति । कैयटसंग्रहायाऽऽह—आकरेति ।  
मात्रशब्दः कास्त्वर्थे । तदुपपादयति क्रमेण—आद्य इत्यादिना । आद्ये, एङ्हस्वा-  
दित्यत्र । लोपं, संबुद्धिलोपम् । भाष्ये, सकैयट इत्यादिः । तत्र ह्यपृक्तसंबुद्धिलोपाभ्यां  
लुग्विप्रतिषेधेनेति सूत्रसिद्धिवार्तिकप्रत्याख्यानं लुग्लोपयणयवायावेकादेशेभ्य इति विप्रति-  
षेधसूत्रशेषार्थवार्तिकमाश्रित्य न वा लोपलुकोल्लुगवधारणाद्यथाऽनडह्यत इति वार्तिकेन तद-  
ग्रिमेण कृतं भाष्ये । तत्र कैयटेन लुग्लोपेतिवार्तिकस्यापि खण्डनायान्तरङ्गानपीति न्याय  
उपन्यस्तः । विप्रतिषेधसूत्रेऽप्येवम् । न च लोपलुकोः समत्वात्कथमन्तरङ्गबहिरङ्गभाव  
इति वाच्यम् । लोपस्य हलमात्रनिमित्तकत्वं संबुद्धेरित्युपलक्षणमप्रधानं वा । लुक्तु  
समुदायनिमित्तक इति भेदादिति केचित् । अन्ये तु तस्य प्रसक्तवर्णादर्शनमात्रं निमित्त  
लुकस्तु प्रसक्तप्रत्ययादर्शनमिति भेदेन तत्त्वादित्याहुः । वस्तुतस्त्वन्तरङ्गानपि विधीन्बाधमानो  
लुग्वलवानित्यतुल्यबलेन लोपेन स्पर्धा नार्हतीति विप्रतिषेधो नोपन्यसनीय इति तत्र कैयटे-  
नोक्तम् । अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधत इत्यस्य प्रत्ययोत्तरेत्यत्र ज्ञापितत्वा-  
त्सिद्धमिति विप्रतिषेधसूत्र उक्तम् । तस्योभयस्यायं भावः—अपिना परानित्ययोः संग्र-  
हात्परनित्यान्तरङ्गबाधकत्वेनापवादतुल्यत्वस्य तत्र प्रतिपादनेन विप्रतिषेधसूत्रादीना तद्वि-  
षयेऽप्राप्तिरिति न तस्यान्तरङ्गत्वाद्यपेक्षेति । अत एव तत्रान्तरङ्गत्वाद्यनुपपादमिति  
बोध्यम् । अन्त्ये, न यासयोरित्यादौ । ङ्गांश्चेति । चाऽप्यर्थे ।

अत एव सनीमंस इत्यादौ नलोपो न भवति । पञ्चमिः खट्वाभिः क्रीतः पञ्चखट्वा इत्यादावेकादेशात्प्रागेव टापो लुक् । अन्यथा कृतैकादेशस्य लुक्कारभ्रवणं न स्यादिति कैयट उक्तम् ।

एतद्विरोधाद्यत् ' तद्राजस्य ' ( २ । ४ । ६२ ) इति सूत्रे कैयटेनोक्तमङ्गानतिक्रान्तौऽत्यङ्ग इत्यत्र सुपो लुकि बहुवचनपरत्वामावात्तद्राजस्येति लुङ् न स्यादिति शङ्कापरभाष्यव्याख्यावसरेऽन्तरङ्गानपीति न्यायेनायं लुक्सुब्लुको बाधकः स्यादित्याशङ्क्य सुब्लुक एवानेन बलवत्त्वं बोध्यत इति तत्प्रौढ्येति द्रष्टव्यम् । लुगपेक्षया लुको बलवत्त्वस्य वक्तुमशक्यत्वादिति तदाशङ्कासमाधानं वक्तुं युक्तम् ।

उक्तार्थं द्रव्यति—अत एवेति । न्याये लुङ्मात्रग्रहणादेवेत्यर्थः । अस्योभयत्रान्वयः । नलोप इति । अन्यथा यङ्न्तादचि पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाद्यङोऽचीति लुक् प्राग्वः प्रागेव वाऽनिदितामिति स्यादिति भावः । एकैत्यस्य टापा सहेत्यादिः । लुगिति । लुक् न भवतीत्यर्थः । अन्यथा, अत्रोक्तरीत्या न्यायाप्रवृत्तौ । कृतैकादेशस्येति । टाप इत्यर्थः । विभज्यान्वारव्याने क्रमेणान्वाख्याने च पट्येत्याद्वाविबान्तरङ्गत्वादिति भावः । आदिवत्त्वाद्वात्प्रहणेन ग्रहणाल्लुक्कृतद्धितेतीति शेषः । तत्र हि त्यकनः प्रतिषेधः इति वार्तिकखण्डनाय मृदस्तिकनितीत्वनिर्देशस्य ज्ञापकत्वे भाष्योक्ते ज्ञापकताखण्डनाय, पञ्चमृत्तिक इत्यादौ क्रीतार्थकठकोऽध्यर्थेति लुकि लुक्तेति टापो लुकि, हेत्वभावादित्वाप्राप्तावित्त्वनिर्देशः सफल इत्युक्त्वा तदुपपादनायान्तरङ्गाश्वेत्याद्युक्त तेन ।

नन्वेवं कैयटयोः पूर्वापरविरोधोऽत आह—एतदिति । उक्तसमाप्यकैयटद्वयेत्यर्थः । अयं च प्रौढत्वे हेतुः । तत्सूत्रे तदवसर इत्याशङ्क्येति यत्तेनोक्त तदुक्तविरोधात्प्रौढ्येति द्रष्टव्यमित्यन्वयः । अङ्गानित्यस्य प्रत्ययग्रहणपक्ष इत्यादिः । सुपः, शसः । अयं लुक् । तद्राजस्येति लुक् । एवं च शसमेवाऽऽश्रित्य घटकत्वेनान्तरङ्गत्वात्समात्प्राक्स लुगिति भावः । एवेन तदन्यलुको व्यावृत्तिः । अनेन, न्यायेन । तस्यैव तत्र सम्भवेन ज्ञापकस्य विशेषापेक्षत्वात् । ननु तर्हि न्यायेन शसवस्थायया स्यादेव स ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वादित्यङ्गानित्यादिभाष्यासंगतिरेवात आह—लुगिति । तदाशङ्का, कैयटीयाशङ्का । वक्तुं युक्तं, तेनैव । अयं भावः—ग्रह्यप्युक्तभाष्यकैयटोक्त्या ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षता तथाऽपि तद्राजेतिसूत्रभाष्यप्रामाण्यात्कार्यान्तरनिमित्तविनाशकलुक एव कार्यान्तरापेक्षया प्राबल्यबोधकोऽयं न्यायो ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वादेकं च न भाष्यासंगतिरिति ।

अनेन न्यायेनान्तरङ्गनिमित्तविनाशकलुकस्तत्प्रयोजकसमासादीनां च प्राबल्यं बोध्यत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ५२ ॥

नन्वेवं सौमेन्द्रेऽन्तरङ्गत्वादाद्गुणे पूर्वपदात्परेन्द्रशब्दाभावेन 'नेन्द्रस्य' ( ७ । ३ । २२ ) इति वृद्धिनिषेधो व्यर्थः । अन्तादिवद्भावस्तूमयत आश्रयणे निषिद्धः । किं च वृद्धिरप्यत्र न प्राप्नोति । अन्तादिवच्चोभया-

तदेतद्ध्वनयन्नाह—अनेनेति । अन्तरङ्गानपीत्यनेनेत्यर्थः । तरङ्गेति । लुग-  
न्धेत्यादिः । अन्तरङ्गादीत्यर्थः । लुक, लुङ्मात्रस्यैव । धर्मिग्राहकमानात् । अत एव  
प्रातिपदिकाधिकाराभावेऽनुदात्तादेरित्यस्य सुबन्तविशेषणत्वेन सर्वस्य सुपीत्याद्युदात्तत्वेन  
सर्वस्य विकारः सार्व इत्यत्रान्प्राप्तिर्भाष्येऽभिहिता । तस्य लुको घटकत्वेनान्त-  
रङ्गाद्युदात्तत्वाविनाशकत्वात् । सौवर्यसप्तम्यास्तदन्तसप्तमीत्वेन विशिष्टकार्यत्वेन न लुम-  
तेतिनिषेधाप्राप्त्या प्रत्ययलक्षणेन तस्य सौलभ्यात् । अन्यथाऽनेन न्यायेन लुग्धे-  
तुप्रत्ययात्प्रामाद्युदात्ताप्राप्त्या तस्य तद्विशेषणत्वेऽप्यदोषेण तदसगतिः स्पष्टैवेति भावः ।  
नन्वेवमपि भोमत्प्रियइत्यादौ समासात्प्राड्नुमादयः स्युरेव । न हि तदा लुकप्राप्तिः ।  
समासादि तु ततो बहिरङ्गमेव । एव च न्यायो विफल एव । उत्तरपदग्र-  
हण तत्र तदनुवृत्तिश्च व्यर्थैवेति तत्त्वासम्भवात् आह—तदिति । तादृशलुगि-  
त्यर्थः । प्रातिपादकस्य द्वारभूतत्वादाह—प्रयोजकेति । आदिना तद्वितादिपरिग्रहः ।  
उक्तज्ञापकेनैवायमप्यर्थो ज्ञाप्यते । अन्यथा तदानर्थक्यं स्पष्टमेव । अत एवैकैकैकमेव  
ज्ञाप्यमिति नियमोऽत्र न । अथ चानित्यः । ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वात् । अत एव न  
यासयोरिति सूत्रस्थप्रागुक्तभाष्यसगतिः । तत्रत्यप्रागुक्तकैः प्रटस्तु चिन्त्य एवेत्यादि स्पष्टमु-  
द्घोतादौ । तदाह—इत्यन्यत्रेति ॥ ५२ ॥

एवं, तद्वत्प्रागुक्तोभयत्रैव तदप्रवृत्तौ । सौमेन्द्रे, सौमेन्द्र इति तल्लक्ष्ये । अत्रान्तरङ्गत्वं  
प्रत्येत्यादिवदुभयथाऽपि बोध्यम् । नन्वन्तादिवद्भावेन तस्य ततः परत्वमत आह—  
अन्तादीति । उभयत इति । पूर्वपरशब्दाभ्यामन्तादिशब्दाभ्या च विरोधस्य  
पुरस्फुर्तिकत्वाद्विरुद्धातिदेशद्वयस्यैकत्र युगपदसम्भवात् । यथा द्वयोरेकः प्रेष्यस्ताभ्या  
युगपद्विन्नदेशकार्ययोः प्रेरितोऽविरोधार्थी कस्यापि कार्यं न करोति तद्वदिति न्यायसिद्ध-  
मिदम् । ननुभयत आश्रयणेऽन्तादिवच्चाभावेऽपि तद्वत्त्वे व्यपवर्गाभावेऽपि वा विकारविशिष्टे  
सोमध्यन्तवद्भावेन पूर्वपदत्वे न्द्रशब्द एकदेशेतिन्यायेनेन्द्रशब्दत्वात्सामर्थ्यादस्य देवते-  
तिप्राप्तवृद्धिनिषेध एवास्त्वत आह—किं चेति । अपिरेवार्थे । अत्र सौमेन्द्र इत्यत्र ।  
देवताद्वन्द्वे चेत्यनेनेति भावः । अन्तादीति । एतद्रूपोभयेत्यर्थः । उक्तनिषेधादिति भावः ।

भावेऽपि पूर्वान्तवत्त्वेनैकादेशविशिष्टे पूर्वपदत्वेन न्द्रशब्दस्यैकदेशवि-  
कृतन्यायेनोभयत आश्रयणे नान्तादिवदित्यस्याभावेन तदाश्रयेण वोत्त-  
रपदत्वेऽपि तस्यानच्कृत्वात् । एकस्यैकादेशेन परस्य नित्येन 'यस्य' ( ६ ।  
४।१४८) इति लोपेनापहारात् । न च परादिवद्भावैकैकादेशविशिष्टस्यो-  
त्तरपदत्वमेवास्त्विति तत्संभव इति वाच्यम् । उत्तरपदाद्यच्छस्थानिक-  
त्वाद्बृद्धेस्तदभावेनाप्राप्तेस्ताद्रूप्यानातिदेशात् । अन्यथा खट्वाभिरि-  
त्यादावपि पूर्वान्तवत्त्वेनादन्तत्वे भिस ऐसापत्तिरिति भाष्ये स्पष्टम् ।  
अत एव पूर्वेषुकामशम इत्यादावन्तरङ्गत्वादाहुणे वृद्धिर्न स्यादित्या-

न्यायेनैत्यस्योत्तरपदत्वेऽपीत्यन्त्रान्वयः । ननुभयत आश्रयं इति निर्मूलम् । वतिघटित-  
शास्त्रस्याऽऽहार्यारोपबोधकत्वेन तस्य च विरुद्धद्वयविषयकत्वस्यापि युगपत्संभवेन लौकिक-  
न्यायेनोक्तेनास्य सिद्धयभावात् । अन्तादिवत्त्वेऽपि व्यपवर्गाभावेनोपसर्गात्परत्वस्येण्यभावेना-  
भौयादित्यादिसिद्धेश्च । 'उपसर्गस्यायतौ' 'अन्तादिवच्च' 'न ध्वान्त' गोस्त्रियोरित्यादि-  
सूत्रभाष्ये तदुल्लेखस्त्वेकदेशेन इति स्पष्टमुद्घोतादौ । अत आह—उभयत इति ।  
तदाश्रयेण वेति । अन्तादिवत्त्वोभयाश्रयेण वेत्यर्थः । यद्यपि पक्षद्वयेऽप्याहार्यारोपबोध-  
कत्वेन व्यपवर्गो दुर्निरूपस्तथाऽपि मूलमेव नेत्याह—तस्येति । न्द्रशब्दस्येत्यर्थः ।  
एव च न्द्रशब्दस्येत्येव पूर्व पाठो बोध्यः । अलोपाज्ञानेन सस्वरपाठो वा । अनच्कत्वे  
हेतुमाह—एकस्यैकेति । प्रथमस्येत्यर्थः । अत एवाऽऽह—परस्येति । ब्रु परत्वा-  
द्बृद्धिरत आह—निस्थेनेति । एकेति । एन्द्रशब्दस्यैवेत्यर्थः । एवस्यात्रान्वयात् ।  
यद्वा यथाश्रुत एवैकादेशविशिष्टस्य पूर्वपदत्वव्यवच्छेदकः सः । एव चार्थान्मान्त एकदेशेति  
न्यायेन पूर्वपदत्व बोध्यम् । तत्संभव, वृद्धिप्राप्तिसंभवः । एव च निषेध सफलः । तद-  
भावेन, आदित्वाभावेन । नन्वादित्वस्यापि तेनातिदेशोऽत आह—ताद्रूप्येति । पृथग-  
वस्थिताभ्यामाद्यन्तघटिताभ्यां ये व्यवहाराः प्रत्ययत्वप्रातिपदिकत्वसुबन्तत्वादयस्ते कृतै-  
कादेशस्यापीत्यर्थ इति भावः । अन्यथा, ताद्रूप्यातिदेशे । अपिः खट्वाभ्य इत्यादि-  
समुच्चायक । ऐस्त्विति । भिसादीनामैसाद्यापत्तिरित्यर्थः । भाष्ये, अन्तादिवच्चेति सूत्रे ।  
अत एव, ताद्रूप्यानातिदेशेनाऽऽदित्वाभावादेव । न्तरङ्गेति । पठ्येत्यादिवदन्तरङ्गत्वम् ।  
वृद्धिः, प्राचा ग्रामेत्यनेन । इषुकामशमीशब्दस्य प्राग्ग्रामवाचित्वात् । आशङ्कितम्,  
उभयत्र भाष्ये । समाधिस्तु परिभाषारूप एव । ननु सौमेन्द्रे यथैकदेशेतिन्यायेन मान्तस्य  
पूर्वपदत्व तथैकादेशविशिष्टस्योत्तरपदत्वमपि स्यादिति वक्ष्यमाणभाष्यासगतिरेवात आह—

शङ्कितम् । तदेकदेशमात्रस्य विकारामावाञ्च । तदुक्तं भाष्ये इन्द्रे द्वावचावेको यस्येति लोपेनापहृतोऽपर एकादेशन ततोऽनच्क इन्द्रशब्दः संपन्नस्तत्र कः प्रसङ्गो वृद्धेरिति । मरुदादिभिरिन्द्रस्य द्वन्द्व इन्द्रस्यैव पूर्वनिपातोऽत आह—

पूर्वोत्तरपदानिमित्तकार्यात्पूर्वमन्तरङ्गोऽप्येकादेशो न ॥ ५३ ॥

अत्र च 'नेन्स्य' ( ७ । ३ । २२ ) इति निषेध एव ज्ञापक इति 'अन्तादिवच' ( ६ । १ । ८५ ) 'विप्रतिषेधे परम्' ( १ । ४ । २ ) इति सूत्रयोर्भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५३ ॥

नन्वेवमपि प्रधाय प्रस्थायेत्यादावन्तरङ्गत्वाद्वित्त्वादिषु कृतेषु ल्यप्स्थादत आह—

अन्तरङ्गानपि विधीन्वहिरङ्गो ल्यब्बाधते ॥ ५४ ॥

'अदो जग्धिः' ( २ । ४ । ३६ ) इति सूत्रे तिकितीत्येव सिद्धे ल्यब्ग्रहणमस्या ज्ञापकमित्यदो जग्धिरित्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

तद्वेकेति । गुणरूपविकारस्योत्तरपदैकदेशमात्रासंबन्धित्वात्तस्योभयस्थानिकत्वादित्यर्थः । एव च यत्रानन्यत्व तदेकदेशपात्रविकारस्य तत्र ग्रहणमित्यत्रोभय तेन कर्तुमशक्यमिति भावः । तदुक्तं, तदेतत्सर्वमभिप्रेत्योक्तम् । भाष्ये, विप्रतिषेधेऽन्तादिवच्चेति सूत्रद्वयस्थे । ननु मारुदिन्द्रमित्यत्र हलन्तपूर्वपदत्वेनैकादेशाभावाद्बृद्धिप्रसङ्गे निषेधः सफलोऽत आह—मरुदादीति । ननु पूर्वनिपातप्रकरणस्यानित्यत्वात्तथेति चेन्न । ज्ञापकपरोक्तभाष्यासंगत्यापत्या तेषामनभिधानात् । अत आह—स्यैवेति । निमित्तेति बहुव्रीहिः । निमित्तत्वं च यथाकथञ्चित् । नेत्यस्य प्रवर्तत इति शेषः । अत्र च, उक्तपरिभाषाया च । यथा चैतत्तथाऽवतरण एवोक्तम् । भाष्ये इति । तत्र ह्युक्तभाष्यादग्रे पश्यति त्वाचार्यः पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेश इति ततो नेदस्येति निषेधं शास्तीत्युक्तम् ॥ ५३ ॥

एवमपि, स्थलत्रये निर्वाहेऽपि । आदिना प्रखाय प्रखन्येत्यादिसंग्रहः । अन्तरङ्गत्वात्, अनेकपदाश्रयसमासनिमित्तकल्यवपेक्षयैकदीयप्रकृतिप्रत्ययापेक्षत्वेन घटकत्वेन तत्त्वात् । हित्वादिषु, दधातेर्हिरित्यादिषु । आदिना धातिस्यति जनसनखनामित्यादिपरिग्रहः । स्यादिति । एवं चानिष्टरूपापत्तिरिति भावः । ज्ञानपीति । अपिः कैमुतिकन्यायेन प्राग्वत्परादिसमुच्चायकः । स्पष्टमिति । ननु स्थानिवत्सूत्रेऽस्त्विधौ स्थानिवत्त्वा-



नन्वेवमपीयायेत्यादौ द्वित्वे कृतेऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घत्वे तदसिद्धिरत आह—

वाणादाङ्गं बलीयो भवति ॥ ५५ ॥

तेनान्तरङ्गमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा वृद्धिरिति तत्सिद्धिः । 'अभ्यासस्यासवर्णे ( ६ । ४ । ७८ ) इतीयङ्गविधायकसूत्रस्थमसवर्णग्रहणमस्या ज्ञापकम् । तद्धीषतुरित्यादावियङ्गादिव्यावृत्त्यर्थम् । एतत्परिभाषाभावे स्वीषतुरित्यादावन्तरङ्गेण सवर्णदीर्घेण बाधात्तद्व्यर्थम् । इयङ्गुवङ्गौ ह्यभ्याससंबन्धानिमित्तकत्वाद्वाहिरङ्गौ । न चेयङ्गादिरपवादो येन नाप्राप्तिन्यायेनेयर्तित्यादिसकललक्ष्यप्राप्तयणपवादस्वस्यैव निर्णयादिति प्राञ्चः ।

भावे ज्ञापकमिदमुक्त भाष्य इति तयोर्मिथो विरोध इति चेन्न । यावता विना यदनुपपन्नं तस्य सर्वस्य ज्ञाप्यत्वम् । न ह्येकैकमिति नियम इति कैयटेनैवोक्तत्वात् ॥ ५४ ॥

एवमपि, ह्यविविषये निर्वाहेऽपि । द्विर्वचनेऽचीति निषेधेन द्वित्वात्प्राङ् न वृद्धिः । यद्वा वृद्धेर्द्विर्वचनेऽचीति रूपातिदेशेनापहार इत्याह—द्वित्वे इति । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वात् । दीर्घत्वे, वृद्ध्यादौ चेति शेषः । तदसिद्धिः, इयायेत्यसिद्धिः । आयेत्यस्यैव प्राप्तेः । तेनान्तेति । वचनाङ्गीकारेणेत्यर्थः । तत्त्वप्रतिपादयितुं तत्फलमाह—तद्धीति । यतोऽसवर्णग्रहणमित्यर्थः । आदिना, उषतुरित्यादिपरिग्रह । इयङ्गादीति । कित्वाद्गुणःभावे सवर्णेऽचि परत इत्यादिः । आदिनोवङ्परिग्रहः । भाषाभावे त्वित्यत्राकारप्रश्लेषः । एवमप्रेऽपि । बाधादित्यस्येयङ्गुवङ्गोरित्यादिः । तथा च तयोरप्राप्तिरवेत्यसवर्णग्रहण व्यर्थं सङ्कुक्तार्थज्ञापकमिति भावः । ननु परनिमित्तकत्वस्य तुल्यत्वात्कथं तत्त्वमत आह—इयङ्गिति । हि, यतः । सवर्णेऽसवर्णे इति विशेषणयोरपि तुल्यत्वादाह—अभ्यासेति । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणादाह—संबन्धेति । स्थानिता त्वनुवृत्त्या खोरेव नाम्यासस्येति तत्संबन्धस्य निमित्तत्व सुवचम् । तथा च तन्निमित्तसमुदायाद्वाहिभूतनिमित्तकत्वन सख्यया तत्त्वमिति भावः । न चेयङ्गादिरपवाद इति । सवर्णदीर्घापवाद इत्यर्थः । प्रकृतलक्ष्ये तस्यावश्यं प्राप्तेरिति भावः । स्वविषयत्वाच्चच्छेदेनोत्सर्गप्राप्तौ येन नेत्यस्य विषयः । न चेह तथेत्याशयेनाऽऽह—येनेति । तर्तित्यादीति । आदिनेषतुरित्यादिसग्रहः । त्वस्यैव । इयङ्गादेरिति शेषः । प्राञ्चः, सीरदेवादयः ।

परे त्वेतत्परिभाषामावेऽभ्यासस्येति सूत्रमेव व्यर्थम् । न चेयेषेयाये-  
त्यादौ चरितार्थम् । तयोरपि पूर्वप्रवृत्तगुणस्य पूर्वप्रवृत्तवृद्धेश्च 'द्विर्वच-  
नेऽचि' ( १ । १ । ५९ ) इति रूपातिदेशेनापहारे द्वित्वे कृते पुनः प्राप्ते  
गुणवृद्धी बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घापत्तेः । न चेयतीत्यादौ तच्च-  
रितार्थम् । तावन्मात्रप्रयोजनकत्वं उरित्येव ब्रूयात् । च्वोरित्यनुवर्तते ।  
इणो यणिति साहचर्याद्याख्यानञ्चक्रघातोरेव ग्रहणम् । अर्तेरिवर्णस्येय-  
ङ्ङित्यर्थः । अभ्यासस्यार्तावित्यभ्यासस्यार्तेरिति वा गुरुत्वान्न युक्तम् ।

अनेन सूचितामरुचिं प्रकृत्यन्तिद्वान्तमतमाह—परे त्वित्यादिनाऽऽहुरित्यन्तेन ।  
सूत्रमेवेति । एवेनासवर्णपदमात्रव्यवच्छेदः । तयोः, इयेषेयायेत्यनयोः । अपिरादिग्राह-  
स्योवोखेत्यादेः समुच्चायकः । पूर्वेति । द्वित्वादिति शेषः । परत्वादिनेति भावः । अपहरे,  
सतीति शेषः । पुनः प्राप्ते इति । लक्ष्यभेदादिति भावः । षाष्ठद्वित्वस्य द्विःप्रयोगरूपत्वे-  
नाविकारैस्त्वात् । अत्रान्तरङ्गत्वं पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपम् । दीर्घापत्तेरिति । एवं  
चाऽऽद्येऽचपरत्वाभावादेव तदप्राप्तिरिति भावः । द्वितीयादौ तु विशेषो वक्ष्यते । त्वित्या-  
दाविति । आदिनेयुत इत्यादिपरिग्रहः । तत्, सूत्रम् । उरित्येवेति । एवेनाभ्यासेति  
संपूर्णसूत्रव्यवच्छेदः । नन्वेवमारेत्यादावपि तदापत्तिरत आह—च्वोरिति । अचि शिन्वत् न  
इति भावः । नन्वेवमपि ऋघातोरेव ग्रहणे किं मानम् । ऋकारान्तस्याङ्ङस्येत्यर्थेऽघातोऽपि  
ग्रहणसंभवात् । तथा च तदनुवृत्तौ पित्र्यकरोदित्वादौ च्यन्तेऽपि दोषापत्तिरत आह—  
इण इति । नन्वेतदपेक्षयाऽव्यवहितस्त्रिया इति साहचर्यात्तादृशाघातोरेव ग्रहणं स्यात् ।  
किं च व्यवहितसूत्रान्तरसाहचर्ये मानाभावश्चात आह—व्याख्येति । एकदेशे स्वरितत्व-  
प्रतिज्ञया बल्लसयाऽचि शिन्वत्यतो घातुपदानुवृत्तेरित्यर्थः । ननु तथा सस्यपि ऋकारान्तघा-  
तुमात्रग्रहणापत्तिरेवेति नेष्टसिद्धिरतो व्याख्यानानादेव लब्ध स्पष्टप्रतिपत्तये वाक्यार्थमाह—  
अर्तेरिति । विशेषणविशेष्यभावे कामचारेण घातोऽरित्यस्य विशेषणत्वम् । अत एव शितपा  
निर्देशेन तदभिव्यक्त्या व्याख्याने तस्याप्रवेशः । उकारस्यासंभवात्त्यागः । समासनिर्दिष्ट-  
त्वाद्विशिष्टानुवृत्तिरिति भावः । कैयटहरदत्तसीरदेवप्रकाशकृत्कौस्तुभकृदाद्युक्तिं खण्डयति—  
अभ्यासेति । विनिगमनाविरहादाह—अभ्यासेति । यत्त्वेव पाठे शितपानिर्देशाद्यङ्-  
लुकि न स्यादिति पूर्वोक्ताः । तन्न । भवतेर इतिवत्तत्सत्त्वात् । शितपाशपेत्यस्या भाष्येऽ-  
दर्शनाच्च । तद्व्यनयनाह—गुरुत्वादिति । मात्रागौरवस्य षद्व्ययकृतगौरवस्य च  
सत्त्वादिति भावः ।

न च ए ऐ ओ औ शब्देभ्य आचारक्विवन्तेभ्यो लिटीयङाद्यर्थं तत्सूत्रमावश्यकम् । तथा ओणघातोर्णुलन्तादिच्छाक्यजन्तात्सन्धुवोणकीयिषतीत्याद्यर्थमप्यावश्यकमिति वाच्यम् । षाष्ठप्रथमाह्निकान्तस्थभाष्यप्रामाण्येन तेषामनभिधानात् । अन्त्ये द्वितीयद्विर्वचनस्यैव सत्त्वेन त्वदुक्तप्रयोगस्यैव दुर्लभत्वात् । एवं च संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकता युक्ता । यद्यपि भाष्ये यद्यमभ्यासस्यासवर्ण इत्यसवर्णग्रहणं करोतीति ग्रन्थेनासवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकता लभ्यते तथाऽपि न ह्यन्तरेण गुणवृद्धी असवर्णपरोऽभ्यासो भवतीति तदुपपादनग्रन्थेन संपूर्णसूत्रस्यैव

ए ऐ इत्यादौ निःसदिग्धस्वरूपबोधनाय सधिनं । हलादित्वाभावेन यदोऽप्राप्तेराचारक्विवन्तेभ्यः सनोऽनुत्पत्तेश्चाऽऽह—लिटीति । तथा, उक्तवत् । षतीत्यादीति । आदिना, इयेजकीयिषतीत्यादिसग्रहः । र्थमपीति । अपिरुक्तसमुच्चायकः । क्वचित्-दपाठ एव । तदा तथेत्येव समुच्चायकः । न चेजादेरित्यामापत्याऽऽद्यदोषः सुवारः । इजादित्वगुरुमच्चयोरेकैकस्यातिदेशेनालाभात् । यन्निमित्तवैकल्यकृतोपदेशाप्राप्तावतिदेशो मृग्यते तन्निमित्तान्यनिमित्तत्वत्वस्य तत्राङ्गीकारात् । न च धातुत्वकृच्छत्यन्यत्वे स्त एव । तथा सत्यनृच्छ इति पर्युदासादज्जलात्मकसमुदायादेव तद्विध्यङ्गीकारात् । न च कासप्रत्ययादिति तत्प्राप्तिः । प्रत्ययग्रहणापनयवादिमते तदसम्भवात् । किं च तदपनयवादिनैकाज्जभ्योऽनभिधानात्क्विवन्तेरेव वाच्यत्वेनादोषात् । अन्यथा सूत्रवार्तिकयोः फलभेदापत्तेः । अधिकमन्यत्र द्रष्टव्यम् । 'इको गुण' 'वदन्नज' 'ओतः श्यनि' 'आदेज' इत्यादिसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यदेजन्तेभ्य आचारक्विवन्ताच्च । एतेन पर्युदासलभ्यार्थानङ्गीकारेण तेन तदपनय प्रत्ययग्रहणसत्त्वमिति सिद्धान्तमते तेन तदापत्त्या च दोषः सुवार एवेत्यपास्तम् । तदेतत्सर्वं हृदि निषाय तथैवाऽऽद्य आह—एति । षष्ठाध्यायप्रथमपादप्रथमाह्निकचरमदाश्वान्साह्वानित्येतत्सूत्रस्थोक्तज्ञापकपरभाष्येत्यर्थः । अन्यथा तत्र चारितार्थ्ये ज्ञापकत्वात्सगतिः स्पष्टैव । तेषां, संध्यक्षरप्रकृतिकाचारक्विवन्तानाम् । अन्त्ये, उवोणकीयिषतीत्यादौ । द्वितीयेति । अजादेद्वितीयस्येत्यादिः । यथेष्टमित्यस्याधिकसग्रहार्थत्वेनात्राप्राप्तेः । नामशब्दस्य सुबन्तपरतया तत्प्रकृतिक एव तत्प्राप्तेश्चेतिभावः । एव च, अन्यत्राचारितार्थ्यं च ।

अत्र मते भाष्यविरोधमाशङ्क्य परिहरति—यद्यपीत्यादिना स्यादित्यन्तेन । भाष्ये, दाश्वानितिसूत्रस्थे । अस्य ग्रन्थेनान्वयः । स्यैवेति । एवेन सूत्रव्यवच्छेदः । तदुपेति । ज्ञापकोपेत्यर्थः । इत्थं हि तदाकृतम्—असवर्णाचपराभ्यासेवर्णादीन्नामियङादिषिषान तथा सति व्यर्थमेव स्यत् । न चासवर्णग्रहणाकरणेनापीदं सिद्धम् । ईषतुरित्या-

ज्ञापकता लभ्यते । अग्रेऽपि नैतदस्ति ज्ञापकमर्थमेतत्त्यादित्यनेन सूत्रसार्थक्यमेव दर्शितम् । असवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकत्वे तु तद्यावत्प्रदर्शनेन तत्सार्थक्यमेव दर्शितं स्यात् ।

न चाकृतपरिभाषयेषेत्यादौ सवर्णदीर्घाभ्यामिष्यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि गुणः स्यादिति संभावनायाः सत्त्वेन परिभाषाप्रवृत्तेः सूत्रपादत्वादिति कथं संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतेति वाच्यम् । तरया असत्त्वात् । सत्त्वे वैतद्भाष्यप्रामाण्येन यत्रान्तरङ्गकार्यप्रवृत्तिसोप्यकालोत्तरमेव तन्नित्तिविनाशाशकवाहिरङ्गविधेः प्राप्तिसत्तत्रैव तत्परिभाषाप्रवृत्तिरवीकार्यम् । न चान्तरङ्गत्वाद्दीर्घोऽपीयायेत्यादौ पूर्वान्तवत्त्वेनाभासत्वादिष्यत्त्वात् । अन्तर्गतसवर्णत्वविधानेन सूत्रं चरितार्थम् । न च 'अचि इत्तु' (६।५।१७।) इत्यनेन सिद्धिवृद्धिवाधनाथेत्वादिति वाच्यम् । प्रत्यासत्त्याऽसवर्णपदेनाभ्यासोत्तरखण्डसंबन्धसवर्णाच्च एव ग्रहणात् । शाखाप्राधक्यव्यवधानपक्षेणा परिभाषाज्ञापकत्वेत्यैवाचित्याच्चेत्याहुः ।

दावपीयडाद्यापत्तेः । एव चारवर्णग्रहणविशिष्ट सूत्रमेतदर्थज्ञापकम् । उपक्रमेऽपि बहुव्रीहिणा सूत्रमेवाभिमतमिति भावः । करवे त्विति । तुरुक्तव्यवच्छेदे । तत्त्वण्डनावसर इति शेषः । तत्रावर्त्येति । असवर्णपदव्यवर्त्येत्यर्थः ।

उभयत्र कौस्तुभकृदाद्युक्ति खण्डयति—न चेत्यादिना कारात्तेत्यन्तेन । अकृततपरीति । अकृतेतिवरीत्यर्थः । आदिनेयायेत्यादिपरिग्रहः । ननु दीर्घे गुणाद्यप्राप्त्या भाविनिमित्तविनाशाभावेन कथं तत्प्राप्तिरत आह—यदीति । गुण इत्युपलक्षण वृद्धेरपि । सिद्धान्तरीत्या समाधत्ते—तरया इति । अकृतेत्यस्या इत्यर्थः । कैयटादीरीत्या समाधत्ते—सत्त्वे चेति । वाशब्दोऽनास्याया न तु विकल्पे । एतद्भाष्येति । न खण्डरेणेत्यादिसर्वभाष्येत्यर्थः । द्वितीये तदुक्ति खण्डयति—न चेति । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वेन तत्रात् । दीर्घे, सवर्णदीर्घे । इष्येत्परत्वं स्वत इत्यादिः । णस्यसेति । गलरूपेऽसवर्णेऽवीत्यर्थः । वृद्धीति । अत्रोऽभितीत्यनेनेति भावः । अत एवात्र शङ्काया प्रागुपात्तस्येयेत्यस्य त्यागः । तत्र तदस्यपात् । असवर्णपदेन, असवर्णाच्चपदेन । भ्यासोत्तरेति । यन्निरूपितपूर्वत्वमादाया यासत्त्वं तदवच्छिन्नोत्तरेत्यर्थः । ननु प्रत्यासत्तिन्यायाद्यादिन्यायस्य प्राबल्यमत आह—शास्त्रेति । वृद्धिविधीत्यर्थः । तथा हि सतीयायेत्यादिस्वल्पलक्ष्यसिद्धौ व्याप्तिन्यायविरोधः स्यादिति भावः । तदध्वनयन्नाह—औचित्यादिति । ननु परिभाषाज्ञापन केवलासवर्णपदेनापि सिद्धमिति तच्छास्त्रनाधाथेमेवास्वत आह—चेत्याहुरिति । चेन कृदतिङ्सूत्रस्थभाष्योक्तरीत्याऽचः परेति स्थानिवत्त्वेन तदप्रवृत्तेरित्यस्य समुच्चयः ।

सा चयं धर्मिग्राहकमानादाङ्गवार्णयोः समानकार्यिकत्व एव । यत्तु समाननिमित्तकत्वरूपसमानाश्रयत्व एवैषेति तन्न । ज्ञापितेऽपीयायेये-  
वेत्याद्यासिद्धेः । सूत्रवैयर्थ्यस्य तदवस्थत्वाच्च । स्योन इत्यत्र तु वक्ष्य-  
माणरीत्यास्या अनित्यत्वादप्रवृत्तौ गुणादन्तरङ्गत्वाद्यणादेशः ।

न चैवमपीयायेत्यादाकियद्गुर्लभस्तत्र कर्तव्ये वृद्ध्यादेः स्थानिव-

केषा चिन्मतमाह—सा चयमिति । सपूर्णोक्तसूत्रज्ञापितोक्तपरिभाषेत्यर्थः । धर्मि,  
परिभाषा तद्ग्राहक मानमुक्तसूत्रम् । समानेति । वार्ण्यस्याऽऽङ्गकार्यिकार्यिकत्व इत्यर्थः ।  
प्रवर्तते इति शेषः । अत एव सार्वधातुकमपिदिति सूत्रेऽपिदितिपर्युदासपक्षे च्यवन्ते ह्यवन्त,  
इत्यादौ गुणात्पूर्वं नित्यात्वादन्तरङ्गत्वाच्चैकादेशे कृते पिदपितोः परस्येहापित आश्रितत्वा-  
च्छाब्दफललाभाय परस्य कार्यं प्रत्यादिवैज्ञानादपित्वेन क्त्वप्रवृत्त्या गुणनिषेधः स्यादि-  
त्युक्तम् । अन्यथा तु तदसंगतिः स्पष्टैवेति भावः । एवव्यवच्छेद्य सीस्देवादिमत खण्डयति—  
यत्त्विति । लक्ष्यं त्वियायेत्यादावुत्तरखण्डे यणः पूर्वमकारं मत्वा वृद्धिरित्येव कुम्भकार  
इत्यादि च बोध्यम् । एवेनोक्तव्यवच्छेदः । शेषः प्राग्वत् । असिद्धेरिति । असमा-  
ननिमित्तकत्वेन परिभाषाया अप्रकृत्या दीर्घ आयेत्याद्यापत्तेरिति भावः । इष्टापत्तिमभ्युपे-  
ह्याऽऽह—सूत्रेति । अभ्यासस्येति सूत्रेत्यर्थः । एव च स्वस्मिन्नचारिताश्रयेन ज्ञापक-  
त्वासंगतिरिति भावः । ऊँखतुरूच इत्याद्यासिद्ध्यापत्तेश्च । ह्रस्वस्य प्रत्ययश्रयत्वेऽपि सव-  
र्णदीर्घस्य तदनाश्रयत्वेन तदभावादेतदप्रवृत्तावन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घे ह्रस्वापत्तेः । सिद्धान्ते  
तु लक्ष्ये लक्षणाभिति न्यायेन नेत्यपि बोध्यम् । केषां चिन्मतेऽरुचि ध्वनयन्नाह—स्योन  
इति । अत एव तुः प्रयुक्तः । सिवैरौणादिके नप्रत्यय ऊठि यणि गुणे च रूपम् ।  
वक्ष्यमाणेत्यस्यानुपदमित्यादिः । अस्याः, वार्णादित्यस्याः । यणादेश इति । एतेना-  
ङ्गत्वाल्लघूपधगुणोऽत्र स्थादित्यपास्तम् ।

एवमपीति । उक्तपरिभाषयाऽऽदौ वृद्धिगुणादिप्रवृत्तावपि । यत्तु सीरदेवादयः  
परत्वाद्गुणे कृते द्विर्वचनेऽचीति स्थानिवद्भावाद्द्विर्वचनम् । तत्र कृत्वे द्वित्व एवेत्यवधारणद्गुणः  
पूर्वरूपेणावतिष्ठते न पुनर्द्वित्वेन तदुत्तरकाल पुनः क्रियते । तेनाऽचः परेतिस्थानिवत्त्वमियङ्-  
वदोः कर्तव्ययोर्न । यदि हि स्यात्तर्ह्येतेरभ्यासस्येत्येव ज्ञयात् । इदमेवासवर्णग्रहणमनादिष्टादचः  
पूर्वविधौ स्थानिवत्त्वमित्यत्र मूलमिति । तत्र । रूपातिदेशस्यैव भाष्यसिद्धान्तत्वेन दोषता-  
दवस्थ्यात् । यत्तु भाष्ये दाश्चानित्यत्रैवमेवोक्तं तत्तु द्विर्वचनेऽचीति कार्यातिदेश इत्याशय-

त्वेनासवर्ण इति प्रतिषेधादिति वाच्यम् । सूत्रारम्भसामर्थ्यादैव स्थानि-  
वत्त्वाप्रवृत्तेः । तच्च सामान्यापेक्षमभ्यासकार्ये तदुत्तरखण्डादेशस्य तत्का-  
र्यप्रतिबन्धकीभूतं स्थानिवत्त्वं नेति । अत एवाऽऽरतीत्यादौ यणादेशस्य  
स्थानिवत्त्वाद्भ्यासस्य ढ्रलोप इति दीर्घो दुर्लभ इत्यपास्तम् । दीर्घ-  
विधौ तन्निषेधाच्च । अरिथिरयादित्यत्र स्थानिवत्त्वेनेयङ्मवत्येव । तस्य  
स्थानिवत्त्वस्याभ्यासकार्यप्रतिबन्धकत्वाभावात् ।

इयं चाङ्गसंबन्धिन्धाङ्ग एवेति 'स्वरितो वा' (८।२।६) इति  
सूत्रे भाष्ये । तत्र ि कुमार्या इत्यादौ यणुत्तरभाडुक्तः ।

कामिति न दोषस्तद्ध्वनयन्नाह—सूत्रेति । अभ्यासस्येति सूत्रेत्यर्थः । अधिकलक्ष्यसग्रहा-  
याऽऽह—तच्चेति । अभ्यासस्येति सूत्रं चेत्यर्थः । सामान्यापेक्षमित्यस्य ज्ञापकमिति  
शेषः । तदाह—अभ्यासेति । अतिप्रसङ्गनिरासायाऽऽह—तत्कार्येति । वस्तुतो-  
भ्याससंबन्धिकार्यमात्रे कर्तव्येऽभ्यासादुत्तरस्य द्वितीयभागस्य खण्डोऽवयवो य आदे-  
शास्तस्य तत्कार्येत्याद्यर्थः । दाक्षानिति सूत्रस्योद्घोतस्याप्ययमेवार्थः । तदनवयवधात्ववयवा-  
देशस्येत्यादिशेखरस्य त्वत्र कार्येऽभ्यासस्यानवयवधातुसंबन्धितादृशावयवस्याचोऽभ्यासानवय-  
वकधातोर्योऽयमवयव उत्तरखण्डसंबन्ध्यभ्यासादव्यवहितपराञ्जूपस्तस्य वा य आदेशस्तस्या-  
भ्यासकार्यप्रतिबन्धकीभूतं स्थानिवत्त्वं नेत्यर्थः । धातुत्वमुत्तरखण्डस्यैवेति ध्वनयितु तदनव-  
यवेति तत्र बोध्यम् । अत एव यातिरित्यादिसिद्धिरिति भावप्रकाशे स्पष्टम् । अत-  
एवेति । सामान्यापेक्षत्वादेवेत्यर्थः । आरतीति । यङ्लुगन्तम् । एवमग्रेऽपि । यणा-  
देशस्य, उत्तरखण्डादेशस्य । अभ्यासेति । रुको रो रीतिश्लेषे सतीति शेषः । तत्कार्य-  
प्रतिबन्धकीभूतस्यस्य फलमाह—अरीति । तस्य तत्साधकत्वादिति भावः । यदि  
त्वन्तरङ्गत्वेन रिङः प्रागेवेयङ्त्तदैतद्विशेषण निष्फलमिति बोध्यम् ।

यत्तु न्यासकारादयो व्याश्रयेऽपीयं प्रवर्तते यजयाचेति नडो ङिस्करणाज्ज्ञापकात् । प्रश्ने  
चासन्नोतिनिर्देशेन सप्रसारणस्यानिष्टत्वेन विश्व इत्यत्र गुणनिषेधार्थं क्रियमाणं तद्वि तत्र  
ज्ञापकम् । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वात्तु किं गुणाप्रसङ्ग एवेति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव च्यवन्ते  
प्लवन्त इत्यादावनयैकादेशात्प्राग्गुण इत्याहुस्तन्मतमपि परिहर्तुमाह—इयं चेति । आङ्गे,  
अङ्गसंबन्धियेव कार्ये प्रवर्तते इत्यर्थः । भाष्य इत्यस्य स्पष्टमिति शेषः । तदेवाऽऽह—  
तत्र हीति । स्वरितो वाऽनुदान्त इति सूत्रभाष्ये हीत्यर्थः । आङ्गुक्त इति ।  
तदुत्तरमुदात्तयण इत्युदात्तेन सह संप्रधारणा कृत्वा परत्वादाङ्गुक्त इत्यर्थः । एकादेश-  
स्वरोऽन्तरङ्गतः सिद्धो वक्तव्योऽयाद्यर्थमित्यत्रापि कुमार्या इदम् । उदात्तयण इति कृत

इयं चानित्या 'च्छ्वोः' (६।४।१९) इति सतुर्गनिर्देशात् ।  
अन्यथाऽङ्गत्वात्पूर्वं तुकः शादेशे तुकोऽप्राप्त्या तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमे-

उदात्तानुदात्तयोरेकादेश उदात्तस्तस्य सिद्धत्वादायादेश उदात्तः सिद्ध इत्युक्तोक्तप्रयोजन-  
स्फुटभाष्योऽङ्गोरनित्ययोः परत्वादाद्युदात्तैकादेशयोः परोदात्तादनित्यत्वेऽप्यन्तरङ्गत्वादेका  
देश, वर्णावाश्रित्यैकादेशो विभक्तेरुदात्तत्वविधानात्पदरथोदात्तत्वमिति हि तत्रोक्तम् । तच्च  
पूर्वं यणि सत्येव संभारति नान्यथा । तत्राप्रवृत्तिकरणेन तत्रैवैतत्प्रवृत्तिरभिमतता भगवत इति  
भावः । धर्मिग्राहकमानात्तथैव लभ्यत इति तदाकृतम् ।

वस्तुतस्तूक्तसूत्रेण परिभाषामात्रं ज्ञाप्यते न तु विशिष्य समानाश्रय एवेत्यपि । अत  
एव नडो ङित्करणमपि सफलमिति न तस्याऽऽनर्थक्यशङ्कैवेति लाघवम् । इष्टानिष्टयोः  
प्रवृत्त्यप्रवृत्ती तु परिभाषानित्यत्वात्तथा बोधे । अनित्यत्वं च स्योन इत्याद्यर्थं  
केषा चिन्मते न्यासकारादिमते चाऽऽवश्यकमेवेति हि तथा करुणया । पूर्वं सा चेषमि-  
त्युक्तिस्तु दैः सखानाश्रय एवेत्यपि ज्ञाप्यमित्युच्यते तेषामपि मध्ये सीरदेवाद्युक्तमयुक्तं  
केषा चिन्मतं तु युक्तमिति सूचयितुं न तु सिद्धान्तं प्रतिपादयितुम् । अत्र मतेऽङ्गसंबन्धि-  
न्याङ्ग एवेत्यपि करुणया नेत्यपरं लाघवमिति सिद्धान्तो बोध्यः । तद्ध्वनयन्नाह—इयं चानि-  
त्येति । चस्त्वर्थे । पूर्वाभिति । छानिमित्ततुकः पूर्वमित्यर्थः । अप्राप्त्या, निमित्ताभावात् ।  
तद्वैयर्थ्यं स तुक्छनिर्देशवैयर्थ्यम् । एतेन तेन निर्देशेन समानाश्रय एव प्रवर्तत इति ज्ञाप्यत  
इत्यापास्तम् । स्योन इत्याद्यासद्वेः । अखतुरित्याद्यसिद्धेश्च । अङ्गस्याऽऽङ्गजादीनामित्या-  
दिसूत्रस्याप्यादौ षाष्ठप्रथमाह्निभान्ते चेयायेत्यादीनां न्याश्रयसाधारणानां प्रयोजनानामु-  
पन्यासाच्चेति दिक् । अन्तरङ्गपरिभाषापवाद इयम् । नन्वेवमप्यध्येयातामित्याद्यसिद्धिः ।  
छान्त्वायापडिति पक्षे धरेयडा निमित्तास्यैवाभावेन ततः प्राक्पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वा-  
द्वृद्ध्यापतेः । उक्तपरिभाषायारतयोरयुगपत्प्रवृत्त्याऽप्राप्ते । तयोरयुगपत्प्रवृत्तावपि प्रवृत्तिरिति  
कथञ्चिदाश्रयणेऽप्यनेकान्त्वाद्यणापत्तेः । न चाऽऽतोऽसिद्धत्वाच्च यण् । अत्र पक्षेऽसिद्धव-  
त्सूत्रस्य भाष्ये प्रत्याख्यानात् । न चैरनेकाच इति यांम विभज्य इणो यणित्यनुदत्त्याडा-  
दिसहितानेकाचश्चैद्यण्तर्होवर्णान्तेण एवेति नियमान्न दोष इति कौस्तुभाद्युक्तं युक्तमिति  
वाच्यम् । शब्दमर्यादयाऽलाभात् । उक्तीत्याऽडादिसहितानेकाजिणो यण एवाभावाच्चेति  
चेन्न । रूपस्यैवास्तत्वात् । तथा हि भाष्येऽसिद्धवत्सूत्रप्रत्याख्यानेऽस्य योगविभागस्य  
विध्यर्थत्वमाश्रित्यैतत्सामर्थ्यादायान्नित्यत्र पूर्वमाडित्युक्तम् । तस्मादीदृशे विषये पक्षयोः

१ घ. 'तताऽस्य सि' । क. 'तस्तस्य' । सि । २ क. 'त्युक्त्वा क प्र' । ३ क. ग.  
[ चानित्यत्वानित्यत्वाभ्यां । ४ घ. क. 'तुक्नि' । ५ क. 'उपतु' ।

धेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ५५ ॥

नन्वेवं सेदुष इत्यादौ क्वसोरन्तरङ्गत्वादिति ततः संप्रसारणेऽपीटः  
श्रवणापत्तिरिति चेत् । अत्र केचित्—

अल्लतव्यूहाः पाणिनीयाः ॥ ५६ ॥

न कृतो विशिष्ट ऊहो निश्चयः शास्त्रप्रवृत्तिविषयो यैरित्यर्थः । माविनि  
निमित्तविनाश इत्यध्याहारः । बहिरङ्गेणान्तरङ्गस्य निमित्तविनाशे  
पश्चात्संभावितेऽन्तरङ्गं नेति यावत् । अत्र च ज्ञापकं 'समर्थानां प्रथ-

फलाभेदायेद्घातोर्लोकेऽनभिधानमेव । संप्रसारणाच्चेतिसूत्रोदाहृतमध्येयातामित्यादि तु  
छान्दसम् । तत्र हि बहुल छन्दस्यमाद्योगेऽपीति बहुलग्रहणादादेशोत्तरं परस्वादियङि  
तत आटि वृद्धिः । न चाणित्यः । इयङोऽपि तच्चात् । अन्तरङ्ग्या वृद्ध्या नाघेऽपि  
लक्षणांतरेण निमित्तविघातेऽनित्यत्वाङ्गीकारादिति बोध्यम् । केचित्तु लावस्थायामडिति  
पक्षेऽपि वाणादाङ्गमिति न्यायेनाङ्गस्य तन्निमित्तभूतादेशानां च पूर्वं प्रवृत्त्या न दोषः ।  
यथाऽन्तरङ्गानपीति न्यायो लुकस्तत्प्रयोजकसमासादीनां च प्राबल्यबोधकस्तद्वदन्नाप्यङ्गी-  
कारात् । अतिप्रसङ्गस्त्वनित्यत्वाद्वारणीय इत्याहुः । परे त्वसिद्धवत्सूत्रारम्भस्यैव ज्याय-  
स्त्वेन तत्पक्षस्यैवाभावेनाऽऽदेशोत्तरमाडपेक्षया परस्वादियङि आटि वृद्ध्या रूपसिद्धिमाहुः ।  
तदेतदभिप्रेत्याऽऽह—अन्यत्रेति । शेखरादावित्यर्थः ॥ ५६ ॥

एवम्, उक्तेष्वेवान्तरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तौ । षड्इत्यादाविति । आदिना पपुष  
इत्यादिपरिग्रहः । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वस्थितनिमित्तकत्वात् । एवमग्रेऽपि । ततः, विभ-  
क्त्युत्पत्त्यनन्तरम् । निमित्तसत्त्वादिति शेषः । यत्तु उस्यपदान्तादिति पररूप भविष्यतीति  
तत्र । अतो गुण इत्यतोऽत इत्यनुवृत्तेः । अत आह—श्रवणेति । केचित्, सीरदे-  
वदीक्षितादयः । ऊह इत्यस्य व्याख्या निश्चय इति । वैशिष्ट्यमेवाऽऽह—शास्त्रेति ।  
यैः, पाणिनिप्रोक्ताध्येतुभिः । नन्वेव निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वेत्यस्य कुतो लामोऽत  
आह—भावीति । सति सप्तमी । नन्वेवमपि तत्र संप्रसारणाद्यप्रवृत्तिरित्येवार्थः कुतो  
नेत्यत आह—बहिरङ्गेणिति । संभावनाया अपि निमित्तत्वस्य वक्ष्यमाणत्वादाह—  
संभावित इति । तत्रापीत्यर्थः । अत एव वक्ष्यति विनाशाभाव इत्यादि । अन्तरङ्गं  
नेतीति । तथा च तदपवादत्वादस्यास्तथाऽर्थो नेति भावः । यत्त्वत्र गोरतद्धितलुकीति  
तद्धितग्रहण ज्ञापकम् । तद्धि राजगवीयतीत्यादौ सुब्लुकि निषेधो मा भूदित्येवमर्थं क्रियते ।  
अस्या अभावे त्वन्तरङ्गत्वाद्वा भाव्यमिति तदानर्थक्यमेव । ज्ञापिते तु भाविलुकः सत्त्वे-  
नालुगुरूपनिमित्तविनाशाद्वा स्यादिति तत्सफलमिति सीरदेवादयः । तत्र । अन्त-  
रङ्गानपीतिन्यायप्राप्तानिष्टवारणेन तत्साफल्यादिति केचित् । तद्ध्वनयन्नाह—अत्र



मात्' (४।१।८२) इति सूत्रे समर्थानामिति । तद्धि सूत्थिता-  
दिभ्यः कृतदीर्घेभ्यः प्रत्ययोत्पत्त्यर्थम् । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वाद्दीर्घे कृत एव  
प्रत्ययप्राप्त्या तद्व्यर्थता स्पष्टैव । तत्र हि भाविन्यादिवृद्ध्या सवर्णाच्च-  
विनाशः स्पष्ट एव ।

न चात्रैकादेशप्रवृत्तिसमये वृद्ध्यप्राप्त्यैकादेशे कृत आवेशे वृद्धेः  
प्राप्तावपि तन्निमित्तविनाशाभाव इति वाच्यम् । तद्वारैव तन्निमित्त-  
विनाशसत्त्वेनाक्षतेः । न च सौत्थितौ बहिरङ्गतया वृद्धेरसिद्धत्वान्न  
तन्निमित्तविनाश इति वाच्यम् । समर्थग्रहणेनैतद्विषये तस्या अप्रवृत्ते-  
रपि ज्ञापनात् ।

यत्तु समर्थग्रहणेनान्तरङ्गपरिभाषाया अनित्यत्वमेव ज्ञाप्यत इति  
तन्न । असिद्धपरिभाषया समकालप्राप्तबहिरङ्गस्य पूर्वजातबहिरङ्गस्य

चेति । उक्तपरिभाषायामित्यर्थः । तत्त्वमुपपादयति—तद्धीति । समर्थग्रहण हीत्यर्थः ।  
अन्यथा, एतद्वचनाभावे । प्रत्यचेति । इजादीत्यर्थः । तद्व्यर्थता, समर्थपदव्यर्थता ।  
ज्ञापिते चारितार्थ्यमाह—तत्र हीति । अस्या ज्ञापितत्वे हीत्यर्थः । च्त्वविनाशः,  
\* सवर्णाञ्जिनाशः । यथा चैतत्तथा स्पष्टमन्यत्र । एव च तत्रैतदप्रवृत्त्यर्थं समर्थग्रहणं  
कार्यमिति भावः ।

चारितार्थ्यं विघटयति—न चेति । अत्र, सूत्थितादौ । वृद्धयेत्यस्य निमित्ताभावा-  
दित्यादिः । आदेशे, दीर्घरूपे । इजुत्पत्तावित्यादिः । तन्निमित्तेति । दर्भनिमित्त-  
भूर्तह्रस्वसवर्णाजित्यर्थः । तद्वारैवेति । आदेशविनाशद्वारैवेत्यर्थः । एवेन तत्र साक्षा-  
त्त्वव्यवच्छेदः । तन्निमित्तति पाठ । अर्थः प्राग्वत् । एवमग्रेऽपि । पुनरन्यथा तत्त्वं  
विघटयति । न चेति । घटकत्वेन पूर्वस्थितत्वेन वाऽन्तर्भूतनिमित्तनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गाकृत-  
परिभाषाप्रवृत्ताविति शेषः । एव चाचारितार्थ्येनाज्ञापकत्वात्समर्थग्रहणं व्यर्थमेवेति भावः ।  
अतएवाऽऽह—समर्थेति । एतद्विषये, अकृतेतिविषये । तस्याः, अन्तरङ्गपरिभाषायाः ।  
त्तरपीति । अपिरेतत्परिभाषासमुच्चायक । यावता विनेतिन्यायेनेति भावः ।

नन्वेवं कृतमनया । तदनित्यत्वेनैव सेदुष इत्यादिसिद्धेरित्याशयेनाऽऽह—यत्त्विति ।  
त्वमेवेति । एवैतत्परिभाषाव्यावृत्तिः । तत्रेत्यत्रासभवादित्यन्तो हेतुः । बहिरङ्गस्य

\* इ. पुस्तके तद्वच्छिन्नविनाश इति पाठान्तरम् ।

चान्तरङ्गे कर्तव्येऽसिद्धत्वं बोध्यते न तु जातेऽन्तरङ्गे तस्य तत्त्वं बोध्यते  
मानामावात्फलाभावाच्च । एवं च सूत्थितादावेकादेशस्य परिभाषासा-  
ध्यत्वाभावेन तदनित्यत्वज्ञापनासंभवात् । अन्तरङ्गानपि विधीनित्या-  
देरप्यस्यामेवान्तर्भावः । एतत्प्रवृत्तौ च निमित्तविनाशसंभावनाऽपि निमि-

चान्तेति । प्रागुक्तज्ञापकद्वयादिसत्त्वादिति भावः । ननु प्रागुक्तलौकिकन्यायेन क्रमेणा-  
न्वाख्याने पट्येत्यादाविव पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गे तत्र कार्ये भाविबहिरङ्गस्यासिद्ध-  
त्वमपि परिभाषार्थ इति कथमेतदिति चेन्न । चकारेण तस्यापि सम्रहात् । तद्ध्वनयन्नाह—  
न त्विति । अत्र कथने तात्पर्यं न तु तत्रेति भावः । तस्येति । बहिरङ्गस्यापी-  
त्यर्थः । तत्त्वम्, असिद्धत्व पश्चात्प्राप्तवृद्धिनिषेधरूपम् । कृत इत्यपिशेषपूरणेनायमप्यर्थो  
लभ्यः स च धर्मिग्राहकमानविरुद्ध इत्याह—मानेति । नन्वेवमपि फलबलात्कल्प्यतेऽत  
आह—फलेति । अनन्यथासिद्धलक्ष्यसिद्धिरूपप्रसिद्धफलाभावादित्यर्थः । यद्यपि सूत्थि-  
तादावाबौ निमित्ताभावादन्यकार्याप्राप्त्या दीर्घप्रवृत्तावपरिभाषासचारेण तेन तदनित्यत्व  
ज्ञापनासंभवादित्येव हेतु सुवच इत्यसिद्धेत्यादिभावाच्चेत्यन्तग्रन्थानुपयोगः । तथाऽपि यदि  
तथाऽप्यर्थः स्यात्तदाऽनन्तरप्राप्तवृद्धिनिवारकत्वेनैकादेशश्रवणकसिद्धप्रयोगोऽपि तत्परिभाषा  
फलमिति तदनित्यत्वज्ञापनं तेन सुकरमिति तदर्थभावप्रतिपादनम् । तदाह—  
एवं चेति । तैदर्थभावे चेत्यर्थः । परीति । अन्तरङ्गपरीत्यर्थः । तदनित्येति ।  
अन्तरङ्गपरिभाषानित्येत्यर्थः । समर्थग्रहणेनेत्यादिः । नन्वेवमपि पट्येत्यादिवदनुपदोक्तरीत्या  
परिभाषासञ्चार एवेति तेन तदनित्यत्वज्ञापनं सुवचम् । अत एवान्तरङ्गत्वादिति बहिरङ्गेत्यादि  
च प्रागुक्तिः संगच्छते । पूर्वमते तु तदुक्तेर्गौणत्व कल्प्य स्यादिति चेन्न । एकदेश्युक्ति-  
त्वेनादोषात् । विप्रतिषेधसूत्रभाष्यविरोधापत्तेश्च । वक्ष्यते चेदम् । तदेतद्ध्वनयन्नेतदङ्गी-  
कारेऽन्तरङ्गानपीत्याद्युच्छेदापत्तिं निराचष्टे—अन्तरङ्गानपीति । धीनित्यादेर-  
पीति । आदिना प्रागुक्तसंभावितपरिग्रहः । अपि, कृतमर्षात्यादिसमुच्चायकः । अस्याम्,  
अकृतव्यूहपरिभाषायाम् । एवेनातिरिक्तत्वनिरासः । नन्वेवमपि सेदुष इत्यादौ साक्षा-  
न्निमित्तविनाशसत्त्वेनात्र तादृशनिमित्तविनाशग्रहणे मानामावेन सूत्थितादौ तथाऽसत्त्वेनै-  
तदप्रवृत्त्याऽच्चारितार्थेनाज्ञापकत्वात्समर्थग्रहण व्यर्थमेवात आह—एतदिति । चेत्यस्य  
किंचेत्यर्थः प्राग्योजनं च । सभावना, एककोटिकनिश्चयः । अपि, स्वरूपसद्विनाशसमु-  
च्चायकः । समर्थग्रहणज्ञापकपराकरप्रामाण्यात्तद्ग्रहणाच्च । तथा च यद्येकादेशो न स्यात्तर्हि  
वृद्धिः स्यादेवेति तत्सभावनाऽस्तीति भावः । ननु तैयोरुपपादितरीत्योपपत्तिरत आह—

क्षम् । अत एव गोमहण्डीत्यादौ हल्ङ्यादिलोपो न । अन्यथा हल्ङ्यादिलोपकाले सामासिकलुकोऽप्राप्त्या तदुत्तरं चापहार्याभावादप्राप्त्या लोपस्थैवाऽऽपत्तेः । अस्ति चात्रापि यदि लोपो न स्यात्तर्हि लुक्स्यादिति संभावना ।

‘अल्लोपोऽनः’ ( ६ । ४ । १३४ ) इति सूत्रस्थतपरकरणं तु परिभाषाऽनित्यत्वज्ञापनेन चरितार्थम् । तद्ध्यान इत्यादौ लोपवारणाय । अन्यथा दीर्घाभावे लोपसंभावनयैतत्परिभाषाबलाद्दीर्घाप्रप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्याहुः ।

समर्थानामितिसूत्रे कैयटस्तु समर्थवचनेनेयं परिभाषा ज्ञाप्यतेऽकृतव्यूहाः पाणिनीया इति । तेन पपुष इत्यादावन्तरङ्गत्वात्पूर्वं कृतोऽपीडा-

अत एवेति । तत्संभावनाया अप्येतन्निमित्तत्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । गोमहण्डीति कर्मधारयः । आदिना भवहण्डीत्यादिपरिग्रहः । अन्यथा, संभावनाया अनिमित्तत्वे । अप्राप्त्या, निमित्ताभावात् । तदुत्तरं चेति । हल्ङ्यादिलोपोत्तर स्वित्यर्थः । यद्वा चो यथाश्रुतोऽप्राप्त्येत्यग्रे योज्यः । आपत्तेरिति । तथा सति चुमादि स्यात् । अत एवाऽऽपत्तिरिति भावः । अन्तरङ्गानपीत्यादि तु नातिरिक्तमित्युक्तमेव । तथाऽङ्गीकारे स्वाह—अस्ति चेति । चस्त्वर्थे संभावनापदोत्तरं योज्यः । कचिन्निश्चः पाठः । अत्रापि । गोमहण्डीत्यादावपि । यदि लोपो न स्यादिति पाठः । एव चात्र परस्परया निमित्तविनाशस्य न ग्रहणमिति तात्पर्यम् ।

नन्वेवमकृतेत्यङ्गीकारेऽल्लोपोऽन इत्यत्रत्यतपरकरण व्यर्थमत आह—अल्लोपोऽन इतीति । परीति । अकृतेति परीत्यर्थः । भाषानित्यस्वेत्यत्राकारप्रश्लेषः । तदेवाऽऽह—तद्धीति । तपरकरण हीत्यर्थः । आन इति । अनितेः किप् । अन्त्वं त्वत्रैकदेशविकृतन्यायेनेति भावः । अन्यथा, एतदनित्यत्वाभावे । दीर्घेति । यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि लोपः स्यादिति संभावनयेत्यर्थः । भाषाबलात्, तत्प्रवृत्तिबलात् । इत्याहुरिति । केचिदित्यनेनान्वयः ।

परिभाषासत्त्वेऽप्यर्थभेदान्मतान्तरमाह—समर्थेति । अत एव तुः प्रयुक्तः । कैयट इत्यस्याभिप्रेतित्यत्रान्वयः । तेन, परिभाषाज्ञापनेन । निवर्तत इत्यत्रान्वेति । अन्तरङ्गत्वादिति । उक्तोऽर्थः । वार्णादाङ्गमिति तु समानकालप्राप्तिविषयमिति भावः ।

गमो निवर्तत इति वदन् न कृतो व्यूहो विशिष्टस्तर्को निमित्तकारण-  
विनाशेऽपि कार्यस्थितिरूपो यैरित्यर्थमभिप्रैति । निमित्तापाये नैमित्तिक-  
स्याप्यपाय इति यावत् । सूत्थितादिञ्चि वृद्धौ दीर्घनिवृत्तौ सावुत्थितिर्मा  
भूदिति समर्थानामिति । लोकन्यायसिद्धश्चायमर्थः । तथा हि लोके  
निमित्तं द्विविधं दृष्टम् । कार्यस्थितौ नियामकं तदनियामकं च ।  
आद्यं यथा न्यायनयेऽपेक्षाबुद्धिः । तन्नाशे द्वित्वनाशाभ्युपगमात् ।  
वेदान्तिनये प्रारब्धस्य विक्षेपस्थितिनियामकत्वं च प्रसिद्धमेव । द्वितीयं  
यथा दण्डादि । तन्नाशेऽपि घटनाशादर्शनात् । शास्त्रे लक्ष्यानुरोधाद्व्य-  
वस्था । भाविनि निमित्तविनाशे पूर्वमनुत्पत्तौ तु न कश्चिद्भयायो नापि  
संप्रतिपन्नो दृष्टान्तः । समर्थानामित्यस्यापि लोकसिद्धार्थज्ञापनेन  
चारितार्थसंभवे लोकासिद्धापूर्वतादृशार्थज्ञापकत्वे मानामाव इति  
तदाशय इति बोध्यम् ।

वदन्निति । कैयटविशेषणम् । वैशिष्ट्यमेवाऽऽह—निमित्तेति । तत्फलितमाह—निमि-  
त्तेति । अत्र पक्षे समर्थपदस्य चारितार्थमाह—सूत्थितादिति । वृद्धौ, सत्यामिति  
शेषः । निवृत्ताविति । तथा च परम्परया तन्निमित्तविनाशसत्त्वेनैतत्प्रवृत्तावेकादेशो  
न स्यात्तदाह—साविति । किंचेतिपक्षे तु यद्येकादेशो न स्यात्तर्हि बुद्धिः स्यादेवेति  
निमित्तविनाशसंभावनासत्त्वेन कृतदीर्घनिवृत्तिरिति बोध्यम् । वस्तुतो ज्ञापकानपेक्षत्वेन  
लाघवमत्र पक्ष इतीदमेव युक्तं नाऽऽद्यमतमित्याह—लोकेति । चोऽप्यर्थे । स्थिता-  
विति । स्वस्थितौ कार्यस्थितिसपादक स्वस्थितावपि तत्स्थितिसपादकमिति क्रमेणार्थः ।  
बुद्धिरिति । द्वित्वरूपकार्यस्थितौ नियामिका स्वस्थिताविति भावः । वेदान्तीत्यस्य  
तथेत्यादिः । विक्षेपः, ससारः । कत्वं चेति । चैनोपाधे स्फटिकलौहित्यादिस्थितिनिया-  
मकत्वसमुच्चयः । क्वचिन्निश्च । पाठ । नन्वेवमपि शास्त्रे वैपरीत्य कुतो नात आह—  
शास्त्र इति । एवमैत्र तत्सिद्धत्वमुक्त्वाऽऽद्ये नेत्याह—भाविनीति । विनाशे, यथा-  
कथञ्चित् । न कश्चिदिति । ननु प्रक्षालनाद्धीति न्यायसत्त्वमिति चेद्भ्रान्तोऽसि । न  
हि तेनोक्तार्थो बोध्यते । किं तु पूर्वमकरण पश्चान्निवर्तनमित्यनयोर्लघुतागुस्ते बोध्येते  
इति भावः । अत एवाऽऽह—नापीति । संप्रतिपन्नो, युक्तः । ननु न्यायाद्यभावेऽपि  
ज्ञापकसिद्धः सोऽर्थोऽत आह—समर्थेति । तादृशेति । प्रागुक्ताद्येत्यर्थः । तदा-  
शय इति बोध्यमिति । कैयटाशय इति बोध्यमित्यर्थः । क्वचित्तदाशय इतीति  
पाठः । तत्रेतिर्धतसमाप्तौ ।

परे तु सेदुष इत्यादौ पदावधिकेऽन्वाख्याने सेद् वस् अस् इति स्थित इदं संप्रसारणयोः प्राप्तयोः प्रतिपदविधित्वात्पूर्वं संप्रसारणे वलादित्वाभावादिष्टः प्राप्तरेव नेति तत्सिद्धिरिति समर्थानामिति सूत्रे कैयटेऽसिद्धत्सूत्रे च कैयटे स्पष्टमेतत् । यद्यपि प्रतिपदविधित्वमनवकाशत्वे सत्येव बाधकत्वे बीजं तथाऽपि पूर्वप्रवृत्तौ सावकाशत्वेऽपि नियामकं भवत्येवेति तदाशयः । निरूपितं चैतद्बहुशः शब्देन्दुशेखरे ।

केचित्कैयटेऽभिप्रेतीतिसूचितामुभयपक्षीयामरुचि कथयन्सिद्धान्तमाह—परे त्वित्यादिना दिगित्यन्तेन । क्रमेणान्वाख्याने दोषोक्तेराह—पदेति । पदघटकविभक्तिपर्यन्तेऽन्वाख्येयत्वेनाऽऽदौ संस्थाप्य इत्यर्थः । पदस्य विभागपूर्वकं सस्थापनं कृत्वेऽति यावत् । वाक्यस्यात्रानुपयोगात्यागः । तदेवाऽऽह—सेदिति । प्रकृतानुपयोगादेवमुक्तम् । अन्यथा सदित्युक्तं स्यात् । यद्वा पदस्य विभज्यान्वाख्यानमिति पक्षे तत्र स्थित इत्यर्थः । यत्तु संप्रसारणं तदाश्रयं च बलीय इति पूर्वं संप्रसारणमिति कैयटसीस्देवादयस्तत्र । लिट्यभ्यासस्येति सूत्रस्थभाष्यविरोधापत्तेः । तद्ध्वनयन्नाह—प्रतीति । शीघ्रोपस्थिततयेति शेषः । संप्रसारणे, पूर्वरूपे चेत्यपि बोध्यम् । तत्सिद्धिरिति । अकृतव्युहपरिभाषासाध्यार्थसिद्धिरित्यर्थः । एतत्, संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलीय इति तदुक्तप्रकारान्तरसूचितोक्तप्रकारेण तत्साधनम् । न चोक्तरीत्या पूर्वं संप्रसारणेऽप्यन्तरङ्गपरिभाषया तस्यासिद्धत्वात्स्यादेवेति वाच्यम् । तस्या अनित्यत्वात्प्रतिपदविधिविषये तदप्रवृत्तेश्च । अत एव परानित्यान्तरङ्गप्रतिपदविधयो विरोधिसनिपाते तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमिति प्रत्ययोत्तरेतिसूत्रस्थकैयटसंगतिः । तथा चापवादसमकक्षत्वरमस्य । तद्ध्वनयन्नाह—यंघपीत्यादि । सत्येवेति । शेषाद्विभाषेतिसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यादिति भावः । प्रवृत्ताविति । एतत्सर्वमनुपदमेव मूले स्फुटी भविष्यति । तदाशयः, कैयटाशयः । नन्वेवं प्रतिपदविधित्वेन शीघ्रोपस्थित्या पूर्वप्रवृत्त्यङ्गीकार इयायेत्यादौ द्विवचनेऽचीतीणो यणित्यस्य निषेधाद्वित्वे वाणादाङ्गमिति सवर्णदीर्घबाधकवृद्धेरुक्तरीत्या प्रागिणो यणिति स्यादिति चेत् । अत्र केचित् । लक्ष्याधिकरणकपदसज्ञाप्रयोजकसुब्विभक्तिप्रकृतिविशेषमुच्चार्य विहितत्वं प्रतिपदविधित्वम् । एव च न कापि दोष इत्याहुः । वस्तुतस्त्वणो यणित्यादीनां प्रतिप्रसवविधित्वमिको यणित्यस्य बाधकसवर्णदीर्घेयडादेबाधनार्थत्वात् । एव चानेकाच एरनेकाच इति यणा सिध्द्योत्सर्गसमानेति प्रकल्पयेति पूर्वं ह्येति च न्यायैरेकाज्मात्रविषयकस्य यन्तीत्यादिलक्ष्यकस्येणो यणित्यस्येयायेत्यादावप्राप्त्या प्राप्तस्यैरनेकाच इत्यस्य परत्वादचो ङ्गितीत्यनेन बाधाद्ब्रह्मावभ्यासस्येतीयञीयायेत्यादिसिद्धिरिति न शङ्कावसर एवेति बोध्यम् । तदेतद्धृदि निषायाऽऽह—निरूपितमिति । बहुशः, बहुषु स्थलेषु ।

समर्थानामिति सूत्रस्थसमर्थग्रहणं तु विष्णुण इत्यादावकृतसंधेः प्रत्ययदर्शनेन सर्वत्र तथाभ्रमवारणाय न्यायसिद्धार्थानुवाद एव । ध्वनितं चेदं विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये । तत्र हि वैक्षमाणिरित्यन्तरङ्गपरिभाषोदाहरणमुक्तम् ।

किंच विभज्यान्वाख्याने सु उस्थित अस् इ इति स्थिते षाणांदाङ्गं बलीय इति प्राप्तवृद्धिवारणाय समर्थग्रहणमित्यत्रैव सूत्रे कैयटे स्पष्टम् । अत एवासिद्धवत्सूत्रे वसुसंप्रसारणमज्विधौ सिद्धं वक्तव्यं पपुष इत्यादौ षसोः संप्रसारणे कृत आतो लोपो यथा स्यादिति भाष्य उक्तम् । पदस्य विभज्यान्वाख्याने पूर्वोक्तकैयटरीत्या पूर्वं संप्रसारण इटोऽप्राप्त्या उस्निमित्तक एव आतो लोप इति तदाशयः । अन्यथाऽ-

नन्वेव समर्थग्रहणानर्थक्यापत्तिरत आह—समर्थानामिति । विष्णुण इति । न च वार्तिक दृष्ट्वा सूत्रकृतोऽप्रवृत्तेरिदमयुक्तमिति वाच्यम् । तददर्शनेऽपि प्रयोगदर्शनस्याविघ्नत्वात् । अत एव वार्तिकानुल्लेख । दर्शनेनेत्यनेन प्रत्यक्षस्य \*सर्वतो बलवत्वात्तथाभ्रमयोग्यता सूचिता । सर्वत्र, तदन्यलक्ष्येषु तद्धितविषये । तथा, अकृतसंधे. प्रत्यय इति । अत एव पदस्य विभज्यान्वाख्यानेऽकृतसंधेरपि प्रत्यय. स्यादिति कैयटेनोक्तम् । न्यायेति । अन्तरङ्गन्यायेत्यर्थः । ननु द्विविधान्वाख्यानेऽपि प्रागुक्तरीत्याऽन्तरङ्गपरिभाषाविषयत्वसत्त्वात्तदनित्यत्वज्ञापकमेवास्तु समर्थग्रहणमिति कथमनुवादत्वमत आह—ध्वनितमिति । चेदमिति । तदनुवादकत्वसूचनद्वारा तत्प्रत्याख्यानमित्यर्थ । गिरितीति । इत्यादीत्यर्थः । अतरङ्गेति । अन्तरङ्गवहिरङ्गयोरन्तरङ्ग बलीय इति परिभाषेत्यर्थः । वृद्धेरेकादेशोऽन्तरङ्गत्वात् वैक्षमाणिरित्यादिनेति भावः । वार्णपरिभाषात्वनित्यत्वान्न प्रवर्तत इति तदाशयः ।

इदमेव द्रढयितु तस्य परिभाषाज्ञापकत्व विघ्नयितुं च वार्णादित्यस्य प्रवृत्तिमभ्युपेत्याप्याह—किं चेति । प्राप्तस्यैकादेश बाधित्वेत्यादि । अत्रैव, प्रागुपक्रान्ते समर्थानामितिसूत्र एव । एवं चानित्यत्वाद्गार्णादित्यस्याप्रवृत्तौ तथा प्रवृत्तौ त्वेवमिति सर्वथाकृतपरिभाषाभावः सिद्ध इति भावः । एतदभावमेव द्रढयति—अत एवेति । अत्राकृतपरिभाषाभावादेवेत्यर्थः । पूर्वोक्तेति । प्रतिपदविधित्वादितीत्यर्थः । इटोऽप्रेति । अवलादित्वादिति भावः । एवौ मिथो व्यवच्छेदकौ । एवं च समानाश्रयत्वात्प्राप्तसिद्धत्ववारणाय वार्तिक सफलमिति भावः । अन्यथाऽन्तेति । पूर्वोक्तकैयटरीत्यनङ्गीकार इत्यर्थः ।

\* इ. पुस्तके °तो वक्तव्यत्वादिति पाठान्तरम् ।

१ ग. इतीत्यर्थः । अ° । २ ग °र्थः । तत्रत्यभाष्यस्याथमेवाऽऽशय इति सूचयितुमाह—ध्व° । ३ ग. वैक्षमाणिरित्यादितत्प्रयोजनम् । वा° ।

न्तरङ्गत्वादिष्टि तन्निमित्तक एवाऽऽतो लोप इति तदसङ्गतिः । अत एव चो प्रत्यङ्गस्य प्रतिषेध इति वचनं वार्तिककृताऽऽरब्धं भाष्यकृता च न प्रत्याख्यातम् । प्रत्यङ्गमन्तरङ्गम् । अस्यां परिभाषायां सत्यां तु तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव 'च्छ्रवोः' ( ६ । ४ । १९ ) इति सूत्रेऽवश्यमत्र तुगभावार्थो यत्नः कार्योऽन्तरङ्गत्वाद्धि तुक्प्राप्नोतीति भाष्य उक्तम् । एतत्सत्त्वे तु तुकोऽप्राप्त्या यत्नावश्यकत्वकथनमसंगतमिति स्पष्टमेव । न चैतदनित्यत्वज्ञापनार्थमेतदिति तदाशयः । अवश्यमत्रेत्यक्षरस्वारस्य-भङ्गापत्तेः ।

किं चानयैव 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' ( ७ । २ । ९८ ) 'अदो जग्धि-  
र्त्यति किति' ( २ । ४ । ३६ ) इत्यनयोश्चारितार्थ्येन तज्ज्ञापकवशा-  
ल्लुगल्यपोरन्तरङ्गबाधकता भाष्योक्ता भज्येत । किं चैषा भाष्ये न  
दृश्यते । तदुक्तमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेन निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्य-  
पाय इति परिभाषाया भाष्यकृताऽनाश्रयणादिति । पदसंस्कारपक्षे हरि-

तन्निमित्तक एवेति । एव चाऽऽतो लोपोत्तरं सप्रसारणे तन्निमित्तकलोपाभावेन तस्यासि-  
द्धत्वाप्राप्त्या ततः प्राक् सप्रसारणे तत आतो लोपे तस्यासिद्धत्वेऽपीष्टः सत्त्वेन तन्नि-  
मित्तक एवातो लोप इत्युभयथाऽपि क्रियमाण सिद्धत्वार्थं वार्तिक तद्भाष्य च दत्तजला-  
ञ्जलि स्यादिति सा रीतिरावश्यकतीति भावः । तदाह—तदसंगतिरिति । अत एवेत्य-  
स्योभयत्रान्वयः । उक्तोऽर्थः । नन्वज्ञानादारम्भेऽपि प्रत्याख्यानान्नायं सद्धेतुरत आह—  
भाष्येति । चो भिन्नक्रमः । न प्रत्याख्यात चेत्यर्थः । प्रत्यङ्गशब्दस्यानेकार्थत्वादाह—  
अन्तरङ्गमिति । अस्याम्, अकृतेत्यस्याम् । तद्वैयर्थ्यं, वार्तिकवैयर्थ्यम् । अनयैव  
भान्यकारनिवृत्त्या यणादिनिवृत्तिसिद्धेरिति भावः । सूत्र इत्यस्य भाष्य इत्यत्रान्वयः ।  
अत्र, प्रष्टेत्यादौ । यत्नः, सतुक्च्छनिर्देशरूपः । एतत्सत्त्वे, अकृतेति सत्त्वे । सीरदे-  
वदीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—न चैतदिति । अकृतेत्यर्थः । एतत्, सतुक्च्छनिर्देशरूपयत्ना-  
वश्यकत्वकथनम् । तदाशयः भाष्याशयः ।

परिभाषासत्त्वे दोषान्तरमाह—किं चानयैवेति । अकृतेत्यनयैवेत्यर्थः । त्यनयो-  
रिति । मपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिल्यङ्ग्रहणविशिष्टयोरित्यर्थः । भाष्योक्ता, तैर्विशिष्योक्ता ।  
तयोरत्रैवान्तर्भावोऽपि तदुक्तिभङ्गो दुरुद्धर एवेति भावः । दोषान्तरमाह—किं चैषेति ।  
न दृश्यते, कथमपि न दृश्यते । तदाह—तदुक्तमिति । पृष इति प्रतीक धृत्वाऽन्तरङ्ग-  
त्वादित्येमापाद्य सप्रसारणे कृते तन्निवृत्तिरित्याशङ्कानिवृत्तौ हेतुत्वेनोक्तमित्यर्थः । नन्वकृते-  
त्यस्यामावे कचिदनिष्टापत्तिरतः फलबलकल्प्येयमावश्यकतीत्यत आह—पदेति । हरिरि-

रित्यादौ विसर्गे कृते ततो गच्छतीत्यादिसंबन्धे हरिः गच्छतीत्याद्येव साधु । तद्विषये पदसंस्कारपक्षानाश्रयणं वेति दिक् ॥ ५६ ॥

अन्तरङ्गादप्यपवादो बलवान् ॥ ५७ ॥

तत्रापवादपदार्थमाह । येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति । प्राप्त इति भावे क्तः । येन नाप्राप्त इत्यस्य यत्कर्तृका-  
वश्यकप्राप्तावित्यर्था नञ्द्रव्यस्य प्रकृतार्थदाढ्यबोधकत्वात् । एवं च विशेष-  
षशास्त्रोद्देश्यविशेषधर्मावच्छिन्नवृत्तिसामान्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यकशास्त्र-

स्यादावित्यादिना रव्यादिपरिग्रहः । विसर्गे कृते, अवसानसत्त्वात् । त्याद्येवेति ।  
एवेन हरिर्गच्छतीत्यादिव्यावृत्तिः । तथाप्रयोगादर्शनात्पक्षान्तरमाह—तद्विषय इति ।  
पदान्तरसंबद्धपदसंबन्धिविसर्गविषय इत्यर्थः । एवं च फलाभावेन न तद्वलकल्प्यत्वम-  
प्यस्या इति भावः । किं च सेदुष इत्यादावुक्तरीत्या पूर्वमिति ततः संप्रसारणे नाजानन्तर्यं  
इति निषेधादनित्यत्वाद्वा बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्त्या यणि बहिरङ्गतयैव संप्रसारणस्या-  
सिद्धत्वेन बलपरत्वाद्यकारलोपे तत्सिद्धिः । यत्तु सीरदेवादयः संहितासज्ञापेक्षत्वेन बहिरङ्ग-  
तया यणादेशस्यैवासिद्धत्वेन तदभावात्कुतो बलि लोपः । किं चैव वर्तेते वर्धते इत्यादा-  
वातो ङित इति बहिरङ्गस्येयादेशस्यासिद्धत्वाद्बलि लोपो दुर्घट । एवं च तद्विषये तदप्रवृ-  
त्तिरनित्यत्वादवश्य वाच्येति । तन्न । सज्ञाकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणात् । अत एवेयादेरपर-  
निमित्तकत्वेनात्तरङ्गत्वाच्च । तस्मात्परिभाषाया अभाव एव । अत एव च्छोरिति सूत्रे न  
हीद् वचनं, नापि न्याय इति हरदत्तेनोक्तम् । एवं स्थितेऽनित्यामेतामङ्गीकृत्याऽऽभात्सूत्रस्थ-  
कैयटादिग्रन्थान्गौरवात्कृतमपीत्यभावपरतया कथंचिद्योजयित्वा ज्ञापकान्तरोपन्यासेनैना दृढी  
कुर्वन्तो दीक्षितादयो भ्रान्ता एवेति बोध्यम् । तदाह—दिगिति ॥ ५६ ॥

अन्तरङ्गादपीति । अपिर्नित्यादिसमुच्चायकः । तत्र, बलवदपवादे । घटकत्वं  
सप्तम्यर्थः । उक्तपरिभाषैकदेशबोधको वा । कर्माद्यर्थानुपयोगादन्वयायोग्यत्वाच्चाऽऽह-  
प्राप्त इतीति । तथा च येनेति कर्तरि तृतीया । सतिसप्तमी चैय तदाह—येन नेति ।  
अवश्यत्वलाभबीजमाह—नञ्द्रव्येति । अत एव येन प्राप्त इति नोक्तम् । प्राप्तावृ-  
श्यत्वं चापवादप्रवृत्तेः पूर्वमनन्तर वेत्सर्गस्य स्वारसिकसंबन्धित्वम् । स्वारसिकत्व चातिदेश-  
प्रवृत्तिनिरपेक्षत्वम् । एतदर्थमेवैवमुक्तं तथा नोक्तम् । दृष्टान्ततोऽप्ययमर्थो लभ्यत इति तात्प-  
र्यम् । फलितमाह—एवं चेति । तथा शब्दार्थे चेत्यर्थः । विशेति । विशेषशास्त्र उद्देश्यभूतं  
यद्विशेषधर्मावच्छिन्नं तन्निष्ठो यः सामान्यधर्मस्तद्विशिष्टमुद्देश्यं यत्र तादृशशास्त्रस्य प्रत्या-  
सत्त्या तेन विशेषशास्त्रेण बाध इत्यर्थः । तथा च विशेषत्वसामान्यत्वे परस्परापेक्षे इति



स्य विशेषशास्त्रेण बाधः । तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं ह्येतस्य बाधकत्वं वीजम् । किं चानेन न्यायेन तत्प्रवृत्त्युत्तरमपि चारितार्थ्यं तद्बाधबोधनम् । अन्यथाऽनवकाशत्वेनैव बाधे सिद्ध एतत्कथनस्यैव वैयर्थ्यापत्तेस्तक-  
कौण्डिन्यन्यायप्रदर्शनस्यापि वैयर्थ्यापत्तेश्च ।

यथा प्रथमद्विवर्चनस्य तदुत्तरं साधकाशेनापि द्वितीयद्विवर्चनेन बाधः । यथा चाऽऽदेरपि प्रवृत्त्या चरितार्थेन 'आदेः परस्य' ( १।१। ५४ ) इत्यनेन 'अलोन्त्यस्य' ( १ । १ ५२ ) इत्यस्य बाधः ।

नान्यापेक्षयोस्तयोर्बाध्यबाधकभाव इति भावः । अत्र हेतुमाह—तदप्रेति । सामान्य-  
शास्त्राप्रेत्यर्थः । हि, यत । न तु विरोधादिरिति भावः । एतस्य, अपवादस्य । नन्वचा-  
रितार्थमित्येव सिद्धे तदप्राप्तियोग्य इति विशेषण व्यर्थमतस्तत्सफल्यन्नाह—किं चेति ।  
अनेन, येन नेति न्यायेन । एवमग्रेऽपि । तदप्रेति । सामान्यशास्त्रप्रवृत्त्युत्तरमपीत्यर्थः ।  
\* अपिना तत्पूर्वकालसमकालयोः समुच्चयः । तत्रकौण्डिन्यन्यायविषये द्वयोरेव संभवेन  
सत्त्वेन तद्दृष्टान्तेनात्र द्वयोर्लोभेऽपि सभवात्तृतीयमपि गृह्यते । अयमेव ततोऽत्र विशेष  
इत्येतदुक्तिसाफल्यम् । अन्यथा तेनैव सिद्धे येनेत्यपि न ब्रूयात् । चारितार्थ्यं, तत्रैव ।  
चारितार्थ्येऽपीति पाठे त्वपिरेवार्थे । तत्प्रवृत्त्युत्तरमचारितार्थ्यसमुच्चयकत्व तु न । तत्र  
सर्वथाऽनवकाशत्वाद्बाधस्य वक्ष्यमाणत्वेनैतदप्राप्त्या किंचेत्यादिसर्वग्रन्थासङ्गत्यापत्तेः । तेन  
तत्समुच्चयेऽपि दृष्टान्ततया योजनं यथा तत्र सर्वथाऽनवकाशत्वाद्बाधस्तथाऽत्रानेन बाध इति  
केचित् । तदप्राप्तीत्यादिसमुच्चयक इत्यन्ये । वस्तुतस्त्वपिर्व्युत्क्रमे । तत्प्रवृत्त्युत्तरमपीत्यन्वयेन  
प्रागुक्तार्थलाभ इति बोध्यम् । परसप्तमीपक्षे सूत्रत्रयेण भिन्नवाक्यतापक्ष आशङ्क्यवृत्त्यैव  
सिद्धे पुनरुक्तिसामर्थ्यात्पञ्चम्या विपरिणामः । सर्वथा तत्राचारितार्थ्यं सति तदुत्तरं  
तत्पूर्वं वा स्वारसिकमतिदेशप्रवृत्तिनिरपेक्ष चारितार्थ्यं यत्र तत्रानेन बाध इति  
सिद्धम् । अत एव शेखरविरोधो नेति बोध्यम् । अन्यथा, तत्र चारितार्थ्याभाव एव तत्त्वा-  
ङ्गीकारेण तद्विशेषणत्यागे । अनवकाशत्वेनैव । सर्वथाऽनवकाशत्वेनैव । कथनेति । भाष्य  
इति शेषः । नन्वेन सर्वथाऽनवकाशत्व एव तत्त्व प्रकाशयतेऽत आह—तदप्रेति । अत्र  
दृष्टान्ततया लौकिकेत्यादि । तुल्यत्वे हि दृष्टान्ततेति भावः ।

तत्र स्पष्टार्थमस्योदाहरणद्वयमाह—यथा प्रथमेत्यादिना । अजादिघातोरिति  
शेषः । शेनापीति । अपिर्व्युत्क्रमे । तदुत्तरमपीत्यर्थः । स च प्राग्वत् । देरपीति ।  
अपिरन्त्यप्रवृत्तिसमुच्चयकं । कालत्रय आदेरपीत्यादिः । किंचेत्यादिनोक्तेऽर्थे संमति-

\* आपनेत्यारभ्य ब्रूयादित्यन्तो ग्रन्थः ख. पुस्तक एव वर्तते ।

१ क. ग. घ. ङ. °छ प्रेक्ष° । २ ग. °र्व तत्समकाल वा । ३ ङ. °त्वानङ्गी° । ४ ङ. °कः ।  
तदुत्तरमित्यादिः ।

तदुक्तं 'मिदचोऽन्त्यात्' (१।१।४७) इति सूत्रे भाष्ये सत्यपि संभवे बाधनं भवतीति । अन्यथा ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तर्कं कौण्डिन्याये-  
त्यत्र तक्रदानेन दधिदानस्य बाधो न स्यात् । तद्दानोत्तरं तत्पूर्वं वा तद्दा-  
नस्य चारितार्थसंभवात् ।

अत एव 'आयादयः' (३।१।३१) इति सूत्रे गोपायि-  
ष्यतीत्यादावायादीन्बाधित्वा परत्वात्स्यादयः प्राप्नुवन्तीत्याशङ्क्यान-  
वकाशा आयादयः । गोपायतीत्यादावपि शप्स्यादिः प्राप्नोति । न च  
सति शप्सति वा न विशेषः । अन्यदिदानीमिदमुच्यते नास्ति विशेष

माह—तदुक्तमिति । सत्यपीति । अपिः सर्वथानवकाशत्वसमुच्चायकः । भाष्येऽग्रेऽस्या-  
न्वयमुखेनोपपादनसत्त्वेऽपि व्यतिरेकं विना दाढ्यासंभवादन्वयमुपेक्ष्य व्यतिरेकमाह—  
अन्यथेति । असंभव एव बाधकत्वाङ्गीकार इत्यर्थः । सर्वथाऽनवकाशत्व एव  
तत्त्व इति यावत् । इत्यत्र । प्रतिपादित इति शेषः । बाध इत्यत्रान्वयः । तद्दानो-  
त्तरमिति । दधिदानोत्तरमित्यर्थः ।

तदप्रेत्यादि प्रथममुक्तार्थं द्रवयति—अत एवेति । तथाऽचारितार्थं एवा-  
नेन बाधाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । गोपेति । अस्य यथाश्रुतसूत्र आयादेस्तदन्ताद्यसर्वधातुकं  
तत्र पर आयादीना पक्षे निवृत्तिरिति पक्षे गुप्तिर्जुगोपेति न स्यात् । गोपा गोपाचकारेति  
स्यात् । आयादय इति पदोक्तिसामर्थ्यात्पृथक्पाठसामर्थ्याच्च सूत्रत्रयस्याऽऽर्षधातुक  
एकवाक्यता सार्वधातुके भिन्नवाक्यतेत्येवमायादिप्रकृतेर्धर्षधातुक तत्र परे तेषा पक्ष  
उत्पत्तिरिति पक्षे प्रागुक्तेऽसिद्धावपि गोपायेतीष्ट न सिध्यतीत्युक्त्वा स्वीकृते आयादयो  
वा ततः सार्वधातुके नित्यामिति न्यासश्रेदपक्ष इत्यादिः । परत्वादिति । ऋदेशप्रवृत्त्यु-  
त्तरं स्यतासी इति पक्ष इदम् । तुल्यनिमित्तत्वाद्दन्तरङ्गत्वनिरासः । तथा च सङ्कटतिन्या-  
येनाऽऽयादयो न स्युरेवेति भावः । अपवादविषय उत्सर्गाप्रवृत्त्या सार्वधातुवद्विषये सामा-  
न्यसूत्रतो नाऽऽयादयः । एतेन नित्यमित्यस्य परत्वाद्बाधेऽपि सामान्यसूत्रत्रयेण ते स्युर्न  
हि तेनापि विप्रतिषेधस्तस्यानैमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वादित्यपास्तम् । आशङ्कयेति ।  
व्यनन्तस्योक्तमित्यत्रान्वयः । ननु गोपायतीत्यादिरवकाशोऽत आह—गोपेति । स्यादि-  
समुदायान्तर्गतः शप्प्राप्नोतीत्यर्थः । न विशेष इति । विशेषकृच्छ्रात् तदभावे न

इति । यदुक्तमायादीनां स्यादिभिरव्याप्तोऽवकाश इति स नास्त्यवकाश इति भाष्य उक्तम् । एवमत्र तत्प्रवृत्त्युत्तरं चारितार्थेऽपि तदव्याप्तोऽवकाशो नास्तीति सममेव ।

अत एव विषयभेदेऽप्यपवादत्वम् । अत एवाचि रादेशेन नुटोऽप्यपवात्त्वाद्वाधमाशङ्क्य 'न तिसृ' ( ६ । ४ । ४ ) इति ज्ञापकेन समाहितं तुज्वत्सूत्रे भाष्ये । तेन विषयभेदेऽपवादत्वाभाव एव बोध्यत इति कश्चित्तन्न । विन्मतोर्लुका टिलोपमात्रस्य बाधानापत्तेः । यत्तु 'दयतेर्दिगि' ( ७ । ४ । ९ ) इति सूत्रे द्वित्वोत्तरं दिग्यादेशस्य चारितार्थ्यं कैयटेनोक्तं तत्प्रौढ्या । ध्वनितं च तेनापि तस्य तथात्वं तदुत्तर-

प्रवर्तत इति मन्यते । स नास्त्येति । पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तेरिति भावः । द्वितीयमपि ततो लभ्यत इत्याह—एवमिति । तत्र यथा तदुत्तरं तत्पूर्वं वाऽऽयादेशचारितार्थ्यं तद्वदित्यर्थः । अत्र अजादिधात्वादिविषये । तत्प्रवृत्त्युत्तरं, प्रथमद्वित्वादिप्रवृत्त्युत्तरमपि । तथा च विशिष्टमपि ततो लब्धमिति तात्पर्यम् । चारीति । अन्यतरसूत्रेण शवादिमेव मत्वाऽमत्वा वा पुनः प्रसङ्गविज्ञानेनाऽऽयादीनां चारितार्थ्येऽपि तदव्याप्त इत्यादि-ग्रन्थस्तुल्य एवेत्यर्थः ।

सर्मेकालमित्यपि सर्वथाऽऽवश्यकमिति सूचयन्नाह—अत एवेति । सत्यपि संभवे बाधाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । विषयेति । तच्चोक्तमेव । तत्र च क्वचित्तथा सभव, क्वचिद्युगपदेव सभव इति भावः । अत्र मानान्तरमप्याह—अत एवेति । विषयभेदे तत्त्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । नुटोऽपीति । अपिर्गुणादिसमुच्चायकः । यथा तस्य तद्वाधकत्वं तद्वत्तद्वाधकत्वमित्यर्थः । मतान्तरं खण्डयति—तेनेति । न तिस्रित्यनेनेत्यर्थः । टिलोपमात्रस्य । नस्तद्धित इत्यस्य टेरित्यस्य च । कैयटविरोध परिहरति—यस्त्विति चारितार्थ्यमिति । तथा सति भाष्यीयविप्रतिषेधोपपत्तिरिति तद्भावः । तत्प्रौढ्येति । प्रागुक्तभाष्यविरोधादिति भावः । तदभिमतमपीदमित्याह—ध्वनितं चेति । तेनापि, कैयटेनापि । तस्य, प्रागुक्तार्थस्य । तथात्वं, प्रौढत्वम् । पूर्वं समान्यविशेषभावानाश्रयणेन सावकाशात्त्वमुक्तमिदानीं तु तदाश्रयेण नाप्राप्तेः द्वित्व

१ ग. क. घ. । नन्वित्ते भाष्यात्तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं तथेत्यस्य लभेऽपि किंचेत्याशुकार्थालाभोऽत आह—क. पुस्तके तु योग्यत्वेऽचारि° इति पाठान्तरम् । २ ग. °ति । उक्तप्र-कस्मिन्कार्थवदित्यर्थः । ३ ग. क. °त्र, गोप्राचति गोपाधिष्यतीत्यादौ । तत्र° । ४ ग. तदिति । शवादित्यर्थः । चारी° । ५ क. °भेदेऽपि ।

ग्रन्थेन । असंभव एव बाधकत्वं विरोधस्य तद्वीजत्वादिति वार्तिकमतं तु भाष्यकृता दूषितत्वान्न लक्ष्यसिद्ध्युपयोगि ।

तदक्रकोण्डिन्यन्यायोऽपि तदप्राप्तियोग्येऽचरितार्थविषयो विधेयविषय एव चेति 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) 'धातोरेकाचः' (३।१।३२) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टम् ।

आरस्यमाणदिग्गदेशस्य तदपवादत्वमुच्यत इति तदुत्तरग्रन्थेनेत्यर्थः । एवं च तद्भाष्यमप्येकदेश्युक्तिरिति बोध्यम् । ऋवेवमपि वार्तिकमते लक्ष्यभेदापत्तिरत आह—असंभव एवेति । विरोधस्य, तस्यैव । एवेनोक्तबीजव्यवच्छेदः ।

येननेति तद्वेति च स्याम्यस्यैक्यं प्रागुक्तं किञ्चिद्विशेषकथनेन द्रढयितुमुपसंहरति—तद्वेति । अपिरेतत्समुच्चायकः । तदप्राप्तियोग्य इति । तदुद्देश्यतावच्छेदकाकान्तस्वरूपतत्प्राप्तियोग्यत्वावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवतीत्यर्थः । अन्यथा कालभेदेन तदप्राप्तियोग्यत्वस्य तत्रैव सत्त्वेनासंगतिः स्पष्टैव । एतदर्थमेव योग्यत्वनिवेशः । साधकमुभयत्र क्रमेणाऽऽह—तद्धितेष्विति । तत्र हि कौष्ठो जागत इत्यादावन्त्योपधावृद्धयोर्निषेधमपूर्वमुक्तोक्तन्यायेन तयोरादिवृद्ध्या बाधमाशङ्क्य दृष्टान्ते नाप्राप्तिसत्त्वेऽपि सौश्रुत इत्यादौ तयोरप्राप्त्येह तदभाव इत्युक्तम् । सामान्यविशेषभावो बाधहेतुः स चेह नास्तीति तत्र कैयटः । निमित्ताशे तत्सत्त्वेऽपि कौर्वाशे तदभाव इति तदाकूतम् । धातोरेकाच इति । यद्यप्यत्र सूत्रे न किमपि भाष्य उक्तं तथाऽपि नित्य कौटिल्ये लुपसदेत्यत्राथैतेभ्यः क्रियासमभिहारे यथा भवितव्यमिति प्रश्ने क्रियासमभिहारे च नैतेभ्य इत्युक्तम् । तत्र पूर्ववार्तिकस्थस्य विशेषासप्रत्ययादित्यस्य चकारेणानुवृत्तिः । तथा च भृश जपतीत्याद्यर्थविशेषस्य तादृशयन्तादप्रतीतिः स नैति भावः । यद्यनुवादेऽपि तन्न्याससंचारः स्यात्तर्हि तथैव वदेत् । यतो नोक्तमतस्तस्य विधेयविषयत्वमेव । तत्रत्यकैयटस्तन्न्यायसंचारपरस्त्वयुक्त एव । विशेषविहितेन सामान्यविहितस्य बाध उत्सर्गापवादस्थल इत्यत्रैव दृष्टान्तस्य मिद्वचोऽन्त्यात्सूत्रे भाष्य उक्तत्वात् । किंच न हि विशेषानुवादेन सामान्यानुवादबाधे दृष्टान्तो लौकिकोऽस्ति । नापि तद्विषये नियमेन तत्प्राप्तिरस्ति । क्रियासमभिहाराविवक्षायाः संभवात् । क्रियासमभिहारादेर्यद्दृद्योत्यतया तद्वृत्तेर्धातोरित्यर्थेनानुवाद्यत्वं स्पष्टमेव । नित्यग्रहणं त्वनभिधानमाश्रित्य भाष्ये प्रत्याख्यातम् । तत्रत्यमनोरमादिकं तु

क्वचिन्नु सर्वथाऽनवकाशत्वादेव बाधकत्वं यथा डेरामो याडादि-  
बाधकत्वम् । न हि याडादिषु कृतेषु डेराम्प्राप्नोति निर्दिश्यमानस्त्व-  
व्यवधानात् । तत्र स्वस्य पूर्वप्रवृत्तिरित्येव तेषां बाधः । तत्र बाधके  
प्रवृत्ते यद्युत्सर्गप्राप्तिर्भवति तदा भवत्येव यथा तत्रैव याडादयः ।  
अप्राप्तौ तु न यथा पचेयुरित्यादौ दीर्घबाधके निरवकाश इयादेशे  
दीर्घाभावः ॥ ५७ ॥

तदेतत्पठ्यते—

चिन्त्यमेव । तथा चेत्यादीत्यत्रातद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहिणा नित्यं कौटिल्य इत्यादिपरिग्रहः ॥  
तदुल्लेखस्तु प्राक्सामान्यशास्त्रोपस्थितेर्बाध्यत्वेन तस्यापि, विषयत्वाच्चेति बोध्यम् । बहुवचनेन  
मिदचोऽन्यास्मूत्रपरिग्रहः । तच्चोक्तं प्राक् ।

एवं चैतदुभयभिन्नस्थले सर्वथाऽनवकाशत्वमेवापेक्षितमिति तत एव बाधे नास्य प्रवृत्ति-  
स्तदाह—क्वचिदिति । तु पूर्ववैलक्षण्ये । सर्वथा, तदप्राप्तियोग्ये तत्प्रवृत्त्युत्तरमपि  
चेत्यर्थः । एवः स्पष्टार्थः । याडादीति । आदिना आट्स्यात्परिग्रहः । निर्दिश्येति ।  
डेरित्यर्थः । याडादिनेति शेषः । यदागमा इति व्याख्येन समुदायस्य तत्त्वेऽपि न  
निर्दिश्यमानत्वम् । याडादितः प्रागपि न तत्त्वम् । इत्सज्ञककारोपलक्षितस्यातिदे-  
शप्रवृत्तिं विनाऽसत्त्वेन याडाद्यप्राप्तेः । समकालं तत्त्व तु दूरापास्तमेव । न चाऽऽगमादे-  
शयोर्न तत्त्व भिन्नविषयत्वादिति वाच्यम् । उक्तोत्तरत्वात् । अपवादो नुगदीर्घत्वस्येति  
दीर्घोऽकित इत्यत्र भाष्ये तयोरपि तत्त्वोक्तेश्च । पाद्ः पदिति सूत्रस्य, शब्दान्तरप्रप्त्याऽ-  
नित्ययोराडामोः षरत्वादामिति भाष्य त्वेकदेश्युक्तिरिति भावः । नन्वेवमत्रापवादत्वान्यव-  
हाराद्बाधकताप्रयोजकेषु तत्त्वनोल्लेखवादस्य तद्वहिर्भूतत्वात्कथं बाधकत्वमन्यथा न्यूनतापत्ति-  
स्तत्रात आह—तत्रेति । सर्वथा निरवकाशत्वस्थल इत्यर्थः । स्वस्य, सर्वथा निरवका-  
शस्य । रित्येवेति । इतिरभेदे । एवः पूर्वोक्तबाधव्यवच्छेदे । तेषां, परादीनाम् । अत  
एव पूर्वतो वैलक्षण्यमिति ध्वनयन्नाह—तत्रेति । उक्तोऽर्थः । बाधके, सर्वथा निरव-  
काशे प्रागिति शेषः । तत्रैव, डेराम्बिषये रमायामित्यादावेव । अप्रेति । तत्र कृत  
उत्सर्गप्राप्तौ तु स नेत्यर्थः । निरवेत्यस्य सर्वथेत्यादिः । दीर्घाभाव इति । यज-  
दिसार्वधातुकापरत्वेनातो यन्तीति दीर्घाभाव इत्यर्थः ॥ ५७ ॥

तदेतदिति । तदुत्तरप्राप्तिकोत्सर्गकर्तृकं भवनमित्येतदेवेत्यर्थः । आधुनिकैरिति शेषः ॥  
तदप्राप्तौ तदभवनात्कचिदित्युक्तम् । ननु नोक्तोऽस्य वचनस्य विषयोऽत्रापवादशब्दसत्त्वा-

क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते इति ॥ ५८ ॥

अपवादशब्दोऽत्र बाधकपरः ।

तदुक्तं ' गुणो यद्भुक्तोः ' ( ७ । ४ । ८२ ) इत्यत्र माष्ये । अम्या-  
साविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते । अजीगणत् । अत्र न गणे-  
रीत्वमपवादत्वाद्भलादिःशेषं बाधते किं तद्धनवकाशत्वादिति ग्रन्थेन ।  
गणरूपाभ्यासान्त्यणस्येत्वमित्यर्थे हलादिःशेषेण तन्नित्यौ तदनवका-

त्तत्र तत्त्वाभावादत आह—अपेति । अत्र, उक्तवाक्ये । बाधकेति । सर्वथानिरव-  
काशेत्यर्थः । एतेनास्यापवादविषये तस्यान्येन निषेधेऽप्युत्सर्गो भवतीत्यर्थः । यथा रामा-  
वित्यत्र वृद्धयपवादपूर्वसवर्णदीर्घस्य ऋदिचीति निषेधेऽपि वृद्धिः । तौ सदिति निर्देशोऽत्र  
लिङ्गम् । नान्तःपादमिति पाठे मुजाते अश्वमून्ते इत्यादौ पूर्वरूपे निषेधेऽप्ययाद्यप्रवृत्तेः  
क्वचिदिति । यद्वा 'वा लिटीति स्यान्नादेशस्य द्वित्वापवादत्वेऽपि तस्मिन्कृते द्वित्वं भवति ।  
अनेन वचनेन दिग्ग्यादेशविषये द्वित्वाप्रवृत्तेः क्वचिदिति । इदमेवाभिप्रेत्य भ्रष्टावसरत्वाच्च  
पुनः प्रवृत्तिरिति तत्र तत्र षष्ठसप्तमयोः कैयटादयः । जातिव्यक्तिपक्षमूलकं चैतत्पक्षद्वयमित्य-  
पास्तम् । अपवादविषयपरिहारेणोत्सर्गप्रवृत्तेस्तद्विषये तस्याप्रवृत्त्या तस्य वृद्धिबाध-  
कत्वायोगात् । आर्धधातुकीयाः सामान्येन भवन्तीति सिद्धान्तेन बाध्यबाधकभावस्यैवा-  
भावाच्च । दिग्ग्यादेशस्यानार्धधातुकीयत्वेनादोषाच्च । भ्रष्टावसरन्यायानाश्रयणस्य वक्ष्यमाणत्वा-  
च्चेति दिक् ।

उक्तार्थे प्रमाणमाह—तदुक्तमिति । इति ग्रन्थेनेत्यस्यात्रान्वयः । तत्र हि ङोढौ-  
क्यत इत्यादौ ह्रस्वदीर्घयोरन्यत्र सावकाशयोः परत्वादौकारस्यौकार एव दीर्घः स्यादेवं च  
ह्रस्वे कृते दीर्घापवादे गुणेऽपि तस्यैव दौर्लभ्यमिति दोषो न । अन्यार्थं क्रियमाणयाऽभ्यास-  
विकारेष्वपवादा इति परिभाषया निर्वाहादित्युपक्रान्तम् । तदाह—अम्यासेति । तदेवा-  
न्यत्फलमाह—अजीति । तदुपपादयति—अत्रेति । उक्तपरिभाषयेति शेषः । एव च  
णस्य निवृत्तावस्येत्वे तत्सिद्धिरिति भावः । उक्तपरिभाषादि खण्डयति—न गणेरीत्व-  
मिति । तत्त्वमुपपादयति—गणिति । ई च गणं इत्यत्राम्यासस्येति स्थानषष्ठी । संभ-  
वतीति न्यायेन सामानाधिकरण्यम् । तथा चालोऽन्त्यस्येत्वेकवाक्यतया तथावाक्यार्थं इति  
भावः । इत्यर्थे इति । सत्सप्तमी । तथा चास्यानवकाशत्वे निमित्तत्वेनान्वयः । हला-  
दिरिति । अत्राम्यासस्येत्यवयवषष्ठी । तन्नित्यौ, गनित्यौ । तदनवकाशम्, ईत्वमन-  
नवकाशम् । सर्वथा तदनवकाशत्वमिति क्वचित्कः पाठः । एवं चाऽऽदावीत्वे तदसिद्धिः ।

शाम् । ईत्वे तु कृते न तस्य प्राप्तिरन्त्यहलोऽभावात् । अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावाभावेन च साधितम् । तस्मिंश्च सति लोपे कृते सामर्थ्याच्छिष्टस्यान्त्यस्येत्वमिति न दोषः ।

न च येन नाप्राप्तिन्यायेनापवादत्वमप्यस्य सुवचम् । तस्य चरितार्थविषयताया उक्तत्वात् । ' इको झल् ' ( १ । २ । ९ ) इत्यत्र भाष्येऽपि ध्वनितमेतत् । तत्र हि ' अज्झन ' ( ६ । ४ । १६ ) इति दीर्घेण गुणोत्तरं फलाभावेनानवकाशत्वाद्गुणे बाधिते दीर्घोत्तरं गुणः स्यात् । दीर्घविभाषे तु मिनोतेदीर्घे कृते ' सनि मीमा ' ( ७ । ४ । ५४ ) इत्यत्र मीग्र-

उक्तपरिभाषायास्तु विषय एव नेति भावः । नन्वेवमपि तस्य स्थानिकत्वेन हलादिः शेषे लक्ष्यभेदेनाकारस्य पुनरीत्वे रूपसिद्धिरेवात् आह—ईत्वे त्विति अन्त्येति । प्रकृताभिप्राय न तु तथा तत्र निवेशः । अल्विधित्वात्स्थानिवत्त्व न । गाभावात्तदप्राप्तिश्चेति भावः । तथा च शेषपदलभ्यनिवृत्तिबाधकत्वे भाष्यस्य तात्पर्यमिति बोध्यम् । अनेन ततः प्राक्चारितार्थाभावः सूचितः । समकालं चारितार्थं त्वसमावितमेवेति बोध्यम् । नन्वेवमन्वीगणदित्यस्य ङोढौक्यत इत्यादेश्च कथं सिद्धिरत आह—अभ्यासेति । वेन चेति । चस्त्वर्थे । पूर्ववैलक्षण्याय । अपवादोदाघटितपरिभाषान्तरेणेत्यर्थः । इदं चाग्रे स्फुटी भविष्यति । यद्वा चो यथाश्रुतः साधितमित्यग्रे योज्यं । पूर्वोक्तिसमुच्चायकः । यद्यपवादत्वमेवानवकाशत्वं तर्ह्युक्तपरिभाषयैव सिद्धे परिभाषान्तरस्वीकारेण तत्साधनान्द्यसंगतिरेवेति भावः । नन्वेवमप्यादावीत्वे तदसिद्धिरेवात् आह—तस्मिंश्चेति । परिभाषान्तरे तु सतीत्यर्थः । तत्र सत्यपि तस्मिन्वदीत्व स्यादादौ तदा तत्स्वीकारो व्यर्थ एवात् आदौ लोपस्तदाह—लोपे इति । नन्वेव पूर्वोक्तरीत्येत्वं न स्यादत आह—सामर्थ्यादिति । सूत्रारम्भसामर्थ्यादित्यर्थः । एकदेशविकृतन्यायेन गस्य गणवेन तदन्याकारस्यान्त्यण्वादिति भावः । यद्वा तत्सामर्थ्यात्संभवतीति न्यायबाधेनोक्तार्थं विहाय गणसंबन्ध्यम्यासान्त्यस्येत्वमित्यर्थाङ्गीकारादिति भावः ।

तत्सूत्रोक्तकैयटोक्तिं खण्डयति—न चेति । त्वमपीति । अपिः सर्वथानवकाशात्त्वसमुच्चायकः । एवं चोक्तपूर्वपरिभाषयाऽपि निर्वाह इति भावः । तस्येति । उत्सर्गे कृतेऽपि चरितार्थस्थैवापवादत्वमिति भावः । उक्तार्थे मानान्तरमप्याह—इको झेति । भाष्येऽपीति पाठः । तत्र हीत्यस्योक्तमित्यत्रान्वयः । सूत्रामावे चिचीषतीत्यादाविति शेषः । सर्वथाऽनवकाशत्वाय समावितमन्यथा कृते चारितार्थं निराचष्टे—गुणोत्तरमिति । नन्वेवं दीर्घविधानमनर्थकं स्यादत आह—दीर्घेति । ग्रहणे, सतीति शेषः । न चास्य

हर्णेन ग्रहणेऽर्थवत्तत्र पश्चात्प्राप्तगुणबाधनार्थमिको झलिति किञ्चमित्युक्तम् । अन्यथाऽपवादत्वेन बाधे तद्विषय उत्सर्गाप्रवृत्तेर्भाष्यस्य सूत्रस्य चासंगतिरिति स्पष्टमेव ।

यत्तु काञ्चनीत्यादावपवादमयद्विषयेऽप्यणुभवति क्वचिदपवादाविषयेऽपीति न्यायादिति तन्न । 'अणुर्कर्मणि च' ( ३ । ३ । १२ ) इति सूत्रस्थभाष्यविरोधात् । तत्र ह्यणः पुनर्वचनमपवादाविषयेऽनिवृत्त्यर्थं

लाक्षणिकत्वम् । यत्र लक्षणानुसंधानेन शब्दरूपाश्रयण तत्र तत्प्रवृत्तावपि प्रयोगरूपाश्रयणे तदप्रवृत्तेः । अन्यथा गामादाग्रहणेऽप्यित्यस्यासंगत्यापत्तेः । मासाहवर्षान्मीशाब्दांशेऽपि सा नेति तत्त्वम् । न चैवमप्यस्ति किञ्च एज्विषयत्वेनाऽऽस्वप्रवृत्त्या गामादेतिवचनान्माग्रहणेन ग्रहणादिसंभविष्यतीति तत्र मीग्रहणमेव व्यर्थमिति न तद्दीर्घविधानस्य फलमिति वाच्यम् । एवं सत्यनर्थकत्वेन तत्र गुणस्येव ज्ञापित्वात्प्राप्तौ णिलोपस्यापि बाधापत्तेः । अथ स्थानिवत्त्वात्तत्र कृते स दुर्वारः । बाधस्तु सभानकालिकस्यैवेति चेत्तर्हि तथैव तत्प्रवृत्त्युत्तरं गुणोऽपि स्यात् । दीर्घत्व तु सामान्यग्रहणाविघातार्थमिति भावः । तत्र, द्वितीयातीत्यादौ । एव चेत्यादि । यद्वा तत्र तस्मिन्सति तस्य साफल्ये सति । प्रकृतभाङ्—अन्यथेति । सर्वथाऽनवकाशस्थलेऽपि येन नेतिन्यायेन बाधाङ्गीकार इत्यर्थः । प्रकृत इति शेषः । अपवादत्वेन, तेनैव । तद्विषये, अपवादत्वेन बाधविषये । अप्रवृत्तेरिति । अस्य सिद्धान्तितत्वेनेति शेषः । भाष्यस्य, उक्तभाष्यस्य । सूत्रस्य, इको झलिति सूत्रस्य । तस्मात्सर्वथाऽनवकाशस्वविषये तदप्रवृत्तिरित्येव तत्त्वमिति भावः ।

क्वचिदपवादेति न्यायाविषयं सीरदेवाद्युक्त खण्डयति—यच्छिति । आदिना प्रदीयतां दाशरथाय मैथिलीत्यादावपवादस्यात् इजित्यस्य परिग्रहः । मयडिति । नित्यं वृद्धेतीति भावः । यत्तु वानुवृत्तेरिजभावे तस्यापत्यमित्यणा दाशरथायेति सिद्धमिति । तत्र । उत्सर्गावपादयोर्वैकल्पिकत्वेऽपवादाभाव उत्सर्गाप्रवृत्तेर्भाष्यसंमतत्वात् । यदापि तस्येदमित्यणा सिद्धमुभयमिति । तदापि न । दाशरथायेत्यस्य सिद्धावपि वृद्धाच्छस्यापवादतया काञ्चनीस्यस्यासिद्धेः । अत एव तदेवात्रोपात्त मूले । आदिसग्राह्य तु तज्जातीयमेवेति पूर्वपक्ष्याशयः । यत्तु काञ्चनी वासयष्टिरित्यादावपवादमयद्विषयेऽनुदात्तादेशस्यञ् भवतीति सीरदेवादयः । तत्र । काञ्चनशब्दस्य लिट्स्वरेण नवविषयस्येति वाऽऽद्युदात्तत्वाद् अह—अणिति । प्राग्दीव्यत इतीति भावः । अपवादेति । कादिविषयेऽपीत्यर्थः । अनिवृत्त्यर्थमिति । अन्यथाऽपूर्वविधितः प्रतिप्रसवविधौ लाघवाद्नुसर्गाविषय एव तुमुन्वु लाविति ण्वुल बाधित्वाऽणस्यात्काण्डलाबो ब्रजर्तात्यादाविति भावः । ब्रजर्तात्पुनस्तथा तद्वि



गोदायो व्रजतीत्याद्युक्तम् । काञ्चनीत्यादौ काञ्चनेन निर्मितेत्यर्थे शैषि-  
कोऽण् बोध्यः ।

अत्रेवं बोध्यम् । येन नाप्राप्त इत्यत्र येनेत्यस्य यदि स्वतरेणेत्यर्थस्तदा  
स्वविषये स्वतेरद्यद्यत्प्राप्नोति तद्वाध्यं विध्यन्तराप्राप्तविषयाभावात् ।  
इयमेव बाध्यसामान्यचिन्तेति व्यवह्रियते । अनवकाशत्वेन बाधेऽप्येषा  
षक्तं शक्या यद्युदाहरणमस्ति । विनिगमनाविरहात् । यदि तु येनेत्यस्य

फलं सूचितम् । तच्चापि नोक्तम् । यथा चोभयलाभस्तथा भाष्य एव स्पष्टम् । उक्त-  
मिति । यदि स न्याय उक्तार्थकः स्यात्तदा तेनैव तत्र सिद्धे भाष्यासंगतिः स्पष्टैव ।  
न चैतदनित्यत्वैपर भाष्यम् । निर्मूलत्वात्फलाभावाच्च । तथैतस्या एवासत्त्वेन तथा वक्तुम-  
शक्यत्वादिति भावः । एष सति काञ्चनीत्यस्यासाधुत्वं निराचष्टे—काञ्चेति ।  
शैषीति । तस्य विधित्वस्यापि सत्त्वात् । वृद्धाच्छ इति तु न । घादीना जाताद्यर्थेष्वेव  
विशेषरूपेण तत्तत्सूत्रेण विधानात्तदन्यसम्प्रहार्यमेव तस्य तत्त्वाङ्गीकारात् । यद्यपि षक्षुषा  
गृह्यते चाक्षुषमित्यादाविवोपगोच्छात्रा औपगवा इत्यादौ शेष इति लक्षणोपादादिसिद्धि-  
रेवं घापत्यादिचतुरर्थ्यन्तार्थजातान्यार्थस्य विशेष्यतया भासमानस्य शेषत्वेन तद्रूप-  
सर्वविशेषाणां सामान्यरूपेण प्रत्ययार्थत्व तस्येदमित्यत्रेदमित्यनेन बाधितमिति तस्येद-  
मिति छः प्राप्नोति तथाऽपि तेनाणादीना पञ्चाना घादीना च सर्वेषां विधानेऽपि षष्ठ्यन्ता-  
त्संबन्धिनि विधानेन प्रकृते तथार्थाभावेन तस्याप्राप्तिः । गर्गाणां छात्रा वृद्धाच्छ इत्यादय-  
स्तत्र तत्र ग्रन्था अपि तस्येदमित्याशयका एवेति न दोषः । अत एव शेष इति लक्षणेन  
छात्रार्थेऽणवद्वादन्यत्रैव । एवं च गर्गैर्निर्मितो गर्ग इत्यत्रेवात्र छो न । यदा तु गर्गाणां  
छात्रा इतिषत्काञ्चनस्येयमिति विवक्षा तदा भवत्येव छ इति भावः ।

पुरस्तादित्यादिन्यायस्वरूप वक्तु येनेत्यत्र कचित्सिद्धान्तमाह—अत्रेदमिति ।  
स्वतरेणेति । अपवादेतरत्वावच्छेदकावच्छिन्नेनेत्यर्थः । स्वमपवादः । स्वतेरद्यद्यदिति ।  
सर्वत्र बीप्सितस्य तदा परामर्शात्त्राप्रे कीप्सा । विध्यन्तराप्राप्तेति । बहुव्रीहिः समाना-  
धिकरणः । आहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः । प्राप्तेति कर्तरि क्तः । प्राप्तेति भावे क्तो व्यधि-  
करणबहुव्रीहिरिति कश्चित् । तद्व्याप्तलक्ष्याभावादिति परमार्थः । इयमेवेति । स्वतेरस-  
कलबाधिकेत्यर्थः । अपवादस्यञ्च एतादृक्त्वा सर्वथाऽनवकाशस्थलेऽप्येनामाह—अनवेति ।  
एषा, बाध्यसामान्यचिन्ता । यद्युदाहरणमिति । अनेन तदभावः सूचितः । एवम-  
प्रेऽपि । शक्यत्वे हेतुमाह—विनीति । यदि त्विति । तुर्वैलक्षण्यसूत्रकः । येनेत्यस्य

१ ग. क. यद्यर्थं न्दा° । २ ग. °स्वज्ञापनप° । ३ क. °सिद्धेरे° । ४ घ. °शेषत° । ५ क.  
च. °गर्गे निर्मित° । ६ ख. ग. घ. °बाधैवेत्य° ।

लक्षणेनेत्यर्थः कार्येणेत्यर्थो वा तदा बाध्यविशेषचिन्ता । अनवकाश-  
त्वेन बाधेऽप्येतद्बाधेन सार्थक्यमुत तद्बाधेनेत्येवं विशेषचिन्ता संभवति  
यद्युदाहरणमिति ॥ ५८ ॥

तत्र कार्येणेत्यर्थे पररूपत्वावच्छिन्ने कार्ये आरभ्यमाणाया  
बुद्धेस्तद्बाधकत्वे निर्णीते किंशास्त्रविहितस्येत्येवं तद्विशेषचिन्तायामाह—

पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्वाधन्ते नोत्तरान् ॥ ५९ ॥

अवश्यं स्वपरस्मिन्बाधनीये प्रथमोपस्थितानन्तरबाधेन चारितार्थ्ये  
पश्चादुपस्थितस्य ततः परस्य बाधे मानाभावः । आकाङ्क्षाया निवृत्ते-  
र्विप्रतिषेधशास्त्रबाधे मानाभावाच्चेत्येतस्य बीजम् ॥ ५९ ॥

‘ नासिकोदरौठजङ्घादन्त ’ ( ४ । १ । ५५ ) इत्यस्योष्ठाद्यंशे

लक्षणेनेत्यर्थः कार्येणेत्यर्थो वेति पाठः । लक्षणेनेति । शास्त्रविशेषेणेत्यर्थः । प्राधा-  
न्यादाह—कार्येणेतिति । प्राग्वदाह—अनवेति । सर्वथेत्यादिः । प्राग्वदाह—वस्तु-  
देति । इतिः समाप्तौ ॥ ५८ ॥

नन्वेव पक्षभेदेऽपि कथं पुरस्तादित्यादिसिद्धिरत आह—तत्रेति । तेषां प्रयाणामर्णानां  
मध्य इत्यर्थः । तत्र कार्येणेतिति पाठः । कार्येणेत्यस्य कार्यविशेषेणेत्यर्थेऽपि कार्यतावच्छे-  
दको यो विशेषधर्मस्तदवच्छिन्नसर्वकार्यग्रहणसंभवादाह—शरेति । अत एव लक्षणेनेत्यर्थे  
न संभव इति तत्त्यागः । बुद्धेः, एत्येधतीत्यस्याः । तद्बाधेति । पररूपबाधेत्यर्थः ।  
निर्णीते, पूर्वन्यायेन । तद्विशेषेति । अवान्तरकार्यविशेषेत्यर्थः । एतेन केनेनेति न्यायेन  
यत्रोभयबाधकत्वं प्राप्तं तत्रैव बक्ष्यमाणन्यायानां व्यक्त्वापकत्वमिति सूचितम् । अस्य न्यायस्य  
शुक्तिसिद्धत्वमाह—अवश्यमिति । स्वशरेति । स्वेन स्वान्वस्मिन्नित्यर्थः । एत-  
मेति । यतोऽनन्तरमतः प्रथमोपस्थितमित्यर्थः । तथा च प्रत्वास्तन्निवाबमूलकत्वमस्य  
सूचितम् । एवमग्रेऽपि । अत एव तत्र चानुक्तिः । ततः, अनन्तरात् । आकाङ्क्षाया  
इति । बाधकस्य बाध्याकाङ्क्षाया इत्यर्थः । नन्वाकाङ्क्षा कल्प्यतामत आह—विप्रेति ।  
एतस्य, न्यायस्य ॥ ५९ ॥

मध्येऽपवादा इति न्यायमवतारयति—नासीनि । नासिकोदरयोरसंयोगोपधत्वादाह—  
ओष्ठाद्यंश इति । आदिना जङ्घादिपरिग्रहः । येन कार्येणेत्यर्थोभिप्रायणैव प्राग्व-

ङीष्निषेधत्वावच्छिन्नबाधकत्वे निर्णीति किंविहितस्येत्याकाङ्क्षायामाह—

मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् ॥ ६० ॥

तेनौष्ठादिषु पञ्चस्वसंयोगोपधादिति प्रतिषेध एव बाध्यते न तु सहनञ्चिद्यमानलक्षण इति ' नासिकोद्गर ' ( ४ । १ । ५५ ) इत्यत्र माष्ये स्पष्टम् । पूर्वोपस्थितबाधेन नैराकाङ्क्ष्यमस्या बीजम् ॥ ६० ॥

ननु ' वा छन्वासि ' ( ३ । ४ । ८८ ) इत्यनेन ' सेर्ह्यपिञ्च ' ( ३ । ४ । ८७ ) इत्यनन्तरस्यापित्वस्येव हेरपि विकल्पः स्यात् । तथा ' नेटि ' ( ७ । २ । ४ ) इति निषेधोऽनन्तरहलन्तलक्षणाया इव सिचिदृद्धिषुजिवृद्धोरपि स्यात् । अत उक्तन्यायमूलकमेवाऽऽह—

अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ॥ ६१ ॥

अत एव ' संख्याव्ययादेः ' ( ४ । १ । २६ ) इति ङीबग्रहणं चरितार्थम् । तद्धनन्तरस्य ङीषो विध्यमावाय । ' न क्तिचि ' ( ६ । ४ । ३९ ) इति सूत्रे ङीर्घग्रहणं च चरितार्थम् । तद्धनन्तरस्य ' अनुदात्तोपदेश ' ( ६ । ४ । ३७ ) इत्यस्यैव निषेधामावाय । मध्येऽपवाद-

माह—ङीष्निषेधेति । तेनौष्ठेति । न्यायाङ्गीकारेणेत्यर्थः । उक्तसूत्रेणेत्यर्थ इति कश्चित् । एवव्याचर्थ्यं स्पष्टार्थमाह—त त्विति । अत्र मानमाह—पूर्वोपेति । पूर्वोपस्थितन्यसस्कारजन्यदृष्टिपिपेस्येत्यर्थः । उत्तरस्य त्वननुभवात्स्मृत्ययोग इति भावः । बाधेनेति । अस्य चारितार्थ्यं इति शेषः । गीजान्तरमपि प्राग्वद्बोध्यम् । अस्याः, न्यायरूपपरिभाषायाः । एतेनानयोर्दार्ढ्यकं दान्तः स्त्रीरदेवादयः परास्ताः । युक्त्यैव सिद्धार्थेन चारितार्थ्ये ज्ञापकत्वासंभवात् । अत एव इत्यत्रस्यकैयटविरोधापत्तेश्चेत्यनुपपत्तमेव स्फुटी भविष्यति ॥ ६० ॥

विधियुक्त्वा निषेधमाह—तथेति । यद्यपि मृजेवृद्धग्रंशे पूर्वोक्तमध्येऽपेति न्यायेन निर्वाहस्तथाऽपि सिचि वृद्ध्यर्थप्राचक्ष्यकेनानेनैव तत्रापि सिद्धौ तदाश्रयणमफलमिति ध्वनयन्माह—मृजिवृद्धग्रोरपीति । उक्तन्यायेति । अनन्तरप्रथमोपस्थितबाधेन साफल्ये न्यवहितपश्चादुपस्थितबाधे मानामाव इत्येतत्प्रथमन्यायमूलप्रत्यासत्तिन्यायमूलकमेवेत्यर्थः । एवेव ज्ञापकमूलकत्वनिरासः । अत एव, न्यायाङ्गीकारादेव । अस्य चरितार्थद्वयेऽन्वयः । अत एव चसंगतिः । तत्र विध्यशफलमाह—संख्येति । निषेधांशफलमाह—न क्तिचीति । त्वस्यैवेति । एतेनानुनासिकस्य किङ्गलोरित्यस्य निरासः । एतेन तयो-

न्यायाद्यपेक्षयाऽनन्तरस्येति न्यायः प्रबल इति 'अष्टाभ्यः' (७।१।२१) इति सूत्रे कैयटः । प्रत्यासत्तिमूलकोऽयम् ।

लक्ष्यानुरोधाच्च व्यवस्थेत्यपि पक्षान्तरम् । तत्र तत्र क्वचित्स्वरितत्व-प्रतिज्ञानात्सामर्थ्येन वा बाध्यतेऽयं न्यायः । यथा 'टिड्ढा' (४।१।१५) इति सूत्रेण टापा व्यवहितस्यापि ङीपो विधिः । 'न षट्' (४।१।१०) इत्यादिना द्वयोरपि टाबुङ्गीपोः प्रतिषेधः । इयं च 'शि सर्वनामस्थानम्' (१।१।४२) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टेत्यन्यत्र विस्तरः ॥६१॥

स्तयोरेतज्ज्ञापकत्व वर्णयन्तः सीरदेवादयः परास्ताः । न्यायादीति । आदिना न्यायव-शेषसंग्रहः । कैयट इति । यो वा तस्मादनन्तर इति भाष्यव्याख्यावसर ईत्यादिः । अत्र केचित् । तैरथ न्यायमूलकत्वमस्य ज्ञापकमूलकत्वमिति तद्भावः । कैयट इत्यनेनासुचिः सूचिता, एतद्वृत्तस्यापि ज्ञापकत्वमेवार्थान्वरतीयानौचित्यरूपा । तत्राऽऽद्ये ज्ञापक परिष्काराख्यायामित्यत्र सर्वग्रहणम् । तद्वि एरनित्यस्यैव बाधो न किंतु ऋदोरनित्यस्यापि द्वौ कारणित्यादावित्येवमर्थम् । द्वितीये बहुव्रीहेरुपस इत्यस्य सूत्रस्यान उपधालोपिन इत्यत्रानुवृत्त्यर्थं कृतं वृत्तिकारादिसमतं स्वरितत्वप्रतिज्ञानम् । तेन घटोऽरीत्यादौ बहुव्रीहेरिति शेषेव न त्वन उपधेति परो ङीप् । अत एव पक्षान्तरमाह—प्रत्येति । प्रत्यास-क्तिरुक्ता । अयम्, अनन्तरेति न्यायः ।

नन्वेवं तुल्यत्वात्प्रबलदुर्बलभावाभावे कथं व्यवस्थाऽत आह—लक्ष्येति । चस्त्यर्थे । तत्र तत्र, बहुषु सूत्रेषु कैयटादौ । यद्वैकं तत्रेति तत्सूत्रस्यकैयट इत्यर्थक पूर्वान्गि । अपरसुत्तरान्वयि । उक्तन्यायत्रयमध्य इति तदर्थः । तत्राऽऽद्यस्य विधातुपयोगमाह—यथा टिड्ढिति । अपिना टाबुचीति टापा व्यवहितपरामर्शः । टाबुद्धयस्यास्वरितत्वादेव नातुवृत्तिरित्याशयेनाऽऽह—ङीप इति । अन्यस्य निषेधे तमाह—न षट् इति । अनन्तरटाबुचीति निषेधे सूत्रवैयर्थ्यापत्त्या प्रबलया ङीपः स्वरितत्वेऽपि विनिगमनाविरहात्संभवात्प्रागुक्तरीत्या बोधयोर्निषेध आद्ययोरिति भावः । एवं कालाध्वनोरिति द्वितीया-विधिर्हन्तेरत्पूर्वस्येति योगविभागसामर्थ्यात्सर्वनिषेध इत्यप्युदाहरणे बोधये क्रमेण । एतदपेक्षया येन नाप्राप्तिन्यायः प्रबल, अस्य पाठलक्ष्यविशेषोभयसापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वात् । तदाह—अन्धत्रेति । उद्योतादावित्यर्थः ॥ ६१ ॥

१ ग. ङ. 'ना पुरस्तादपवादन्यायसं' । २ ग. ङ. इति शेषः । अ' । ३ ग. ड. तबोर्माय' । ४ ग. ङ. 'तयोरपि । ५ ख. घ. 'वित्ये' । ६ ख. घ. 'यि । केतिसूत्रादिभाष्यविरोधापत्तिरतः प्रागुक्तत्वमेवाऽऽह तत्रेति । प्रत्यासत्तिमूलकत्वे सतीति तदर्थः । द' । ७ ग. 'इव ल' । ८ ग. 'शेषपाठोभ' ।

ननु दधतीत्यादावन्तरङ्गत्वादन्तादेशेऽल्विधौ स्थानिवत्त्वामावाद्वादेशो न स्यादिति तद्वैयर्थ्यापत्तिरत आह—

पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥ ६२ ॥

लक्षणैकचक्षुष्को ह्यपवादविषयं पर्यालोच्य तद्विषयत्वाभावनिश्चय उत्सर्गेण तत्तल्लक्ष्यं संस्करोति । अन्यथा विकल्पापत्तिरित्यर्थः । अभिनिविशन्त इत्यस्य बुद्ध्यारूढा भवन्तीत्यर्थः । 'अपवादो यद्यन्यत्र चारितार्थः' ( प० ६५ ) इति न्यायस्य तु नात्र प्राप्तिरन्तादेशाप्राप्तिविषये चारितार्थ्याभावात् ॥ ६२ ॥

लक्ष्यैकचक्षुष्कस्तु तच्छास्त्रपर्यालोचनं विनाऽप्यपवादविषयं परित्य-

अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वात्पूर्वस्थितनिमित्तकत्वादल्पनिमित्तकत्वादपरनिमित्तकत्वाच्च । द्वित्वाद्विकरणाच्चेत्यादिः । यद्वा पञ्चम्यन्तनिमित्ताभावेन तत्त्वम् । एवं च द्वयोः समकालप्राप्तावपि न क्षतिः । एतेन जक्षतीत्यादौ समकालप्राप्त्या तद्भावेन तत्साफल्ये दधतीत्यादावपवादोऽपीति न्यायेन स नैव स्यादित्यपास्तम् । कार्यकालपक्ष आद्यमतेऽप्यदोषाच्च । प्रागुक्तरास्यैव तदभावे सिद्धे न्यायानुपयोगाच्च । तस्य युगपत्प्राप्तिविषयत्वेन प्रवृत्त्यभावाच्चेति भावः । अत एवाऽऽह—तद्वैयर्थ्येति । अदभ्यस्तादिति सूत्रवैयर्थ्येत्यर्थः । अद्ग्रहणस्योत्तरार्थत्वेऽपीह वैयर्थ्यमेवेति भावः । एतेन परिभाषायां ज्ञापकं सर्वथाऽनवकाशविषयत्व च सूचितम् । पूर्वं ह्यपवादा इति । हिर्निश्चये । अपवादशास्त्राणीत्यर्थः । उत्सर्गा इति । प्रवर्तन्त इति शेषः ।

इदं लक्षणैकचक्षुष्काभिप्रायमित्याह—लक्षणैकचक्षुष्को ह्यपेति । अन्यथा, उद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्ने सर्वत्रोत्सर्गकृतसंस्कारे । विकल्पेति । शास्त्रद्वयप्रामाण्यात् । सा च नेष्टेति भावः । ननु पर्यालोच्येत्त्वार्थलाभः कुतः । आदौ तत्प्रवृत्तरेव लाभात् । किं च पूर्वमपवादप्रवृत्तिर्यत्र संभवति तत्र सा सर्वथाऽनवकाशात्वेनैव सिद्धा । अत एव पश्चादुत्सर्ग-प्रवृत्तिरपि क्वचिदपवादेति प्रागुक्तन्यायेन प्राप्तिसत्त्वे सिद्धेति तथार्थकमिदं व्यर्थम् । किं च दधतीत्यादावसम्बन्धोऽनिर्वाहश्चात आह—अभीति । एवं च तं पर्यालोच्य तद्विषयत्वाभावेन निर्णीते विषय उत्सर्गो बुद्धिविषयः सल्लक्ष्यं संस्करोति । एवं चोत्सर्ग-प्रवृत्तौ तज्ज्ञानमेष कारणमिति भावः । नात्र, दधतीत्यादौ । मावादिति । तस्य युगपत्प्राप्तिविषयत्वाच्चेत्यपि बोध्यम् ॥ ६२ ॥

द्वितीयामवतारयति—लक्ष्यैकेति । अत्र एव तुः प्रयुक्तः । तच्छास्त्रेति । अपवादशास्त्रेत्यर्थः । ननु लक्ष्यैकचक्षुष्कस्य लक्षणापेक्षैव नेति कथमुत्सर्गस्यापि प्रवृत्तिरत

ज्योत्सर्गेण लक्ष्यं संस्करोति । तस्यापि शास्त्रप्रक्रियास्मरणपूर्वकप्रयोग एव धर्मोत्पत्तेः । तदाह—

प्रकल्प्य वाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ ६३ ॥

तत्र इत्यस्यापवादशास्त्रपर्यालोचनात्प्रागपीत्यर्थः । प्रकल्प्येत्यस्य परित्यज्येत्यर्थः ॥ ६३ ॥

अत एव प्रातिपदिकार्थसूत्रे माष्य इदं द्वयमप्युक्त्वा न कदाचित्ता-  
वदुत्सर्गो भवत्यपवादं तावत्प्रतीक्षत इत्यर्थकमुक्तम् । एतन्मूलकमेव  
नवीनाः पठन्ति—

उपसंजनिष्यमाणनिमित्तोऽप्यपवाद उपसंजातनि-  
मित्तमप्युत्सर्गं बाधत इति ॥ ६४ ॥

आह—तस्यापीति । लक्ष्यैकचक्षुष्कस्यापीत्यर्थः । अपिरुक्तसमुच्चायकः । योग एवेति ।  
एवेन तदन्यथाप्रयोगे धर्मोत्पत्तिनिरासः । स्पष्ट चेदं पस्पशाह्निके । इदमपि तत्र गमकामिति  
भावः । एतेनापवादेनोत्सर्गस्य बाधाविशेषात्पक्षद्वयोपन्यासो व्यर्थ इत्यपास्तम् । प्रकल्प्य  
वेति पाठः । वाशब्दः पक्षविकल्पे । यथाक्रम प्रकल्प्येत्यस्य बुद्ध्यारूढ कृत्वा ततस्त-  
दनन्तर स प्रवर्तत इत्यर्थे पूर्वतो भेदो न स्यात् । इष्टापत्तौ वाऽसर्गतिर्वक्ष्यमाणदोषश्च ।  
अतो व्युत्क्रमेण प्रागपीति शेषपूरणेन न्याचञ्चे—तत इति । तस्य प्रकान्त-  
परामर्शकत्वादाह—अपवादेति । अत एवाऽऽह—परीति । अभिनिविशत इत्यस्य  
प्रवर्तत इत्यर्थः । एव चापवादशास्त्रविषय स्वयमेव त्यक्त्वा देवदत्तादिरुत्सर्गेण लक्ष्यं संस्क-  
रोतीत्यर्थः । प्रागेवोत्सर्गस्यापवादविषयान्यविषयं निर्णयतीति यावत् । तथा च पूर्वमते  
सर्वत्र प्राप्तस्योत्सर्गस्य विषयविशेषेऽपवादेन बुद्ध्यारूढेन निवृत्तिरत्र तु प्रागेव तथेति भेद  
इति फलितम् ॥ ६३ ॥

अत एव, द्वितीयस्योक्तार्थकत्वेन प्रकारभेदेऽप्युक्तरीत्या द्वयोः फलितैक्यादेव ।  
तावत्, आदौ । प्रतीक्षते, अपवादविषयत्वं यथाकथंचिज्ज्ञात्वा तत्रोत्सर्गबुद्धिर्निवर्तते  
ततोऽन्यत्र सा भवतीति तात्पर्यार्थः । इत्यर्थकमिति । न तावदत्र कदाचित्तिडादेशो  
भवति । अपवादौ तावच्छतृशानचौ प्रतीक्षत इतीति भावः । यदि द्वयोर्न्याययोर्भिन्ना-  
र्थत्वं स्यात्तर्ह्युपसंहारद्वयं कुर्यात् । तस्मादुक्त एवार्थ इति भावः । एतन्मूलकमेवेति ।  
एतदुभयफलितमूलकमेवेत्यर्थः । एवेन मूलान्तरनिरासः । ऋष्यसमतत्वात् । अत एवाऽऽह—  
नवीना इति । दीक्षितादय इत्यर्थः । दधतीत्यत्र तन्नियामकत्वेनेति शेषः । द्वितीय-

यस्वभ्यस्तसंज्ञासूत्रे कैयटैः प्रकल्प्य वेति प्रतीकमुपादाय यथा 'न  
संप्रसारणे' (६।१।३७) इति परस्य यणः पूर्वं संप्रसारणं पूर्वस्य  
तु तन्निमित्तः प्रतिषेध इत्युक्तं तच्च तत् उत्सर्ग इत्याद्यक्षराननुगुणम् ।  
यत्त्वपवाद्वाक्यार्थं विना नोत्सर्गवाक्यार्थं इति तदर्थं इति तन्न । अभि-  
निविशन्तेऽपवाद्बिषयमित्यादिपदस्वारस्यभङ्गापत्तेः । पदजन्यपदार्थो-  
पस्थितौ वाक्यार्थपोधाभावे कारणाभावाच्च । यत्र त्वपवादो निषिद्ध  
स्तत्रापवाद्बिषयेऽप्युत्सर्गः प्रवर्तत एव यथा वृक्षावित्यत्र 'नाऽऽदिचि'  
(६।१।१०४) इति पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधात्प्रवर्तमानस्य वृद्धिबाध-  
कत्वाभावाद्बृद्धिः प्रवर्तते ।

अत एव 'तौ सत्' (३।२।१२७) इत्यादि संगच्छते । अत  
एव निर्देशाद्भ्रष्टावसरन्यायस्यात्र शास्त्रे नाऽऽश्रयणम् । ध्वनितं चेदम्

वचनस्य तदेवार्थान्तरं खण्डयति—यत्त्विति । अभ्यस्तेति । उभे अभ्यस्तमिति सूत्र  
इत्यर्थः । यथेति । अस्यैतद्विषयभूतमित्यादिः । इतीति । इति बुद्धिस्थे सतीत्यर्थः ।  
संप्रसारणमित्यस्य प्रवर्तत इति शेषः । इत्यादीति । आदिना वा प्रकल्प्येत्यादिपरिग्रहः ।  
किंच न संप्रसारण इत्यत्र ज्ञापकादयमर्थः साधितो अगवता । यदि न्यायविषयस्तर्हि  
भाष्यासंगतिरेवेति तद्भाष्यविरुद्धमित्यपि बोध्यम् । तदर्थं इति । वचनद्वयार्थं इत्यर्थः ।  
पूर्वशेषस्यापि भाष्यसमतत्वान्नासगातिः । क्रमेण बाधकमाह—अभीति । शन्त इति  
पाठः । तेन हि लक्ष्यसंस्कारकवादयार्थबोधभावेऽपि सामान्यतः सोऽस्तीति सूच्यते । अन्य-  
थैवमुक्तिरयुक्ता स्यात्तथैव वदेदिति भावः । आदिना ततोऽभिनिविशत इत्यस्य सग्रहः । ननु  
पदास्वारस्येऽपि तात्पर्यार्थं एवास्तु सोऽत आह—पदेति । आकाङ्क्षादिसत्त्व इति शेषः ।  
अत्रोभयत्रापवादविषयता फलोपहिता ग्राह्याऽन्यथाऽनिष्ठापत्तेः । तावित्यादिनिर्देशासांग-  
त्यापत्तेश्च । अप्रवर्तमानस्य बाधकत्वासंभवाच्च । तस्माद्बाधकाबाधितापवादविषयता यत्र  
तत्र नोत्सर्गप्रवृत्तिरन्यत्र तु भवत्येवेति फलितम् । तदाह—यत्र त्विति । विषयेऽ-  
यीति । अपवादाविषयत्वयोग्येऽपीत्यर्थः । अपिः प्रागुक्ततदविषयपरामर्शकः । एवो निवृ-  
त्तिव्यवच्छेदे । अप्रवर्तमानस्य, पूर्वसवर्णदीर्घस्य ।

न्यायसिद्धेर्धे ज्ञापकमप्याह—अत एवेति । तथार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । ननु  
यस्यावसरो भ्रष्टस्तन्नोति न्यायेन वृद्धिर्नैव स्यादत आह—अत एवेति । तावित्यस्मादेव  
निर्देशादित्यर्थः । अत्र, पाणिनीये । यावता विनेति न्यायादिति भावः । सूत्रारूढेऽर्थे  
भाष्यमपि प्रमाणयति—ध्वनितमिति । तत्र हि यद्यपीको गुणेति सूत्रे वृद्धिग्रह-

‘ इको गुण ’ ( १ । १ । ३ ) इति सूत्रे भाष्य इति भाष्यप्रदीपोद्घोते निरूपितम् ।

अत्र देवदत्तस्य हन्तरि हते देवदत्तस्योन्मज्जनं नेति न्यायस्य विषय एव नास्ति । हते देवदत्त उन्मज्जनं न । देवदत्तहननोद्यतस्य तु हनने भवत्येवोन्मज्जनम् । प्रकृतेऽपि न पूर्वसवर्णदीर्घेण वृद्धेर्हननम् । किं तु हननोद्यमसजातीयं प्रसक्तिमात्रम् । प्रसक्तस्यैव निषेधात् । प्रतिपदोक्तत्व-

णाभावेऽभैत्सीदित्यादौ हलन्तलक्षणाया बाधकत्वेऽप्यक्रोषीदित्यादौ प्राप्तायाः सिचि वृद्धि-रिति वृद्धेर्बाध्यसामान्यचिन्तापक्षे नेटीति निषेधमुक्त्वा विशेषचिन्तापक्षे सिचि वृद्धिरित्यस्या बाधिकाया हलन्तलक्षणाया नेटीति निषेधादपवादे निषिद्ध उत्सर्गो नेति समाधानदाढ्याय नान्तःपादमिति पाठे सुजाते अश्वसूनुते इत्यत्र पूर्वरूपनिषेधेऽयादयोऽपि नेति दृष्टान्त-योक्तं तत्र न्यायस्य साधकमेव । तथाऽपि द्वितीयपक्षः प्रौढ्युक्तिः । न्यायाभावात् । अत्र एव सिच्यन्तरङ्गाभावे दत्तस्यातो हलादेरित्यत्राद्ग्रहणस्य ज्ञापकस्य खण्डकनैतदस्ति ज्ञापक-मित्यादि तदग्रिमभाष्यसंगतिः । अन्यथा न्यकुटीदित्यादावन्तरङ्गतया वृद्धिबाधकगुणस्य निषेधे तेन न्यायेन वृद्ध्यभावे सिद्धे तदसंगतिः स्पष्टैव । अत एव नान्तःपादमिति सूत्र एवोऽ-तीत्यनुवर्त्य एवोऽति यद्यत्प्राप्नोति तस्य निषेध इत्यर्थमाश्रित्य तस्य सर्वनिषेधकत्वमु-क्तम् । तस्मात्तदभाव एवेति बोध्यम् । तदाह—निरूपितमिति ।

उक्तनिर्देशाद्देवदत्तहन्तृहतन्यायोऽनित्य इति कस्यचिदुक्तिं खण्डयति—अत्रेति । वृक्षावित्यादावित्यर्थः । हेतुं वक्तुमभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वात्तद्विषयत्वज्ञान-स्याऽऽदावावश्यकत्वात्तस्य च तत्स्वरूपज्ञानार्थान्तादादौ तच्छरीरमाह—हत इति । दत्त इति । तद्धन्तरि हतेऽपीति शेषः । उन्मज्जन नेत्यस्य देवदत्तस्येति शेषः । हतत्वस्य तद्ध-न्तर्यारोपे तु सुतरा तस्य नोन्मज्जनमिति भावः । हननेति । तदर्थमुद्यतेत्यर्थः । उन्म-ज्जनम् । देवदत्तस्येति शेषः । तद्विषयत्वे हेतुमाह—प्रकृतेऽपीति । वृक्षावित्यादा-वित्यर्थः । अपिर्ह्यर्थे । प्रसक्तिमात्र, प्रसङ्गमात्रम् । मात्रपदेन हननस्थानीयलक्ष्यनिष्ठप्रवृत्ति-व्यावृत्तिः । तत्र हेतुमाह—प्रसेति । एवेन जातव्यावृत्तिः । ननु प्रतिपदोक्तस्य द्विवि-धमपि बाधकत्व कथम् । उक्तेष्वपरिगणनात् । अन्तर्भाव इति चेत्क । अत आह—प्रतीति । पूर्वसमुच्चायकोऽपि । निरवेत्यस्य यथाकथंचिदित्यादिः । तेनोभयसंग्रहः । अत्रापि बाधः प्रागवत् । तत्राऽऽद्यस्योक्तन्यायमूलकत्वेन सिद्धत्वात्तदुपेक्ष्य द्वितीये मान-

१ क. ड. °क्त न्या° । २ क. ड. °भाव एतस्या° । ३ घ. ड. षडक नै° । ४ क. °शादेव देव । ५ ग. घ. °ति । तावि° ।



मपि निरवकाशत्वे सत्येव बाधप्रयोजकम् । स्पष्टं चेदं ' शेषाद्विभाषा ' ( ५ । ४ । १५४ ) इति सूत्रे भाष्ये । तत्र हि शेषब्रह्ममनर्थकं ये प्रतिपदं विधीयन्ते ते बाधका भविष्यन्तीत्याशङ्क्यानवकाशा हि विधयो बाधका भवन्ति समासान्ताश्च कबभावे सावकाशा इत्युक्तम् ।

क्वचिदनवकाशत्वाभावेऽपि परानित्यादिसमवधाने शीघ्रोपस्थितिक-  
त्वेन पूर्वप्रवृत्तिप्रयोजकं बलवत्त्वं प्रतिपदविधित्वेनापि । परानित्यान्तर-  
ङ्गप्रतिपदविधयो विरोधिसनिपाते तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमिति  
' प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ' ( ७ । २ । ९८ ) इति सूत्रे कैयटेन पाठात् ।  
अत एव रम इत्यादौ प्रतिपदोक्तत्वात्पूर्वमेव आकारप्रश्लेषान्द्वल्-  
ङ्चादिलोपो न प्राप्नोतीत्याशङ्क्य ' एङ्हस्वात् ' ( ६ । १ । ६९ )

माह—स्पष्टमिति । शेषेति । समासान्तापेक्षयैव शेषत्वमिति भावः । यद्यपि तत्र  
चारितार्थ्ये सति तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यरूपमनवकाशत्वमस्ति येन नेतिन्यायविषय-  
भूतमिति भाष्यासगतिरेव तथाऽप्यस्मादेव भाष्यात्तन्न्यायाविषयोऽयमिति तथाऽत्र न  
गृह्यत इति सर्वथानवकाशप्रतिपदोक्तस्यैव बाधकत्वमिति सर्वथाऽनवकाशा एवास्यान्तर्भाव  
इति सार्वत्रिकोऽयमर्थ इति भावः । यत्र तु प्रतिपदविधित्वे सति सर्वथाऽनवकाशत्वं न  
किंतु तादृशं तत्र येन नेति न्यायेनैव बाधः । अत एव प्रतिज्ञाया निरवेति बाधेति च  
सामान्येनोक्तम् । इदं च परानित्याद्यसमवधान उक्तम् ।

अथ तत्समवधानेऽपि प्रागुक्तदाढ्यायाऽऽह—क्वचिदिति । शास्त्रस्य तर्दभावेऽपि  
तत्समवधाने प्रतिपदविधित्वेन यच्छीघ्रोपस्थितिकत्व तेन पूर्वप्रवृत्तिप्रयोजक बलवत्त्वमप्यङ्गी-  
क्रियत इत्यर्थः । तत्र मानमाह—परेति । विरुद्धयोर्द्वयोः शास्त्रयोः सनिपात एकलक्ष्ये  
प्रवृत्तौ पूर्वादितो यत्पराद्यन्यतम तद्भवति । तेषा, परार्दाना मध्ये । मिथः, परानित्याद्यो-  
र्युगपत्प्रसङ्ग उपात्तक्रमेण तद्बलवदित्यर्थः । एव च वाक्यद्वयमिदमिति विधय इति प्रथमो-  
पपत्तिर्विरोधीत्यस्य साफल्य च । यत्तु विरोधिसनिपात इत्यनेन भिन्नविषयागमादेशयोर्ना-  
पवादत्वमिति सूचितामिति केचित् । तन्न । नुम्नु<sup>१</sup>र्बाध्यबाधकत्वानापत्तेः । नित्यात्सुब्लु-  
कोऽन्तरङ्गा आदेशा इति प्रत्ययोत्तेति सूत्र व्यर्थमिति ज्ञापक परिभाषाया इत्यत्रै-  
तेनैतदुक्तम् । इति, इत्यस्य । अत एव कैयटेनेतिवृत्तीयासगतिरुभयेति नियमप्राप्ते । नन्वे-  
वमपि तद्भाष्यात्प्रतिपदविधित्वस्य तस्व न लब्धमिति तदशे कैयटासगतिरेवेति कथमुक्ता-  
र्थसिद्धिरत आह—अत एवेति । उक्तार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । एत्वे, सबुद्धौ चैत्यनेन ।

१ क. ङ. °वः । भत्र । २ ङ. °शं यत्र । ३ क. पुस्तके °टोरपि बाध्य° इति पाठान्तरम् ।  
४ ग. ङ. °त्र ताहं ते° ।

इति लोपेन समाहितम् ॥ ६४ ॥

नन्वयज इन्द्रमित्यादावन्तरङ्गस्यापि गुणस्यापवादेन सवर्णदीर्घेण बाधः स्यादत आह—

अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते ॥ ६५ ॥

निरवकाशत्वरूपस्य बाधकत्वबीजस्याभावात् । एवं च प्रकृतेऽन्तरङ्गेण गुणेन सवर्णदीर्घः समानाश्रये चरितार्थो यण्गुणयोरपवादोऽपि बाध्यते । पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वविषय इदम् । यच्चागमादेशयोर्न बाध्यबाधकभावो भिन्नफलत्वाद् अत एव ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां कम्बलः कौण्डिन्यायेत्यादौ कम्बलेन न दधिदानबाध इति 'च्छ्रवोः' ( ६ । ४ । १९ ) इति सूत्रे कैयटस्तन्न । अपवादो नुग्दीर्घत्वस्येति ' दीर्घोऽकितः ' ( ७ । ४ । ८३ ) इति सूत्रस्थभाष्यविरोधात् ॥ ६५ ॥

तत्र सवृद्धिपदोपादानात् । समाहितमिति । अन्यथा शङ्ककस्याज्ञानेऽपि सिद्धान्ती तथैव वदेदिति तदनुकत्या तथोक्त्यैतदर्थस्य तदभिमतत्वमिति भावः ॥ ६४ ॥

अन्तरङ्गस्य, पूर्वोपस्थितनिमित्तकस्य । अपवेति । अनेन पूर्वसगतिः सूचिता । स्वविषये चारितार्थेन वैपरीत्यमित्याह—यद्यन्यत्रेति । अत्र बीजमाह—निरवेति । अयं भावः—दण्डाग्र श्रीश इत्यादौ समानस्थानिनिमित्तके सर्वथाऽनवकाशत्वेन यण्गुणयोः प्राग्दीर्घे सति तत्र तयोरप्राप्तावपि भिन्नस्थानिनिमित्तकेऽयज इन्द्रमित्यादौ गुणदीर्घयोः प्राप्तौ दीर्घस्य सर्वथानवकाशत्वाभावेऽपि तत्र चारितार्थे सति तदप्राप्तियोग्येऽचारि तार्थरूपानवकाशत्वसत्त्वाद्येन नेति न्यायेन प्राप्तबाधो न । तुल्यस्थानिनिमित्तकयोरेव तेन बाध्यबाधकभावस्य मियो विप्रतिषेधसूत्रस्थभाष्यादङ्गीकारादिति । तदाह—एवं चेति । तादृशबीजाभावे चेत्यर्थः । श्रुकृते, अयज इन्द्रमित्यादौ । समानेति । तयोरपवादोऽपि यतस्तत्र समानाश्रये चरितार्थोऽत इत्यर्थः । उक्तहेतोरैवाऽऽह—पूर्वोपेति । रूपान्तरङ्गत्वविषय इति पाठः । एव च यत्र स्थानिनिमित्तक्येऽन्तरङ्गत्वमन्यादृशं तत्र तस्यापवादेनैव बाध इति भावः । यच्चिति । अन्यथोत्पत्तिवक्षे नप्राप्ते लोपे वस्याऽऽरम्भमाण ऊडागमोऽपवादाद्वाधकः स्यादिति वलोपाभावे रूपसिद्धिरिति वलोपेन तत्साधकभाष्यासगतिः स्यादिति भावः । भिन्नेति । लोपो हि स्थानिनिवृत्तिफलक ऊटु न तन्निवृत्तिफलक इति भावः । एव च फलमत्रावान्तर शास्त्रविहितरूप ग्राह्य न तु प्रयोगरूपम् । अन्यथैतदसगतिः स्पष्टैव । अत एव दृष्टान्तसगतिरपि । अन्यथा तत्रापि शरीररक्षणरूपफलस्य तुल्यत्वात्तदसगतिः स्पष्टैव । तदाह—अत एवेति । भिन्नफलत्वे तत्त्वानङ्गीकारादेवेत्यर्थः । दधि

सन्वजीगणदित्यादौ गणरीत्वं निरवकाशत्वाद्भलादिःशेषं बाधेत तत्राऽऽह—

अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति ॥ ६६ ॥

‘दीर्घोऽकितः’ ( ७ । ४ । ८३ ) इत्यकिद्ग्रहणमस्या ज्ञापकम् । अन्यथा यंयम्यत इत्यत्र नुकि कृतेऽनजन्तत्वाद्दीर्घाप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । इयं परान्तरङ्गादिबाधकानामप्यबाधकत्वबोधिका । तेनाचीकरत्, मीमांसत इत्यादि सिद्धम् । आद्ये सन्वद्भाषस्य परत्वाद्दीर्घेण बाधः प्राप्नोति । अन्त्ये ‘मान्बध’ ( ३ । १ । ६ । ) इति दीर्घेणान्तरङ्गत्वादित्वस्य बाधः प्राप्तः ।

यत्तु यत्रैकैकप्रवृत्त्युत्तरमपि सर्वेषां प्रवृत्तिस्तत्रैवेदमिति ‘अत एक’

ओदनसंस्कारकम् । कम्बलः, शीतनिवारक इति भावः । सिद्धान्ते तु तद्भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वादन्यथाऽपि सुयोजत्वाच्च न दोष इति बोध्यम् ॥ ६५ ॥

निरवेति । अस्य सर्वथेत्यादिः । अनेन पूर्वसंगतिः सूचिता । अनयोः क्रमे तु पूर्वोक्तक्रम एव नियामकः । किंच तेन विपरीतो बाध्यबाधकभावः प्रतिपाद्यत इति प्राक्तदुपस्थितिः । अत्र तु तस्यैवाभाव इति पश्चादुपस्थितत्वमिति भावः । बाधेतेति । अस्येति चेदिति शेषः । अन्यथा, एतत्परिभाषाऽभावे । नुकीति । अपवादत्वात् । नाप्राप्ते दीर्घे नुक् आरम्भात् । तत्र समकालं चारितार्थ्ये सति तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थात् । ननु कृतेऽपि नुक्यन्त्यनकारस्य दीर्घः स्यादिति चेन्न । दीर्घश्रुत्याऽन्परिभाषोपस्थानाद्चाऽभ्यासस्य विशेषणादजन्ताभ्यासान्त्यस्य दीर्घो भवतीत्यर्थात् । तदाह—अनजन्तेति । अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्त इति त्यक्त्वैतदङ्गीकारफलमाह—इयमिति । ज्ञादीति । आदिना नित्यपरिग्रहः । एतद्रूपबाधकानामित्यर्थः । आद्ये, अचीकरदित्यत्र । अस्यान्यथेत्यादिः । सन्वद्भावावकाशोऽविक्षणदिति । दीर्घस्वावकाशोऽदीदिपादिति । आद्येऽभ्यासस्यालघुत्वाद्दीर्घाप्राप्तिः । अन्त्ये सन्यत इत्यादिना कस्यचित्कार्बस्याविधानात्सन्वत्त्वाप्राप्तिः । दीर्घस्तु सन्वद्भावविषय उच्यते न तु तेनेति भावः । प्राप्नोतीति । वर्तमानसमीपे भूते लट् । अन्त्ये, मीमांसत इत्यत्र । अन्तरङ्गेति । सन्प्रत्ययोऽभ्यासदीर्घत्वं च संनियोगेन विधीयत इत्यन्तरङ्गं दीर्घत्वम् । इत्वं तु बहिरङ्गं सनि परतो विधानात् । न च सन्प्रत्ययकालेऽभ्यासाभावेन तदप्राप्त्या कथं दीर्घस्यान्तरङ्गत्वमिति वाच्यम् । अभ्यासत्वस्याऽऽवश्यकत्वेन तावत्पर्यन्तं दीर्घस्यावस्थानेऽपीत्त्वपर्यन्तमवस्थितौ कारणाभावेन तदपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वसत्त्वादिति भावः ।

एकैकेति । उत्सर्गस्यापवादस्य चेत्यर्थः । यथा नर्नतीत्यादावुरदत्वे रुगादयस्तेषु च

( ६ । ४ । १२० ) इति सूत्रे कैयटस्तन्न । नुकि कृते दीर्घांप्राप्त्या धर्मि-  
ग्राहकमानविरोधात् । मान्वधादीनां दीर्घे कृत इत्वाप्राप्त्या 'गुणो यङ्-  
लुकोः ( ७ । ४ । ८२ ) इतिसूत्रस्थभाष्योक्ततदुदाहरणासंगतेश्चेत्य-  
न्यत्र विस्तरः ॥ ६६ ॥

ननु तच्छीलादितृन्विषये ष्वुलपि स्यात् । न च तृन्नपवाद्दोऽसरूपा-  
पवादस्य विकल्पेन बाधकत्वात् । अत आह—

ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६७ ॥

ष्वुलि सिद्धे निन्दहिंसादिसूत्रेणैकाज्भ्यो वुञ्जविधानमत्र ज्ञापकम् ।  
तत्र ष्वुलवुञ्जोः स्वरे विशेषाभावात् ।

तदिति भावः । कृते, अजन्ताभ्यासाभावेनेति शेषः । धर्मीति । दीर्घोऽकित इत्यकिदि-  
तीत्यादिः । मानादीनामित्येव सिद्ध एवमुक्तिर्वैचित्र्याय । गुणो यङिति । मान्वधे-  
त्यपि द्रष्टव्यम् । तदुदाहरणेति । मीमांसत इति त्वघटितैतदुदाहरणेत्यर्थः । न चैवमन्वा-  
ष्यस्य गमकाधीनत्वेन समुच्चयस्य प्रसिद्धतरत्वाद्भ्यासलोपश्चेति समुच्चये चप्रयोगान्नेमतु-  
रित्याद्यर्थं लिटीत्यस्याऽऽदेशविशेषणत्वे पक्तेत्यादौ गमहनेत्यतः कृडितित्यनुवृत्त्या  
वारणेऽपि पक् इत्यादौ लोपसनियोगशिष्टत्वाङ्गीकारेण वारणेऽप्यत एकेत्यनेन पाप-  
च्यत इत्यादावेत्वादेरतिप्रसङ्गस्य परत्वादीर्घत्वमत्र बाधक भविष्यतीति वारणपर-  
स्यात् एकेतिसूत्रभाष्यरयासंगतिस्तदर्थमेव हि कैयटेन तत्र तथोक्तमिति वाच्यम् । ज्ञापक-  
सिद्धस्यासार्वात्रिकत्वेनानित्यत्वाद्भ्यासादिकारेष्विति परिभाषाया अनाश्रयणाप्रिति भगवतोऽ-  
भिप्रायात् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्ध्योतादावित्यर्थः ॥ ६६ ॥

तृन्नपवाद इति । आ केस्तच्छीलेत्यर्थविशेषे विहितत्वादिति भावः । अनेन संगतिः  
सूचिता । एवमग्रिमद्वयेऽपि बोध्यम् । ष्वुलीति । करणस्याधिकरणत्वविवक्षाया सप्तमी ।  
यद्वा ष्वुलि सति निन्दक इत्यादिरूपे सिद्ध इत्यर्थः । एकाज्भ्यः, कण्ड्वादियगन्तासूयभि-  
न्नेभ्यः । ततस्त्ववश्यं विधेयः सः । ष्वुलि प्रत्ययात्पूर्वमुदात्त वुञ्जित्वादिरुदात्त इति विशे-  
षात् । अत एवाऽह—तत्रेति । तदन्यैकाक्षित्यर्थः । रूपे विशेषाभावस्य स्पष्टत्वा-  
दाह—स्वर इति । सामान्यापेक्षं चेदं ज्ञापकमिति भावः ।

ननु ताच्छीलिकेष्वित्यधिकरणसप्तम्यामुत्सर्गापवादयोस्ताच्छीलिकत्वमुतापवादस्यैव ।  
आद्य उक्तज्ञापकासंगतिष्वुलोऽतत्त्वात् । तथा च निन्देतिसूत्रे तेषां ग्रहणानर्थक्यापत्तिः ।  
अनुदात्तेतश्चेति युचैव पदन इत्यस्य सिद्धौ पुनर्जुचङ्कमेत्यत्र युजर्थं पदिग्रहणं हि तत्र  
ज्ञापकम् । न च लषपतेत्युक्त्वा बाधे प्राप्ते पक्षेऽनेन युचप्रतिप्रसूयत इति वाच्यम् ।

ताच्छीलिकेष्विति विषयसप्तमी । तेन ताच्छीलिकैरताच्छीलिकैश्च वासरूपविधिर्नेति बोध्यम् ।

नन्वेवं कम्प्रा कमनेत्याद्यसिद्धिः । ' नमिक्म्पि ' ( ३ । २ । १६७ ) इति रेण ' अनुदात्तेतश्च हलादेः ' ( ३ । २ । १४९ ) इति युचो बाधादिति चेन्न । ' सूददीपदीक्षश्च ' ( ३ । २ । १५३ ) इत्यनेन दीपयुञ्जनिषेधेनोक्तार्थस्यानित्यत्वात् ॥ ६७ ॥

नन्वेवं हसितं छात्रस्य हसनमित्यादौ घञिच्छति मोक्तुमित्यत्र लिङ्लोटावीषत्पानः सोमो भवतेत्यत्र खल्प्राप्रोतीत्यत आह—

कल्युट्त्तुमुन्स्वलर्थेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६८ ॥

वासरूपविधिना तत्सिद्धेः । एव च द्वयोस्तत्त्वाद्युक्त तत्त्वम् । किं च तथा सत्यलपूर्वात्करोतेस्तृन्यक्तर्तेति न किंत्विष्णुच्यलकरिष्णुरित्यस्य सिद्धावप्यनया रीत्याऽलकरिष्णुरिति वदलकारक इत्यपि स्यात् । किं च स्थेशभासेति वरचि भास्वर इतिवदनुदात्तेतश्चेति युचा भासन इत्यस्याभावेऽपि भासक इत्यपि स्यात् । अन्त्य उक्तज्ञापकसंभवेऽपि पदिग्रहणानर्थक्यापत्तिरुक्तलक्ष्यसिद्धिवैपरीत्यापत्तिश्च । अत आह -ताच्छीलिकेष्विति विषयेति । विषयता च द्वयोस्तत्त्वेनापवादस्यैव वा । उत्सर्गस्यैव तत्त्वेन तु न । असंभवात् । अपवादस्य तु सर्वथा तत्त्वमपेक्षितमिति भावः । तदाह—तेचेति । विषयसप्तम्यङ्गीकारेणेत्यर्थः । ताच्छीलिकानामपवादानामिति शेषः । एव चैकेनैव ज्ञापकेनोभयलाभे पदिग्रहणमपि सफल सकलेष्टलक्ष्यसिद्धिरपीति बोध्यम् ।

एवं, द्वयोस्तत्त्वेऽपि परिभाषायाः प्रवृत्त्यङ्गीकारे । कम्प्रेति । एकसत्त्वेऽपि द्वयं वास्तीतिवदुभयासिद्धिरित्यर्थः । तथा च कम्प्रेतिवत्कमनेत्याद्यसिद्धिरित्यर्थः । फलितस्तदा वैधर्म्यं दृष्टान्तः । आदिना गन्ता गामुक्तो विकत्थी विकत्थन इत्यादिपरिग्रहः । आद्ये तृलुक्कौ । अन्त्ये चिञ्जुण्युचौ । रेण । विशेषविहितेन सर्वथाऽनवकाशेन । सूदिति व्यधिकरणं निषेधविशेषणम् । युजित्यत्र बहुव्रीहिणा सामनाधिकरण वा । संभवेऽपि तदंशस्यैव ज्ञापकत्वात्तथा न युक्तम् । उक्तार्थस्य, परिभाषार्थस्य । अनित्यत्वात्, अनित्यत्वज्ञापनात् । अन्यथा नमिक्म्प्राति तादृशरेणैव दीपेरपि युचो बाधे सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति भावः ॥ ६७ ॥

एवं, ताच्छीलिकेष्वेवानित्यवासरूपविधिनिषेधाङ्गीकारे । हसितमिति । छात्रस्येति मध्यमणिन्यायेनान्वेति । नपुंसके भावे क्तः । ल्युट्चेत्यस्य विषयोऽयम् । घञिति । घनपीत्यर्थः । उचितक्रियाध्याहारः । एवमग्रेऽपि सर्वं बोध्यम् । तथा सति हासमित्यपि स्यात् । मोक्तुमिति । समानकर्तृकेष्विति तुमुन् । लिङ्गिति । इच्छार्थेषु लिङ्लोटाविति तौ । खलिति । आतो युजित्यस्य विषय इति भावः । कल्युडिति । एतेषु

इदं च वासरूपविधेरनित्यत्वात्सिद्धम् । तदनित्यत्वे ज्ञापकं च ' अर्हं कृत्यतृचश्च ' ( ३ । ३ । १६९ ) इति । तत्र हि चकारसमुच्चितलिङ्गा कृत्यतृचोर्बाधा मा भूदिति कृत्यतृजग्रहणं क्रियत इत्यन्यत्र विस्तरः । वासरूपसूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ ६८ ॥

ननु श्वः पक्त्यत्र वासरूपविधिना लुडपि प्राप्नोति कृत आदेशे वैरूप्यादत आह—

लादेशेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६९ ॥

घनादीनामपवादभूतेषु सत्सु स नास्तीत्यर्थः । तथा चैत उत्सर्गान्नित्यं बाधन्ते न तु वासरूपविधिना विकल्पेन । एव च यत्र कादय एवोत्सर्गास्तत्र सोऽस्त्येव । यथाऽज्विधौ भयादीनामुपसख्यानं नपुसके क्तादिनिवृत्त्यर्थमित्यज्विषये वासरूपविधिना ल्युडपि । तेन भय भयन वर्ष वर्षणमित्यादि सिद्धम् । अत एव वृषभो वर्षणादिति भाष्यप्रयोगः । आशिते भुव इत्यत्राऽऽशितभवन इति काशिकादिप्रयोगश्च संगच्छते । सरूपत्वात् । स्वचा घञेव बाध्यते न तु ल्युट् । एतेन क्तल्युडिति निषेधात्तत्र ल्युड्युक्त इति प्रकाशोक्तमपास्तम् । अत्र परिभाषाया साहचर्यं नाऽऽश्रीयत इति स्पष्टमन्यत्र ।

अयमर्थो ज्ञापकाल्लभ्यत इति सीरदेवादयस्तत्र गौरवात् । क्तादिविषये विशेषतो ज्ञापकाभावाच्च । वक्ष्यमाणतदनित्यत्वज्ञापकेनैतज्ज्ञापनासमवाच्च । तद्धवनयन्नाह—इदं चेति । परिभाषावचन चेत्यर्थः । यत्तु वासरूप इत्यत्र व्यवस्थितविभाषाश्रयणाल्लभ्यत इदमिति न्यासकृतम् । तत्र ३ । तासा परिगणनात् । तद्धवनयन्नाह—अनित्यत्वादिति । यत्तु सीरदेवादयो विभाषाऽग्रे प्रथमेत्यत्र विभाषाग्रहणादनित्यत्वलाभ इति । तत्र । तस्य पक्षे कर्त्रादिविवक्षाया लडादिसपादनेन चारिताथर्यादिति स्पष्टमन्यत्र । अत आह—तदनित्येति । चार्हे किति । चस्वर्थे । कृत्यतृजग्रहण ज्ञापकं न सूत्रमित्याह—तत्र हीति । सूत्रे हीत्यर्थः । यदि तदनित्यत्व न स्यात्तर्हि वासरूपविधिनैव पक्षे तयोः सिद्धौ तदानर्थक्य स्पष्टमेव । यदि तु शक्ति लिङ्गचेति कृत्यानुकर्षकचेनैव लाघवात्तदनित्यत्व ज्ञाप्यत इत्युच्यते तदा कृत्यतृजग्रहण प्रैषातिसर्गेतिसूत्रे कृत्याश्चेति च सुत्यजम् । एतेन प्रैषेतिसूत्रे कृत्यग्रहणादुक्तोऽर्थो लभ्यत इति जयादित्योक्तमपास्तम् । एव च तदनित्यत्वेनैव ताच्छीलिकेषु लादेशेषु च निर्वाह उक्तवक्ष्यमाणपरिभाषाद्वयमनावश्यकमिति बोध्यम् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । शेखरादावित्यर्थः ॥ ६८ ॥

नन्विति । एवमिति शेष । उभयत्रैव तदङ्गीकार इति तदर्थः । इत्यत्र, इत्यादौ । ननु नानुबन्धकृतमसारूप्यामिति सिद्धान्तात्कथं तत्प्राप्तिरत आह—कृत इति । तथा चाऽऽदेशनिष्ठवैरूप्यस्य तत्राऽऽरोप इति भावः । लादेशोऽपि । अत्र कर्मधारयः । कडारादित्वात्स्य पूर्वनिपातः । आदेशपद च स्वनिष्ठवैरूप्ये लाक्षणिकमर्शआद्यजित्

आदेशकृतवैरूप्यवत्सु लकारेषु स नास्तीत्यर्थः। अत्र च 'ह्रस्वतो-  
र्लृच' ( ३।२।११६ ) इति लङ्विधानं ज्ञापकम्। अन्यथा  
'परोक्षे लिट्' ( ३।२।१५ ) इति लिटा लङः समावेशोऽसारूप्या-  
स्तिद्ध इति किं लङ्विधानेन। शत्रादिभिस्तिङां समावेशार्थं शतृविधा-  
यके विभाषाग्रहणानुवृत्तिः 'लिटः कानज्वा' ( ३।२।१०६ ) इति  
वाग्रहणं च कृतम्। तज्ज्ञापयति वासरूपसूत्रेऽपवाद आदेशत्वाना-  
क्रान्तः प्रत्यय एव गृह्यत इति कैयटादौ ध्वनितम्। तत्फल तु सदा-  
दिभ्यो भूतसामान्ये लिटः कसुरेव न तु पक्षे तिङ इति बोध्यम् ॥ ६९ ॥

ननु 'डमो ह्रस्वात्' ( ८।३।३२ ) इत्यादौ डमः परस्याचोऽचि  
परतो डम इति वेति संदेहः स्यादत आह—

उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् ॥ ७० ॥

अचीति सप्तमीनिर्देशस्य 'मय उजः' ( ८।३।३३ ) इत्यु-

नाऽऽह—आदेशेति। नीलरूपवदितिवत्प्रयोगः। अत्र चेति चस्त्वर्थे वाक्यालकारे  
वा। अन्यथा, एतद्वचनाभावे। लङः, अनद्यतने लडिति विहितस्य। असारूप्यात्,  
उत्करीत्या। एव च सूत्रमुक्तार्थे ज्ञापकम्। ननु यथाश्रुतार्थ एवास्तु किं लक्षणाद्याश्रयणे-  
नात आह—शत्रादिभिरिति। आदिना कानजपि। अत एव बहुवचनम्। शतृविधायके,  
लटः शतृशानचाविति योगविभागे। विभाषेति। नन्वोर्विभाषेत्यतः सदादिभ्यो बहुलमि-  
द्धयार्थोवेति वार्तिकप्रत्याख्यानाय भाष्यकृतकृतेत्यर्थः। सूत्ररीत्याऽऽह—लिट इति।  
कृतमित्यस्य यदित्यादिः। तत्, उभयम्। अपवादः, असरूपपदबोधः। त्यय एवेति।  
एवो भिन्नक्रमः। आदेशत्वानाक्रान्त एव प्रत्यय इत्यर्थः। ध्वनितमिति। अनेन  
तदनुक्तत्वं ध्वनितम्। सामान्य इति। अनेन तद्विशेषे यथायथं तिङो भवन्त्येवेति  
सूचितम्। पक्षे तिङ इति। अन्यथा तु पक्षे तेऽपि वासरूपन्यायेन स्युः। कानचतु  
न पक्षे तस्य च्छान्दसत्वात्। अस्वरितत्वात्तस्य नानुवृत्तिरिति भावः। एव च यथाश्रु-  
तार्थस्य दुर्वचत्वात्तदाश्रयणमावश्यकमिति तत्त्वम् ॥ ६९ ॥

बलवत्त्वप्रसङ्गाद्देवाऽऽह—नन्विति। यत्तु सीरदेवादयो विप्रतिषेधसूत्रस्यैवोभयनिर्देश  
इत्यर्थ इति। तन्न। डमो ह्रस्वादित्यादावनिर्वाहात्। तद्ध्वनयन्नत्रैव तावद्दोषमाह—  
डम इति। स्याच इति। अस्येतीति शेषः। इति वेति। अस्यार्थ इति शेषः।  
डमो वेति संदेह इति पाठे तु न किमपि। अत्र बजिमाह—अचीति। एवमुक्ताशये-

त्तरत्र चारितार्थ्यात्पञ्चमीनिर्देशोऽनवकाश इति 'तस्मादित्युत्तरस्य' (१।१।६७) इत्यस्यैव प्रवृत्तिः । यत्र तु 'डः सि धुट्' (८।२।२९) इत्यादावुभयोरप्यचारितार्थ्यं तत्र 'तस्मिन्' (१।१।६६) इति सूत्रापेक्षया 'तस्मादित्युत्तरस्य' (१।१।६७) इत्यस्य परत्वात्तेनैव व्यवस्था । एवमुभयोश्चारितार्थ्येऽपि यथा 'आमि सर्वनाम्नः' (७।१।५२) इत्यादौ । तत्राऽऽमीति सप्तमी 'त्रेस्त्रयः' (७।१।५३) इत्यत्र चरितार्था । आदिति पञ्चमी 'आज्जसेरसुकु' (७।१।५०) इत्यत्र चरितार्थेति स्पष्टं तस्मिन्निति सूत्रे भाष्ये कैयटे च ॥ ७० ॥

ननु 'अतः कूकमि' (८।३।४६) इति सत्वमयस्कुम्भीत्यत्र न स्यात्कुम्भशब्दस्यैवोपादानादत आह—

नाऽऽदावनवकाशत्वेन बाधमुक्त्वा परत्वेन बाधमाह—यत्र त्विति । अत एव वैलक्षण्य-  
बोधकस्तुः प्रयुक्तः । उभयोरपीति । अपिरेवार्थे । अन्वयोऽप्ये मिथः समुच्चायको  
यथाश्रुत एव वा । तेनैव, पाठकृतपरत्वेनैव । एतेन निर्देशव्यावृत्तिः । एव, पाठकृतपरत्वेन  
व्यवस्था । तत्र, द्वयोर्मध्ये । यद्यपि श्रौती सर्वनाम्न इति पञ्चम्यनवकाशेत्याद्यतुर्यत्व सुवचं  
तथाऽपि तस्य विहितविशेषणत्वेन तस्मादित्यस्य तत्राप्रवृत्तिरेव । अत एव सर्वनाम्नः  
परस्याऽऽम आमि परे सर्वनाम्नो वेति सदिह्य पञ्चम्यनवकाशेति भाष्योक्तिरेकदेशिन इति  
बोध्यम् । तदेतद्बन्धनयन्नाह—आदिति । ततोऽनुवृत्तेत्यादिः । अत्रत्यं तत्त्वं भावप्र-  
काशे स्पष्टम् । एवं च परत्वनिरवकाशत्वकृतबाधद्वयबोधिकेयं न तु तथेति भावः ।  
तदाह—इति स्पष्टमिति । तथाबोधकमेतद्वचन स्पष्टमि-यर्थः । यथाश्रुते यत्र त्वित्या-  
देस्तत्रानुक्तत्वात्सगतिः स्पष्टैव । स्पष्टीकारकत्वात्कैयटस्याक्तिः । यत्र तु सप्तमीनिर्देश  
एवानवकाशस्तत्र तस्यैव प्राबल्यम् । यथाऽऽने मुगित्यादौ । तत्र ह्यान इति सप्तम्यनव-  
काशा । अत इत्यनुवृत्तपञ्चम्यतो येय इत्यत्र सावकाशा । दीर्घात्पदान्ताद्वेत्यादौ तु  
ज्ञापकादिना कृतार्थाया अपि पूर्वत्रच्छे चेति सप्तम्याः प्राबल्यं नानवकाशाया अपि  
पञ्चम्या दीर्घादित्यादिकायाः । एवमिकोऽचीत्यत्राऽचः सर्वनामस्थान इत्यनयोरनुवृत्त्या  
द्वयोश्चारितार्थ्येऽपि सप्तम्याः प्रकल्पकत्वपरभाष्येऽनुवृत्तिसामर्थ्यादेक इति साहचर्याच्च  
सप्तम्याः प्राबल्यं बोध्यम् । एवं चेयमनित्येति फलितमिति बोध्यम् ॥ ७० ॥

उभयनिर्देशप्रसङ्गादाह—नन्वत इति । इत्यत्र, इत्यादौ । कुम्भेति । कुम्भादीत्यर्थः ।



प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् ॥ ७१ ॥

सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा प्रातिपदिकबोधकशब्दग्रहणे सति लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टस्यापि तेन ग्रहणं बोध्यम् । अपिना केवलस्यापीत्यर्थः ।

अस्याश्च ज्ञापकं समानाधिकरणाधिकारस्थे 'कुमारः श्रमणादिभिः' (२।१।७०) \*इति सूत्रे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिशब्दपाठः । स्त्रीप्रत्ययविशिष्टश्रमणादिभिश्च कुमारीशब्दस्यैव सामानाधिकरण्यं न तु कुमा-

सामान्येति । अत एव ङ्याप्सूत्रे प्रातिपदिकग्रहणेन ङ्याब्ग्रहणवैयर्थ्यमाशङ्कित भाष्ये । विशेषेति । अयं तु ज्ञापकादयस्कुम्भीत्यत्रानया साधनपरभाष्याच्च सिद्धोऽर्थः । एतेन ज्ञापकादत्रैव प्रवृत्तिर्न तु सामान्य इत्यपास्तम् । यत्तु प्रातिपदिकग्रहण इति बहु-बीहिः । तच्च शास्त्रं प्रत्यासत्तिन्यायात्स्त्रीप्रत्ययविधायकमेव गृह्यत इति । तन्न । तत्रान्ये-नापि तद्ग्रहणापत्तेः । उक्तभाष्यविरोधापत्तेश्च । ज्ञापकासंगत्यापत्तेश्च । तत्पुरुषस्यान्तरङ्गत्वाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—प्रातिपदिकबोधकेति । सति सप्तमीयमित्वाद्—सतीति । लिङ्गशब्देन तद्बोधकाष्टाभावयो गृह्यन्तेऽभिधानेऽभिधेयधर्मोपचारात् । तदाह—लिङ्गबोधकेति । प्रत्यासत्तिबोधमाह—तेनेति । तथा प्रातिपदिकबोधकशब्देनेत्यर्थः । ग्रहणं बोध्यमिति पाठः ।

अस्याश्चेति । चस्त्वर्थे ज्ञापकपदोत्तरं बोध्यः । यद्यपि युवा स्वल्तीति सूत्रे जरतीग्रहणं ज्ञापकं भाष्यकारादिभिरुक्तं तथाऽपि तत्रैतज्ज्ञापनेऽपि तदवस्थानुपपत्तिकसामानाधिकरण्याय युवत्या जरतीधर्मोपस्थाऽऽवशकत्वेनोच्छूनस्तनत्वाच्छ्रमशून्यत्वाच्च युनि नरतीत्वारोपेण नरत्या प्रागस्म्याद्युवत्वारोपेण वा सामानाधिकरण्येन समासोपपत्तौ ज्ञापकत्वासम्भवं इति हरदत्तः । अथ युवजरतीत्यत्र समासे तथैपचारिक सामानाधिकरण्यं शब्दशक्तिस्वाभाव्यान्नैव प्रतीयते यथा पञ्चभुक्तशब्दात्पञ्चभिर्भुक्तमस्येत्यर्थ इति हरदत्तोऽयुक्त एवेत्युक्तभाष्यसंगतिरित्युच्यते एवमपि विपरीत ज्ञापकं कुतो न लिङ्गविशिष्टग्रहणेन प्रातिपदिकस्यापि ग्रहणमिति । फलं तु रेवतीनगतीहविष्याभ्यः प्रज्ञास्य इत्यत्र जगतीग्रहणेन जगतोऽपि ग्रहणम् । एण्या ङनित्यत्रैणीग्रहणेनैणस्यापि ग्रहणमिति । अथैवं ज्ञापितेऽपि कुमारः श्रमणादिभिरित्येतद्विषयकगणपाठे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिनिर्देशसंगतिरेवेत्युच्यते तर्हि तदेव ज्ञापकमस्तु कृतमनेन । तद्ध्वनयन्नाह—कुमार इति । सूत्रे, सूत्रविषयकगणपाठे । अत एवाऽऽह—णादीति । तत्त्वमुपपादयति—स्त्रीति । द्विभिश्चेति । चो ह्यर्थे ।

\* क. ङ. सङ्गकन्याख्याग्रन्थाभ्यामत्र 'इति च सूत्रे' इत्येवं पाठ इति गम्यते ।

१ ङ. सत्सप्त । २ ख. घ. 'स्त्वर्थो ज्ञा' । ३ क. ङ. 'ति । भिरिति चेति । चो ह्यर्थे । तू'

रशब्दस्येति तदेतज्ज्ञापकम् ।

इयं च 'द्विषत्परयोः' ( ३।२।३९ ) इत्याद्युपपदविधौ समासान्त-  
विधौ महदात्वे ङिनस्वरविधौ राज्ञः स्वरे ब्राह्मणकुमारयोः 'बहोर्नञ्-  
वदुत्तरपदभूमि' ( ६।२।१७५ ) इत्यादौ समाससंघातग्रहणेषु च न  
प्रवर्तत इति ऊचाप्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । विभक्तिनिमित्तकार्यं च नेत्यपि  
तत्रैव । तत्र समासान्तविधाववयवग्रहण एव न । समाससंघातग्रहणे  
न प्रवर्तत एव । स्वरविधावेव समाससंघातग्रहणे तत्र दोषोक्तेः । ' बहुव्री-  
हेरूपसः' ( ४।१।२५ ) इति सूत्रभाष्याच्च । एतावत्स्वेवानित्यत्वाद्-  
प्रवृत्तिर्दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तेः ।

नन्वेवं 'बहुव्रीहेरूपसो ङीष्' ( ४।१।२५ ) इति सूत्रस्थभाष्यासंगतिः ।  
तत्र हि कुण्डोष्नीत्यत्र 'नद्यत्श्च' ( ५।४।१५३ ) इति कवापादितो  
नद्यन्तबहुव्रीहेरित्यर्थात् । नद्यन्तस्य बहुव्रीहित्वाभावात्तदसंगतिः । नद्य-  
न्तानां यः समास इत्यर्थेन च परिहृतम् । नद्यन्तप्रकृतिकसुबन्तोत्तरप-  
दकः समास इतीति चेन्न । अनया परिभाषया स्त्रीप्रत्ययसमभिव्या-  
उपसहरति—इति तदेतज्ज्ञापकमिति । स्त्रीलिङ्गभ्रमणादिग्रहणं प्रातिपदिकेति-  
परिभाषाज्ञापकमित्यर्थः ।

अतिप्रसङ्ग निराचष्टे—इयं चेति । राज्ञः स्वरे ब्राह्मणकुमारयोरित्येवम् । आर्यो  
ब्राह्मणकुमारयोरित्यतस्तदनुवृत्त्या राजा चेति सूत्रे तत्र परतस्तस्य विधीयमानस्वरक  
इत्यर्थः । बहोर्नञ्दित्यस्य समासेत्यनेनाभेदान्वयो वेदाः प्रमाणमिति वत् । वक्ष्यमाणाश-  
येन वृथगाह—विभक्तिनिमित्तेति । बहुव्रीहिः । निमित्तताऽत्र यथाकर्षचिह्नोध्येति  
स्पष्टीकृतं भावप्रकाशे । तत्र, तेषां मध्ये । एवव्यावर्त्यमाह—समासेति । तत्र, ड्या-  
प्सूत्रे भाष्ये । ननु स्वरविधौ तथोक्तिरधिकसग्राहिका न नियामिकाऽत आह—बहु-  
व्रीहेरिति । इदं चानुषदमेव स्फुटी भविष्यति । उपसहरति—एतावदिति । अनि-  
त्यत्वात्, घटीग्रहणज्ञापितात् ।

तत एव भाष्यात्सिद्धान्तं वक्तुं यथाश्रुतार्थे शङ्कते—नन्वेवमिति । परिभाषाया  
उक्तार्थाङ्गीकार इत्यर्थः । ननु नद्यन्तानुत्तरपदकत्वात्कथं तदापादनमत आह—नद्यन्त-  
वेति । ल्यब्लोपे पञ्चमी । इत्यर्थमभिप्रेत्येत्यर्थः । असंगतिसुपपादवृत्ति—नद्यन्त-  
स्येति । बहुव्रीहित्वस्य सुबन्तसमूहवर्धत्वेनान्यतरूपेण प्रातिपदिकाग्रहणात्परिभाषाप्रवृ-  
त्त्यभावेन तस्य सत्त्वाभावादित्यर्थः । बहुव्रीह्यर्थकवाक्यत्वाभावाच्चेत्यपि बोध्यम् । ननु  
पूर्वपक्षिणोऽज्ञानान्तथोक्तिरिति नासंगतिरत आह—नद्यन्तानामिति । समास इति ।  
बहुव्रीहेरित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । र्थेन चेति । चो व्युत्क्रमे । परिहृतं चेत्यर्थः । तदाश-  
यमाह—नद्यन्तप्रेति । इतीति । अस्य तदाशय इति शेषः । अत एव करभोरुरित्यत्र

हारे तद्रहिते दृष्टानां प्रातिपदिकत्वतद्याप्यधर्माणां विशिष्टेऽपि पर्याप्त-  
त्वमतिदिश्यत इत्याशयात् ॥ ७१ ॥

नन्वेवं यूनः पश्येत्यत्रैव युवतीः पश्येत्यत्रापि 'श्वयुव' (६।४।  
१३३) इति संप्रसारणं स्यादत आह—

विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् ॥ ७२ ॥

स्पष्टा चेयं 'युवोरनाकौ (७।१।१) इत्यत्र भाष्ये । घटघटी-  
ग्रहणेन लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वात्तन्मूलैवेत्यन्ये ॥ ७२ ॥

नित्यः कब्धेति बोध्यम् । एवं च सिद्धान्तिना यदि तथाऽभिहितं स्यात्तर्हि तस्याज्ञानक-  
ल्पना युक्ता नान्यथेत्यसंगतिर्दृष्टैवेति भावः । समभिव्याहार इत्यस्य विशिष्टेऽपीत्यत्रान्वयः ।  
दृष्टानामिति । एव चान्यतरूपेण वस्तुतः प्रातिपदिकत्वादिवद्ग्रहणे सति तद्विशिष्टस्या-  
पीति परिभाषार्थो बोध्यः । अस्ति च कुण्डोष्नीत्यादौ ङीष्प्रकृतौ प्रातिपदिकत्वबहुव्रीहि-  
त्वादिकमिति नोक्तदोषः । यदि समासान्तविधौ सर्वत्रैतदप्रवृत्तिस्तर्हि तदसंगतिः पुनरपि  
स्पष्टैव । अतोऽवयवग्रहण एव तत्राप्रवृत्तिः । तत्र तु समाससघातग्रहण नद्यन्तःप्रदन्तयो-  
रुत्तरपदत्वेन पूर्वपदाक्षेपादिति बोध्यम् । ष्टेऽपीति । अपिः प्राग्वत् ॥ ७१ ॥

विभक्तिनिमित्तेति पृथक्प्रागुक्ताशयमेव प्रतिपादयितुं यथाश्रुते शङ्कते-नन्वेवमिति ।  
लक्ष्यविशेषेष्वेवानित्यत्वादप्रवृत्तिकोक्तपरिभाषाङ्गीकार इत्यर्थः । युवतीरिति । एवमर्थ-  
मन इत्युभयोः शेष इति नाऽऽश्रयणीयम् । तथा दुराग्रहे तु गोमतीत्यादौ नुम्पद्यापत्ति-  
र्बोध्या । नन्वस्याः किं ज्ञापकमत आह—स्पष्टेति । तथा च सूत्रानारूढत्वेऽपि  
भाष्याद्युक्तत्वादेव वाचनिकत्वात्प्रमाणमिति भावः । अत एव यथाकथंचिद्वार्तिकारूढत्वं  
सूचयितुमेकदेश्युक्तिमाह—घटेति । शक्तिलाङ्गलाङ्कुशेति वार्तिके घटग्रहणेनैव सिद्धे  
घटीग्रहणेनेत्यर्थः । घटघटीत्यत्र घटीग्रहणेत्यर्थो वा । अनित्यत्वात्, तज्ज्ञापनात् । तनिति ।  
तन्मूलैवेत्यर्थः । तथा च नातिरिक्त्यमिति भावः । अन्य इति । अनेनारुचिः सूचिता ।  
युवोरनेतिसूत्रभाष्यादावस्याः परिभाषात्वेन व्यवहारादवश्यमेषा परिभाषाऽनेकफलासिद्धयर्थं  
कार्येत्युक्तेश्चास्या पार्थक्यमन्यथा तद्विरोधः । इत्याप्सूत्रभाष्ये त्वेतल्लब्धार्थकथनमेव ।  
अत एव विभक्तौ चोक्त विभक्तौ किमुक्त लिङ्गविशिष्टाग्रहणादित्येव तत्रोक्तम् । अन्यथोप  
पदविधौ यजिञोः फगित्यादिवद्विभक्तिविधौ चेत्येव वदेत् । प्रामाण्यं तु प्रागुक्तरीत्यैवेति ।  
एवं सति यथा चित्रगवीणामित्यादावदोषस्तथा भावप्रकाशे स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

ननु 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) इत्येकवचननपुंसकाभ्यां निर्देशा-  
द्गार्ग्यो गार्ग्यावित्याद्युक्तमत आह—

सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ ७३ ॥

'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) इति नपुंसकग्रहणमस्यां ज्ञापकम् ।  
नित्यनपुंसकत्वार्थं तु न तदित्यन्यत्र निरूपितम् । धान्यपलालन्यायेन  
नान्तरीयकतया तयोरुपादानमिति तस्यापत्यमित्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ।  
अत एवाऽऽकडारसूत्र एकेति चरितार्थमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ७३ ॥

ननु 'भृशादिभ्यो भुव्यच्चेः' (३।१।१२) इत्यादौ विधीयमानः  
क्यङ्क् दिवा भृशा भवन्तीत्यत्रापि स्यादङ्क आह—

लिङ्गप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । तस्येति । इति सूत्रेऽपत्यमित्येकेत्यर्थः ।  
वचनस्य शास्त्रीयत्वेनाभ्यर्हितत्वात्पूर्वनिपातः । तस्येत्यत्र तु न । वृत्तावुपसर्जनेऽसति  
गमके संख्याभानाभावात् । अत एव द्वन्द्वनिर्देशः । अत एव चाऽऽह—गार्ग्याविति ।  
अन्यथा तदपि प्रदर्शितं स्यात् । यत्तु व्याख्यानमूलिकैषेति तत्रेति ध्वनयन्नाह—अर्ध-  
मिति । निर्देशादेव नपुंसकत्वलाभे पुनर्नपुंसकग्रहणवैयर्थ्यादिति भावः । ननु समाशवाचि-  
नित्यनपुंसकत्वार्थं तदिति दीक्षितादिभिरुक्तमत आह—नित्येति । बहुव्रीहिः ।  
नित्यनपुंसकत्ववद्ग्रहणार्थमित्यर्थः । न तदिति । एओङ् ऐऔच् एव इगिति सूत्रेषु एचो  
ह्रस्वशासनेनार्धकारार्थकारयोर्बिधानमाशङ्क्य न वेदे नैव लोकेऽर्ध एकारोऽर्ध ओकारो  
वाऽस्तीतिसमाधानपरभाष्येऽर्ध इति प्रयोगात्समाशवाचिनोऽपि नित्यनपुंसकत्वाभावात् ।  
अवयववत्त्वी तु पुलिङ्ग एव । अपूपार्धं ग्रामार्धमित्याद्यपि समप्रविभाग एवेति बोध्यम् ।  
तदाह—अन्यत्रेति । शेषरादावित्यर्थः । भाष्ये तु युक्तिसिद्धत्वमस्या उक्तमित्याह—  
धान्येति । कश्चिदन्नार्थी शालिकलाप सतुष सपलालमाहरति तावन्नान्तरीयकत्वात्ततः स  
यावदादेय तावदादाय तुषपलालान्युत्सृजतीति भाष्यम् । नन्वाद्यमते लिङ्गाशेऽविवक्षाला-  
भेऽपि वचनाशे तदलाभोऽतः सिंहावलोकनन्यायेनाऽऽह—अत एवेति । तथार्थाङ्गीका-  
रादेवेत्यर्थः । नन्वेव षड्भ्योलुगिति गौणे स्यात् । शौण्डैर्द्युभ्य इत्यत्र गणग्रहणं च न  
स्यादिति चेन्न । एकवचन एव कार्यं तत्सामर्थ्यादिष्टसिद्धेर्गणपाठसामर्थ्याच्च । आद्रुण  
इत्यादौ यथैकत्वविवक्षा तथाऽन्यत्र स्पष्टम् । भृशादिभ्य इत्यादौ तु बहुवचनमप्यतन्त्रमिति  
दिक् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । शेषरादावित्यर्थः ॥ ७३ ॥

वचनलक्ष्यान्तर्गतभृशादीतिसूत्रप्रसङ्गादेवाऽऽह—ननु मृशेति । विधीयेति । अभृशो  
भृशो भवति भृशायत इत्यादाविति शेषः । क्व दिवेति । ये रात्रौ भृशा नक्षत्रादयस्ते  
दिवा क्व भवन्तीत्यर्थः । यत्तु सीरदेवादयोऽन्यादिति सप्तमीविभक्तिप्रतिरूपकनिपातपाठं  
नपुंसकप्रथमान्तपाठं वाऽभिप्रेत्य व्याचरन्त्युः । नन्विवशुक्तं पदमन्यदन्यास्मिन्सदृशेऽधिकरणे

नञ्विद्युक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥ ७४ ॥

नञ्युक्तमिवयुक्तं च यत्किञ्चिद्दृश्यते तत्र तस्माद्भिन्ने तत्सदृशेऽधि-  
करणे द्रव्ये कार्यं विज्ञायते हि यतस्तथाऽर्थगतिरस्ति । न ह्यब्राह्मणमान-  
येत्युक्ते लोष्टमानीय कृती भवति । अतश्च्यन्तभिन्ने च्यन्तसदृशेऽभूत-  
तद्भावविषये क्यङ्ङिति नोक्तदोषः । 'ओषधेश्च विभक्तावप्रथमा-  
याम्' ( ६ । ३ । १३२ ) इत्यादौ विभक्तिग्रहणं ह्येतद्व्यायसिद्धा-  
र्थानुवाद एव ।

एतेन विभक्तावित्याद्यस्यानित्यत्वे ज्ञापकमिति वदन्तः परस्ताः ।  
अनित्यत्वे भाष्यसंमतफलाभावात् । अत एव 'अकर्तरि च' ( ३ । ३ । १९ )  
इति सूत्रे कारकग्रहणं भाष्ये प्रत्याख्यातमिति बोध्यम् । स्पष्टा चेयं  
'भूशादिभ्यः' ( ३ । १ । १२ ) इति सूत्रे भाष्ये । अत्रान्यसदृशो-

वर्तते । यद्वा नञ्विद्युक्त पदं सदृशाधिकरणे वर्तते । कुतः । यस्मादन्यच्छब्दरूपम् । हेतुगर्भविशे-  
षणम् । मुख्यार्थवाचिशब्दरूपादन्यदित्यर्थ इति । तत्र । तथापाठामावात् । तथाहीतिवाक्य-  
शेषविरोधाच्च । तद्भवनयन्शेषपूरणेन वाक्यत्रयेण व्याचष्टे—नञ्युक्तमिति । यत्रेत्यादिः ।  
यत्किञ्चिदिति । अनेन वाक्ये क्वचित्सप्तताऽपेक्षितेति सूचितम् । तथार्थेति । तादृश  
एवार्थः प्रतीयत इत्यर्थः । लोक इति शेषः । तदेवाऽऽह—न ह्येति । तथा च लोक-  
न्यायसिद्धेयमिति भावः । लोष्ट, मृत्पिण्डम् । उक्तातिप्रसङ्ग वारयति—अत इति । परिभाषा-  
ङ्गीकारादित्यर्थः । सादृश्यप्रयोजकधर्ममाह—अभूतेति । नन्वेवमोषधेश्चेत्यादौ विभक्ति-  
ग्रहणाद्यानर्थक्यापत्तिरत आह—ओषधेश्चेति । आदिनाऽकर्तरि चेत्यादौ कारकग्रहण-  
संग्रहः ।

यत्तु सीरदेवादयोऽनित्या चेयं विभक्त्यादिग्रहणात्तेनासूर्यपश्या इत्यादौ प्रसज्यप्रतिषेधः  
सिद्ध इति तन्मतं स्पष्टयति—एतेनेति । एतेनेत्यस्यार्थमाह—अनित्यत्व इति ।  
फलस्योक्तत्वादाह—भाष्येति । अभिधानस्वामान्यादेव तत्र तथार्थबोधस्य सिद्धत्वा-  
ज्ज्ञापकानपेक्षत्वात् । अत एव प्रतीत्यैव परिभाषार्थः साधितः । तदर्थं साङ्गत्वं तु ज्ञापकेन  
साधितमेव भगवतेति भावः । नन्वेवमपि विनिगमनाविरहादनित्यत्वसिद्धार्थानुवाद एवाऽऽस्तां  
भवन्मत इवात आह—अत एवेति । तदनभिमतत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा प्रत्याख्याना-  
संगतिः स्पष्टैवेति भावः । अत्र, परिभाषायाम् । सादृश्यं साधारणधर्मसंबन्धप्रयोज्यं सदृ-  
शादिपदशक्यतावच्छेदकतया च सिद्ध सदृशदर्शने संस्कारोद्बोधकत्वस्य सर्वसंमतत्वेन तत्कार-  
णतावच्छेदकतया च सिद्धमस्त्वन्मतिरिक्तः पदार्थः । इवयुक्तोदाहरणमिवे प्रतिकृतावित्त्व-

स्युक्त्या साङ्ख्यस्य भेदाघटितत्वं सूचयति । निरूपितं चैतन्मञ्जूषायाम् ॥ ७४ ॥

ननु व्याघ्री कच्छपीत्यादौ सुबन्तेन समासात्ततोऽप्यन्तरङ्गत्वाद्वाप्य-  
दन्तत्वाभावाज्जातिलक्षणो ङीष् न स्यादत आह—

गतिकारकोपपदानां कृद्धिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ॥ ७५ ॥

‘उपपदम्’ ( २ । २ । १९ ) इति सूत्रेऽतिङ्ग्रहणेन ‘कुगति’ ( २ ।  
२ । १८ ) इत्यत्र तदपकर्षणेनातिङन्तश्च समास इत्यर्थात्तयोः सूत्रयोः  
सुप्सुपेत्यस्य निवृत्त्यैकदेशानुमत्या कारकांशे च सिद्धेयम् । तेनाश्वक्रीती

धिकारे शाखादिभ्यो य इति चे सोम्य इत्यादि । तत्र सोमसदृशास्तद्धिन्नः प्रतीयत इत्यादि  
मञ्जूषाया प्रतिपादितम् । तदाह—निरूपितमिति । उपपदमतिक्रियाद्यप्याद्योदा-  
हरण बोध्यम् ॥ ७४ ॥

वृत्तिप्रसङ्गात्समासप्रसङ्गादुदाहरणान्तर्गतोपपदमितिप्रसङ्गाच्चाऽऽह—नान्विति । आदि-  
नाऽश्वक्रीतीत्यस्य परिग्रहः । ततोऽपि, सुपोऽपि । स्वार्थादिप्रयुक्तकार्याणां क्रमिकत्व-  
स्वीकारादाह—प्यन्तेति । पूर्वस्थितनिमित्तकत्वरूपादित्यर्थः । कृद्धिः, तैरेव सह ।  
एव व्यावर्त्य ध्वनयन्नाह—प्रागिति । उत्तरपदे सुबुत्पत्तेः प्रागित्यर्थः । अत एव चर्मक्री-  
तीत्यादौ नलोपादिसिद्धिः । इदमुपलक्षणम् । उक्तहेतोरेव प्राक्खीप्रत्ययोत्पत्तेरित्यपि  
बोध्यम् । अन्यथा फलाभावाज्जापकत्वासंगत्यैतदसंगतिः स्पष्टैवेति बोध्यम् ।

अत्र . बीजमाह—उपोति । कुगतीति गतिश्चेति विभक्तसूत्र इत्यर्थः ।  
अतिक्रिति बहुव्रीहिः । प्रथमान्तत्वात्समास एव तेन विशेष्यस्तदाभिप्रेत्योभयत्रार्थमाह—  
नातिक्रिति । सुपेत्यस्य निवृत्त्येति पाठः । सुप्सुपेत्यस्येति पाठे समुदायनिवृत्तौ तात्पर्यं  
न तु केवलमुचित्यस्य । तत्त्वनुवर्तत एवोक्तहेतोरिति बोध्यमिति कैयटादयः । वस्तुतस्तूप-  
पदमित्यन्वर्थसज्ञाया सुबन्तस्यैव पदत्वेनोपपदत्वाद्गतेः सुबन्तत्वाच्च राजयुध्वेत्यादौ पूर्वपदे  
नलोपादिपदकार्यसिद्धेस्तिङ्घटित इति समासविशेषणेन कारको व्रजतीत्यादिव्यावृत्तिसिद्धेश्च  
( प्रथमान्तसुबुत्पत्तेरपि फलाभाव इति कैयटादयश्चिन्त्या एवेति यथाश्रुतमेव युक्तमिति  
बोध्यम् । नन्वेवमुभयाशसिद्धावपि कारकाशासिद्धिः । न च कर्तृकरण इति कृद्ग्रहणात्त-  
त्सिद्धिरिति कैयटाद्युक्तं युक्तम् । तस्य काष्ठैः पचतितरामित्यादिव्यावृत्त्या साफर्यात् ।  
नापि बहुलग्रहणं तत्र मानम् । तस्योन्यार्थकत्वात् । अत एव घनक्रीतेत्यस्य सिद्धिरत आह—  
एकदेशेति । एकदेशानुमतिद्वारा विशिष्टपरिभाषाबोधनेन कारकांशे चेत्यर्थः । चेनोभयां-  
शसमुच्चयः । गत्सुपपदधोर्लक्ष्यभोरुक्तत्वादाह—तेनाश्वेति । अन्यथा, एतदनङ्गीकारे ।

सिद्धा । अन्यथा पूर्वं टाप्यदन्तत्वाभावात् 'क्रीतात्करणपूर्वात्'  
(४।१।५०) इति ङीष् न स्यात् ।

अस्या अनित्यत्वात्कचित्सुबुत्पत्त्यनन्तरमपि समासो यथा सा हि  
तस्य धनक्रीतेति । अन्ये त्वनित्यत्वे न मानं तत्राजादित्वाद्वावित्याहुः ।

अत एव कुम्भकार इत्यादौ षष्ठीसमासोऽपि सुबुत्पत्तेः पूर्वमेव । षष्ठीस-  
मासाभावे चोपपदसमासकृत एकार्थीभाव इति न तत्र वाक्यमिति 'उप-  
पदम्' (२।२।१०) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तत्र हि षष्ठीसमासादुपपद-  
समासो विप्रतिषेधेनेति वार्तिकम् । अथवा विभाषा षष्ठीसमासो  
यदा न षष्ठीसमासस्तदोपपदसमास इति तत्प्रत्याख्यानं च । यद्यप्यु-

अस्या अनित्यत्वादिति । अम्बाम्बेति सूत्रे गवादिग्रहणात् । अन्यथा गोष्ठ  
इत्यादौ सुपि स्थ इति केऽनया सुबुत्पत्तेः पूर्वं समासे सात्पदाद्योरिति निषेधाप्राप्तावादेश-  
प्रत्यययोरित्येव सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तत्र हि स्थ इति प्रतिपदोक्तपरिभाषया सुपि  
स्थ इति विहितकप्रत्ययान्तानुकरणं षष्ठ्यर्थे प्रथमेति भावः । [ कश्चिदिति ।  
अनेनारुचिः सूचिता ] न मानमिति । पदस्याऽऽदिरिति पक्षे तस्य तत्त्वसंभवेऽपि  
पदादादिरिति सिद्धान्तपक्षे तस्य तत्त्वासंभवादिति भावः । तत्र, धनक्रीतेत्यत्र । अत्रोपप-  
त्तिरुक्ता । अत्रान्य इत्यनेनारुचिः सूचिता । तद्वाचं तु पदेऽन्त इति सप्तमीसमासपक्षे  
गोचेत्यादेरेतदनित्यत्वं विना न सिद्धिरिति केचित् । पद इत्यस्य पदत्वयोग्योपलक्षणत्वेन  
तत्सिद्धेरयुक्तमेतदिति परे ।

कारकाश द्रढयति—अत एवेति । कारकाशेऽस्या अङ्गीकारादेवेत्यर्थः । पूर्वमेवे-  
त्यत्रान्वयः । षष्ठीति । कृद्योगलक्षणा हि षष्ठीति तस्यास्तत्र कारकत्वादिति भावः ।  
सोऽपीति । अपिरुपपदसमाससमुच्चायकः । ननु न तत्र षष्ठीसमासः । उपपदसमासेन  
बाधितत्वात् । नापि तत्रैतत्परिभाषाप्रवृत्तिः । प्रतिपदोक्तपरिभाषया कारकाधिकारविहि-  
तसंज्ञामात्रनिमित्तकविभक्त्यन्तस्य ग्रहण एवैतत्प्रवृत्त्यङ्गीकारात् । अत आह—षष्ठीति ।  
एकार्थीभाव इति । तथा चाविग्रहत्वेन नित्यसमासत्वलाभात्षष्ठीसमासेऽप्यन्तोदात्ता-  
दुत्तरपदादित्यस्याप्रवृत्त्या न षष्ठ्युपपदसमासयोस्तत्र विशेष इति स एवास्त्विति भावः ।  
तदेतदुपपादयति—तत्र हीति । तदोपपदसमास इति । उपपदमिति सूत्रविहि-  
तसमाससंज्ञा तत्पुरुषसंज्ञा च स्थास्यतीत्यर्थः । विप्रतिषेधे परमित्यस्य तु न प्रवृत्तिः ।  
सुगपदुभयविहितसमाससंज्ञातत्पुरुषसंज्ञयोः प्रवृत्तिसंभवेनासंभवरूपविप्रतिषेधाभावात् । अन्या-  
दशविशेषस्य तत्प्रवृत्तिनिमित्तत्वे न मानमिति तत्तात्पर्यम् । न च नित्यत्वानित्यत्वज्ञानक-

पपदसमासस्यान्तरङ्गत्वाभिप्रायकं न वा षष्ठीसमासाभावादुपपदसमास इति वार्तिककृतोक्तं तथाऽपि तदुभयप्रत्याख्यानपरमथवेत्यादि भाष्यम् । परिभाषायां सामान्यतः कारकोपादानेन कारकविभक्त्यन्तेन कृद्भिः समासमात्रस्य सुब्रुत्पत्तेः पूर्वमेव लाभात् । एतेनैषा कारकतद्विशेष्योरुपादान एवेति परास्तम् । अस्या विध्येकवाक्यत्वाभावेन विप्रतिषेधादिशास्त्रवत्कार्यव्यवस्थापकत्वेनोपादान एवेत्यर्थालाभाच्च ॥ ७५ ॥

ननु 'उगिद्चाम्' ( ७ । १ । ७० ) इत्यत्र धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियमेनाधातोरेव नुमि सिद्धेऽधातुग्रहणं व्यर्थमत आह—

सांप्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः ॥ ७६ ॥

तविरोधः कैयटोक्त एवेति वाच्यम् । बोधे बाधज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वात् । एवं च षष्ठीसमासोऽपि नित्य एवैतद्विषये फलित । तद्धोधिताभावाशस्यैतद्विरोधेनैतद्विषये त्यागात् । नित्य क्रीडेत्यादिविषये तस्य क्लृप्तबाधत्वादिति भावः । अन्तरङ्गत्वेति । षष्ठीतिसूत्रे सुपेति तृतीयान्तस्य सवन्धात्तत्र तदभावादिति भावः । अत एव मातुः स्मरतीत्यादौ न षष्ठीसमासः । अत एव च षष्ठ्यन्तस्यानेकसुबन्तेन न समास इति बोध्यम् । कृतोक्तमिति । पूर्ववार्तिकखण्डनाय तयोर्मध्य इति शेषः । तदुभयेति । पूर्वपक्षसिद्धान्तरूपवार्तिकद्वयेत्यर्थः । भाष्यमिति । न वार्तिकमिति भावः । ननुक्तरीत्या विप्रतिषेधासम्भावान्तप्रत्याख्यानेऽप्यन्तरङ्गत्वस्योपपादितत्वात्कार्यं तत्प्रत्याख्यानमिति प्रतिज्ञातार्थासिद्धिरेवात आह—परीति । प्रकृतेत्यादिः । इदमुपलक्षणं गतिकारकोपपदादित्यस्यापि । कारकोपेति । वस्तुत इत्यादिः कारकपदोपेत्यर्थो वा । प्रतिपदोक्तपरिभाषा तु न प्रवर्तते तस्या अनित्यत्वात् । स्वरसतस्तया तथार्थालाभाच्च । कारकेति । तेन सह तन्मात्रस्य ततः पूर्वमेव तैः सह लाभादित्यर्थः । समात्रस्येति । मात्र कात्स्न्ये । तथा च षष्ठीसमासोऽपि त्थेत्यन्तरङ्गत्वमेव तस्य नास्तीति प्रागुक्तार्थसर्वसिद्धिरिति भावः । एतेनैषेति । तथार्थलाभेनेत्यर्थः । कारकेति । तन्मात्रयोरित्यर्थः । दूषणान्तरमाह—अस्या इति । निराकाङ्क्षत्वादिति भावः । ननु प्रातिपदिकग्रहण इत्यतो ग्रहणपदानुवृत्तिः कल्प्याऽऽकाङ्क्षया तदेकवाक्यता वाऽत आह—विप्रेति ॥ ७५ ॥

बौद्धानित्यत्वादिफलगोचेत्यादिप्रसङ्गादेवाऽऽह—ननूगिद्चामिति । इत्यत्रेत्यस्योभयत्रान्वयः । नाधातोरेव, उगित् । यत्तु सीरदेवादयोऽचो यदित्यज्ग्रहणमस्या ज्ञापकमन्यथा हलन्तेभ्यो ण्यति पारिशेष्यादजन्तेभ्य एव यता भाव्यमिति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति ।



तत्तद्वचनसामर्थ्यन्यायसिद्धेयम् । तत्सामर्थ्यादधातुभूतपूर्वस्यापीत्यर्थेन गोमत्यतेः क्विपि गोमानित्यादौ नुस्सिद्धिः । ' नामि ' ( ६ । ४ । ३ ) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टा ॥ ७६ ॥

बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि ॥ ७७ ॥

अपिनाऽतद्गुणसंविज्ञानम् । तेषां गुणानामवयवपदार्थानां संविज्ञानं विशेष्यान्वयित्वमिति तदर्थः । यत्र समवायसंबन्धेन संबन्ध्यन्यपदार्थस्तत्र प्रायस्तद्गुणसंविज्ञानम् । अन्यत्र प्रायोऽन्यत् । लम्बकर्णचित्रगु उदाहरणे । ' सर्वादीनि ' ( १ । १ । २७ । ' जक्षित्यादयः ' ( ६ । १ । ६ ) इति चोदाहरणे । सर्वनामसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥७७॥

तत्र । एवमपि परिभाषया स्वस्मिन्दोषाप्राप्त्या चारितार्थस्यान्यत्र तज्जातीयफलस्य चाभावात् । तद्ध्वनयन्यायपदघटितमाह—तत्तदिति । सामर्थ्यरूपो यो न्यायस्तत्सिद्धेयमित्यर्थः । यथा तत्रैवाऽग्रहणसामर्थ्यादजन्तभूतपूर्वादित्यर्थः । अत एवाऽऽह—तत्सामर्थ्यादिति । अधातुग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थः । स्यापीति । उगित इति शेषः । अपिरुक्तसमुच्चायकः । भाष्य इति । तत्र ह्यामीत्येव क्वार्थं यदागमा इत्यनेन नामि सिद्धेः । नित्यत्वादादौ दीर्घेऽपि भूतपूर्वगत्या नुट्सिद्धिरग्नीनामित्यादौ । तिस्रादौ तु न सावकाशत्वं षट्चतुरिति त्रेरित्यनुवृत्त्या च सिद्धेः । नापि नृशब्दे नैकमिति न्यायात् । अन्यथा नृनद्याप इत्येव वदेदित्युक्तवोत्तरार्थं तथा निर्देश इत्युक्तम् ॥ ७६ ॥

उगिदित्यत्र बहुव्रीहेर्गोमानित्यस्य च मत्वर्थे बहुव्रीहिरिति सिद्धान्तेन प्रसङ्गादाह—बहुव्रीति । षष्ठीसमासतः कर्मधारयस्य लघुत्वादाह—तेषामिति । गुणानां, विशेषणानाम् । अत एवाऽऽह—अवयवेति । एतेन सीरदेवादिग्यारुगानमपास्त बोध्यम् । विशेष्यान्वयिनाऽन्वयित्वमिति पाठ । विशेष्यान्वयित्वमिति पाठे तु मुख्यविशेष्यं वाक्यार्थरूपं ग्राह्यम् । तदर्थः, उक्तवचनैकदेशार्थः । एव योगार्थमुक्त्वाऽविरोधाय द्वयोर्बाहुल्येन विविक्तविषय आह—चत्रेति । यद्यपि कैयटादिभिरत्र सयोगोऽपि निवेशितस्तथाऽपि तस्यासंबन्धत्वाद्वाहवाच्चाऽऽह—समवायेति । लम्बकर्णं भोजयेत्यादौ व्यभिचारादाह—प्राय इति । अन्यत्र, समवायान्यसंबन्धेन संबन्ध्यन्यन्यपदार्थे । अस्यापि रक्तदण्ड आनीयतामित्यादौ व्यभिचारादाह—प्राय इति । अन्यत्, अतद्गुणसंविज्ञानम् । तथा चोभयमपि सभवाभिप्रायकं बोध्यम् । क्रमस्य बोध्यत्वाल्लम्बकर्णस्य पूर्वनिपातः । लौकिके ते उक्त्वा शास्त्रीये आह—सर्वादीति । तथा च लोकन्यायसिद्धेयम् । गमकमप्यत्र यथाक्रममाख्यसुभगेत्यत्राच्चैरित्याम्प्रत्ययवादिति च । अन्यथा च्च्यर्थ इत्यनेन च्विभिन्नान्नानामेव ग्रहणादामन्तस्यैव ग्रहणाच्च तदसगतिः स्पष्टैव ॥ ७७ ॥

ननु 'वदः सुपि क्यप्च' (३।१।१०६) इति चेनानुकृष्टस्य यतो 'भुवो भावे' (३।१।१०७) इत्यत्राप्यनुवृत्तिः स्यादत आह—  
चानुकृष्टं नोत्तरत्र ॥ ७८ ॥

णमुल्यनुवर्तमाने 'अव्ययेऽयथाभिप्रेता' (३।४।५३) इति सूत्रे पुनर्णमुल्यग्रहणमस्या ज्ञापकम् । अन्यथा क्त्वा चेति वदेत् । तद्ध्युत्तरत्रोभयोः संबन्धार्थम् । उदाहरणानि स्फुटानि । इदमनित्यम् । अत एव 'तृतीया च होः' (२।३।३) इत्यत्र चानुकृष्टाया अपि द्वितीयाया 'अन्तरान्तरेण' (२।३।४) इत्यत्र संबन्धः ।

'लुटि च क्लृपः' (१।३।५३) इति सूत्रस्थेनानुवृत्त्यर्थसकल-चकारप्रत्याख्यानानेन विरुद्धेयम् । व्याख्यानादेवानुवृत्तिनिवृत्त्योर्निर्वाह इति तदाशयः । 'कुलिजाल्लुक्खौ च' (५।१।५५) इति सूत्रस्थ-भाष्यविरुद्धा च । तत्र हि 'द्विगोः षंश्च' (५।१।५४) इति सूत्रात्तनस्तत्र चेनाप्यनुकृष्टस्य खोऽन्यतरस्यामित्यस्य चानुवृत्तिं स्वीकृत्य लुक्खौ चेति भाष्ये प्रत्याख्यातम् ॥ ७८ ॥

समुच्चयार्थकापिप्रसङ्गादाह—नन्विति । यतः, अचो यदिति सूत्रस्थस्य । अनुवर्तन्ति । स्वादुभीत्यतः । अन्यथा, एतदभावे । ज्ञापिते चारितार्थमाह—तद्धीति । पुनर्णमुल्यग्रहण हीत्यर्थः । उत्तरेति । तिर्यच्यपवर्ग इत्यादौ क्त्वाणमुलोरित्यर्थः । इदमिति । उक्तवचनमित्यर्थः । अनित्यमिति । चानुकृष्टविकल्पनिवारणफलकादेका-जुत्तरेति सूत्रे णग्रहणादिति भावः । अत एव, अनित्यत्वादेव । द्वितीयायाः, तस्या एव स्वरितत्वात् । न तु तृतीयाया अतत्त्वात् ।

यत्तु सीरदेवादयः स्वरितत्वेनानुवृत्तिसिद्धौ पुनश्चस्तदर्थं यत्र क्रियते तत्रैतत्प्रवृत्तिः । यत्र तु प्रतियोगिनं दृष्ट्वा निवृत्तिप्राप्तौ चेनानुवृत्तिस्तत्र न । अत एवान्तरान्तरेणेत्यत्र न दोषः । मैत्रेयस्त्वनियमेन प्रवृत्तिमाहेति तदयुक्तमिति ध्वनयन्नाह—लुटीति । अनुवृत्त्यर्थेति । अनुवृत्तिफलकेत्यर्थः । एतेनान्यफलानां चाना न प्रत्याख्यानमिति सूचितम् । विरुद्धेयमिति । अदृष्टार्थं चसत्त्वेऽप्यनुवृत्त्याद्यर्थत्वाभावेन चानुकृष्टत्वस्य काप्यभावात् । तदाह—व्याख्यानादेवेति । स्वरितेनाविकार इत्येतन्मूलकाद्भाष्यीयादित्यर्थः । अभ्यर्हितत्वादानुवृत्तेः पूर्वनिपातः । निवृत्तिग्रहणेन दृष्टान्तार्थेन व्याख्यानस्याऽऽवश्यकत्वं सूचितम् । एतेन चाभाववत्यनुवृत्त्यर्थत्वमपि व्याख्यानस्याऽऽवश्यकत्वं ध्वनितम् । तदाशय इति । तत्प्रत्याख्यानपरभाष्याशय इत्यर्थः । उक्तार्थं द्रढयति—कुलिजादिति । तत्र हि, उक्तसूत्रे हि । भाष्य इत्यत्रान्वयः । षनस्तत्रेति । द्विगोरिति सूत्र इत्यर्थः । चेनेति ।

नन्वनुदात्तादेरन्तोदात्ताच्च यदुच्यते तद्यञ्जनादेर्व्यञ्जनान्ताच्च न प्राप्नोतीत्यत आह—

स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ ७९ ॥

स्वरोद्देश्यके विधावित्यर्थः । 'नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषम-  
न्धिषु' ( ६ । २ । १४२ ) इति सूत्रे पृथिव्यादिपर्युदासोऽस्या ज्ञापकः ।  
अन्यथा पृथिव्यादीनामनुदात्तादित्वाभावादप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव ।  
धर्मिग्राहकमानादेव च स्वरोद्देश्यकविधिविषयमिदम् ।

अत एव 'शतुरनुमो नद्यजादी' ( ६ । १ । १७३ ) 'अचः कर्तृ-  
यकि' ( ६ । १ । १९५ ) इत्यादावजादी अच इत्यादेश्वारितार्थम् ।

चेनानुकृष्टस्यापीत्यर्थः । इत्यस्य चेति पाठः । छन्समुच्चायकश्च । तद्रहितपाठे तु पूर्वोऽपिरत्र  
योज्यः । आमि सर्वनाम्न इति सूत्रे भाष्ये प्रकृते किमेदित्यामोऽग्रहणमुक्त्वा ग्रहणेऽपि न  
दोष इति पक्षान्तरे पचतितरामित्यादौ परत्वात्प्राप्तस्य नुटोऽभावाय ह्रस्वनद्येत्यत्र यस्य लोप  
इत्यनयोरिव तद्धित इत्यस्याप्यनुवृत्तिः कृतेति बोध्यम् । [ \* एव च यदि सूत्ररीत्येयं  
भवेत्तदैतत्प्रत्याख्यानासगतिरिति भावः ॥ ७८ ॥ )

बहुव्रीहिप्रसङ्गादनुदात्तादेश्चेति चप्रसङ्गाच्चाऽऽह—**नन्विति** । यत्तु सीरदेवादयः  
स्वरविधावित्यस्य स्वरकर्मकविधावित्यर्थः । तेन कर्तव्यमित्यादौ तकारादेरविद्यमानवत्त्वाद-  
कारादेराद्युदात्तादयो भवन्ति । ज्ञापकं चात्र बिल्वादिभ्योऽणिमिति सूत्रम् । तद्ध्रस्वनुदात्तादेश्चे-  
त्यञ्बाधनार्थम् । अन्यथा तेषामनुदात्तादित्वाभावादजोऽप्राप्त्या सामान्यसूत्रेणाणः सिद्ध्या  
किं तेनेति । ह्रस्वरप्राप्ताविति तु नैवोक्तवन्तः । तत्र । धर्मिग्राहकमानात्तदलाभेन मिथो  
विरोधात् । अन्यार्थकभिन्नफलकसज्ञापकपरिभाषाद्वयस्य समासस्येति सूत्रे भाष्ये कण्ठत  
उक्तत्वाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—**स्वरोद्देश्यक इति** । अन्यथा, अस्या अभावे ।  
अप्राप्तौ, निषेधाप्राप्तौ । तथा च देवताद्वन्द्वे चेति पूर्वसूत्रेण पूर्वोत्तरपदयोरिष्टः प्रकृतिस्वरः  
सिद्ध इति भावः । नन्वेव परिभाषायास्तथैवार्थः स्यान्नायमत आह—**धर्मीति** । उक्त-  
पर्युदासरूपादित्यर्थः । नोत्तरपद इत्यस्य स्वरनिषेधविधित्वेन स्वरकर्मकविधित्वाभावादिति  
भावः । इदं, वचनम् ।

सीरदेवाद्युक्तौ दोषान्तरं सूचयितुमुक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति** । एवमर्थाङ्गीका-  
रादेवेत्यर्थः । हलाद्यादिव्यावृत्त्यर्थं हि तत्रार्जाद्यादिग्रहणम् । यदि स्वरकर्मकविधौ तथा  
स्यात्तदा व्यावर्त्याभावेन तदानर्थक्यं स्पष्टमेव । बिल्वकादिभ्योऽणिमिति सूत्रमप्येवमेव सफ-  
लमिति भावः । एवमुक्तार्थस्य सूत्रारूढत्वमुक्त्वा भाष्याद्यारूढत्व ध्वनयन्प्राग्वदाह—

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. ड. पुस्तकस्य ।

१ घ. 'जादि' । २ ग. ड. सूत्र त्वेवमपि स' ।

अत एव राजवतीत्यादौ नलोपस्यासिद्धत्वाद्दन्वतीशब्दत्वात् 'अन्तोऽ-  
वत्याः' ( ६ । १ । २२० ) इति स्वरो नोदश्वित्वानित्यत्र 'ह्रस्वनुङ्-  
भ्याम्' ( ६ । १ । १५६ ) इति मतुबुदात्तत्वं नेत्याकरः । स्पष्टं चेदं  
'समासस्य' ( ६ । १ । २२३ ) इति सूत्रे भाष्ये । 'उच्चैरुदात्तः'  
( १ । २ । २९ ) इति सूत्रे कैयटस्तु, इयमनावश्यकौ समभिव्याहृता-  
जुपरागेण हलोऽप्युदात्तादिवदवभासात्तदुपपत्तेरित्याह । तत्र भाष्येऽपि  
ध्वनितमेतत् ॥ ७९ ॥

नन्वेवमपि राजहृषदित्यादौ 'समासस्य' ( ६ । १ । २२३ ) इत्य-  
न्तोदात्तत्वं षकाराकारस्य न स्यादत आह—

ह्रस्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमवियमानवत् ॥ ८० ॥

अस्याश्च 'यतोऽनावः' ( ६ । १ । २१३ ) इति सूत्रे नौप्रतिषेधो ज्ञापकः ।  
नाव्यमित्यत्राऽऽदिर्नकारो न स्वरयोग्यो यश्चाऽऽकारस्तद्योग्यो नासावा-  
दिरिति स प्रतिषेधोऽनर्थकः । न चाऽऽदिरेव नकार उदात्तगुणविशि-  
ष्टान्तरतमाज्जपोऽस्त्विति वाच्यम् । तथा सति निमित्तभूतद्व्यञ्जकत्वस्य  
विनाशादुपजीव्यविरोधेनाऽऽद्युदात्तत्वाप्राप्तेरित्यन्यत्र विस्तरः । स्पष्टा

अत एवेति । प्राग्वत् । आकर इत्यत्रान्वयः । तस्य च सगच्छत इति शेषः । कैय-  
टादिप्रग्रहाय तथोक्तम् । शब्दत्वादिति । हेतुः स्वराभावे । उदात्तत्वं नेति निश्चः पाठः ।  
नञ्द्रयोक्तेः । अत एवेत्यग्रे योजने नादग्रे योजने वाऽस्तु । तथार्थं त्वेतदसंगतिः स्पष्टैव ।  
कैयटस्तु । अस्याऽऽहेत्यत्रान्वयः । समभीति । समभिव्याहारश्च पूर्वणोत्तरेण वा ।  
तदुपपेति । हलादेर्हलन्तात्प्रत्ययोपपत्तेरित्यर्थः । अत्र निर्मूलत्वं निराचष्टे—तत्रेति ।  
उच्चैरुदात्त इत्यत्रेत्यर्थः । तथा चैतत्तथा स्पष्टमन्यत्र ॥ ७९ ॥

एवमपि । उक्तपरिभाषयाऽनुदात्तादेरित्यादौ निर्वाहेऽपि । न स्यादिति । तस्यै-  
न्तत्वाभावात् । तथा च तकारस्य लृकारो वक्ष्यमाणरीत्या स्यादिति भावः । अस्याश्चेति ।  
चस्त्वर्थे । तत्त्वमुपपादयति—नाव्यमिति । अन्यथेत्यादिः । चादिरेवेति । एवेनाऽऽञ्-  
व्यावृत्तिः । विशिष्टान्तरेति । लृकारेत्यर्थः । अस्तु, स्यात् । तदानर्थक्यात् । एवं  
च तद्वारणार्थं प्रतिषेधस्याऽऽवश्यकत्वेन ज्ञापकत्वासंभव इति भावः । निमित्तेति ।  
आद्युदात्तस्वरेत्यादिः । दात्तत्वाप्राप्तेरिति । तस्यैवाप्राप्तेरित्यर्थः । एवं च प्रतिषेधोऽन-  
र्थकः सञ्ज्ञापक एवेति भावः । न च हलः स्वरप्राप्त्यभावाद्देवायुक्तेयमुच्चैरुपलभ्यमानोऽजु-

१ क. घ. 'ने वाऽ' । २ घ. 'थात्वे त' । ३ घ. 'षया पूर्वोक्तादौ' । ४ ग. 'स्यान्तत्वादिति  
भावः । त' । ५ क. ग. इ. 'नाऽऽव्या' ।

चेयं 'समासस्य' ( ६ । १ । २२३ ) इति सूत्रे भाष्ये ॥ ८० ॥

ननु 'पूरणगुण' ( २।२।११ ) इति निषेधस्तव्यत्यपि स्यात् । 'दिव औत्' ( ७।१।८४ ) इत्यौत्त्वं दिवेः क्तिप्यपि स्यात् । तथा 'यतोऽनावः' ( ६।१।२१३ ) इति स्वरो ण्यत्यपि स्यात् । 'ऋदृशोऽङ्गि गुणः' ( ७।४।१६ ) इति चङ्ग्यपि स्यात् । अत आह—

निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ॥ ८१ ॥

तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ॥ ८२ ॥

'वामदेवाद्भ्यङ्ग्यौ' ( ४।२।९ ) इति सूत्रे ङ्यङ्यतोर्ङिच्वमनयो-  
ज्ञापकम् । तद्धि 'ययतोश्चातदर्थे' ( ६।२।१५६ ) इत्यत्र तयोरग्रहणा-  
र्थम् । नञः परस्य ययदन्तस्योत्तरपदस्यान्त उदात्त इति तदर्थः । एवं  
चावामदेव्येऽव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर एव भवति । तन्मात्रानुबन्धकग्रहणे स  
चान्यश्चानुबन्धो यस्य तद्ग्रहणं नेत्यन्त्यार्थः ।

दात्तः स चाचः स्थान इत्याद्यर्थादिति वाच्यम् । षष्ठ्यन्तस्याच इत्यस्याननुवृत्त्योदात्ता-  
दिपदानामक्षु संकेतादादिरुदात्तगुणकः स्यादित्याद्यर्थे तत्तदन्तरतमः कश्चिद्व्यत्यादिति हलः  
स्वरप्राप्तिर्भवति । तदाह—इत्यन्यत्रेति । भाष्यादावित्यर्थः । चेयमिति । इयमपी-  
त्यर्थः । तेन पूर्वस्याः समुच्चयः । अत एव तत्र तथा नोक्तम् । तत्र हि व्यञ्जनान्तेषु-  
पसल्यानमिति वार्तिकप्रत्याख्यानाय परिभाषाद्वयमुक्तम् ॥ ८० ॥

स्वरप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । अत एव तृतीयोक्तिः । तव्यत्यपि स्यादिति पाठः ।  
स्वकर्तव्यमित्यादौ । \*अपयस्तव्यप्रातिपादिकादिसमुच्चायकाः । क्तिप्यपि, अक्षयूरित्यादौ ।  
अत्र पदावधिकेऽन्वाख्यानेऽपरनिमित्तकत्वेन वेरपृक्तेति लोपे सेदुष इत्यत्रोक्तप्रकारो बोध्यः ।  
एकदेशविकृतन्यायो वा । यत्त्वधातोरित्यनुवृत्त्या सिद्धेनेदं प्रयोजनमिति भ्रान्तः । तत्र ।  
तस्या भाष्य एव दूषितत्वात् । अत्राऽऽद्यद्वयमाद्यपरिभाषाविषयः । अपरद्वयमन्त्यपरिभाषा-  
विषयः । सौत्रक्रममुल्लङ्घ्य परिभाषाक्रमेणाऽऽह—ङ्येति । तथोः, ङ्यङ्यतोः । अन-  
योरिति पाठेऽप्येवम् । नञ इति । गुणप्रतिषेधविषयादित्यादि । अनुवृत्तिलब्धमिदं सर्वम् ।  
पदस्यान्त उदात्त इति पाठः । तदर्थः, ययतोरिति सूत्रार्थः । एवं च, तयोस्तत्राऽऽभ्याम-  
ग्रहणे च । अव्ययेति । तत्पुरुषे तुल्यार्थेतीति भावः । स्पष्टत्वादाद्यार्थमुपेक्ष्यान्यार्थमाह—  
तन्मात्रेति । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेनेति भावः । न स एवानुबन्धो यस्येति  
वाच्योऽर्थः । तत्फलितमाह—स चेति । न्यासकाराद्युक्तधर्मिग्राहकमानलब्धार्थनिरासा-

\* ड. पुस्तके—अपयः, अपिशब्दा इत्यर्थः ।

१ क. ड. 'दात्तादिगु' । २ क. छ. 'योः, ययतोः ।

एते च प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणे । 'दिव औत्' (७।१।८४) इत्यादौ संचारितत्वात् । वर्णग्रहणे चानयोरप्रवृत्तिरिति स्पष्टं 'औङ् आपः' (७।१।१८) इत्यत्र भाष्ये । येनानुबन्धेन सानुबन्धकत्वं द्यनुबन्धकत्वादि वा तदनुच्चारण एवैषा । धर्मिग्राहकमानात् । तेन 'जशसोः' (७।१।२०) इत्यत्र नैषेति निरनुबन्धकत्वात्तद्धितशस एवात्र ग्रहणं स्यादिति न शङ्क्यम् । एवमन्यान्यतरानुबन्धोच्चारण एव । तेन 'वनो र च' (४।१।७) इत्यादौ ड्वनिष्क्वनिपोर्ग्रहणासिद्धिः । एकानुबन्धकग्रहणे संभवतीति त्वर्थो न भाष्यादि-

याऽऽह—एते चेति । दिव इति । अत एवावतरण एतदुल्लेखः । अत एवौहाकः कित्त्वं सफलमिति प्राञ्चः । एतेनाऽऽद्ये तथा सत्त्वेऽपि द्वितीये न फलमित्यपास्तम् । अतिप्रसङ्ग निराचष्टे—वर्णेति । औङ् इति । ङकाराभाव आद्यया प्राप्तदोषवारणाय तथोक्तं कण्ठत इति भावः । धर्मिग्राहकमानसिद्धमेवेदमिति तदाकृतम् । तदेतद्वनयन्नाह—येनेति । आद्य उक्त्वा \* द्वितीय आह—द्यनुबन्धकेति । ह्रस्वतुङ्म्यामित्यत्र ह्रस्वतुपोऽग्रहणात्तत्संग्रहायाऽऽह—त्वादीति । वाशब्दः समुच्चये । अत एवैषेत्येकवचनं + जातौ । प्रत्येकान्वये तु यथाश्रुतमेव सर्वं युक्तम् । धर्मीति । ड्यड्यतोर्ङित्करणदित्यर्थः । आद्यस्य फलमाह—तेनेति । उक्तार्थाङ्गीकारेणेत्यर्थः । नैषेत्यत्रान्वयः । नाऽऽद्येति तदर्थः । इतिर्न शङ्क्यमित्यत्र हेतुत्वेनान्वेति । तदेवाऽऽह—निरेति । वात्र, जशसोः द्विरित्यत्र । एवं, धर्मिग्राहकमानादेव । अन्यतरेति । इदं द्यनुबन्धोच्चारणस्याप्युपलक्षणम् । अत एव फलोक्तिसगतिः । ड्वनिष्क्वनिपोरिति पाठः । तयोरपीत्यर्थः । अन्यथा द्यनुबन्धकत्वाद्धनिष एव ग्रहणं स्यान्न ड्वनिपादेः । ध्वनितमिदं मतुवसोरित्यत्रत्येन वन उपसख्यानं प्रातरित्व इति भाष्येणापि । अन्यथा वन इत्युक्त्वा प्रातरित्व इत्यन्येभ्योऽपीति व्वनिबन्तोदाहरणदानासगतिः स्पष्टैव । स्पष्टीकृतं चैतत्तत्रैव कैयटेन । ओहाकः कित्त्वं तु गःस्थकन्प्रसृत्व इति पूर्वोत्तरसाहचर्येण हश्चेत्यत्राप्यनुबन्धकस्यैव प्राप्तग्रहणाभावाय । अन्यथा कं विनाऽपि वनोरेत्यत्रेव सामान्यग्रहणं सूपादादमिति तदानर्थक्यमेव स्यात् । एतेन तस्मादनिष्टार्थापत्तिरित्यपास्तम् । इति त्वर्थं इति । इत्यादि त्वर्थं इत्यर्थः । अस्यापि धर्मिग्राहकमानलब्धत्वादाह—न भाष्येति । वनो र चेत्यादौ दोषापत्तेर्मतुवसोरित्यत्रत्यप्रागुक्तभाष्यासगत्यापत्तेश्च । यत्तु सारिदेवादयः परिभाषात्रयं निरनुबन्धकैकानुबन्धकतदनुबन्धकेति । आद्ये उक्तज्ञापकसाध्ये उदाहरणान्युक्तान्वये । तत्तदनुबन्धोच्चारणसामर्थ्य-

\* क. ड. पुस्तकयोः—तादृशलक्ष्यासंभवादाहेति पाठान्तरम् । + जातावित्यस्याग्रेऽयं ग्रन्थः क. ड. पुस्तकयोः—धर्मिग्राहकमानसिद्धमेवेदमिति तदाकृतम् ।

संमत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

ननु कुटीर इत्यादौ स्वार्थिकत्वात्स्वार्थिकानां प्रकृतितो लिङ्गवच-  
नानुवृत्तेन्यायप्राप्तत्वात्पुंस्त्वानुपपत्तिरप्यल्पमित्यत्र नपुंसकत्वैकवचनयो-  
रनुपपत्तिश्चेत्यत आह—

क्वचित्स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥ ८३ ॥

‘णचः स्त्रियाम्’ (५।४।१४) इति सूत्रे स्त्रियामित्युक्तिरस्या  
ज्ञापिका । अन्यथा ‘कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्’ (३।३।४६)  
इति स्त्रियामेव विधानात्किं तेन । स्पष्टा चेयं बहुज्विधायके  
भाष्ये ॥ ८३ ॥

ननु सुपथी नगरीति ‘युवोरनाको’ (७।१।१) इतिसूत्रभा-  
ष्योदाहृत ‘इनः स्त्रियाम्’ (५।४।१५२) इति कप्स्यादत  
आह—

समासान्तविधिरनित्यः ॥ ८४ ॥

‘प्रतेरंश्वाद्यस्तत्पुरुषे’ (६।२।१९३) इत्यन्तोदात्तत्वायांश्वा-  
दिषु राजञ्शब्दपाठोऽस्या ज्ञापकः । अन्यथा टचैवान्तोदात्तत्वे सिद्धे  
किं तेन । ‘द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु’ [६।२।१९७] इति स्वरवि-  
धायके भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ ८४ ॥

लब्धार्थानुवादस्तृतीया । तल्लक्ष्य माडि लुडिति । अत्राडितो माशब्दस्य न ग्रहणम् । तथा  
चडि विधीयमान द्वित्वमाडि नेति । तन्न । भाष्यविरोधात् । परिभाषाद्वयस्यैव भाष्ये  
सत्त्वात् । तत्तदनुबन्वोच्चारणसामर्थ्यादेव माडित्यादौ दोषाभावेन तत्परिभाषानपेक्षणाच्च ।  
अनुबन्वादावेवमप्यनिर्वाहेण न्यूनतापत्तेश्चेति दिक् । तदाह—इत्यन्यत्र विस्तर इति ।  
उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

निषेधप्रसङ्गादाह—नन्विति । रस्येति शेषः । न्यायेति । यो यत्र स तद्धर्म-  
भागिति लौकिकन्यायेत्यर्थः । स्वार्थादिकार्याणां क्रमस्य बोध्यत्वादाह—नपुंसकेति ।  
क्वचिदित्यनेन बहुषु स्थलेषु तदनुवृत्ति सूचिता । प्रकृतीति । आद्यादित्वात्षष्ठ्यन्ता-  
त्तसिः । अन्यथा, एतदभावे । तेन, स्त्रियामिति पदेन । ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वाद्ब्र-  
नशोऽपि सिद्धिर्बोद्ध्या ॥ ८३ ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । क्वचित् । तथा च डीञ्च स्यादिति भावः ।  
टचैवान्तोदेति । राजाह इतीति भावः । द्वित्रितीति । यथा चैतत्तथा स्पष्ट कौस्तुभे ।  
वृद्धिसंज्ञाविधायके सूत्रे ॥ ८४ ॥

जनु शतानीत्यादौ नुमि कृते षट्संज्ञा प्राप्नोति ततश्च लुक्स्यात्तथो-  
पादास्तेत्यत्राऽऽत्वे कृते 'स्थाध्वोरिच्च' (१।२।१७) इतीत्वं  
प्राप्नोत्यत आह—

संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ ८५ ॥

संनिपातो द्वयोः संबन्धस्तन्निमित्तो विधिस्तं संनिपातं यो विहन्ति  
तस्थानिमित्तम् । उपजीव्यविरोधस्यायुक्तत्वमिति न्यायमूलैषा ।

अत एवात्र संनिपातशब्देन न पूर्वपरयोः संबन्ध एव किंतु विशेष्य-  
विशेषणसंनिपातोऽपि गृह्यते । अत एव ग्रामणि कुलमित्यादौ नपुंसकह्र-  
स्वत्वेऽपि 'पिति कृति' (६।१।७१) इति तुम् । प्रातिपदिका-

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । आत्व इति । दीडा ल्यपि चेतीति मावः ।  
स्थाध्वोरिति । अस्य घृत्वादित्यादिः । यत्तु सीरदेवादय आनन्तर्यलक्षणो विधिस्तद्वि-  
घातस्यानिमित्तम् । यदानन्तर्येण यो विहितस्तदानन्तर्यमसौ न विरुणद्धीत्यर्थः । यत्संबन्धेन  
यो नातस्तस्य स न विघातक इति यावत् । विघात इत्यत्र भावे घञित्याहुः । तन्न । वक्ष्य-  
माणदूषणगणापत्तेः । तद्ध्वनयन्नाह—संनिपात इति । द्वयोः, पूर्वपरयोर्विशेषणविशो-  
ष्ययोश्च । तन्निमित्त इति बहुव्रीहिः । विधिरित्यत्र कर्मणि किः । तद्विघात इत्यत्र कर्म-  
ण्यणित्याह—तं समिति । यद्यपि सीरदेवेनोक्तमत्र ज्ञापकं न तिस्रिति निषेधः । स च  
विभक्तिनिमित्तयोस्तिष्ठत्तस्त्रोरनया ङीप प्रत्यनिमित्तत्वाद्दीर्घप्रासावुपपद्यते । अन्यथा तद्व्य-  
वहितत्वान्न स्यात् । ङीपश्च दीर्घादीर्घाभ्यामविशेषादिति । यत्तु भ्रान्तो नेदं ज्ञापक  
युक्तम् । स्वन्नादिषु तयोः पाठान्दीर्घनिषेधेन तत्साफल्यत् । प्रत्युत तत्पाठादनित्येयमिति ।  
तन्न । कृन्मेजन्त इति सूत्रस्थैतत्परिभाषाफलत्वखण्डकङ्गीबभावज्ञापकपरमाप्यस्वारस्येन तयो-  
स्तत्र पाठस्थानार्थत्वात् । अत एवैतदनित्यत्वे ज्ञापकं वक्ष्यति—कष्टायेत्यादि । अन्यैर्वाऽचि  
ह्रस्वश्चेत्येव सिद्धे ङिति ह्रस्वश्च वाऽमीति सूत्रद्वयकरणमस्या ज्ञापकम् । तद्वि भ्रूणामि-  
त्यादौ नुडर्थम् । अन्यथा न स स्यात् । नुड्यजादिप्रत्ययसंबन्धविनाशादित्युक्तम् ।  
तथाऽपि वक्ष्यमाणदूषणगणापत्त्या तदयुक्तमिति ध्वनयन्नाह—उपजीव्येति ।

तत्र तमेव दूषणं सूचयन्द्वयोः संबन्ध इत्येतत्परिष्करोति—अत एवेत्यादिना केचिदित्य-  
न्नेन । अत एव, ज्ञापकं विहाय न्यायमूलकत्वस्योक्तत्वादेव । संबन्ध एव, आनन्तर्याख्य  
एव । संनिपातोऽपि, तयोर्विशेष्यविशेषणभावाख्यसंबन्धोऽपि । अस्या ज्ञापकमूलकत्वे तु  
तत्र तदसत्त्वात्तस्य सजातीयापेक्षत्वात्तद्ग्रहणं न स्यात् । एतत्फलमाह—अत एवेति ॥  
विशेष्यविशेषणभावसंबन्धस्यापि ग्रहणादेवेत्यर्थः । ग्रामणीति व्यस्तं पदं क्विबन्तप्रकृतिकम् ।  
त्वेऽपीति । अपिना वक्ष्यमाणसमस्तोदाहरणं उत्तरपदहेतुकह्रस्वके तुगभावस्य पूर्वसंबन्ध-



जन्तत्वसंनिपातेन जातस्य ह्रस्वस्य तद्विघातकत्वात् । तुक्प्रजन्तत्व-  
विघातः स्पष्ट एव ।

न चार्थाश्रयत्वेन ह्रस्वस्य बहिरङ्गन्तयाऽसिद्धत्वम् । अर्थकृतबहिरङ्गत्वा-  
नाश्रयणस्योक्तत्वात् । किं च 'पत्वतुकोरसिद्धः' (६।१।८६) इत्येतद्बलात्कृ-  
तितुग्रहणाच्च तुग्विधौ बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तेः । सर्वविधसंनिपात-  
ग्रहणादेव वर्णाश्रयः प्रत्ययो वर्णविचालस्यानिमित्तं स्यादित्येतत्परि-  
भाषादोषनिरूपणावसरे वार्तिककृतोक्तम् । न हि प्रत्ययः पूर्वपरसंनि-  
पातनिमित्तकः स एव च संनिपातशब्देन गृह्यत इति मत्वा न  
प्रत्ययः संनिपातनिमित्तक इति शङ्कायां तदभ्युपेत्यैवाङ्गसंज्ञा तर्ह्यनिमित्तं  
स्यादित्येकदेशिनोक्तमिति न तद्भाष्यविरोधः ।

किं चैवं शैवो गार्ग्यो वैनतेय इत्यादावप्यङ्गसंज्ञाया लोपनिमित्तत्वा-

ग्रहणेनैव सिद्धि सूचिता । अजन्तसनीतिपाठः । तयोस्तदाख्यसंबन्धेनेत्यर्थ । अजन्तत्व-  
सनीति पाठे द्वद्वोत्तर त्व । सचोक्तरूपसंबन्धार्थक एव । कृतद्धितेति न्यायात्तद्रूपसंबन्धेनेत्यर्थ  
इति केचित् । तन्न । द्वद्वेऽजन्तेत्यस्य पूर्वनिपातापत्तेः । तस्मादत्वक एव पाठः । षष्ठीतत्पु-  
षोत्तरपदकः षष्ठीतत्पुरुषः फले तु न भेद इत्यन्ये । वस्तुतस्तु सत्वक एव पाठः । प्रातिपदिक-  
स्याजन्तत्वरूपविविशेषणेन यः सवन्धस्तेनेत्यर्थस्य सत्त्वादिति बोध्यम् । तद्वीति ।  
सनिपातविघातकतुगानिमित्तत्वादित्यर्थः । लक्षणप्रतिपदोक्तेति न्यायेन तु न निर्वाहः ।  
स्वतः सिद्धवद्भस्वपदविहितस्यापि प्रतिपदोक्तत्वात् । एवमर्थस्यान्यत्राऽऽवश्यकत्वात् । शीघ्र-  
विलम्बोपस्थित्योरेव तयोर्बीजत्वादिति दिक् । यत्राशप्रयुक्तस्तत्राशस्तर्माह—तुंकीति ।

उक्तफलान्यथासिद्ध्या नात्र तस्य ग्रहणामिति कैयटाद्युक्ति खण्डयति—न चेति ।  
अर्थो नपुंसकत्वरूपः । तदाश्रयणमतेऽप्याह—किं चेति । अन्यथा तथैव सिद्धे तुक्  
कृतितुकोर्ग्रहणानर्थक्य स्पष्टमेव । एवमत्र तद्ग्रहणे फलमुक्त्वा प्रमाणमाह—सर्वेति ।  
उभयविधेत्यर्थः । नन्वेवमुत्तरभाष्यविरोधापत्तिरत आह—न हीति । हिर्निश्चये ।  
चो ह्यर्थे त्वर्थे वा । क्वचिदचः पाठः । मत्वेति । अनेनोक्ताशयमजानानस्येय शङ्केति  
सूचितम् । उक्तहेतोरभ्युपेत्यवादत्वादेवाऽऽह—एकदेशीति ।

ननु कैयटाद्युक्तीत्या फलाभावेनात्र तद्ग्रहणेन पूर्वत्रारुच्यैव तद्ग्रन्थप्रवृत्तिस्तदाशय  
एव वा तेन प्रकाश्यत इति सिद्धान्त्युक्तिरेव साऽत आह—किं चैवमिति । तस्य  
सिद्धान्त्युक्तित्व इत्यर्थः । उक्तप्रकारेणेत्यर्थो वा । बहुषु दोषसूचनायानेकोदाहरणोपन्यासः ।  
दावपीति । अपिर्द्वाक्षिसमुच्चायकः । नापत्या, तुल्यया । एव च वार्तिककृतस्तथेष्टत्वे प्रत्ययो

१ ड पाठोऽपेक्षितः प्रा° । २ ड. 'रेवैत°' । ३ क. ख. ड. °क् । तुकीति । ४ ड. °माहे-  
त्यर्थः । ५ ड. उक्ते हे° ।

नापत्या वर्णाश्रय इत्यस्य वैयर्थ्यम् । ग्रामणिकुलं ग्रामणिपुत्र इत्यादा-  
वुत्तरपदनिमित्तके ह्रस्वत्वे यथाकथंचिद्बहिरङ्गपरिभाषयाऽपि वारणं  
संभवतीति 'कृन्मेजन्तः' ( १ । १ । ३९ ) इत्यत्र 'ह्रस्वस्य पिति'  
( ६ । १ । ७१ ) इति सूत्रे चैकदेशिना तथा परिभाषया तुग्वारितो  
भाष्ये । अत एव परिभाषाफलत्वेनेदमुक्तं 'कृन्मेजन्तः' ( १ । १ । ३९ ) इति सूत्रे  
वार्तिककृतेति केचित् ।

संनिपातलक्षणविधित्वमस्या लिङ्गम् । स्वप्रवृत्तेः प्राक् स्वनिमित्त-  
भूतो यः संनिपातस्तद्विधातस्य स्वातिरिक्तशास्त्रस्य स्वयमनिमित्तमिति  
फलति ।

वर्णविचालस्येत्येव वदेदिति न तत्रारुच्य तत्प्रवृत्तिर्नापि तदाशयप्रकाशनमिति तथैव युक्तमिति  
भावः । नन्वेव समस्ते ग्रामणिकुलमित्यादावुत्तरपदहेतुकह्रस्वत्वेऽपि तुकोऽनयैव वारणसंभवे-  
नान्यथावारणपरभाष्यविरोधोऽत आह—ग्रामणीति । षष्ठीतत्पुरुषः । नाजानन्तर्य इति-  
निषेधार्थस्य जागरूकत्वादाह—यथाकथंचिदिति । निषेधार्थमनाश्रित्येत्यर्थः । षयाऽ-  
पीति । अपिरेतपरिभाषासमुच्चायकः । संभवेति । न तु वास्तव वारणमिति भावः ।  
इतिहेतौ । कृन्मेजन्त इत्यत्रेति पाठ । उक्तज्ञापकानुगिवौ तदप्रवृत्तेरुक्तहेतोश्चाऽऽह—  
चैकेति । तथा, बहिरङ्गपरिभाषया । एतेन तत्रत्यकैयटाश्चिन्त्य एवेति सूचितम् ।  
अत्रार्थे युक्त्यन्तरमपि सूचयन्नाह—अत एवेति । उक्तरीत्योक्तभाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वा-  
देवेत्यर्थः । परीति । एतत्परीत्यर्थः । नेद, तुग्वारणफलक ग्रामणिकुलमित्यादि ।  
यद्यप्युपजीव्येत्यादिकृतेत्यन्तः प्रागुक्तः सर्वोऽर्थः सिद्धान्त एवेति केचिदित्यनुपपन्न तथाऽपि  
प्रागुक्तः परिभाषाया यथाश्रुतोऽर्थः कैयटादिसमतार्थसंग्राहकत्वान्न सिद्धान्त इति सूचनाय  
तत् । तद्ध्वनयन्सिद्धान्त वक्ष्यति स्वेतीति । केचिद्भाष्यतत्त्वविद् इत्यर्थक तदित्यन्ये ।  
उपायस्योपायान्तरादूषकत्वान्न तत्तदेकदेश्युक्तित्वसाधकमित्यरुचरत एवेत्यादिचरममात्रौक्तौ  
तद्बोधकमिति परे ।

परिभाषाया लिङ्गवत्त्वादिनियमात्फलमुक्त्वा लिङ्गमाह—संनीति । संनिपातलक्षण-  
विधिः स्वप्रवृत्त्युत्तरीवद्यमानसंनिपातस्य विधातकस्यानिमित्तमिति कैयटादीष्टार्थो न युक्त  
इति ध्वनयंसंतं समित्यादि परिष्करोति—स्वप्रवृत्तेः प्रागिति । अत्र स्वादिपदेन  
संनिपातलक्षणविधिः । अयं भावः—य संनिपात निमित्तीकृत्याग्निमकार्योपजीव्य यत्कार्यं  
प्राप्त तस्य लेशतस्तद्विधातकत्वेऽपि लेशतोऽनुवृत्तसंनिपातसर्वाशविधातकशास्त्रान्तरानिमि-

१ घ. °रुचिर्ना° । २ घ. °बेधम° । ३ ड. °द, तत्र तु° । ४ घ. °त्रोक्तबोध° । ५ घ.  
°स्तत्प्रवृत्त्यादि । ६ ग. ड. अत्सनि° ।

नन्वेवं रामायेत्यादौ 'सुपि च' (७।३।१०२) इतिदीर्घाना-  
पत्तिः । अदन्ताङ्गुलेसंनिपातेन जातस्य यादेशस्य तद्विघातकत्वात् ।  
न च यज्जादित्वसापेक्षदीर्घस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वान्नात्र संनिपातवि-  
घात इति वाच्यम् । आरोपितासिद्धत्वेऽपि वस्तुतस्तद्विघातस्य ज्ञाय-  
मानत्वेनैतत्प्रवृत्तेः । किं चान्तरङ्गे कर्तव्ये बहिरङ्गस्यासिद्धत्वेऽपि तत्र  
कृते तस्यासिद्धत्वे मानाभावः । किं चाऽऽतिदेशिकसंनिपातविघाता-  
भावमादायैतदप्रवृत्तौ गौरीत्यादौ संबुद्धिलोपेऽपि स्थानिवच्चेन ह्रस्व-  
निमित्तसंनिपातविघातामावात्तत्रैतस्यातिव्याप्तिपर 'कृन्मेजन्तः' ( १  
१।३९ ) इति सूत्रस्थभाष्यासंगतिः । संनिपातस्याशास्त्रीयत्वान्नात्र  
स्थानिवस्वमिति चेत्तर्ह्यत्रासिद्धत्वमपि कथमिति विभावय । अशास्त्री-  
येऽसिद्धत्वाप्रवृत्तेः 'ईदूदेत्' ( १।१।११ ) इति सूत्रे कैयटेन

त्त्वमित्यर्थः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्प्रत्यासत्तेश्च । अत एवैओडिको गुणेति सूत्रभाष्यसंगतिः ।  
तत्रत्यकैयटादीनां तु श्रमाद् एव । उक्तहेतोः । सिद्धान्ते जातिपक्षेऽनिर्वाहाच्च । स्पष्टं  
चेदमुद्योतादाविति ।

उक्ताशयेनैव शङ्कते—नन्विति । एवं, परिभाषाङ्गीकारे । नापत्तिः, अप्राप्तिः ।  
तद्वीति । अदन्ताङ्गुलेसंनिपातविघातकदीर्घविध्यनिमित्तत्वादित्यर्थः । संनिपातविघात-  
इत्यत्र भावे घञ् । एवमग्रेऽपि । एव च दीर्घविधौ तद्विघातकत्वान्नैतत्प्रवृत्तिरिति भावः ।  
ननु संनिपातलक्षणविधिनिमित्तनिमित्तकत्वस्यात्राङ्गीकारात् किमस्या अन्तरङ्गत्वमुत यादे-  
शस्येति चेत्तत्र नाऽऽद्य इत्याह—आरोपितेति । नैतत्प्रवृत्तेरिति । स्वरूपसद्विघात-  
एवैतत्प्रवृत्तौ निमित्तमिति भावः । नान्त्य इत्याह—किं चान्तेति । अत इति शेषः ।  
एवमग्रेऽपि । तत्र, अन्तरङ्गे । ननु तज्ज्ञानमेवैतत्प्रवृत्तौ निमित्तमास्तामित्यनाद्यदोषेण  
तत्पक्षः सम्यगेवात आह—किं चेति । गौरीत्यस्य हे इत्यादिः । स्थानीति । आद्य-  
सूत्रेणेति भावः । नियमशास्त्राणां निषेधमुखेन प्रवृत्तिरिति पक्षेणोदम् । विधिमुखेनेति सिद्धान्त-  
पक्षे प्रत्ययलक्षणेनेति बोध्यम् । ह्रस्वेत्यस्याम्बार्थेर्तात्यादिः । तत्र, हे गौरीत्यादौ ।  
भाष्येति । नदीह्रस्वत्व संबुद्धिलोपस्यानिमित्तं स्यादित्यादिभाष्येत्यर्थः । तदसंगतिनिरा-  
साय शङ्कते—संनोति । अमावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वमिति मत इदम् । अतिरिक्तत्वे तु  
फलितार्थकथनमिदम् । वस्तुतः स एव नेति मञ्जूषाया स्पष्टमिति बोध्यम् । नात्र, संनिपाते ।  
तर्ह्यत्रेति पाठः । उक्तोऽर्थः । क्वचिदुभयत्र तत्रेत्येव पाठः । तत्राऽऽद्यस्य हे गौरीत्यादौ  
द्वितीयस्य समायेत्यादावित्यर्थः । कथमिति । अत एव पुगह्रस्वत्वस्यादीदपदिति भाष्य-

स्पष्टमुक्तत्वात् । एवं च पूर्वत्रासिद्धीयेऽपि कार्यं एतत्परिभाषाप्रवृत्तिर्भवत्येवेति चेन्न । 'कष्टाय' ( ३ । १ । १४ ) इति निर्देशेनैतस्या अनित्यत्वात् ।

ययोः संनिपातस्य विघातकं शास्त्रं तयोः संनिपातनिमित्तकविधावुपादानमपेक्षितमिति तु नाऽऽग्रहः । अत एव दाक्षिरित्यत्राकारान्तप्रकृतीञ्जसंनिपातनिमिताङ्गसंज्ञाऽनया परिभाषयाऽल्लोपस्य निमित्तं न स्यादित्याशङ्क्यानित्यत्वेन समाहितं 'कृन्मेजन्तः' ( १ । १ । ३९ ) इति सूत्रे भाष्ये । न ह्यङ्गसंज्ञायामदन्तस्याङ्गसंज्ञेत्युक्तमस्ति । न च कुम्भकारेभ्य आधय इत्यादावव्ययसंज्ञाया अनया परिभाषया धारणपरभाष्यासंगतिः । अनया परिभाषया लुङ्मा भूत् । अव्ययत्वं तु स्यादेव । लुका हि तदीयसंनिपातस्य विघातो नाव्ययसंज्ञया । संज्ञाफलं

संगतिरिति भावः । अत एवाऽऽह—स्पष्टमिति । अन्यथा भाष्यं विहाय कैयटपर्यन्तधावनासंगतिः स्पष्टैव । एव च, अशास्त्रीयेऽसिद्धत्वाप्रवृत्तौ च । नैतस्या इति पाठः । क्वचिन्नास्या इति पाठः ।

अस्याः सिद्धान्तार्थं उक्ते प्रागुपस्थितातिव्याप्तिमनित्यत्वेन परिहृत्य पुनस्तदर्थं द्वेषा शङ्का धारयन्परिष्करोति—ययोरित्यादिसुबाभयत्वादित्यन्तेन । ययोः संनिपातस्य विघातकं शास्त्रं तयोः संनिपातनिमित्तकविधावुपादानमिति पाठः । उपादानमित्यस्य विशिष्येत्यादिः । अत एवाग्रिमात एवेत्यादिग्रन्थसंगतिरिति बोध्यम् । ययोः संनिपातः कार्यस्य निमित्तं तयोः सूत्र उपेति पाठान्तरम् । उक्त एवार्थः । अत्र भाष्यविरोधापत्तेरिति हेतु सूचयन्नुक्तं द्रष्टव्यमिति—अत एवेति । तदनाग्रहादेवेत्यर्थः । अत एवेत्यस्य समाहितमित्यत्रान्वयः । शङ्काया एकदेश्युक्तित्वस्य प्रागुक्तत्वात् । अन्यथा प्रागुक्ताशयानभिज्ञोक्तत्वेन शङ्कायास्तत्त्ववदेतदनाभिज्ञोक्ततया शङ्कायोजनेऽपि तथैव समाधेर्वक्तव्यतया तथासमाधानासंगतिः स्पष्टैवेति भावः । तदेवाऽऽह—न ह्यङ्गेति । न हि तद्विधावदन्तस्येत्यङ्गसंज्ञेत्युक्तमित्यर्थः । अत्र भाष्यविरोधं परिहर्तुं शङ्कते—न चेति । त्यादाविति । आदिना चिकीर्षव इत्यादिसंग्रहः । अण्व्युप्रत्ययानां कृत्वादेत्वाद्युत्तरं कृन्मेजन्त इति प्राप्तिर्बोध्या व्यपदेशिवद्भावेन । न चान्तग्रहणान्नित्ययोगबहुव्रीहिणोपदेश एजन्त इत्यर्थादत्र न दोषः । अनयैव सिद्धेऽन्तग्रहणं न कार्यमिति भाष्याशयात् । असंगतिमुपपादयति—अनयेति । नन्वेवमफलत्वाच्च संज्ञाऽत आह—संज्ञाफलमिति । एतदिति ।

१ घ. विशेष्चेत्या° । २ ग. ङ. °ति त्वपाठः । अस्या तत्त्वेनानुद्देशात् । विधौ तयोस्तस्यात्त्वाच्च । अ° । ३ ग. घ. °भिज्ञत्वे° । ४ ग. घ. °भिज्ञतया । ५ घ. °न्तस्याङ्ग° ।

त्वकच्स्यादिति वाच्यम् । एतदुदाहरणपरभाष्यप्रामाण्येन साक्षात्परम्परया वा स्वनिमित्तसंनिपातविघातकस्य स्वयमनिमित्तमित्यर्थेनादोषात् । एतेनात्राकच्स्यादित्यपास्तम् । न च कार्यकालपक्षे लुगेकवाक्यतापन्नसंज्ञाबाधेऽप्यकजेकवाक्यतापन्ना स्यादिति वाच्यम् । अन्तरङ्गायां तदेवाक्यतापन्नसंज्ञायां बहिरङ्गगुणादेरसिद्धत्वात् । लुगेकवाक्यतापन्ना तु न गुणादितोऽन्तरङ्गोभयोरपि शब्दतः सुबाद्याश्रयत्वात् ।

‘ न यास्योः ’ ( ७।३।४५ ) इति निर्देशाच्चैषाऽनित्या । तेन नातिप्रसङ्गः । स्पष्टा चेयं ‘ कृन्मेजन्तः ’ ( १ । १ । ३९ इति सूत्रे भाष्ये ।

अस्या अकज्रहितोदाहरणेत्यर्थः । इत्यर्थेनेति । अस्या इति शेषः । कञ्चिदेतदर्थेनेति पाठः । एतेन, उक्तार्थेनानयाऽव्ययत्ववारणेन । नन्वेवमपि भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वमावश्यकमेवेति किमर्थं तथार्थकरणमित्याशयेनाऽऽशङ्कते—न चेति । एकवाक्यताया मुख्यत्वाच्चाऽऽह—कार्येति । जेकेति । तस्याः परम्परया तत्त्वेऽप्यस्या अतत्त्वादिति भावः । अन्तरङ्गेति । अनैमित्तकत्वेनापरानिमित्तकत्वेन वा । तथा चैजन्त एव नेति भावः । नन्वेव तस्या अप्येव वारणेन भाष्यासंगतिरेवात् आह—लुगेकेति । दितोऽन्तरङ्गेति पाठः । सुबाद्याश्रयत्वादिति । सुपि परे कृद्य एजन्तस्तदन्तमव्ययसज्ञ तस्मात्तस्य च लुगित्यर्थः । आदिनाऽव्ययरूपप्रकृत्यादिसंग्रहः । तथा चैकैकनिमित्तकत्वेस्योभयत्र तुल्यत्वेनानैमित्तिकत्वादि न तत्रेति भावः । यद्यपि प्राग्वदपरनिमित्तकत्वेन तत्त्वं सुवचं तथाऽप्यल्पनिमित्तकत्वादिना वैपरीत्यमेवं । तस्य ततः प्राबल्यस्य प्रागुक्तत्वात् । उक्तभाष्यमप्यत्र गमकामिति भावः । भाष्यप्रामाण्यात्तत्र यथोद्देश एवेत्यन्ये । वस्तुतस्तु गुणस्याधिकनिमित्तकत्वेनान्यनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वं तत्र सुवचम् । किं चैकवाक्यत्वेऽपि वाक्यैकवाक्यतया सज्ञाया र्सनिमित्तकत्वेमेव दुरुपपादमित्यन्तरङ्गायामिति युक्तमेवेति तथा तस्या वारणेऽप्युपायस्योपायान्तरादूषकत्वेन न भाष्यासंगतिरिति बोध्यम् । अनित्यत्वात्तत्र तदप्रवृत्तिरिति भाष्याशय इत्यन्ये ।

ननु कष्टायेतिनिर्देशेन दीर्घ एवानित्यत्व स्यादत् आह—न येति । अत एव च—प्रयोगः । भाष्य इति । तत्र हि कुम्भकारेभ्य इत्यादावनातिप्रसङ्गार्थं कृतस्यानन्यप्रकृ-

१ घ. 'क्यत्वाय सु' । २ ग. 'व. । भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्व परिहरति—लु' । ३ ड. परे क्यजन्त' । ४ घ. 'चैक' । ५ घ. 'त्वस्यतु' । ६ घ. 'कत्वेन य' । ७ घ. 'व स्यात्ततः । ८ घ. क. 'समैमि' । ९ घ. ड. 'कत्व दु' । १० घ. ड. 'दमेवेत्य' । ११ घ. 'मेव । एवं तस्या वा' । १२ ड. 'स्याथर्षे कृ' ।

अस्या अनित्यत्वे फलानि भाष्ये परिगणितानि । वर्णाश्रयः प्रत्ययो वर्णविचालस्यानिमित्तम् । दाक्षिः । आत्वं पुग्विधेः । क्रापयति । पुग्ल्हस्वत्वस्य । अदीदपत् । त्यदाद्यकारष्टाव्विधेः । या सेति । इङ्विधिराकारलोपस्य । पपिवान् । ‘ ह्रस्वनुङ्भ्यां मतुष् ’ ( ६ । १ । १७६ ) ‘ अन्तोदात्तादुत्तरपदात् ’ ( ६ । १ । १६९ ) इति मतुब्बिभक्त्युदात्तत्वं पूर्वनिघातस्य । अग्निमान् । परमवाचा । नदीह्रस्वत्वं संबुद्धिलोपस्य । नदि कुमारीत्यादि । यादेशो दीर्घत्वस्य । कष्टाय । इतोऽन्यत्र प्रवृत्तिरेव दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तेरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८५ ॥

ननु पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य पञ्चेन्द्र इत्यादौ ‘ द्विगोलुक् ’ ( ४ । १ । ८८ ) इत्यणो लुकि ‘ लुक् तद्धित ’ ( १ । २ । ४९ ) इति स्त्रीप्रत्ययलुक्क्यानुकः श्रवणापत्तिरत आह—

संनियोगशिष्टानामन्यतरापाय उभयोरप्यपायः ॥ ८६ ॥

अत्र च ‘ बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ’ ( ६ । ४ । १५३ ) इति सूत्रस्थं छग्रहणं ज्ञापकम् । तद्धि छमात्रस्य लुग्बोधनद्वारा कुको

तिरिति वार्तिकस्य खण्डनायेयमुक्ता । परिभाषाऽनित्यत्वयोर्व्यवस्थामाह—अस्या इति । नन्ववर्णाश्रय इति पाठ आत्रेयादीनामसग्रहोऽत आह—वर्णाश्रय इति । विचालो लोपः । अनिमित्तमित्यस्याग्रे सर्वत्र सबन्धः । अनया स्यादित्यस्य सर्वत्र शेषः । दाक्षिरित्यादिलक्ष्यनिर्देशः । या सेतीति । इतिराद्यर्थकः । मतुब्बिभक्त्युदेति । मतुब्बिभक्त्योरुदात्तत्व इत्यर्थः । जातावेकवचनम् । यथासख्यमन्वयः । ह्रस्वेति सूत्रेऽन्तोदात्तादित्यस्यानुवृत्तिर्बोध्या । त्यादीति । आदिना गौर्यादिपरिग्रहः । यादेशो दीर्घत्वस्य कष्टायेति पाठः । इतः, नवभ्यः । यद्यपीदानीतनभाष्यपुस्तकेषु चरमवार्तिकं न दृश्यते तथाऽपि तद्भ्रष्टमिति बोध्यम् । अत्र एवैते दोषाः समा इति भाष्यसंगतिस्तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ८९ ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । इत्यादाविति । आदिना पञ्चधीवेत्यादौ रकारपरिग्रहः । तत्र पञ्चभिर्धीवरीभिः क्रीत इत्यर्थ आर्हीयस्य ठकोऽव्यर्थेति लुक् । संनीति । निर्धारणषष्ठी । अन्यतरेति । शास्त्रतः प्राप्ते सतीति शेषः । छमात्रेति । मात्रशब्दोऽवधारणे । इत्यर्थः, इतिप्रयोजनकम् । एतदभावे बिल्वकादितः परत्वं छस्यैव न तु कुक इति छग्रहणं विनाऽपि तस्यैव लुगिति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । नन्वकारोच्चारणात्स्वार्थ-

निवृत्तिर्यथा स्यादित्यर्थम् । कृतकुगागमा नडाद्यन्तर्गणबिल्वाद्य एव तत्र निर्दिष्टा बिल्वकादिशब्देन ।

न चैवमपि छग्रहणं व्यर्थम् । कृतकुगागमानुवादसामर्थ्यादेव तदनिवृत्तिसिद्धेः । अन्यथा बिल्वादिभ्य इत्येव वदेत् । लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषया बिल्वादिपुरस्कारेण विहितप्रत्ययस्यैव लुग्विधानान्नातिप्रसङ्ग इति वाच्यम् । ततोऽपि प्रतिपदोक्तत्वेन 'बिल्वादिभ्योऽण्' (४।३।१३६) इति विकाराद्यर्थस्य लुगापत्तिवारणार्थं कुगनुवादचारितार्थ्यात् ।

कप्रत्ययान्तग्रहणात्तत्प्रकृतिकान्यप्रत्ययव्यावृत्त्या तस्य साफल्यत्कथ ज्ञापकताऽत आह—कृतेति । अत्र हेतुगर्भं विशेषणमाह—नडाद्यन्तरिति । तत्र, बिल्वकादिभ्य इति सूत्रे । आगन्तुनाऽकारणेति शेषः । शीघ्रोपस्थितेः । अन्यथा छग्रहणेऽपि कप्रत्ययान्ताच्छस्यैवासभवेन सूत्र व्यर्थमेव स्यादिति भावः ।

अचारितार्थ्येन ज्ञापकत्व विघटयति—न चैवमपीति । न चेत्यस्य वाच्यमित्य-  
श्रान्वयः । उक्तीत्योक्तार्थे ज्ञापितेऽपीत्यर्थः । नुवादेति । निर्देशेत्यर्थः । तदानीति ।  
कुकोऽनिवृत्तीत्यर्थः । अन्यथा, तदनुवादस्य तदनिवर्तकत्वाभावे । इत्येवेति । ततः परस्य  
प्रत्ययस्य लुगित्यर्थ उक्तन्यायेन कुकोऽपि निवृत्तिसिद्धेः । तथा च छग्रहणस्य चारिता-  
र्थ्येन ज्ञापकोपपत्तावपि तन्निर्देशवैयर्थ्यं दुर्द्वन्द्वमेवेति तैस्सामर्थ्यात्तदनिवृत्तिसिद्ध्या तद्वै-  
यर्थ्यं सुस्थमेवेति भावः । ननु तथा दुर्वचम् । अनतिप्रसङ्गाय तन्निर्देशावश्यकत्वात् ।  
तथाहि—तथा सति बिल्वेभ्य इत्यादावतिप्रसङ्गः । भस्येत्यधिकारेण निर्वाहे तु बिल्वाये-  
त्यादौ सः । हलस्ताद्धितस्येति तद्धितग्रहणानुवृत्त्या न स इति तु न । तस्यावयवषष्ठ्यन्त-  
त्वादस्वरितत्वाच्च । तस्येदमित्यणो लुगापत्तेश्च । एतेनाऽऽपत्यस्य चेत्यतस्तद्धित इत्यस्या-  
नुवृत्तिरपि निरस्ताऽत आह—लक्षणेति । प्रतिपदोक्तत्वस्वरूपमाह—बिल्वादीति ।  
बिल्वादितो विहितेत्युक्ते कुको निवृत्तिर्न स्यादत आह—पुरस्कारेणेति । विशिष्यानु-  
संधानेनेत्यर्थः । एव च तत एवेष्टसिद्ध्या तन्निर्देशानर्थक्यापत्तिरेवातस्तसार्थक्याय तथोक्तौ  
ज्ञापितेऽपि तदचारितार्थ्यं सिद्धमित्यज्ञापकत्वमिति भावः । ततोऽपि, नडादिच्छादपि ।  
प्रतीति । विशिष्योच्चारितत्वेनेत्यर्थः । णितीति । विहितस्येति शेषः । विकारा-  
द्यर्थस्येति । आदिनाऽवयवपरिग्रहः । अण इति शेषः । ताथर्यादिति । एवं चानया  
प्राप्तकुगनिवृत्त्यभावाय छग्रहणस्य चारितार्थ्याज्ज्ञापकत्वं सुस्थमिति भावः । नन्वेवमप्युक्त-  
मेतत् । अनतिप्रसङ्गाय तस्य चारितार्थ्येन ज्ञापकत्वासंभवात् । तथा हि छग्रहणाभावे

१ घ. 'षः । अन्यथा शीघ्रोपस्थितेः कप्रत्ययान्तग्रहणेऽपि छस्यै' ) २ ड. 'न्या. अनु' ।  
३ छ. 'तैकाभा' । ४ घ. पुस्तके 'रूपपादमे' इति पाठान्तरम् । ५ घ. तत्त्वासामर्थ्यादनि' । तत्रैव  
'थ्याद्भानि' इति पाठान्तरम् ।

समुच्चयार्थकचशब्दयोगे तु विधेययोरेककालिकत्वैकदेशत्वानियमा-  
ख्यायसिद्धाऽपीयम् । यत्तु णाविष्ठवादित्यनेन पुंवत्वविधानमेतदनित्यत्व-  
ज्ञापनार्थमन्यथैतयतीत्यादौ टिलोपेनैव ङीपि निवृत्ते संनियोगशिष्टपरि-  
भाषया नस्यापि निवृत्त्यैतयतीत्यादिसिद्धौ पुंवत्ववैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति 'टिः'  
( ६ । ४ । १५५ ) इति सूत्रे कैयटस्तन्न । इडविडमाचष्ट ऐडविडयती-  
त्यादौ पुंवत्वस्याऽऽवश्यकत्वात् । ऐनेयः श्यैनेय इत्यादि तु स्थानिव-

बिल्वकादिभ्य इत्युक्तौ कृतकुगागमनिर्देशस्यैवानिश्चयेन प्रत्युताकारोच्चारणेन कप्रत्ययान्त-  
स्यैव ग्रहणापत्तौ कप्रत्ययान्तस्थले बिल्वकेभ्य इत्यादावुक्तीत्या वारणेऽपि बिल्वकायेत्यादौ  
तस्येदमित्यणन्ते कोपधाच्चेति विकाराद्यर्थकाणन्ते च बैल्वकमित्यादौ चातिप्रसङ्गः । यत्त्व-  
जुदात्तादेश्चेत्यजन्ते स इति कैयटस्तन्न । अणोऽपवादत्वात् । नस्तद्धित इत्यतस्तद्धितग्रहणा-  
नुवृत्त्या सिद्धान्ते स्थितयाऽन्यत्र क्लृप्तया तद्धिते पर इत्यर्थेन तत्र निर्वाहे तु चतुर्थ-  
न्तर्गतमत्वार्थकनडादिच्छान्तप्रकृतिकमवार्थकाणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्ते बैल्वकीय-  
मित्यत्र प्रागुक्ताणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्तप्रकृतिकयोपधत्वहेतुकनुजन्ते बैल्वकीयैक-  
मित्यत्र चैकदेशविकृतन्यायेन बिल्वकात्परत्वेनातिप्रसङ्गः । बिल्वकादिभ्यो विहितस्येति  
व्याख्यानाऽऽद्ये निर्वाहेऽप्यन्त्ये प्रागुक्ताणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्ते च स तदत्रस्थ  
एवेति भाष्याद्यनुपपन्नमेवेति चेत् । लक्षणप्रतिपदोक्तेति परिभाषया बिल्वकादिशब्दपुरस्का-  
रेण विहितस्येत्यर्थेनादोषात् । न चैवमप्यसभवो लक्ष्येऽतत्त्वादिति वाच्यम् । तथा भाविकु-  
गागमकबिल्वकादिशब्दपुरस्कारेण विहितस्येत्यर्थाङ्गीकारात् । गणपाठस्य शीघ्रोपस्थितिक-  
त्वात् । न हि कान्ताना कचित्पाठोऽस्ति । गणपाठसत्त्वेनैव च प्रकारवाचिता नादिशब्दस्य ।  
छग्रहणसत्त्वे तस्यैव सभवाच्च । एव च न वैपरीत्यादीत्यगत्याऽऽगन्तुनाऽकारेणैव निर्देश  
इति सर्वं युक्तमिति दिक् ।

योगे त्विति । तुनाऽन्यत्रास्या ज्ञापकसिद्धत्वमेवेति सूचितम् । नियमादिति ।  
कालिकदशिकसमनियतत्वरूपन्यासिप्रतीतेरित्यर्थः । यसिद्धाऽपीयमिति । अपिना  
ज्ञापकसिद्धत्वसमुच्चयः । चेयमिति पाठेऽप्येवम् । इत्यनेन, टेरित्यत्रत्यवार्तिकेन ।  
तत्र पुवद्भावस्य पाठात् । ज्ञापनार्थमिति । अत एव श्यैनेय इत्यादिसि-  
द्धिरिति भावः । अन्यथा, एतदनित्यत्वाभावे । नैवेति । एवः पुंवत्वव्यवच्छे-  
दाय । टेरिति सूत्र इति । तुरिष्ठे इत्यग्रिम इत्यर्थः । ऐडेति । न हीदं टिलोपेन  
सिध्यतीति भावः । आदिना दरदमाचष्टे दारदयतीत्यादिपरिग्रहः । नन्वेवमुक्तरूपासिद्धिरत  
आह—ऐनेय इति । आदिना रौहिणेय इत्यादिपरिग्रहः । स्थानीति । अचः



त्वेन सिद्धमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८६ ॥

ननु चुरा शीलमस्याः सा चौरित्यादौ 'शीलम्' (४।४।६१) 'छत्रादिभ्यो णः' (४।४।६२) इति णे ङीब्न प्राप्नोतीत्यत आह—  
नाच्छीलिकै णेऽण्कृतानि भवन्ति ॥ ८७ ॥

'अन्' (६।४।१६७) इत्यणि विहितप्रकृतिभावबाधनार्थं 'कार्मस्ताच्छील्ये' (६।४।१७२) इति निपातनमस्या ज्ञापकम् । ताच्छीलिकणान्तात् 'अणो ह्यचः' (४।१।१५६) इति फिडिसिद्धिरप्यस्याः प्रयोजनमिति नव्याः । ताच्छीलिक इत्युक्तेः 'तदस्यां प्रहरणम्' (४।२।५७) इति णे ङाण्डेत्येव । 'कार्मः' (६।४।१७३) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ ८७ ॥

परेत्यनेन । अत एव भस्याढ इत्यत्राढ इति सफलम् । एतेनास्या अनित्यत्वेऽढ इति प्रतिषेधो ज्ञापक इति सीरदेवाद्युक्तिः परास्ता । ज्ञापकसिद्ध न सर्वत्रेत्येवमनित्यत्व त्वस्येव । अत एव श्रौत्रमित्यादिसिद्धिः । अत एव समुदायनिपातनषक्षेण सह न फलभेदः । स्पष्टा चेय बिल्वकादिभ्य इति सूत्रे भाष्ये तदाह—इत्यन्यत्रेति । शेखरादावित्यर्थः ॥ ८६ ॥

उक्तपरिभाषाविषयस्य बौद्धस्य तद्धितस्याणश्च प्रसङ्गादाह—नन्विति । आदिना तापसीत्यादिपरिग्रहः । परिभाषाविषयत्वायानुवृत्त्यर्थमाह—शीलमिति । ङीब्नेति । विधायकाभावादिति भावः । ताच्छीलिति । ननु शीलमित्येवार्थो न तु तच्छीलमित्या केस्तच्छीलमितिवत् । एव च ताच्छीलिक इत्युक्तमिति चेन्न । प्रथमान्तार्थसन्नवि शीलरूपार्थभवंत्वेन ताच्छीलिकत्वोक्तेः । यद्वा यस्य तच्छील तस्य तच्छीलत्वात्तत्रभवत्वेनाऽऽर्थिकार्थमादाय तत्त्वोक्तेः । एतेन ताच्छील्य इत्यपि सिद्धम् । कृतानीति । अणा कृतान्यन्यत्र कार्याणीत्यर्थः । ज्ञापकमिति । कार्म इत्यत्र च्छत्रादित्वाणः । अन्यथा तदप्राप्त्या नस्तद्धित इत्येव सिद्धे तद्वैयर्थ्य स्पष्टमेवेति भावः । ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वाच्छत्रेस्येव । अत एव च्छत्रादिभ्योऽणिति न सूत्रितम् । एतेन तथैवोचितमिति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । नव्या इति । दीक्षितादय इत्यर्थः । अत एव परिभाषायामुपक्रमभाष्ये चाण्कृतानीति बहुवचनप्रयोगसगतिरिति तदाशयः । अनेनारुचिः सूचिता । तद्धीन तु तत्रापत्यार्थकाण एव ग्रहणेन सामान्यातिदेश इति न्यायेन तदनतिदेशः । अत एवोपसहारभाष्येऽणन्तादितीकार. सिद्धो भवतीत्येवोक्तमिति । तदस्यामिति । एव \* कुत्सने

\* गोत्रस्त्रिया. कु° ।

ननु कंसपरिमृद्भ्यामित्यादौ मृजेर्वृद्धिर्दुर्वारेत्यत आह—

धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ ८८ ॥

भ्रौणहृत्ये तत्त्वनिपातनमस्या ज्ञापकम् ।

धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानमिति पाठस्तु प्रसृद्धभिरित्यादौ 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्य' (६।१।५५) इत्यभापादनेन भाष्ये दूषितः । यत्कार्यं प्रत्ययनिमित्तकं तत्रैवं व्यवस्थापिका । तेन पदान्तत्वनिबन्धनं 'नशेर्वा' (८।२।६३) इति कुत्वं प्रणङ्भ्या-

ण च \* णफिञौ + वृत्तिभ्यो ण x आचरिभ्यो ण इत्यादावपि बोध्यम् ॥ ८७ ॥

प्रत्ययप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । दुर्वेति । किञ्चिन्तानां धातुत्वान्मृजित्वाद्भ्यामः प्रत्ययस्वाच्चेति भावः । इदमुपलक्षणम् । रज्जुमृद्भ्या देवदृग्भ्यामुदकमग्भ्या प्रणङ्भ्यां वार्त्रज्ञो देवगिरावित्यादावम्नुत्त्वलत्वाद्यापत्तिरपि बोध्या । धातोः, सामान्यस्य विशेषस्य वा । तत्प्रत्यये, तत्प्रकृतिकप्रत्यये । हृत्ये, तच्छब्दे । निपातनमिति । दाण्डिनायनेति सूत्र इति शेषः । अन्यथा भावे ष्यञि नस्तद्धित इति टिलोप बाधित्वा परत्वाद्धनस्त इति सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । उपधावृद्धयभावार्थं तु न निपातनम् । आदिवृद्ध्या बाधात् । नापि स्वरबाधवार्थम् । तस्येष्यमाणत्वात् । न च कुत्वाभावार्थं तत् । निपातनानामनेकप्रयोजनकत्वेन तावताऽप्यक्षतेः । यद्यपि तद्धिते परे तत्त्व न भवतीत्यस्येदं ज्ञापकमिति तत्र सूत्रे भाष्य उक्तं तथाऽपि मृजेर्वृद्धिरिति सूत्रभाष्यैकवाक्यतयाऽयमेवार्थस्तेन ज्ञाप्यत इति शब्दान्तरेण तत्र तथा भाष्य उक्तमिति बोध्यम् । परिभाषामनपेक्ष्योक्तमिति कैयटस्य तु प्रमाद एवेति भावः ।

प्राचामुक्तिं खण्डयति—धातोरिति । स्वरूपेति । विशेषेत्यर्थः । पाठस्त्विति । वार्तिककृदुक्त इति भावः । प्रत्ययेति । धर्मिग्राहकमानलब्धमिदम् । किं च सप्तम्यन्तपदेन यत्र प्रत्ययस्य निमित्तत्वं तत्रैवानियमप्रसङ्गे नियमार्थेषा धर्मिग्राहकमानात् । अत एव चाप्रशानिति निषेधः सार्थक इत्यपि बोध्यम् । एव च प्रत्यये परतो यद्धातोः कार्यमुच्यते तद्दातुसशब्दनेन विहितप्रत्यये परतो बोध्यमिति परिभाषार्थ इति भावः । प्रणङ्-

\* फाण्टाहृतिमिमताभ्या णफिञौ । + प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो ण । x शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः ।

मित्यादौ भवत्येव । इयङ्गादिविधौ तु नैषा । ' न भूसुधियोः ' ( ६ । ४ । ८५ ) इति निषेधेनानित्यत्वात् । ' मृजेवृद्धिः ' ( ७ । २ । ११४ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टा ॥ ८८ ॥

ननु सर्वक उच्चकैरित्यादौ सर्वनामाव्ययसंज्ञे न स्यातामत आह—  
तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ ८९ ॥

' नेदमदसोरकोः ' ( ७ । १ । ११ ) इति सूत्रेऽकोरिति निषेधोऽस्या ज्ञापकः । तदेकदेशभूतं तद्ग्रहणेन गृह्यत इति ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इति सूत्रे भाष्ये पाठः ॥ ८९ ॥

म्यामिति पाठः । भवत्येवेति । पक्ष इति भावः । अत एव भाष्ये क्वचित्कुत्वसहितः पाठो दृश्यते । इयङ्गादीति । आदिना यणपरिग्रहः । यत्त्वोः सुपि वर्षाम्यश्चेत्यारम्भाद-  
नित्येयमिति सीरदेवादयस्तत्र । तत्र सुपीति विशिष्योक्त्याऽनियमाप्रसङ्गेनैतदप्रसङ्गात् । असंभवाच्च । अत आह—न भूसुधीति । सुधीशब्दाशविषयकेणेति भावः । नानित्य-  
त्वात् । तत्त्वज्ञापनात् । भाष्य इति । तत्र हि कंसपरिमृद्भ्यामित्यादौ वृद्धयभावाय कृतं वार्तिकं रज्जुसृद्भ्यामित्याद्यर्थभावइयकैतत्परिभाषया प्रत्याख्यातम् ॥ ८८ ॥

प्रत्ययप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । संज्ञायाः साफल्यायाऽऽह—सर्वक इति । संज्ञयोः पाठक्रमस्य बोध्यत्वादाह—सर्वेति । अत एव तथा लक्ष्यनिर्देशः । न स्याता-  
मिति । विशिष्टस्यापाठादिति भावः । येन विधिर्यस्मात्प्रत्ययविधिरिति सूत्रभाष्योक्त-  
माह—नेदमिति । ज्ञापक इति । अन्यथेदमदसोर्भिर्से एस उच्यमाननिषेधस्य शब्दा-  
न्तरत्वात्तत्राप्राप्त्या तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । ननु नायं पाठो युक्तः । अकजोदेस्तन्मध्यपतित-  
त्वाभावात् । मध्यपतितस्याप्येनवयवस्य यस्य कस्यचित्तत्त्वापत्तेश्च । येन विधिरित्यत्र भाष्ये  
पाठान्तरस्य स्पष्टत्वाच्च । अत आह—तदेकेति । येन विधिरितीति । इदमुपलक्षणं  
यस्मात्प्रत्ययेतिसूत्रस्यापि । यदि त्विदमदसोः कादिति नियममङ्गीकृत्याकोरिति प्रत्याख्यातं  
नेदमदसोरित्यत्र भाष्य इत्युच्यते तदैतत्तदोरित्यत्राकोरिति प्रतिषेधो ज्ञापको बोध्यः ।  
[ \* अत एव रकोरिति चेति चकारोक्तिः ] उक्तसूत्रद्वयभाष्यं तु सूत्ररीत्येति  
बोध्यम् ॥ ८९ ॥

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ह. पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'दप्राप्तप्र' । २ घ. 'ति । कमबो' । ३ क. 'वः । विप्रतिषेधे इति सू' । ४ घ. 'स  
उ' । ५ घ. 'प्यन्याव' । ६ क. 'रित्यादौ भा' । ७ ह. 'क्तिः । विप्रतिषेधसूत्रभा' ।

ननु 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः' ( २ । ४ । ७७ ) इति सिचो लुगपासी-  
दित्यादौ पातेरपि स्यादत आह—

लुग्विकरणा लुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य ॥ ९० ॥

अस्याश्च ज्ञापकः 'स्वरतिसूति' ( ७ । २ । ४४ ) इति सूत्रे सूडि-  
ति वक्तव्ये सूतिसूयत्योः पृथङ्निर्देश इति कैयटः । तन्न । साहचर्याद्-  
लुग्विकरणस्यैव ग्रहणे प्राप्ते पृथङ्निर्देशस्य तज्ज्ञापकत्वासंभवात् ।

ध्वनिता चेयं परिभाषा 'यस्य विभाषा' ( ७ । २ । १५ । ) इत्यत्र  
भाष्ये । तत्र हि विदित इति प्रयोगे निषेधमाशङ्क्य यदुपाधेर्विभाषा  
तदुपाधेर्निषेधो 'विभाषा गमहनविदविशाम्' ( ७ । २ । ६८ ) इति सूत्रे  
शब्दिकरणस्य ग्रहणं लुग्विकरणश्चायमित्युक्तम् । तत्र चो हेतौ । यतोऽ-

पूर्वस्थितघातुप्रसङ्गादाह—नन्विति । पातेरपीति । ततः परस्यापि सिचो लुगि-  
त्यर्थः । अपिरिष्टपिबतिपरंतत्समुच्चायकः । अलुगिति । सर्वं वाक्यमिति न्यायेनालुगि-  
करणस्यैवेत्यर्थः । क्वचित्तैव पाठः । पकः स्वरोति पाठः । सूडितीति । ङकारः घू प्रेरण  
इत्यस्य वारणायेष्टसंग्रहाय च । अन्यथा निरनुबन्धकत्वात्तस्यैव ग्रहणं स्यात् । यत् ननु सूतीति  
शितपा निर्देशः क्वचित् शितपि पित्वाभावैपाठज्ञापनार्थस्तेन सूतीत्यत्र गुणनिषेधसिद्धि-  
रिति चेत्तर्हि सूतिसूडित्येव ब्रूयात्तावैताऽप्युक्तार्थसिद्धेः । एव च सूयतीतिविकर्णनिर्दे-  
शोऽत्र ज्ञापक इति सीरदेवादयस्तन्न । सौत्रत्वान्निपातनाद्वा सूतीतिप्रयोगसिद्धेरुक्तार्थज्ञापने  
फलाभाक्द्रक्ष्यमाणदोषापत्तेश्च । तद्वचनयन्नाह—पृथगिति । कैयट इति । स्वरतीति  
सूत्र इति भावः । साहचर्यात्, पूर्वपरसाहचर्यात् । अनित्यत्वेऽपीष्टस्यलेऽप्रवृत्तौ मानाभा-  
वात् । अत एव किमर्थं तयोः पृथग्रहणं सुवतेर्मा भूदित्येव भाष्य उक्तम् । उक्त एव हि  
तस्याऽऽशयः ।

नन्वेवमप्रामाण्यापत्तिरस्यामत आह—ध्वनिता चेयमिति । चस्त्वर्थे । तत्र हीत्य-  
स्योक्तमित्यत्रान्वयः । विदित इति । वेत्ते रूपम् । दिवादितुदादिरुधादीनामनुदात्त-  
त्वादेव निषेध इति भावः । निषेधमिति । यस्य विभाषेत्यनेन । विभाषागमेति कंसोस्त-  
द्विकल्पविधानादिति भावः । यदुपाधेरित्यादि बहुव्रीहिः पञ्चम्यन्त च । विशेषणमात्रमत्रो-  
पाधेर्न त्वर्थविशेष उपाधिरिति लक्षितः । तच्चार्षरूपम् । एवमग्रेऽपि । परसाहचर्यस्य बलवत्त्वे  
मानाभावेनैतदभाव उभयसाहचर्यादुभयोर्ग्रहणं स्यादेतत्सत्त्वे त्वनयोपोहलितपरसाहचर्यस्यै-

१ घ. 'रस्तत्स' । २ क. ड. 'वज्ञा' । ३ घ. 'वतैवोक्ता' । ४ घ. सि द्विरेव । ५ घ. 'ति  
वक्रकरणादिनि' । ६ क. 'रणादिनि' । ७ ग. कसो विङ् । ८ ड. 'रूप' । ए० । ९ घ. ड.  
'नया प' ।

यं लुग्विकरणोऽतो विशिसाहचर्याच्छब्दिकरणस्य ग्रहणं न तु हनिसा-  
हचर्यादस्याप्येतत्परिभाषाविरोधादिति तदाशयः ।

अत एव परिभाषायां लुग्विकरणस्यैवेति नोक्तम् । कण्ठतस्तु भाष्य  
एषा क्वापि न पठिता । ' गातिस्था ' ( २।४।७७ ) इति सूत्रे पिबतेर्ग्र-  
हणं कर्तव्यमिति वार्तिककृता सर्वत्रैव पाग्रहणेऽलुग्विकरणस्य ग्रहण-  
मिति भाष्यकृता चोक्तम् । ' स्वरतिसूति ' ( ७।२।४४ ) इति सूत्रे  
कैयटेन च स्पष्टमुक्ता ॥ ९० ॥

ननु प्रजिघाययिषतीत्यादौ ' हेरचङि ' ( ७।३।५६ ) इति विधी-  
यमानं कुत्वं न स्यादत आह—

प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम् ॥ ९१ ॥

याऽऽश्रयणमित्याशयिकया तथोक्त्येयं ध्वनिता । यथाश्रुते निर्वाहाभावान् । तदाह—  
अस्यापीति । लुग्विकरणस्यापीत्यर्थः । अपिना तस्य समुच्चयः । तथा च भाष्यप्रामा-  
ण्यादेव वाचनिकया अस्याः प्रामाण्यं सिद्धम् ।

कैयटोक्तौ दोषान्तरमपि सूचयन्निदं द्रढयति—अत एवेति । अस्या उक्तभाष्येण  
ध्वननादेवेत्यर्थः । स्यैवेतीत्यस्य विपरीतमिति शेषः । अन्यथोक्तज्ञापकस्य तत्रापि सभव इति  
विनिगमैकाभावात्तथैवोक्तं स्यात् । प्रथमोपस्थितत्वरूपान्तरङ्गत्वानुग्रहायोभयं तु न ज्ञाप्यं  
त्वावतैव साफलयादिति भावः । यत्तु वेत्तेर्विभाषेति श्रितपा निर्देशोऽत्रैव ज्ञापकः ।  
अन्यथां तथा रौधादिकव्यावृत्तौ किं तेनेति सीरदेवादयस्तत्र । तन्निर्देशानामर्थात्प्रथमकत्व-  
स्यान्यत्र प्रपञ्चितत्वात् । ध्वनिता चेत्युक्तिस्वारस्यमाह—कण्ठतस्त्विति । एषा,  
एवमानुपूर्वीका सामान्यरूपा । उक्तार्थं मानान्तरमपि सूचयन्नेतदेव द्रढयति—गातीति ।  
उक्तमित्यत्रास्यान्वयो वार्तिककृतेत्यस्यापि । सर्वत्रैवेति । न त्वत्रैवेति भावः । कैयटेन  
चेति । चस्त्वर्थे । सूतिमूयत्योः पृथङ्निर्देशः षू प्रेरण इत्यस्य निवृत्तय इति भाष्यं  
धृत्वोक्तरीत्या तेनाक्ता ॥ ९० ॥

धातुप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । न स्यादिति । हिनोतेरङ्गावयवस्य योऽभ्यासस्त-  
स्मादित्यर्थेन द्वयोः सनिमित्तलाभे प्रत्यासत्त्याऽङ्गसंज्ञानिमित्तनिमित्तकाभ्यासस्यैव ग्रह-  
णोत्तत्र ण्यन्तेऽस्य शब्दान्तरत्वादिति भावः । प्रकृतीति । प्रकृतिबोधकशब्दग्रहणे  
सति तेन तस्य ग्रहणम् । अपिना केवलस्येत्यर्थः । णिचो लोपेऽपि प्रवृत्तये

१ घ. स्याः प्रमाणं सि° । २ मनाविरहात् । ३ घ. °त् । उक्तार्थं मानापस्थि° । ४ घ  
°शोऽत्र ज्ञा° । ५ ग °थाऽनया । ६ ड. °नोक्तेतिभावः । ७ क. °सन्निमि° । ८ क. ड. °त्तका° ।  
९ घ. णाण्यन्तस्य । १० ड. °न्ते तस्य ।

अचङ्गीति प्रतिषेध एवास्या ज्ञापकः । इयं च कुत्वविषयैव । हेर-  
चङ्गीति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ ९१ ॥

ननु युष्मभ्यमित्यादौ 'भ्यसः' ( ७ । १ । ३० ) इत्यत्र भ्यमिति  
च्छेदे भ्यसो भ्यमि कृतेऽन्त्यलोप एत्वं स्यादत आह—

अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ ९२ ॥

अङ्गेऽङ्गाधिकारे वृत्तं निष्पन्नं यत्कार्यं तस्मिन्सति पुनरन्यस्याङ्ग-  
कार्यस्य वृत्तौ प्रवृत्तावविधानं भवतीत्यर्थः ।

प्यन्तेति विहाय प्यधिकेऽप्युक्तम् । ज्ञापक इति । अन्यथोक्तरीत्या तत्राप्राप्त्या तद्वै-  
यर्थ्यं स्पष्टमेव । एवमानुपूर्वीकैतत्परिभाषाया भाष्ये काप्यपाटादन्यत्रानुपयोगाच्चाऽऽह—  
इयं चेति । कुत्वेति । हेश्चङि प्रतिषेधानर्थक्यमङ्गान्यत्वात् । ज्ञापक त्वन्यत्र प्यधि-  
कस्यापि कुत्वविज्ञानार्थमिति भाष्याद्युक्तेरिति भावः । तद्ध्वनयन्नाह—हेरचेति ।  
एतेनानित्येयम् । न भेतिःसूत्रे प्यन्तभादीनामुपसख्यानमिति वार्तिकात् । तेनाऽऽङ्पूर्वाङ्गन्ते-  
र्ष्यन्ताङ्गाऽऽङ्गे यमेत्यात्मनेपदमर्ह इत्यत्र प्यन्तस्यार्हतेर्न ग्रहणमिति रक्षितसीरदेवाद्युक्तम्,  
अभिषावयतीत्यादावनया षत्वसिद्धिर्न भेतिःसूत्र उपसख्यान च न कर्तव्यं भवतीति  
पुरुषोत्तमदेवोक्त चापास्तम् । अस्याः कुत्वमात्रविषयत्वात् ॥ ९१ ॥

प्रत्ययप्रसङ्गादङ्गप्रसङ्गाच्चाऽऽह—नन्विति । लोप इति । च कृत इत्यर्थः ।  
अङ्गवृत्त इति । अयमेव भाष्याद्यारूढः पाठः । एतेनाङ्गवृत्तेः पुनरङ्गवृत्तावविधिर्निष्ठि-  
तस्याङ्गस्य कार्यस्य वृत्तेः प्रवृत्तेर्हेतोर्निष्ठितस्य प्रयोगार्हस्याङ्गस्य पुनरङ्गकार्यस्य प्रवृत्ताव-  
विधानमपरिनिष्पत्तिः पुनरङ्गवृत्ताविति षष्ठ्यर्थे सप्तमी चेति श्रुतपालसीरदेवाद्युक्तमुभयत्र  
सप्तम्यन्ततया पाठ इति न्यासाद्युक्तं चापास्तम् । नन्वङ्गवृत्त इति कर्मधारये बहुव्रीहौ  
वा निष्ठान्तस्य पूर्वनिपातापत्तिरत आह—अङ्ग इति । अनतिप्रसङ्गाय तदर्थमाह—  
अङ्गेति । व्यधिकरणचतुर्थ्यर्थबहुव्रीहिरयम् । तत्साध्यलक्ष्य इत्यर्थः । यद्वा तथा सप्त-  
म्यर्थबहुव्रीहिरङ्गाधिकार इति ययाश्च्युतम् । निष्पन्नं, पठित शास्त्रद्वारा । यद्वा सप्तमी-  
तत्पुरुषः । कार्यं, शास्त्रम् । इय सति सप्तमी तदाह—तस्मिन्सतीति । तस्मिन्नाते  
सतीत्यर्थः । पुनः, पश्चात् । अनेन प्रत्यासत्तिः सूचिता । तेन लक्ष्यैक्यलाभः । ननु  
पुनस्तस्यैव प्रवृत्तेरसमवोऽत आह—अन्यस्येति । प्रत्यासत्तेराह—अङ्गेति । प्रवृत्तौ  
सत्यामिति शेषः । अविधानम्, अपरिनिष्पत्तिः ।

१ ग. °क तु चङोऽन्यत्र प्यन्तेऽपि कुत्वभावस्वेति भा° । २ घ. °ईतिनाऽङ्ग° । ३ घ.  
°दागमप्र° । ४ क. ड. °मी वेति । ५ घ. °व्रीहावङ्गा° । ६ घ. °श्रुतः । नि° । ७ घ. °त् । ननु ।

एषा च 'ज्यादादीयसः' ( ६।४।१६० ) इत्याद्विधानेन ज्ञापिता । अन्यथेकारलोपेन 'अकृत्सार्व' ( ७।४।२५ ) इति दीर्घेण च सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव भिन्नस्थानिकाङ्गकार्यविषयाऽप्येषा । इयं चानित्या । 'द्वयोः' ( १।२।५९।, ५।३।९२ ) इति निर्देशात् । अनित्यत्वबललभ्यार्थमादायैव 'भ्यसो भ्यम्' ( ७।१।३० ) इति सूत्रे भाष्ये निष्ठितस्येति पठितम् ।

केचित्चनया परिमाषया न किञ्चिल्लक्ष्यं साध्यते । अत एव 'ज्ञानोर्जा' ( ७।३।७९ ) 'ज्यादादीयसः' ( ६।४।१६० ) इति सूत्रयोरेनां ज्ञापयित्वा किं प्रयोजनमिति प्रश्ने पिबतेर्गुणप्रतिषेध उक्तः स न वक्तव्य इत्येव प्रयोजनमुक्तं न तु लक्ष्यसिद्धिरूपम् । तदुक्तम्—भ्यसोऽभ्यमित्यत्राभ्यमिति च्छेदः शेषे लोपश्चान्त्यलोप एव 'अतो

चेति । चो विधानेनेत्युत्तर योज्यः । स च ज्ञानोर्जेति जादेशविधानस्य समुच्चारकः । अन्यथा जभावेऽतो दीर्घ इति दीर्घे सिद्ध जानातीति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । लोपेनेति । बहोर्लोप इत्यतोऽनुवृत्तेरिति भावः । अकृदिति । तत्र हि कृत्तित्यस्याननुवृत्तेः । उरुयेत्यादौ दीर्घाभावस्तु च्छान्दसत्वादिति भावः । तद्वैयर्थ्यम्, आद्विधानैवैयर्थ्यम् । अत एव, अस्मादेव ज्ञापकात् । याऽप्येषेति । अपिना ज्ञानोर्जेति ज्ञापकात्समानस्थानिकाङ्गकार्यविषयत्वसमुच्चयः । समानस्थानिकत्वं च पूर्वपरस्थानिभिन्नस्थानिकत्वम् । अन्यस्यासंभवात् । इदमेव वक्तुमेतस्यैवोल्लेखः । ननु किमर्थमस्या अनित्यत्वं परिभाषाया निष्ठितस्येत्यंशस्य सीरदेवादिभिः पठितत्वेन तद्विनाऽपि द्वयोरित्यत्रैत्यसिद्धेस्तद्विना तस्यानिष्ठितत्वाद् । अत एव द्वाभ्यामित्यत्र सुपि चेति दीर्घः । अत एव च भ्यसोऽभ्यमितिसूत्रस्थतथापाठः सगच्छतेऽत आह—अनित्यत्वेति । दायैवेति । एवेन तस्य ज्ञाप्यांशप्रविष्टत्वनिरासः । अत एव ज्ञापकपरोक्तसूत्रद्वयस्थभाष्यसगतिः । अत एव च तत्रोभयत्र तद्व्यतिपाठ इति भावः । भ्यसोभ्यमित्युपलक्षणं पात्राध्मेत्यस्यापि ।

किञ्चित्, किमपि । एकमपीति यावत् । साध्यत इति । अन्यथा तेषां सिद्धत्वादिति शेषः । ननु विनिगमनाविरहोऽत आह—अत एवेति । अस्या लक्ष्यासाधकत्वादेवेत्यर्थः । इत्येव प्रेति पाठः । एवव्यवच्छेद्यमाह—न त्विति । लक्ष्येति । गुप्मभ्यमस्मभ्य दवयति स्रजयतीत्यादीत्यर्थः । तत्राऽऽद्यसिद्धिप्रकारमाह—तदुक्तमिति । अस्या लक्ष्यासाधकत्वमभिप्रेत्योक्तमित्यर्थः । च्छेद इति । अत एव न चाऽऽदेशो हलादिरस्तीति गुप्मदस्मदोरनादेश इतिसूत्रभाष्यं सगच्छते । इचान्त्यलोप एवेति । अत एव लिङ्गाभावाद्दिलोपवचनानर्थक्यमिति साम आकमित्यत्र भाष्य उक्तम् । शेषग्रहण

शुणे ' ( ६ । १ । ९७ ) इति पररूपेण सिद्धं युष्मभ्यमित्यन्यत्र निरूपितम् । एवं च सूत्रद्वयस्थमेतज्ज्ञापनपरं भाष्यं भ्यसोभ्यमितिसूत्रस्थं च भाष्यमेकदेश्युक्तिरित्याहुः ॥ ९२ ॥

यत्त्वोरोदिति वाच्ये ' ओर्गुणः ' ( ६ । ४ । १४६ ) इति गुणग्रहणात्—

संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम् ॥ ९३ ॥

इयं च विधेयकोटौ संज्ञापूर्वकत्व एव । तेन स्वायंभुवमित्यादि सिद्धम् ॥ ९३ ॥

तु भाष्ये प्रत्याख्यातमेव । त्यदादीनाम इति सूत्रस्थ टिलोपष्टाबभावार्थ इति तु वार्तिकैः कदेशिवचनमिति न तद्विरोध इति भावः । लक्ष्यानुरोधाद्भाष्यानुरोधाच्चेष्टवदित्यभावातिदेशोऽपि लक्ष्यविशेषे । तेन दवयतीत्यादौ न वृद्धिः । प्रापयतीत्यादौ तु भवत्येव । तदाह— इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः । एव च, अस्यास्तदसाधकत्वे च । च भाष्यम्, भाष्यं च । एकदेश्युक्तिरिति । अदन्तत्वेनैव गुणप्रतिषेधवार्तिकप्रत्याख्यानसंभवेनास्य प्रयत्नस्य गुरुत्वादिति भावः । अत्र केचिदित्यरुचिसूचकम् । तर्द्दाज तु हलन्तत्वे वार्तिकप्रत्याख्यानस्य प्रकारान्तरेणासिद्धिः । न चाकारोच्चारणाददन्तत्वमेव । जिघ्रादिवदकारसत्त्वात् । न च तथाऽपि लक्ष्यासाधकत्वं समागतमेव । वार्तिकफलसाधकत्वेनैव तन्मात्रलक्ष्यसाधकत्वस्य लामात् । इदमेव ध्वनयितुमुक्तसूत्रद्वये प्रयोजनप्रश्ने तथैवाक्तम् । न तु युष्मभ्यं दवयतीत्यादिसिद्धिरूपम् । तेषामन्यथाऽपि सिद्धेः । अत एव पात्रेति सूत्रभाष्यसंगतिः । एतत्सत्त्वे तदप्यस्या एवोदाहरणमिति केचित् । एवमपि न तथोक्तिस्वारस्यमिति तथैवेति नारुचिरिति भाष्यतत्त्वविद् इत्यर्थक तदित्यन्ये ॥ ९२ ॥

अथ संज्ञाप्रसङ्गात्तस्या वक्तव्यत्वे प्राप्ते खण्ड्यत्वेन खण्डनीयत्वसाधर्म्यात्सीरदेवादिभिस्तथाऽनित्यत्वघटितत्वेन क्रमेणोक्ताः काश्चित्तया सह क्रोडीकृत्य लाघवेन खण्डयति— यत्त्वित्यादिना विस्तर इत्यन्तेन । विधेयकोटौ, तदशे । कत्व एवेति । ज्ञापकस्य संज्ञातीयापेक्षत्वादिति भावः । साजात्यं च विधेयत्वेनैव लोकेऽर्थपरत्वेन प्रसिद्धं शब्दत्वेनापि बोध्यम् । अत एवाणुदित्स्व रूपमित्यादिसंज्ञाविषये नैषा । अत एवोरोदित्युक्तौ न तत्त्वमिति बोध्यम् । वमित्यादीति । आदिना ज्योतिष एञ्चवाणः क्षिणोतीत्यादिसंग्रहः । आद्येऽधिकृत्य कृत इत्यणि न वृद्धिः । द्वितीये गुणाभावः । उतो वृद्धिर्लुकीतिसूत्रस्थं वृद्धिग्रहणमपीह ज्ञापक बोध्यम् ॥ ९३ ॥

१ ड. च । स्थ भाष्य चैकेति पाठ । ए<sup>०</sup> । २ क. पुस्तके °वेऽप्य स्य प्रेति पाठान्तरम् ।  
३ ड. °त्वस्याल<sup>०</sup> । ४ घ. बोक्ते । न । ५ घ. °दित् । ६ घ. °द्वत्वश<sup>०</sup> ।



तथाऽऽनिलोडित्येव सिद्ध आनिग्रहणात्—

आगमशास्त्रमनित्यम् ॥ ९४ ॥

तेन सागरं तर्तुकामस्येत्यादि सिद्धम् ॥ ९४ ॥

तथा तनादिपाठादेव सिद्धे 'तनादिकृञ्भ्यः' (३।१।७९)  
इति सूत्रे कृञ्ग्रहणात्—

गणकार्यमनित्यम् ॥ ९५ ॥

तेन न विश्वसेदविश्वस्त इत्यादि सिद्धम् ॥ ९५ ॥

तथा चक्षिडो ङित्करणात्—

अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ॥ ९६ ॥

तेन स्फायन्निर्मोकसंधिरित्यादि सिद्धम् ॥ ९६ ॥

तथा विनार्थनञ्जा समासेनानुदात्तं पदमनेकमित्येव सिद्धे वर्ज-  
ग्रहणात्—

नञ्घटितमनित्यम् ॥ ९७ ॥

तेन 'नेयङ्कुवङ्' (१।४।४) इत्यस्यानित्यत्वान्द्वे सुभ्रु इति  
सिद्धमिति तन्न भाष्येऽदर्शनात् । भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया

आनिग्रहणात्, आकारविशिष्टनिग्रहणात् । आकारग्रहणादिति यावत् । यत्तु स्तोश्चु-  
नेत्यत्राकृतनुमागमनिर्देशोऽत्र ज्ञापक इति पुरुषोत्तमदेवस्तत्र । सौत्रत्वेन तस्योपपत्तेः ।  
कामस्येत्यादि सिद्धमिति । आदिना क्षुब्धो राजा, अपि शाकं पचानस्येत्यादिसंग्रहः ।  
अत्रेण्मुकौ न ॥ ९४ ॥

कृञ्ग्रहणादिति । सीरदेवस्तु घटादित्वादेव षित्वे सिद्धे पुनः क्षमूषः षित्वमत्र  
ज्ञापकम् । सामर्थ्यात्षिद्गौरैति ङीषर्थं तु न तत्, क्षमायामिति निर्देशादित्याह ।  
स्त इत्यादीति । आदिना शपामि किमतः परमित्यादिसंग्रहः ॥ ९५ ॥

ङिदिति । इस्थाने युजर्थोऽङ्कारः पाठ्य इति भावः । अनुदात्तेत्वेति । एवमपि  
शपामीत्यस्य कथचित्सिद्धिरिति चिन्त्यम् । सूत्रापेक्ष वा ज्ञापकमस्तु । सीरदेवस्तु चक्षि-  
डोऽनुबन्धद्वयमुभयत्र ज्ञापकमित्याह । धिरित्यादीति । आदिनोदयति विततोर्ध्वेत्यादि-  
संग्रहः ॥ ९६ ॥

आदौ साधारणदोषमाह—भाष्य इति । ननु तत्रादर्शनं नाभावसाधकं तदधृतानां  
सूत्राणामभावापत्तेरत आह—भाष्यानुक्तेति । ज्ञापितेति । उक्तरीत्येति भावः ।

१ घ, °ति पाठान्तरम् । य° । २ ग, घ, ङ. °श्च सिद्धि° । ३ घ. वितेति । उक्तरीत्येति  
भावः ॥ ९६ ॥

नियामकत्वे मानामावात् । भाष्याविचारितप्रयोजनानां सौत्राक्षराणां पारायणादावदृष्टमात्रार्थकत्वकल्पनाया एवौचित्यात् ।

किं च ज्ञापितेऽप्यानीत्यस्य न सार्थक्यमाडागमशून्यप्रयोगस्याप्रसिद्धेः । आङ्ग्रहणं तु लोङ्ग्रहणवदिति बोध्यम् । अत एव ' घोर्लोपो लेटि वा ' [ ७।३।७० ] इति सूत्रे वेति प्रत्याख्यातम् । लोपेऽप्याट्टपक्ष आटः श्रवणं भविष्यति दधादिति । अटि दधादिति । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वे त्वाद्यसति दधादित्यसिद्ध्या वाग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वेन तत्प्रत्याख्यानासंगतिः स्पष्टैव । एतेन यत्कैयटे केचिदित्यादिनाऽऽस्यैव वाग्रहणस्य तदनिस्त्यत्वज्ञापकतोक्ता साऽपि चिन्त्या । प्रत्याख्यानपर-

एवं च तत्र दोषलेशाभावेन वार्तिकाप्रवृत्त्या प्रामाण्येन भाष्याधृतानामपि तेषां सत्त्वेऽप्यत्र किंचिदशे तत्प्रवृत्त्या भाष्यधृतत्वेन सत्त्वेऽपि तत्र तदभावाद्यथोत्तर मुनीनां प्रामाण्येन तस्य तदनियामकत्वम् । अन्यथा द्वयोरज्ञानकल्पनापत्तिः । सा च न युक्ता । सर्वाज्ञाननिरासाय भगवैतोः प्रवृत्तेरिति भावः । नन्वेव तथा सौत्राक्षराणामुक्तरीत्या वैयर्थ्यापत्तिरतस्तथैवावश्य वाच्यमित्याशङ्कायामुक्तहेतोरेवाऽऽह—भाष्यावीति ।

एवं साधारणदोषमुक्त्वाऽऽद्ये गुणग्रहणस्य ज्ञापकत्वस्य लणिति णकारस्यैवेष्टत्वेन ज्ञापितपरिभाषाप्रयुक्तानिष्टाभावेन तन्निरासेन चारितार्थानिपेक्षणेनाचारितार्थरूपासाधारणदोषाभावाद्धितीयेऽसाधारण तमाह—किं चेति । यत इति शेषः । यद्यप्यत्र ज्ञापितपरिभाषाप्रयुक्तानिष्टप्राप्त्या तन्निराकतया साफल्यं सुवचं तथाऽप्यन्यथा तदाह—आडागेति । अप्रसिद्धेरिति । तथा च ज्ञापकत्वमेव नेति भावः । नन्वेवमाङ्ग्रहणवैयर्थ्यमतमाह—आडिति । इत्संज्ञकटकारोपलक्षितमाग्रहणमित्यर्थः । आटो ग्रहणं ग्राहकः शब्द आकार इत्यर्थो वा । क्वचिदाग्रहणमित्येव पाठः । दृष्टान्तेनेदं सूचितम् । यथा तस्य कथमपि न दृष्टार्थत्वं लोटं विनाऽऽनिघटिततद्योगप्रयोगाभावात्तथैतस्याप्युभयोरदृष्टार्थत्वमेवेति । घोर्लोपो लेटि वेति वाग्रहणमत्र ज्ञापकमितिन्यासाद्युक्तिखण्डन ध्वनयन्नाह—अत एवेति । आगमशास्त्रमनित्यमित्यस्याभावादेवेत्यर्थः । तत्प्रकारमाह—लोपेऽप्याडिति । लोटोऽडाटावित्यनेन । बाधे दृढ इति न्यायेन कैयटविरोध परिहरति—एतेनेति । यदिति । सामान्ये नपुंसकम् । एतेनेत्यस्यार्थमाह—प्रत्येति । अत एव तेनापि केचिदित्यरुचिसू-

\* ड. पुस्तके षा अग्रयुं इति पदच्छेदः ।

भाष्यविरोधात् । तनादिसूत्रे कृञ्ग्रहणस्य भाष्ये प्रत्याख्यानाच्च । चक्षिङो  
ङकारस्यान्तेदिस्वाभावसंपादनेन चारिताथर्थाच्च ॥ ९७ ॥

एवमेव—

आतिदेशिकमनित्यम् ॥ ९८ ॥

सर्वविधिभ्यो लोपविधिरिड्विधिश्च बलवान् ॥ ९९ ॥

इत्यादि भाष्यानुक्तं बोध्यम् । स्वायंभुवमित्यादि लोकेऽसाध्वेदे-

चकमुक्तम् । तच्च न्यासादय इत्यर्थकम् । तृतीये तमाह—तनादीति । तुयं तमाह—  
चक्षिङ इति । अन्तेदिच्चेति । अन्यथा नुमस्यात् । तत्राकारः पाठ्यं इति  
त्वेकौनसहस्राधिकरणन्यायेन वक्तुमशक्यम् । किं चापाणिनीयत्वेनादृष्टहानिः स्यादिति  
भावः ॥ ९७ ॥

तथा तदुक्तास्तदग्रिमा अन्या अपि खण्डयति—एवमेवेति । असदेवेत्यर्थः ।  
अनित्यमिति । स्थानिवत्सूत्रेण सिद्धे प्रत्ययलोप इति सूत्रमत्र ज्ञापकम् । लोपविधि-  
रिति । अत एव कानि सन्तीत्यादौ यणः पूर्वमल्लोपः । उक्तसूत्रमेवात्रापि ज्ञापकं यावता  
विनेति न्यायात् । अन्यथा सर्वत्र प्राक्प्रत्ययनिमित्तककार्यं कृत्वा पश्चाल्लोपेनेष्टसिद्धौ तद्वै-  
यर्थ्यं स्पष्टमेवेति भावः । इड्विधिश्चेति । तेन श्वायित्वेत्यत्र सप्रसारणात्पूर्वमिति न  
क्त्वा सेडिति किञ्चनिषेधात्सप्रसारणाभावः । ज्ञापकं चात्र सनि ग्रहेत्यत्रोकोऽनुकर्षणाय  
चकरणम् । अन्यथा ररूपतीत्यादाविको झलिति किञ्चाच्छ्रुक् इति निषेधेन सिद्धे तद्वै-  
यर्थ्यं स्पष्टमेव । सत्या त्वस्यामादाविटि सामान्यसूत्रेणाग्राह्यत्वात्तदप्राप्त्या तत्सार्थक्यं  
स्पष्टमेवेति भावः । आदिना क्रियाविशेषणाना कर्मत्वं क्लीबत्वमेकत्व च प्रतिपदविधानाद्यो-  
गविभागो गरीयानित्यादिपरिग्रहः । अनुक्तमिति । निर्मूलं चेत्यपि बोध्यम् । प्रत्ययलोप  
इत्यस्य नियामकत्वस्यै भाष्ये सिद्धान्तितत्वात् । आशीरित्यादौ किवादेरन्तरङ्गत्वाल्लोप  
इत्त्वाद्यर्थं तस्योपक्षीणत्वाच्च । अनुवृत्त्यर्थकचाना भाष्ये प्रत्याख्यानाच्च । न च श्चीदितो  
निष्ठायामिति श्विग्रहण ज्ञापकम् । अन्यथाऽऽदौ संप्रसारणादौ श्युक इत्येव सिद्धे किं  
तेनेति वाच्यम् । श्युक इत्यस्योपदेशाधिकारेणार्थाप्त्या शून इत्यादावन्तरङ्गत्वात्संप्रसारणे  
पूर्वत्वे चेण्निषेधार्थं तस्याऽऽवश्यकत्वात् । निष्फलं चेत्यपि बोध्यम् । नन्वेव स्वायंभुव-  
मित्यादीना का गतिरत आह—स्वायमिति । स्वयंभुव इदमित्याद्यर्थं इति भावः ।  
आदिना प्रागुक्तसंग्रहः । लोक इति । अनेनाऽऽर्धप्रयोगाणा साधुता सूचिता । एवमे-

१ घ. 'कोनुस' । २ ग. घ. ङ. 'स्य सि' । ३ घ. 'था शून इत्यादावन्तरङ्गत्वात्संप्रसारणे  
पूर्वत्वे च श्यु' । ४ घ. 'प्राप्येभिषे' ।

त्यन्यत्र विस्तरः ॥ ९९ ॥

यदपि ननु हन्तेर्यङ्लुक्काशीर्लिङ्गि वधादेशो न स्यादत आह—

प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणम् ॥ १०० ॥

षाष्ठाद्वित्वस्य द्विष्प्रयोगत्वसिद्धान्तेन प्रयोगद्वयरूपे समुदाये प्रकृति-  
रूपत्वबोधनेनेदं न्यायसिद्धम् । अत एव जुहुधीत्यादौ द्वित्वे कृते धित्व-  
सिद्धिरिति तदपि न भाष्येऽदर्शनात् । किं च तेन सिद्धान्तेन प्रत्येकं  
द्वयोस्तत्त्वबोधनेऽपि समुदायस्य तत्त्वबोधने मानाभावः ।

अत एव 'दयतेर्दिगि' ( ७ । ४ । ९ ) इति सूत्रेऽस्तेः परत्वाद्वित्वे  
कृते परस्यास्तेर्भूभावे कृते पूर्वस्य श्रवणं प्राप्नोतीत्याशङ्क्य विषय-  
सप्तम्याश्रयणेन परिहृतं भाष्ये । अन्यथा त्वदुक्तरित्यैकाज्द्विर्वचनन्या-  
येन समुदायस्यैवाऽऽदेशापत्तौ तदसंगतिः स्पष्टैव । तस्मादुत्तरखण्डमा-  
वौपदेशिकेत्यादौ वक्ष्यमाणे क्रियाविशेषणानामित्यादावुक्ते च भाष्यानुक्तत्व निर्मूलत्व निष्फ-  
लत्वं च बोध्यम् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्द्योतशेखरादावित्यर्थः ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

खण्डनीयत्वप्रसङ्गादेवाऽऽह—यदपीति । न स्यादिति । समुदायस्य लिङ्प्रकृ-  
तेर्हन्तरूपत्वाभावात् । गन्तस्यापीति । अपि केवलसमुच्चायकः । परिभाषार्थः प्राग्वत् ।  
षाष्ठाद्वित्वेति । बहुव्रीहिः । द्विष्प्रयोगत्वेति । द्विष्प्रयोगरूपत्वस्य सिद्धान्तेनेत्यर्थः ।  
बोधने हेतुरयम् । इदं, परिभाषारूप वचनम् । न्यायसिद्धमिति । इदं निष्ठा  
शीळित्यत्र न्यासकृतोक्त सीरदेवादिकैयट्क्षितादिभिरनुसृतं च । एतस्य बीजस्या-  
न्यत्राऽऽश्रयणमावश्यकमित्याह—अत एवेति । उक्तबीजाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । प्राग्व-  
त्पूर्वारुच्या बीजाभावेन निर्मूलत्वमाह—किं चेति । यत इति शेषः । तत्त्वेति ।  
प्रकृतिरूपत्वेत्यर्थः । अत एव स्थानेद्विर्वचनाद्भेदासिद्धिरिति बोध्यम् । मानाभाव  
इति । भिन्नानुपूर्वीकत्वात्स्थानिवत्त्वस्य त्वत्र पक्षे प्राप्तिरेव नेति भावः ।

अत एवात्र प्रमाणमप्याह—अत एवेति । तेन तस्य तत्त्वबोधनस्य मानाभावेना-  
सङ्गादेवेत्यर्थः । परत्वादिति । अस्य भूभावादित्यादिः । विषयेत्यस्याऽऽर्धधातुक इती-  
त्यादिः । अन्यथा, तत्र निर्वाहायोक्तबीजकपरिभाषाया एवाङ्गीकारे । त्वदुक्तेति । तेन  
तत्र तत्त्वबोधनरूपया तथैवेत्यर्थः । ननु केवलस्यापि तत्त्वसत्त्वात्कदाचित्तस्यापि  
स्यादिति तदावश्यकत्वमेवात आह—काजिति । दायस्यैवेति । एवेन केवलव्या-  
वृत्तिः । आदेशापत्तौ, आदेशप्राप्तौ । तदसंगतिः, शङ्काया अज्ञानेन योजनेऽपि परिहारा-  
संगतिः । नन्वेव जुहुधीति कथमत आह—तस्मादिति । उक्तभाष्यात्तदभावात्तेन तदङ्गी-

१ ग. ड. °द्वौ भा° । २ घ. °लत्वम् । अत्रप्रमाणमा° । ३ ड. °नादेरसि° । ४ घ. °दि. । द्विरू-  
पत्वेत्यर्थः । अत एव, स्थाने द्विर्वचनाद्भेदासिद्धिरिति बोध्यम् । वि° । ५ क. घ. °था, तस्य स्रस्वे° ।  
त्व° । ग. °था परिभाषासत्त्वे । त्व° ।

व्यायैव यथायोगं तत्तत्कार्यप्रवृत्तिर्बोध्या । ' भूसुवोः ' ( ७ । ३ । ८८ )  
इत्यस्य तदन्ताङ्गस्येत्यर्थादपि प्राप्तस्य गुणनिषेधस्य बोभूत्विति नियम  
इति न तद्विरोधः ।

तस्माद्धन्तेर्यङ्गुकि वध्यादित्यादि माधवाद्युदाहृतं चिन्त्यमेवेत्यन्यत्र  
विस्तरः ॥ १०० ॥

यदपि ननु ' वृद्धिर्यस्याचामादिः ' ( १ । १ । ७३ ) इत्यत्रेकपरि-  
भाषोपस्थितौ शालीयाद्यसिद्धिरत आह—

कारादित्यर्थः । भूत्वादीना भूवादय इति धातुत्वस्यार्थवचस्य चोत्तरखण्ड एव  
सत्त्वम् । अत एव वेवेद वेविदतुरित्यादौ विदो लटो वेति णलादिसिद्धिः । सन्नाद्यन्ता  
इति धातुत्वस्य समुदाये सत्त्वेऽपि भूवेति धातुत्वस्य तत्र सत्त्वादिति भावः । नन्वेवमप्य-  
ङ्गत्वस्य तत्राभावात्परिभाषाया अभावेऽप्राप्तगुणाभावसाधकतया साफल्ये बोभूत्विति  
निपातनस्य लोट्येवेत्येव नियामकत्वं भाष्योक्त विरुध्यतात आह—भूसुवोरिति ।  
तदन्ताङ्गेति । तत्प्रामाण्यादुत्तरखण्डस्य भूत्वादेरिवाङ्गत्वस्य समुदाय एवाङ्गीका-  
रादिति भावः । यथा चैतत्तथा शेखरे स्पष्टम् । र्थादपीति । अपिनोक्तरी-  
त्याऽङ्गावयवयोर्भूसुवोरित्यर्थपरिग्रहः । पर तु संभवति सामानाधिकरण्य इति न्यायेक-  
त्राऽऽद्यर्थ एव युक्तः । तदा पूर्वपक्ष्यभिमतपरिभाषासमुच्चायकः स बोध्यः । अपिरहित-  
पाठस्तु युक्त एव । गुणनिषेधस्येति पाठः । स्यागुणस्येति पाठः क्वचित् । अर्थः  
स एव ।

उपसंहरति—तस्मादिति । परिभाषाया अभावादित्यर्थः । अत एवोदुपधाया इत्यु-  
पधाग्रहणमोः सुपीत्यत ओरित्यनुवृत्त्या सिद्धे गमहनजनेत्युत्तरार्थमेव । एतेनात्र तज्ज्ञापक-  
मिति वदन्तः पुरुषोत्तमदेवसरिदेवादयः परास्ताः । यत्र सरिदेवेनोत्तरार्थत्वे ज्ञापकत्वं कथ-  
मित्याशङ्क्य तत्रात इति स्थानी निर्देष्टव्य इत्युक्तम् । तत्र । उत्तरार्थस्यापीह किञ्चित्रपो  
इति न्यायेन त्वन्मते तत्त्वसम्भवात् । माधवादीति । आदिना दीक्षितादयः । जाग्रहिते-  
स्यादौ तु दीर्घप्राप्तिरेव न । समुदायस्यैवाङ्गत्ववत्सनाद्यन्ता इति धातुत्वस्याप्यङ्गीकारात् ।  
न हि तस्य ग्रहित्वम् । एव चैकाजनुवृत्त्या न दीर्घ इति हरदत्तोक्त दीक्षिताद्युक्तं च  
चिन्त्यमेव । एव च तत्रत्यमाधवोक्तिर्युक्तैव । तदाह—इत्यन्यत्रेति । शेखरादा-  
वित्यर्थः ॥ १०० ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—यदपीति । स्थिताविति । इक्स्थानिकवृद्धिरिति तदार्थ  
इति भावः । नानुवाद इत्युक्तेरन्यत्रास्या इष्टत्वाच्च विधिसूत्र इत्यर्थाभावेऽपि साक्षाद्विधेये

विधौ परिभाषोपतिष्ठते नानुवादे ॥ १०१ ॥

अनूद्यमानविशेषणेषु तन्नियामकपरिभाषा नोपतिष्ठत इति तदर्थः । विध्यङ्गभूतानां परिभाषाणां विधेयेनासिद्धतया संबन्धासंभवेऽपि तद्विशेषणे व्यवस्थापकत्वेन चरितार्थानां तद्विशेषणव्यवस्थापकत्वे मानाभाव इति तर्कमूलेयम् । किं च ' उदीचामातः स्थाने ' ( ७ । ३ । ४६ ) इति सूत्रे स्थानेग्रहणमस्या लिङ्गम् । अन्यथा ' षष्ठी स्थाने ' ( १ । १ । ४९ ) इति परिभाषयैव तल्लामे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति ।

तन्न । ' उदात्तस्वरितयोर्यणः ' ( ८ । २ । ४ ) इत्यादौ ' व्यङ्गः संप्रसारणम् ' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रभाष्योक्तरीत्या ' अल्लोपोऽनः ' ( ६ । ४ । १३४ ) इत्यादौ चैतस्या व्यभिचरितत्वात् । भाष्यानुक्तत्वाच्च । स्थानसंबन्धो न परिभाषालभ्य इत्यर्थस्य ' षष्ठी स्थाने ' ( १ । १ । ४९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वेन त्वदुक्तज्ञापकासंभ-

परिभाषोपस्थितेरसम्भवाद्विधावित्यस्य साक्षाद्विधेयविशेषण इत्यर्थ इति सूचयितुं निषेधवाक्यार्थमाह—अनूद्येति । तदर्थ इति । एतद्घटकनिषेधवाक्यार्थ इत्यर्थः । अत एवात्र तथैव रीतिमाह—विध्यङ्गेति । अङ्गत्वमुपकारकत्वम् । तद्विशेषणे, विधेयविशेषणे । तद्वितीति । विशेषणविशेषणेत्यर्थः । एतेन प्रधानाप्रधानयोरितिन्यायलब्धोऽयमर्थ इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तस्यान्यविषयत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् । अत एव ज्ञापकमप्याह—किं चेति ।

तच्चेति । तदपि नेत्यर्थः । इत्यादाविति । आदिनाऽचो रहाभ्यामित्यादिपरिग्रहः । भाष्यासंमतिध्वननार्थं कोट्यन्तरमाह—व्यङ्ग इति । रीत्येति । इयं चानन्त्यविकार इति परिभाषाव्याख्याने स्फुटी भविष्यति । चैतस्या इति पाठः । ननु संख्याव्ययादेरित्यादिग्रहणादानित्येयामिति सीरदेवाद्युक्तत्वान्नायं दोषोऽत आह—भाष्येति । नन्वयमपि दोषो न युक्त इति प्रागुक्तमत आह—स्थानेति । स्थानशब्दार्थनिरूपितसंबन्ध इत्यर्थः । परीति । षष्ठी स्थान इतीत्यर्थः । किं त्वन्तरङ्गत्वलैभ्यः । तथा सत्यन्यार्थज्ञापनसंभवेऽपि नोक्तार्थज्ञापनसंभव इति भावः । नन्वेव तत्र स्थानपदानर्थक्यमत आह—

१ घ. °ब धीजमा° । २ ड. त्वात् । ३ क. नार्थकोऽयं ग्रन्थस्तदाह । ४ क. ड. नन्वेवम° । ५ क. ड. 'लभ्य इति भावः ।

चाञ्च । तत्र स्थानेग्रहणं तु स्पष्टार्थमेव । किं च विधौ परिभाषेति प्रवादः ' इको गुणवृद्धी ' ( १ । १ । ३ ) ' अचश्च ' ( १ । २ । २८ ) इत्यनयोर्विधीयत इत्यध्याहारमूलकोऽन्यत्र तु नास्याः फलमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ १०१ ॥

ननु नमस्करोति देवान्नमस्यति देवानित्यादौ ' नमःस्वस्ति ' ( २ । ३ । १६ ) इति चतुर्थी दुवारित्यत आह—

उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्वलीयसी ॥ १०२ ॥

कारकविभक्तित्वं च क्रियाजनकार्थकविभक्तित्वम् । तच्च प्रथमाया अप्यस्तीति साऽपि कारकविभक्तिरिति ' सहयुक्ते ' ( २ । ३ । १९ ) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम् । इयं च वाचनिक्येव । अत एव ' यस्य च भावेन ' ( २ । ३ । ३७ ) इति सप्तम्यपेक्षयाऽधिकरणसप्तम्या बलवत्त्वमनेन न्यायेन ' तत्र च दीयते ' ( ५ । १ । ९६ ) इति सूत्रे भाष्ये

तत्रेति । उदीचामात इत्यत्रेत्यर्थः । र्थमेवेति । एवेन परिभाषामात्रानित्यत्वज्ञापकमिदमिति मतव्यवच्छेदः । उक्तयुक्ते । तर्कस्य तु न्यायज्ञापकभिन्नत्वेन न साधकत्वम् । तत्साध्यानामेव चात्र निरूपणमिति भावः । एव सर्वथा सार्वत्रिकैतदसत्त्वं प्रतिपाद्य क्वाचित्कत्वेन सत्ताऽपि न दुष्टेत्याह—किं चेति । अध्याहारेति । अत एव शालीयाद्यसिद्धिर्नेति भावः । अत एवात्र हेतुमाह—अन्यत्र त्विति । तुर्हीर्षे । कूडि चेत्यत्र तु सतिसप्तम्या निर्वाहः । तदाह—अन्यत्रेति । उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ १०१ ॥

एव खण्डनीयखण्डनं कृत्वा बौद्धषष्ठीविभक्तिप्रसङ्गादाह—नन्विति । नित्यादाविति । आदिना मुनित्रयं नमस्कृत्येत्यादिपरिग्रहः । कारकाधिकारपठितसज्ञानिमित्तकविभक्तित्वं कारकविभक्तित्वमिति भ्रमनिरासायाऽऽह—कारकेति । तस्या अपि क्रियाजनकेऽर्थे कर्त्रादौ विधानादिति भावः । या अप्यस्तीति साऽपि कारेति पाठः । अपी द्वितीयादिसमुच्चायकौ । क्त इत्यादीति । प्रसिद्धतरत्वात्सहयुक्त इत्यस्योपन्यासः । तथा चाऽऽदिशब्दः प्रकारे । तेनान्तरान्तरेणेत्यादेरपि संग्रहः । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । भाष्ये ध्वनितमिति । तत्र ह्यप्रधानग्रहणाभावे पुत्रेणेत्यादौ प्रधाने प्रथमाऽनेन न्यायेन साधिता । सा च तस्यास्तत्त्वं विनाऽनुपपन्ना । तद्धवनयन्वक्ष्यति सहयुक्त इत्यादौ चेति । निव्येवेति । एवेन प्रधानान्तरङ्गन्यायलब्धत्वव्यवच्छेदः । अत एव, वाचनिकत्वादेव । अस्य ध्वनितमुक्तमित्युभयत्रान्वयः । तत्र च दीयत इति । तत्र हि कार्यमित्यस्येव

ध्वनितं कैयटेन स्पष्टमुक्तम् । एतेन क्रियान्वयित्वं कारकत्वमित्यपास्तम् । यस्य च भावेन( २।३।३७ ) इति सप्तम्या अपि क्रियान्वयित्वात् ।

ये तु प्रधानीभूतक्रियासंबन्धनिमित्तकार्यत्वेन कारकविभक्तीनां बल-  
वत्त्वं वदन्ति तेषामुभयोरपि क्रियासंबन्धनिमित्तकत्वेन तदसंगतिः  
स्पष्टैव । ' नमोवरिवः ' ( ३।१।१९ ) इति सूत्रे नमस्यति देवा-  
नित्यादौ चतुर्थीवारणाय भाष्य उपन्यासस्यासंगतिश्च ।

एतेन क्रियाकारकसंबन्धोऽन्तरङ्ग इति तन्निमित्ता विभक्तिरन्तरङ्गो-  
पपदार्थेन तु यत्किंचिक्रियाकारकभावमूलकः संबन्ध इति तन्निमित्ता  
बहिरङ्गेत्यपास्तम् । नमस्यतीत्यत्र नमःपदार्थेऽपि क्रियाकारकभावेनैवा-  
न्वयात् । अत्र च नमःपदार्थस्यापि क्रियात्वं मुण्डयतौ मुण्डस्येव ।

दीयत इत्यर्थस्यापि वैयर्थ्यशकावसरे मास इति न भावलक्षणसप्तमी किं दृष्ट्वोपश्लेषिकेऽधि-  
करण इत्युक्तम् । ध्वनितमिति । अस्य संगच्छत इति शेषः । उक्तमित्यस्य चेति  
शेषः । तेन तस्य तत्रान्वयः । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वस्य प्रधानत्वस्य च द्वयोः समत्वेन तन्न्या-  
ययोरविषयत्वेनैतत्प्रवृत्त्यभावात्तदसंगतिः स्पष्टैव । दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—एतेनेति ।  
तस्यार्थमाह—यस्य चेति । तथा चोभयोरपि कारकविभक्तित्वादुक्तभाष्यासंगतिरे-  
वेति भावः ।

प्रधानन्यायमालिकेयमिति सीरदेवाद्युक्तिं खण्डयति—ये त्विति । सीरदेवादय  
इत्यर्थः । तेषामिति । अग्रिमापिर्व्युत्क्रमे । तेषामपीत्यर्थः । उभयोरिति । सत्सप्त-  
म्याधिकरणसप्तम्योरित्यर्थः । क्रियेत्यस्य प्रधानीभूतेत्यादिः । तदेति । तत्र चेति सूत्र-  
भाष्यासंगतिरित्यर्थः । दोषान्तरमाह—नम इति । असंगतिश्चेति । नमःपदार्थेऽत्र  
देवस्य क्रियाकारकभावेनैवान्वयेन तुल्यत्वादिति भावः । एतेन यत्रैकस्या एवोपपदविभक्तित्वं  
कारकविभक्तित्वं च तत्रैवास्याः प्रवृत्तिस्तेन ज्योतिष्टोमेनेत्यादौ करणे तृतीया न त्वभेद  
इति भ्रान्ताद्युक्तमपास्तम् । उक्तभाष्यासंगत्यापत्तेः । कैयटसीरदेवाद्युक्तिं खण्डयति—  
एतेनेति । अन्तरङ्ग इति । तद्विना पदार्थान्तरानन्वयात् । तन्निमित्तेति । बहु-  
व्रीहिः । यत्किंचिदिति । सर्वत्र संबन्धस्य किंचिक्रियाकारकभावमूलकत्वात् । यथा  
स्वत्व क्रयादिनिबन्धनामिति भावः । एतेनेत्यस्यार्थमाह—नमस्येति । देवादेरिति शेषः ।  
तथा चोक्तभाष्यासंगत्यापत्तिरिति भावः । ननु नमःपदस्य नामत्वेन कथं तदर्थस्य  
क्रियात्वमत आह—अत्र चेति । नमस्यतीत्यत्रेत्यर्थः । विशिष्टधातुतानियामकक्यजा-  
दिसप्तमिन्याहारादिति भावः । अत एवाऽऽह—मुण्डेति । तत्र दोषान्तरं ध्वनयन्माह—

१ घ. 'नस्य । २ घ. तत्प्राप्तयोर' । ३ क. 'तिरिति । ४ घ. 'दार्थे कि' । ५ घ. व. ।  
अत एव न' । ६ घ. 'ति । दो' ।



‘सहयुक्ते’ (२।३।१९) इत्यादौ च प्रधाने प्रथमासाधनार्थमियं  
माध्य उपन्यस्तेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १०२ ॥

नन्वदमुयङ्ङित्यादौ पूर्वस्यापि मुत्वापत्तिरत आह—

अनन्त्यविकारेऽन्यसदेशस्य ॥ १०३ ॥

अन्यसदेशानन्त्यसदेशयोरेकप्रयोगे युगपत्प्राप्तवान्यसदेशस्यैवेति  
तदर्थः । अन्यथा धात्वादेर्नत्वसत्त्वे नेता सोतेत्यादावेव स्यातां न  
तु नमति सिञ्चतीत्यादौ । अनन्त्यविकार इति च लिङ्गम् ।

सहयुक्त इति । अत एव चसगतिः पुनरेतत्कथनसाफल्य च । तथा चास्या अन्तरङ्ग-  
न्यायमूलकत्वे प्रथमापवादत्वे तृतीयायाः सर्वत्र तदापत्तिरन्यथा सर्वत्र प्रथमार्पित्तिस्तदभावे ।  
न चैव द्वितीयपक्षे सूत्राणा वैयर्थ्यम् । न्यायानुगतेऽर्थे हि किं कुर्मः । तत आद्यपक्ष  
एवास्तु । एव च सर्वथाऽप्रधानग्रहणावश्यकत्वेऽनया तत्साधनपरभाष्यासंगतिरेव । तस्मा-  
द्बचनमेवेदम् । लाघवात् । न चैव नमश्चकार देवेभ्यः, रावणाय नमः कुर्या इति भट्टि-  
प्रयोगासगतिः । अनुकूलयितुमित्यर्थेन निर्वाहात् । नमःस्वस्तीति चतुर्थीति जयमङ्गलो-  
क्तिस्तु चिन्तयैव । उक्त हेतोः । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ १०२ ॥

वाचनिकत्वसाधर्म्येणोपस्थितेराह—नन्वदेति । पूर्वस्य, दस्य । प्रत्यासत्तिन्यायेनऽऽह—  
अन्त्येति । युगपदिति । कार्यस्येति शेषः । सर्व वाक्य सावधारणमिति  
न्यायेनैवेति । तदर्थः, विधावुपस्थितस्य वचनघटक्रान्त्यसदेशस्येत्यस्यार्थः । तस्य विधिनि-  
षेधयोरेकप्रयोगरूपविषयकत्वाश्रयणमिति \* भावः । तथा च यत्रानन्त्यविकारस्तत्रानन्त्यसे-  
त्युपतिष्ठत इति परिभाषार्थः । अन्यथा, उक्तार्थानङ्गीकारे । धात्वादेरित्यस्य विधीय-  
माने इति शेषः । आदिना त्यदादिसबन्धिसत्त्वविध्यादिः स इत्यादावेव स्यात्तु स्य  
इत्यादावित्यस्य परिग्रहः । एतेनैतदर्थमस्या अनित्यत्वमिति भ्रान्तोक्तमेतद्दोषेणोय प्रत्या-  
ख्यातेति सीरदेवाद्युक्त चापास्तम् । नन्वेवं सप्तम्यन्त कुत्रान्वेतीत्यत आह—अन-  
न्त्येति । परिभाषाया लिङ्गवत्त्वनिश्चयमात् । तथा च यत्रानन्त्यविकारस्तत्रानन्त्यसेत्युपति-  
ष्ठत इति परिभाषार्थ इति भावः । एतेनानन्त्यविकार इति सीरदेवाद्याहतप्रथमान्तपठोऽ-  
नन्त्यस्य यो विकारः सोऽन्यसमीपवर्तिनो न यस्य कस्यचिदित्यर्थकः प्रत्युक्तः ।

\* भावः इत्यस्याग्रेऽय ग्रन्थो घ. पुस्तके ।

१ घ. °पत्तिः । द्वितीयपक्षे न चैव स्यात्तदभावे सू° । २ घ. कुर्मस्तस्मा° । ३ क एव  
वाऽस्तु । ४ ग. चिन्त्या नमस्पुरघोरिति सत्वानापत्तेस्तदा° । ५ क. ङ. तथा । ६ क. ङ. °दिवि° ।  
७ घ. °विति । ए° । ८ ग. ङ °न्त व्यर्थमत आ° । ९ ग. पाठः प्रत्युक्तः । भाष्यविरोधात् ।  
सादेशवळात्साहित्यप्रतीतिरिति भ्रमनिर.सा° ।

अन्त्येन समानो देशो यस्य सोऽन्त्यसदेशः ।

तत्त्वं चान्त्यवर्णतद्वर्णयोरितराव्यवधानेन बोध्यम् । अत एव विद्ध इत्याद्यर्थं ' न संप्रसारणे ' ( ६ । १ । ३७ ) इति चरितार्थम् ।

' अह्लोपोऽनः ' ( ६ । ४ । १३४ ) इत्यादेरनस्तक्षणेत्यादावाद्याकारादावप्रवृत्तिरप्यस्याः फलम् । यजादिस्वादिपरानन्ताङ्गस्याकारस्य लोप इत्यर्थस्यैवाङ्गांशे प्रत्ययस्योत्थिताकाङ्क्षतयौचित्यात् । अङ्गावयवयजादिस्वादिपरस्यान इत्यादिक्रमेणानेकत्रानेकक्लिष्टकल्पनापेक्षयाऽस्या उचितत्वात् ।

भाष्यविरोधाच्च । ननु सादेशश्रवणबलात्साहित्यप्रतीतेरव्यधीभावे बहुव्रीहौ वाऽर्थासंगतिरनन्वयापत्तिर्विधेयेन सहेति दोषनिरासायाक्षरार्थमाह—अन्त्येनेति । निपातनाद्बहुव्रीहिः सादेशश्चेति भावः ।

ननु देशशब्देनाऽऽकाशस्य प्रयोगस्य वा ग्रहणेऽतिप्रसङ्गस्तदवस्थ एव । स्थूलकालग्रहणेऽप्येवम् । सूक्ष्मकालग्रहणे त्वसभवः सर्वत्रात आह—तत्त्वं चेति । अन्त्यसदेशत्व चेत्यर्थः । इतरेति । प्रथमप्रवृत्तविधिविधेयकार्यस्थानित्वानाक्रान्तवर्णेत्यर्थः । यथाश्रुते कालव्यवधानसत्त्वादमुद्यदित्यादौ वर्णव्यवायसत्त्वाच्चासंगतिः स्पष्टैव । तथा च समानशब्दस्यैकपरत्वेन तथाऽव्यवधानेन तयोः कालयोरैक्याभ्यवसायक समुदितं कालदेशपदार्थमादाय तद्व्यवहार इति तदव्यवहितसमीपवर्तिन इति फलतीति सदेशशब्दोऽत्र तथा समीपपर इति बोध्यम् । अत्रार्थे मान सूचयन्नाह—अत एवेति । तथाऽव्यवधाननिवेशेन तथा-र्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथाऽन्यैव सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति भावः । एतेनास्या सत्यां स्य इत्यत्र तदोः सः साविति सत्व न स्यादिति भ्रान्तोक्त विद्धमित्यत्र वस्यानया न संप्रसारणमिति पुरुषोत्तमदेवोक्तं विदुष इत्यत्र विदो वस्य नानया वसोरिति संप्रसारणमिति पुरुषोत्तमसीरदेवाद्युक्त चापास्तम् । विदुष इत्यत्र निर्दिश्यमानेतिपरिभाषया निर्वाहाच्च ।

तदेतद्ध्वनयन्प्राचामुक्तिं खण्डयिष्यंश्चास्याः फलान्तरमध्याह—अह्लोपोन इति । आदिना विभाषा डिश्योः सान्तमहत इत्यादिपरिग्रहः । अन इति । अनः शकटं तत्संबन्धितक्षणकर्त्रेत्यर्थः । आदिना पयासीत्यादिपरिग्रहः । द्वितीयादिना द्वितीयाद्यकारपरिग्रहः । अपिरदमुद्यदित्यस्य प्रागुक्तस्य समुच्चायकः । ननु प्राचोक्तव्याख्याभेदेन तत्र प्रवृत्तिरेव नात आह—यजादीति । अङ्गस्य भस्येत्युभयलब्धमिदम् । विधौ परिभाषेति तु नास्त्येवेति भावः । नन्वस्मिन्नर्थेऽस्या अङ्गीकारे गौरवमतस्त व्याख्याभेदं सूचयन्नाह—अङ्गावयवेति । यजादिस्वादिपरस्यान इत्यादीति । आदिना सान्तमहत इत्यत्र

१ ड. °त्तिश्चान्त्येन स° । २ ड °व । स्थल° । ३ ख °सायान्त काल देश प° । घ. °सायायं काल देश प° । ४ ग. °नाकारादिपरि° । ५ क. ख. ड. °त्रत्यादिव्या° ।

न चैषा 'व्यङ्गः संप्रसारणम्' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रे भाष्ये प्रत्याख्यातेति भ्रमितव्यम् । वार्तिकोक्तफलानामनेकक्लिष्टकल्पनाभिरन्यथा सिद्धिं प्रदर्श्यापि यान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि तदर्थमेषा कर्तव्या प्रतिविधेयं दोषेषु । प्रतिविधानं चोदात्तनिर्देशात्सिद्धमित्याद्युपसंहारात् ।

मिमार्जिषतीत्यर्थं च । तत्र वृद्धेः पूर्वमन्तरङ्गत्वाद्धित्वे परत्वादभ्यासकार्थं ततोऽभ्यासेकारस्य वृद्धिवारणायाऽऽवश्यकी । न च वृद्धौ पुनरभ्यासह्रस्वत्वेन सिद्धिः । लक्ष्ये लक्षणस्थेति न्यायेन पुनरप्रवृत्तेः ।

तथा व्याख्यानपरिग्रहः । निराकाङ्क्षत्वेनैवमन्वयासम्भवः क्लेशबीजम् । नेकत्र, अहोपोनः विभाषादिशयोः सान्तमहतः मृजेवृद्धिरित्यादौ वार्तिकपठिते । नेकेति । सा च मनोरमादौ स्पष्टा ।

पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तिमुक्तव्याख्याभेदाश्रयिका स्वण्डयति—न चेषेति । वार्तिकोक्तेति । प्रयोजनं न संप्रसारणे संप्रसारणमित्यादि तत्सूत्रस्थवार्तिकोक्तैतत्परिभाषाफलानामित्यर्थः । अनेनादमुयडित्यस्य नान्यथा सिद्धिरिति सूचितम् । तत्सूत्रस्थवार्तिकोक्तानुक्तत्वात् । प्रदर्श्यापीत्यस्योपसंहारादित्यत्राश्रयः । यान्येतस्या इति । दोषाः सभाभूयांसो वा तस्मान्नार्थः परिभाषयेत्युक्त्वा न हि दोषाः सन्तीत्याद्युक्तोक्तं दोषाः स्वल्पि साकल्येन परिगणिताः प्रयोजनानामुदाहरणमात्रं कुत एतत्, न हि दोषाणां लक्षणमस्ति तस्मादितीत्यादिः । उदात्तेति । यथा स्वरितेनाधिकारस्तथा प्रतिज्ञाप्राप्तितेनोदात्तेनैतत्परिभाषाप्रवृत्तिः । तथा चानन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्योदात्तनिर्देश इति पाठ्यम् । तथा च न तदुक्तसकलफलानामन्यथासिद्धिः । किं तु केषाचिदेवेति तदर्थमप्यावश्यकीयमिति भावः । सिद्धमित्याद्युपेति । आदिनैतत्स्वण्डनप्रकारस्यान्त्यसदेशान्त्येत्यादिप्रागुक्तस्य परिग्रहः । अबिभस्सियत्र गतिस्तु वक्ष्यते ।

इदमेव ध्वनयन्वार्तिकोक्तमेवास्या लक्ष्यभेदेन भाष्योक्तफलान्तरमाह—मिमिति । त्यर्थं चेति । इयं स्वीकार्येति शेषः । तदुपपादयति—तत्रेति । मिमार्जिषतीत्यत्रेत्यर्थः । न्तरङ्गेति । अपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वम् । सन्यङोरिति हि षष्ठी । वृद्धीति । इक्परिभाषया न्यमार्डित्यस्य सिद्धावप्यत्र दोष एवेति भावः । णायाऽऽवश्यकीति पाठः । भाष्योक्तसीरदेवोद्यादृतसमार्धिं निराचष्टे—न चेति । पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिरिति न्यायेनाऽऽह—लक्ष्य इति । विकारान्यानुपूर्वैक्यमिति भावः ।

१ क. 'तत्सू' । २ ग. ड 'तिकृद्दनु' । ३ घ. सिद्धिरिति सूचितम् । तदुक्तानां सर्वेषां नान्यथासिद्धिः । किं । ४ ख. घ. 'वः । ५ घ. 'वाद्युक्त' । ६ ख. ड. 'पूर्वैक्य' ।

यत्तु न संप्रसारण इति सूत्रे भाष्ये नैतस्याः परिभाषायाः प्रयोजना-  
नीत्युक्तं तस्यायमर्थः । एतत्सूत्रप्रयोजनान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयो-  
जनानि न भवन्ति व्यधादावन्त्यसमानदेशयणोऽभावादिति । नैतान्ये-  
तस्याः प्रयोजनानीति पाठोऽपि क्वचिद्दृश्यते । वाचनिक्येवैषा । स्पष्टा  
च ' व्यङ्गः ' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रे ' अदसोऽसेः ' ( ८ । २ । ८० )  
इति सूत्रे च केचिदन्यसदेशस्येत्यनेन भाष्य इत्यन्यत्र विस्तरः ॥१०३॥

ननु ' अव्यक्तानुकरणस्यातः ' ( ६ । १ । ९८ ) इति पररूपं पट-  
दिति पटितीत्यादौ ' अलोऽन्त्यस्य ' ( १ । १ । ५२ ) इत्यन्त्यस्य  
प्राप्नोतीत्यत आह—

नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासधिकारे ॥ १०४ ॥

नन्वेवमप्यस्याः सत्त्वे न संप्रसारण इति सूत्रस्थभाष्यविरोधोऽत आह—यत्त्विति ।  
न भवन्ति व्यधादाविति पाठः । व्यधादाविति हेतुपूरणम् । अभावादिति । अका-  
रेण तादृशेन व्यधानादिति भावः । एवमर्थकरणे मान सूचयन्नाह—नैतान्येतेति ।  
अत एव नैषाऽस्ति परिभाषेति नोक्तम् । निक्थेवेति । एवः प्राग्वत् । अदमुयञ्छित्येत-  
त्सिद्धयर्थमस्या आवश्यकत्वमपि भाष्योक्तमिति सूचयन्प्रागुक्त फलं द्रढयश्च पृथगाह—  
अदसोऽसेरिति । एवमानुपूर्वास्तत्रापाठादाह—केचिदिति । चित्रयतेः क्विप्यतो  
लोपे णिलोपादौ प्रातिपदिकत्वात्सौ हल्ङ्घ्यादिलोपे यणः प्रतिषेधादितः सयोगान्तलोपाभावे  
पूर्वत्रासिद्धे नैति निषेधात्स्थानिवत्त्वाभावे प्रत्ययलक्षणेन पदान्तस्वाच्चिन् इत्यत्रान्त्यसदेश-  
स्थेकोऽभावादनन्त्यसदेशस्थेको दीर्घवारणाय वीरित्यत्रोपधाग्रहणम् । एवमत्रकासीदि-  
त्यादावुक्तीत्याऽऽद्याकारस्य वृद्धिवारणायोपधाग्रहणमत उपधाया इत्यत्र । एतेनोपधाद्व-  
यग्रहणादनित्येयमिति भ्रान्तोक्तमत उपधाया इत्यत्रोपधाग्रहण चिन्त्यमिति सीरदेवाद्युक्तं  
चापास्तम् । तदाह—अन्यत्रेति । भाष्यादावित्यर्थः ॥ १०३ ॥

प्रतियोगित्वेनोपस्थितालोऽन्त्यपरिभाषाप्रसङ्गादाह—नन्वव्यक्तेति । पटदिति, पटि-  
तीत्यादिसिद्धयर्थके पटदितीत्यादावित्यर्थः । तथा च पटितीत्यादि स्यात् । पटितीत्यादि न  
स्यादेतदर्थमेव तदुपादानम् । नानेति । अभ्यासविकारविषयभिन्नानर्थके स नैत्यर्थः ।  
दौ भृजाभिदित्याद्यमिति पाठः । आदिभ्यामर्जागणदित्यादावी च गण इत्यादिसग्रहः ।

अनभ्यासेत्युक्तेर्विभर्तीत्यादौ ' भृत्रामित् ' ( ७ । ४ । ७६ ) इत्याद्यन्त्यस्यैव । अभ्यासोऽनर्थकोऽर्थावृत्त्यभावात् । किं तूत्तरखण्ड एवार्थवानित्यन्यत्र निरूपितम् । एषाऽलोऽन्त्यात्सूत्रे माष्ये स्पष्टा । फलानामन्यथासिद्धिकरणेन प्रत्याख्याता चेति तत एवावधार्यताम् ॥ १०४ ॥

ननु ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्चेत्यादौ ' पुमान्छ्रिया ' ( १ । २ । ६७ ) इत्येकशेषापत्तिः । स्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्तकृतविशेषाभावाद् अह—

प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसंप्रत्ययः ॥ १०५ ॥

नन्वनभ्यासेति व्यर्थमभ्यासस्यार्थवत्त्वेन निषेधस्यैवाप्रसरेत आह—अभ्यास इति । च्यभावादिति । शब्दद्वयश्रवणवत्ततोऽर्थद्वयाप्रतीतिरिति भावः । समुदायस्यैवार्थवत्त्वमिति प्राचीनमतनिरासायाऽऽह—किं त्विति । एवस्तद्व्यावृत्तये । अर्थभावः—केवलमभ्यासस्याप्रयोगेण ततो लोकेऽर्थाबोधात्तस्य तत्त्वम् । उत्तरखण्डस्य तु प्रत्ययान्यवहितप्राग्वर्तिनः केवलस्याप्यन्यत्रार्थबोधकताया दृष्टत्वेनार्थवत्त्वमेव । पेचतुरित्यादौ तदभावेऽप्यर्थबोधाच्च । अभ्यासप्रयोगस्तु रौपेण पुंष्यतीतिवत्साधुत्वार्थ एव । यातिरित्यादौ तु शिष्यमाण लुप्यमानार्थाभिधायीति न्यायेनैकदेशेतिन्यायेन सर्वे सर्वपदेति न्यायेन चोत्तरखण्डाभावाच्छिष्यमाणस्यैवार्थबोधजनकत्वम् । न हि लोपाविषये तस्य तत्त्वं दृष्टम् । इदं केवलस्यानर्थकत्वं समुदायस्यार्थवत्त्वमिति वदतोऽप्यावश्यकम् । अत एव प्रागुक्तदयतेरितिसूत्रस्थभाष्यसंगतिरिति । तदाह—अन्यत्रेति । शेखरादावित्यर्थः । अलोन्त्यादिति । उपधासज्ञासूत्र इत्यर्थः । अन्यथेति । नाऽऽम्रोडितस्यान्त्यस्य तु वेति ज्ञापकात्पटितीत्यादिसिद्धिः । अनादेशे कृते ह्रस्वि लोप इति नलोषादाम्यामित्यादिसिद्धिः । द्विशकारकनिर्देशेन ध्वसोरिति लोपः सर्वादेशः । अत्रग्रहणादत्र लोप इति लोपः सर्वादेशः । अत एव तस्य लोप इत्यत्र तस्य ग्रहण सार्थकं सर्वादेशत्वाय । इत्यादिप्रकारेणेत्यर्थः । इय वाचनिकीति केचित् । इदमो मैः, इदश्च यः सौ, अयुप्स्रित्येव सिद्धे दग्रहणमाद्याज्ञापकमार्तिपित्योरिति निर्देशोऽनभ्यासेत्यंशज्ञापक इत्यपरे ॥ १०४ ॥

अनभ्यासेत्युक्त्योत्तरखण्डस्यार्थवत्त्वेन स्मृतप्राधान्यप्रसङ्गादाह—नन्विति । ननु ब्राह्मणेति पाठः । त्यादाविति । आदिना क्षत्रियवत्सा च क्षत्रियावत्सश्चेत्यादिपसिग्रहः । प्रधान इति । निरूपितत्वं सप्तम्यर्थः । तन्मात्रनिरूपितकार्येत्याद्यर्थः । तेन, उक्त-

१ घ. 'वणात्' । २ क. पुष्पाती । ३ ग. ङ. 'मः, दश्च । ४ ग. सिद्ध इद्रह' । ५. सिद्ध इद्रह' । ५ घ. 'वैत्यर्थः ।

तेन प्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्ताप्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वकृतविशेषस्यापि स-  
त्त्वेन न दोषः ।

स्पष्टा चेयं ' पुमान्स्त्रिया ' ( १ । २ । ६७ ) ' नपुंसकमनपुंस-  
केन ' ( १ । २ । ६९ ) इत्यनयोर्माष्ये । अन्तरङ्गोपजीव्यादपि प्रधानं  
प्रबलमिति ' हेतुमति च ' ( ३ । १ । २६ ) इत्यत्र माष्यकै-  
यटयोः ॥ १०५ ॥

ननु स्वस्रादित्वप्रयुक्तो मातृशब्दस्य ङीब्रनिषेधः परिच्छेत्तृवाचकमा-  
तृशब्देऽपि स्यादत आह—

अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी ॥ १०६ ॥

परिभाषाङ्गीकारेण । क्ताप्रधानेति । ब्राह्मणनिष्ठेत्यर्थः । अपिना तत्कृततत्समुच्चयः ।  
न दोषः, नैकशेषापत्तिस्तत्र । यत्तु सीरदेवादय आ कडारादित्यत्र कडाराः कर्मधारय  
इत्यत्रत्यः कडारशब्दोऽवधिर्न तु प्राक्कडारादित्यत्रत्य इत्यस्याः फलम् । आद्ये पूर्वत्व-  
विशिष्टानां तेषां विधानेन प्राधान्यमन्त्ये वैपरीत्येन तत्त्वाभाव इति । तन्न । द्वयोरप्यधि-  
कारत्वेन गुणानामिति न्यायेनासम्बन्धात् । लौकिकोऽयं न्यायः । तत्र हि जयपराजयौ  
राश्येव प्रतीयेते । बहुषु गच्छत्सु को यातीति प्रश्ने राजेत्युत्तरं च ।

स्पष्टा चेयमिति । आद्येऽनयोक्तरीत्योक्तस्थल एकशेषो वारितः । अन्त्येऽनया  
बलीबशेषमङ्गीकृत्य तत्सूत्रं प्रत्याख्यातम् । अङ्गीर्ज्ञातेऽर्थे गुणसदेहे विदूरेऽव्यक्तरूपे च  
लोके नपुंसकलिङ्गस्यैव प्रयोगात्तस्य प्रधानत्वम् । केनेत्यनयोरिति पाठः । नेत्यादाविति  
पाठान्तरम् । आदिसग्राह्यमेव प्रकटयन्परिभाषायां विषयान्तरमप्याह—अन्तरमिति ।  
अन्तरङ्गादुपजीव्याच्चेत्यर्थः । परादितोऽन्यस्मात्प्रबलमिति किमु वक्तव्यमित्यापिना सूचितम् ।  
कैयटयोरिति । तत्र हि हेतुमतीत्यस्य प्रकृत्यर्थविशेषणत्वं सदूष्य स्वीकृते प्रत्ययार्थ-  
विशेषणत्वे पाचयत्योदन देवदत्तो यज्ञदत्तेनेत्यादौ प्रयोज्यकर्तारि स्वव्यापारापेक्षया स्वात-  
न्त्र्येण परत्वादन्तरङ्गत्वादुपजीव्यत्वाच्च प्राप्तकर्तृत्वमनादृत्यदत्तकर्मतापत्तिदोषो गतिबु-  
द्धीति नियमेन वारितः । लोके तथा दर्शनं हि तद्धीजम् । अन्यथा तदसगतिः स्पष्टैवेति  
भावः । एतेन मनोरमादिकं चिन्त्यमेवेति सूचितम् ॥ १०९ ॥

प्राबल्यप्रसङ्गादाह—नन्विति । शब्दस्येति । अवधेः संबन्धित्वेन विवक्षायां  
षष्ठी । एवमग्रेऽधिकरणत्वेन तस्या सप्तमी । परीति । परिच्छेत्ता धान्यमाता ।  
पि स्यादिति । व्याप्तिन्यायात् । तस्य यौगिकत्वेन व्यक्त्यादिविशेष्यकत्वेन स्त्रियामपि

१ क. ग. घ. °ल इति । २ घ. °दृत्य क° । घ. °दृत्य क° । ३ क. ड. °म् । प्राधान्येन  
तात्पर्यविषयप्र° ।

तेन शुद्धरूढस्य जननीवाचकस्यैव ग्रहणं न परिच्छेत्तृषाचकस्य । योगजबोधे तदनालिङ्गितशुद्धरूढिजोपस्थितिः प्रतिबन्धिकेति व्युत्पत्तिरेव तद्विजम् । रथकाराधिकरणन्यायसिद्धोऽयमर्थः ।

कश्चित्तु ' दीधीवेवीटाम् ' ( १ । १ । ६ ) इत्यत्रानया परिभाषया दीधीङ्खेवीङ्खोरेव ग्रहणं न दीङ्खीङ्खेञ्जीनामिति । तन्न । तथा सति दीवेधीवीटामित्येव वदेदित्यन्ये ॥ १०६ ॥

वृत्तेः । तेन, तद्वलवत्त्वाङ्गीकारेण । समुदायप्रसिद्धिसत्त्वाय योगव्यवच्छेदाय चाऽऽह— शुद्धेति । अत्र न्याये बीजमाह—योगेति । रूढ्यर्थतावच्छेदकानाक्रान्तैमात्रविषय-कयोगजबोध इत्यर्थः । शुद्धेत्यस्य व्याख्या—तदनेति । योगामिश्रितेत्यर्थः । यद्वा यतस्तदनालिङ्गितत्वमतः शुद्धत्वमित्यर्थः । तथा च यौगिकरूढस्थलेऽयं प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावो न योगरूढस्थल इति बोध्यम् । ननु प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावकल्पन एव किं मानमत आह—रथेति । ' माहिष्योग्रौ प्रजायेते विटशूद्राङ्गनथौर्नृपात् । शूद्रायां करणो वैश्याद्विज्ञास्वेष विधिः स्मृतः । माहिष्येण करण्या तु रथकारः प्रजायते ' इति मनुः । तदधिकरणे हि योगेन तत्कर्ता द्विजो ग्राह्योऽथ वोक्तरूपो रूढ इति सशय्य विद्यादिमत्त्वाद्योगार्थ एवेति पूर्वपक्ष कृत्वा रूढेः प्राबल्यात्स एव गृह्यते तदन्यथानुपपत्त्याऽध्ययनादिक तस्य कल्प्यत इति सिद्धान्तितम् । ङ्घोऽयम् । प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावः । एतेन नायमेतदधिकरणसिद्ध इति भ्रान्तोक्तमपास्तम् ।

पुरुषोत्तमदेवस्यैरदेवार्थेतिमाह—कश्चिदिति । समुदायस्य सर्वानुग्राहित्वेन प्राधान्यात्प्रधानन्यायलब्धोऽयमर्थस्तेनेत्युक्तवैतत्तैरुक्तम् । इतीत्यस्याऽऽहेति शेषः । अत्र कश्चिदित्यनेनारुचिः सूचिता । सिद्धान्त इङ्ग्रहणसत्त्वेऽपि दीधीवेव्योग्रहणस्य प्रत्याख्यानरूपा । तथा च भाष्यरीत्या न तत्फलमिति तात्पर्यम् । सूत्ररीत्याऽपि तत्रेति मतान्तरमाह— तत्रेति । यच्च दीवेदीधीटामिति वदेदिति न्यासकृदनुवादिसीरदेवादयस्तत्र । तावताऽपि दीधीत्यशो दोषतादवस्थ्यात् । अत आह—दीवेधीति । यत इत्यादिः । तथा च निष्प्रयोजनेयं परिभाषेति तद्भावः । अन्य इति । न्यासकृदादय इत्यर्थः । अनेनारुचिः सूचिता । तद्वीजं त्वेवमपीडशे सदेहतादवस्थमेवेत्युपायान्तराश्रयणावश्यकत्वे तेनैवात्रापि निर्वाह इति नैवंप्रकाराश्रयणमपि । किं चावतारणोक्तफलसत्त्वेन सफलत्वमिति । किं च कश्चिन्मते तत्र प्रधानन्यायेनानिर्वाहः । एतेन प्रधानन्यायेनैवेय गतार्थेति भ्रान्तोक्तमपास्तम् । तस्मादुक्तमूलकलिकैवैयमिति भावः । इदमपि साहचर्यानाश्रयणेन । यदि तु साह-

१ ख. ग. घ. ङ. 'ये मूलमा' । २ घ. 'न्तस्तदस्य यौगिकत्वेन व्यक्त्यादिविशेष्यकत्वेन विद्योगिकरूढयुपस्थितयोगजबो' । ३ घ. 'योद्विजात् । ४ ङ. 'युक्तिं स्रण्डयति—रु' ।

जनु वातायनार्थं गवाक्षेऽवडो वैकल्पिकत्वाद्गोक्ष इत्याद्यपि स्यादत आह—

व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥ १०७ ॥

लक्ष्यानुसाराद्यवस्था बोध्या । ' शाच्छोः ' ( ७ । ४ । ४१ ) इति सूत्रे ' लटः शतृ ' ( ३ । २ । १२४ ) इत्यादिसूत्रेषु च भाष्ये स्पष्टा ॥ १०७ ॥

विधिनियमसंभवे विधिरेव ज्यायान् ॥ १०८ ॥

नियमे ह्यश्रुताया अन्यनिवृत्तेः सामर्थ्यात्परिकल्पनमुक्तानुवाददोषश्चेति

चर्येण योनिसम्बन्धवाचकस्यैव स्त्रीलिङ्गिमात्रस्यैव वा ग्रहणमित्युच्यते तदैषा निष्फलेति केचित् । वस्तुतस्तु पाण्डुकम्बलादिनिरित्यत्र रूढस्यैव तस्य ग्रहण न यौगिकस्यापीत्यादि-फलार्थमस्या आवश्यकत्वम् । मूल तूपलक्षणमिति बोध्यम् ॥ १०६ ॥

यौगिकरूढप्रसङ्गेन योगरूढविषयामाह—ननु वातेति । नार्थे गेति । अभिधेय-वाच्यर्थशब्देन बहुव्रीहिः शब्दपरेण तेन सामानाधिकरण्यमिति भावः । यद्वा तद्रूपेऽर्थे । गोक्ष इत्याद्यपि स्यात्तत्र तस्य वैकल्पिकत्वादित्यर्थः । त्याद्यपीति । आदिना गो अक्ष इत्यस्य परिग्रहः । व्यवेति । विशिष्टविषयेऽवस्थितया विभाषया विकल्पेनेत्यर्थः अपिः सार्वत्रिकाव्यवस्थितविभाषासमुच्चायकः । क्रियन्त इति । क्वचिदिति शेषः । तदाह—लक्ष्येति । एतेन जातिपक्षसमाश्रयणलब्धोऽयमर्थः । तत्र हि सकृदेव लक्षण प्रवर्तते । तस्या एकत्वादेकत्र लक्ष्यजातौ कृतोऽपि भावः सर्वत्र कृत इति विकल्पस्य चारितार्थम् । भावाभावात्मको हि विकल्प इति पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तदाश्र-यणेऽपि लक्ष्यानुसारस्यैव बीजत्वात् । त्वदुक्तयुक्तेः सकृद्गतिन्यायप्रसङ्गे खण्डितत्वाच्च । एतेन व्याख्यानत इत्यस्य प्रपञ्चभूतेयमित्यपास्तम् । व्याख्यानस्यापि लक्ष्यमूलत्वात् । लक्ष्यानुसारमेव दर्शयन्नाह—शाच्छोरिति । तत्र हि देवत्रात इत्यादिना तासा परि-गणन कृतम् । अन्ये कौर्वतः पाचत इत्यादेः पचिततरामित्यादेश्च शत्रादितदभावाम्भ्यां सिद्धिरनया कृता ॥ १०७ ॥

विकल्पविधिप्रसङ्गादाह—विधीति । अपूर्वविधीत्यर्थः । संभव इति । अनेनासं-भवे तस्यावकाशः प्रदर्शितः । प्रकर्षे हेतु सूचयन्नत्र बीजमाह—नियमे हीति । यतस्तत्रैत्यर्थः । परिसख्याऽप्यत्र शास्त्रे नियमपदेन गृह्यत इति न न्यूनता । नियमशा-स्त्राणां विधिमुखेनैव प्रवृत्तेः सिद्धान्तितत्वादाह—सामर्थ्यादिति । पश्चेतीति ।

१ क ड 'लिङ्गमा' । २ ख घ. 'षयमा' । ३ ख. ग ड 'व्रीहिः श' । ४ घ. 'स्यादित्यादि तत्र । ५ क. पुस्तके 'ये व्यक्स्थि' इति पाठान्तरम् । ६ ड. 'त्रिकव्य' ।



लाघवाद्धिधिरेवेति बोध्यम् । ' यस्य हलः ' ( ६ । ४ । ४९ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ १०८ ॥

ननु ' आशसायां भूतवच्च ' ( ३ । ३ । १३२ ) इत्यनेन लुङ् इव लङ् लोटोरप्यतिदेशः स्यादत आह—

सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥ १०९ ॥

सामान्योपस्थितिकाले नियमेन विशेषोपस्थापकसामग्र्यभावोऽस्या बीजम् । तेनानद्यतनभूतरूपे विशेषे विहितयोस्तयोर्नातिदेशः । इयम-  
नित्या । ' न ल्यपि ' ( ६ । ४ । ६९ ) इति लिङ्गात् । तेन स्थानिवत्सू-

चेन प्राप्तबाधसमुच्चयः । तथा च दोषत्रयम् । इतिहेतौ । लाघवात्, दोषत्रयाकल्पनजला-  
घवात् । तथा च तन्मूलेयम् । एतेनान्तरङ्गन्यायसिद्धोऽयमर्थ इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् ।  
अर्थकृतबहिरङ्गत्वस्य निरस्तत्वात् । प्रागुक्तान्यतमस्य तस्य दुर्वचत्वाच्च । यस्येति ।  
तत्र हि यस्येति सघातग्रहणपक्षेऽन्त्यलोपे पूर्वेण सिद्धे सामर्थ्यादप्राप्तः सर्वलोपो विधेय  
उत यस्य हल एव नान्यतो लोलूयितेत्यादाविति सशयानयाऽपूर्वविधिरेवेत्युक्तम् । इजादेः  
ससुम इत्यत्र तु पूर्वपक्षिणेयमुक्त्वा न सिद्धान्तिनेति तस्यात्रानुल्लेखः । काचित्कस्तथा  
पाठस्तु न युक्त इति बोध्यम् ॥ १०८ ॥

विधिप्रसङ्गादतिदेशविधिविषयामाह—नन्विति । स्यादिति । तयोरपि भूते  
विधानेन व्याप्तिन्यायादिति भावः । न्यातिदेशे, तत्सभवे । अन्यथा तु तस्यैवातिदेश  
इति बोध्यम् । सामान्योपेति । तृतीयार्थे पञ्चम्यर्थे वा बहुव्रीहिः । तदुपस्थापकसाम-  
ग्रीकाल इत्यर्थः । एतेन ब्राह्मणवदस्मिन्क्षत्रिये वर्तितव्यमिति लोकन्यायसिद्धोऽयमर्थस्तत्र  
हि तत्सामान्यकार्यं पादवन्दनादिकमतिदिश्यते न माठरादिप्रयुक्त परिवेषणादिकमिति  
पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तत्राप्यस्यैव बीजत्वस्य वाच्यत्वात् । एतेनोपस्थितसा-  
मान्यधर्मैस्तदाक्षिसव्यापकधर्मैश्च विध्याकाङ्क्षापूरणे साति तदन्यग्रहणे मानाभाव इति  
तर्कमूलेयमिति मान्योक्तमपास्तम् । तत्र मूलस्यैवाभावात् । तस्य मूलत्वस्य निरस्तत्वाच्च ।  
नियमेनेत्यनेन तत्सत्त्वे तदातिदेशोऽपीति सूचितम् । तेन, परिभाषाङ्गीकारेण । यत्त्वनित्य-  
त्वेऽनल्लिघाविति विधिग्रहणं लिङ्गमिति सीरदेवस्तत्र । तस्यान्यार्थताया भाष्य एव  
स्पष्टत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—न ल्यपीति । अन्यथा न क्त्वा सेडिति निषेधेन  
सेटस्तदभावात्कित्वस्य क्त्वाविशेषधर्मत्वादनतिदेशेनेत्वाप्राप्त्या निषेधवैफल्यं स्पष्टमेवेति

श्रेण विशेषातिदेशोऽपि । स्पष्टं चैतत्सर्वं स्थानिवत्सूत्रे भाष्ये ॥ १०९ ॥  
ननु ' तित्स्वरितम् ' ( ६ । १ । १८५ ) इति स्वरितत्वं किरती-  
त्यादावपि स्यादत आह—

प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्य ग्रहणम् ॥ ११० ॥

इयं च ' अङ्गस्य ' ( ६ । ४ । १ ) इति सूत्रे भाष्ये पठिता ।  
वर्णग्रहणे च न प्रवर्तत इति तत्रैव कैयटे स्पष्टम् । अत एव ' सनाशंस-  
मिक्ष उः ' ( ३ । २ । १६८ ) ' बले ' ( ६ । ३ । ११८ ) इत्यत्र  
सन्वलयोः प्रत्यययोर्ग्रहणम् ।

परे तु ' तित्स्वरितम् ' ( ६ । १ । १८५ ) इति सूत्रे एषा परिभाषा  
लक्ष्यसंस्काराय भाष्ये कापि नाऽऽश्रितेति कैयटेनोक्तम् । ' अङ्गस्य '  
( ६ । ४ । १ ) इति सूत्रे तत्प्रत्याख्यानायैषा भाष्ये एकदेशिनोक्ता ।  
अत एव तिति प्रत्ययग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिककृतोक्तम् ।

भावः । तेन, एतदनित्यत्वेन । देशोऽपीति । अत एवाग्रहीदित्यादौ दीर्घस्य  
स्थानिवत्त्वेनेट्त्वादित ईटीति लोपसिद्धिः । प्रखाय प्रखन्येत्यादावात्वविक्रमादिसिद्धिश्च ।  
चैतत्सर्वमिति । न्यायबीजानित्यत्वरूप त्रितयम् ॥ १०९ ॥

लुडादिप्रत्ययप्रसङ्गादाह—नन्विति । ननु तित्स्वरितमिति स्वरितत्वं किरतीत्यादाव-  
पीति पाठः । सनाशसेत्युः सन्वातोरपीत्यपपाठ । वक्ष्यमाणेन पौनरुक्त्यापत्तेः । स्यादिति ।  
व्याप्तिन्यायादिति भावः । प्रत्ययस्य, तस्यैव । क्वचित्तथैव पाठः । इय चाङ्गस्येति  
सूत्र इति पाठः । अङ्गसज्ञासूत्र इति पाठेऽङ्गसज्ञाधिकारसूत्र इत्यर्थः । पठितेत्यनेन वाच-  
निकत्वं सूच्यते । हणे चेति । चस्वर्थे । तत्रैव, अङ्गस्येति सूत्र एव । अन्यथेको यण-  
चीत्यादि चैयो जय इत्यादावेव स्यान्नतु दध्यत्रेत्यादाविति भावः । अस्याः फलान्तरमध्याह—  
अत एवेति । वर्णान्यत्र परिभाषाङ्गीकारादेवेत्यर्थः ।

लक्ष्यसंस्कारायेत्युक्तिस्वास्थ्यमाह—अङ्गस्येतीति । तत्प्रत्येति । अङ्गाधिकारप्रत्ये-  
त्यर्थः । परिभाषापेक्षयाऽङ्गाधिकारे लाघवादनया सर्वेष्टासाधनोच्चास्या एकदेश्युक्तिवत्त्वम् ।  
इदमेव द्रढयति—अत एवेति । तत्र तदर्थं तदुक्तत्वेन लक्ष्यासंस्कारकतया वस्तु-  
तोऽस्या अभावादेवेत्यर्थः । तिति, तित्स्वरितमित्यत्र । एतत्सत्त्वे तु तदसगतिः स्पष्टैव ।  
अत एव च नानया तत्प्रत्याख्यात किं त्वन्यथा भगवता । अत एव चापृक्त एकाल  
स्वाङ्गे तसित्यादौ प्रत्ययग्रहणावैयर्थ्यम् । विज इडित्यत्र प्रत्ययग्रहणाभावश्च । नन्वेवमुक्त-

उक्तसूत्रयोर्व्याख्यानात्प्रत्यययोरेव ग्रहणमित्याहुः ॥ ११० ॥

ननु 'विपराभ्यां जेः' (१।३।१९) इत्यात्मनेपदं परा सेना जयतीत्यर्थके परा जयति सेनेत्यत्र प्राप्नोतीत्यत आह—

सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥ १११ ॥

तेन विशब्दसाचर्यादुपसर्गस्यैव पराशब्दस्य ग्रहणमिति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम् । सहचरणं सद्दशयोरेवेति सहचरितशब्देन सादृश्यवानुच्यते । रामलक्ष्मणावित्यादावपि सादृश्यमेव नियामकम् । सद्दशयोरेव सह-  
चिवक्षा तयोरेव सहप्रयोग इत्युत्सर्गाच्च ।

सूत्रयोः का गतिरत आह—उक्तेति । सनेत्यादिसूत्रयोरित्यर्थः । तित्स्वरितमित्यत्र गतिस्तु भगवतैवोक्तेति भावः । व्याख्यानादिति । गर्गादिषु जिगीषुशब्दपाठरूपज्ञापकमूलकादाद्ये मतौ बह्वच इति मनुप्साहचर्यमूलकादुपसर्गस्य घञीत्यतो बहुलग्रहणानुवृत्तिमूलकाद्वा व्याख्यानादन्त्ये निर्वाह इत्यर्थः । अन्यथाऽऽद्ये धातुसाहचर्याद्घातोरेव ग्रहणं स्यादन्त्ये व्याप्तिन्यायादुभयोर्ग्रहणं स्यादिति भावः ॥ ११० ॥

साहचर्यप्रसङ्गात्साजात्याच्चाऽऽह—ननु विपेति । परा, उत्कृष्टा । त्यत्र, त्यत्रापि । व्याप्तिन्यायात् । तेन, परिभाषाङ्गीकारेण । तत्रैव, विपराभ्यामिति सूत्र एव । न च पक्षिवाचकविशब्दानुपसर्गस्यापि सत्त्वेन कथं तत्साहचर्यमिति वाच्यम् । जयतिसबद्धविशब्दस्यान्यार्थकत्वाभावात् । बहुवि जयति वनं विं जयति वी जयत इति प्रयोगाणां काप्यदर्शनात् । कैयटस्तु चिन्त्य इत्युद्द्योते स्पष्टम् । अस्या लोकसिद्धत्व प्रतिपादयति—सहेति । सहगमनसहप्रयोगादिरूपमित्यर्थः । गत्यर्थत्वात्कर्तरि क्त इत्याह—सादृश्यवानिति । ननु लोके दृष्टसाहचर्यसंबन्धस्य रामलक्ष्मणावित्यादावेकत्र कार्ये प्रसिद्धमित्यसापेक्षत्वसंबन्धरूपस्याभिधानियामकत्वं दृष्टं न सादृश्यस्येति कथमुक्तार्थसिद्धिरत आह—रामेति । सहचरस्य भावः साहचर्यं तच्च तयोरेवेति साहचर्यशब्देन सादृश्यत्वाभादिति भावः । श्यमेवेति । एवेन तस्य व्यवच्छेदः । सादृश्यनियामकत्वं तु तस्यास्त्येवेति बोध्यम् । तस्यैव तत्त्वे हेत्वन्तरमाह—सद्दशयोरिति । आद्यन्तौ टकितावित्यादौ कचिद्व्यभिचारोदाह—इत्युत्सर्गाच्चेति ।

नन्वेवमप्येषा साहचर्यसंबन्धो न कापि गृहीत इति कथं प्रकृतार्थसिद्धिरत आह—

१ क. ग. ड. 'पाठाज्ज्ञापकादा' । २ ख. घ. प्रत्ययप्रस' । ३ क. 'र्थमूलकाद्वाख्यानात्सा' ।  
४ ख. घ. 'द्भमित्यर्थसा' । ५ ग. 'सिद्धिः । न द्वेषां कापि साहचर्यसंबन्धो गृहीतोऽत' ।

ध्वनितं चेवं 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' (२।३।८) इति सूत्रे भाष्ये । तत्र हि 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' (२।३।१०) इति सूत्रेण लक्षणादिद्योतकपरियोगे पञ्चमीमाशङ्क्य यद्यप्ययं परिहृष्टापचारो वर्जने चावर्जने चायं खल्वपशब्दोऽदृष्टापचारो वर्जनार्थ एव कर्मप्रवचनीयस्तस्य कोऽन्यः सहायो भवितुमर्हत्यन्यो वर्जनार्थाद्यथाऽस्य गोः सहायेनार्थ इति गौरिवाऽऽनीयते नाश्वो न गर्दम इत्युक्तम् । तेन हि सहशानामेव प्रयोगे सहायभावो बोधितः । 'द्विस्त्रिश्चतुः' (८।३।४३) इति सूत्रे साहचर्येणैव कृत्वोर्थस्य ग्रहणे सिद्धे कृत्वोर्थग्रहणादेषाऽनित्या । तेन 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इत्यत्र धातुसाहचर्येऽप्यागमस्येदो ग्रहणमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ १११ ॥

ननु 'अस्थि' (७।१।७५) इत्याद्यनङ्प्रियसक्थना ब्राह्मणे-  
नेत्यत्र न स्यादङ्गस्य नपुंसकत्वाभावादतआह—

श्रुतानुमितयोः श्रुतसंबन्धो बलवान् ॥ ११२ ॥

ध्वनितमिति । दृष्टापचारः, अनियतार्थकः । तदाह—वर्जेति । चावर्जने चेति । लक्षणादावित्यर्थः । अनर्थकस्यापि तस्य तादृशस्य सत्त्वात् । द्वितीयकोटिप्रदर्शनार्थैव-  
मुक्तम् । कर्मप्रवचनीय इत्यत्रान्वयः । अपशब्दः, अपेति शब्दः । अदृष्टेत्यस्य व्याख्या—  
वर्जेति । नार्थः, प्रयोजनम् । ध्वनितत्वं विशदयति—तेन हीति । यतस्तत्सूत्रस्थोक्त-  
भाष्येणेत्यर्थः । साहेति । अस्य द्विस्त्रिरित्यादिः । कृत्वोर्थस्य, चतुःशब्दस्य । कृत्वोर्थानामिति  
पाठेऽर्थापेक्षं प्रयोगापेक्षं वा बहुवचनम् । पूर्वनिपातस्य व्यभिचरितत्वादाह—तेन  
दीधीति । आहगमेत्यादावृधातोर्ग्रहणाभावोऽपि फलमिति बोध्यम् । सहचरितशब्दस्योक्त  
एवार्थो न तु सहगन्तृमात्रम् । अत एव सयोगो विप्रयोगश्चेति हरिकारिकाव्याख्यावसरे  
साहचर्ये पञ्चम्यपाङ्परिभिरित्युदाहृत्य वर्जनार्थापसाहचर्यात्तदर्थस्यैव परेः कर्मप्रवचनीयस्य  
ग्रहणमित्युक्तं हेलाराजादिभिः । तस्मात्सहचरणसंबन्धज्ञानमूलकतदर्थमात्रतात्पर्यग्रहोऽस्या  
बीजम् । तदाह—अन्यत्रेति । उद्योतादावित्यर्थः ॥ १११ ॥

साहचर्यसंबन्धप्रसङ्गादाह—नन्वस्थीति । यत्तु श्रुतानुमितयोः श्रुतेनैव संबन्ध  
इति परिभाषान्तरमिति । तन्न । वक्ष्यमाणरीत्याऽस्यो नैष्कल्येनात्र श्रुतानुयोगिकसंबन्धस्यैव

श्रुतेनैव संबन्धो नानुमितेन प्रकरणादिप्राप्तेनेत्यर्थः । प्रकरणादितः श्रुतेर्बलवत्त्वादिति भावः । एवं च तत्र लिङ्गमस्थ्यादीनामेव विशेषणं नाङ्गस्य । शिशीलुङ्गनुम्बिधिषु तु गृह्यमाणस्याभावात्प्रकरणप्राप्ताङ्गस्यैव विशेषणम् ।

अत एव ' वा नपुंसकस्य ' ( ७ । १ । ७२ ) इति सूत्रे वा शाविति न कृतम् । तत्र नपुंसकग्रहणं हि गृह्यमाणशत्रन्तस्यैव नपुंसकत्वे यथा स्याद्बहवो वदतो येषु तानि कुलानि बहुददतीत्यत्र मा भूद्बहूनि ददन्ति येषु ते बहुददन्त इत्यत्र यथा स्यादित्येवमर्थम् । स्पष्टं चेदं स्वमोर्नपुंसकात् ' ( ७ । १ । २३ ) इत्यत्र भाष्ये ।

केचित्तु ' अचो रहाभ्यां द्वे ' ( ८ । ४ । ४६ ) इत्यत्र श्रुतेन रेफस्य

विषयित्वात्तदाह—श्रुतेनेति । बलीयानित्यर्थकैवव्यवच्छेद्यमाह—नानुमीति । एतदर्थमाह—प्रकरेति । अनेन स्थानप्राप्तस्य न तत्त्वमिति सूचितम् । स्फुटी भविष्यत्यनुपदमेवैतत् । अत्र प्रकरणप्राप्तेरेव सत्त्वाल्लिङ्गत्यागः । आदिपद त्वेतद्गीजभूतन्यायसंचारध्वननाय । तदाह—प्रकरेति । श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानेसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति न्यायेनेति भावः । तत्र, अस्थीत्यादिसूत्रे । लिङ्ग, प्रकरणप्राप्तम् । इदं च तत्संभवे बोध्यम् । तदभाव आह—शिशीति । गृह्यमाणस्य, द्विविधश्रूयमाणत्ववतः । अत्र हि श्रुतत्व साक्षादुच्चारितत्वम् । अन्यतरौकाङ्कारूपस्थानप्रमाणलब्धत्वं च । अनुमितत्वं तूमयाकाङ्क्षारूपप्रकरणप्राप्तत्वमिति बोध्यम् ।

तदेतद्भवनयन्तुक्तार्थे ज्ञापकमप्यस्तीति सूचयंश्चाऽऽह—अत एवेति । एतद्भवनसत्त्वोदेवत्यर्थः । तत्र नपुंसकग्रहणं हीत्येवमर्थमित्यन्वयः । गृह्यमाणशत्रन्तेति । अत्र द्वितीयप्रकारेण तत्त्वम् । ननु केवलस्थलेऽङ्गविशेषणत्वेऽपि सिद्धिरिति किमर्थं नियमोऽतस्तस्य फलमैव व्यवच्छेद्यमाह—बहेत्यादिना । फलान्तरमप्याह—बहूनीति । स्पष्टं चेदमिति । अस्थीत्यादौ तत्तस्य विशेषणम् । श्यादिविधौ तदभावात्तत्तस्य विशेषणमितीत्यर्थः । तत्र हि श्यादिविधौ तत्कस्य विशेषणमिति प्रश्ने तथोक्तम् । तेनार्थतः परिभाषा ध्वनितैवेति भावः ।

अर्थान्तराभिप्राया पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्ति खण्डयति—केचित्त्विति । श्रुतेन, साक्षाच्छब्दबोधितेन । अनुमितत्व चात्र मते न प्रकरणप्राप्तत्व किन्तु सामान्यरूपेण प्रती-

१ घ. 'नन'मा० । २ घ. 'ङ्ग, स्थानप्रम प्रा० । च 'ङ्ग, स्थानप्रक० । ३ घ. 'त अका० । ४ घ. 'त्वं वा । अ० । ५ क. ख. घ. 'मू केवलस्थल इति भावः । न० । ६ क. 'रिति विधा-तस्त० । ७ ग. लस्यैव व्य० ।

निमित्तत्वेन यरन्तर्भावादानुमितं कार्यित्वं बाध्यत इत्येतदुदाहरणमाहुः ।  
तन्न । तक्रकौण्डिन्यन्यायेन सिद्धेरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११२ ॥

ननु 'तत्पुरुषे तुल्यार्थ' ( ६ । २ । २ ) इति स्वरः परमेण कार-  
केण परमकारकेणेत्यादौ स्यात्तथा 'गातिस्थाद्युपाभूम्यः' ( २ । ४ ।  
७७ ) इति लुक् पै शोषण इत्यतः कृतात्वात्परस्यापि स्यादत आह—

लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् ॥ ११३ ॥

लक्षणोक्तेत्यर्थः । तत्तद्विभक्तिविशेषाद्यनुवादेन विहितो हि समा-

तिविषयत्वम् । तेन विशेषविषयानुमानात् । तदाह—यरन्तरिति । सिद्धेरिति ।  
एतेन तात्सिद्ध एवायमर्थ इति भ्रान्तोक्त लोकन्यायलब्धोऽयमर्थस्तथा च पठ्यते साक्षाच्छि-  
ष्टेनानुमित बाध्यत इतीति सीरदेवोक्त चापास्तम् । अस्य वैयर्थ्यापत्तेः [ \* उक्तरित्या  
विभिन्नविषयत्वाच्च ] यत्तु पुरुषोक्तमदेवो ग्रामहृदोत्तरेतिनिर्देशोऽकृतद्वित्वोऽत्र ज्ञापक इति  
तन्न । रो रीत्यस्य द्वित्वासिध्याऽविषयत्वेऽपि ह्यलो यमामिति लोपसभवात् । तदाह—  
इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ११२ ॥

श्रुतत्वप्रसङ्गादाह—नन्विति । परमेणेति । परिनिष्ठितविभक्त्या विशेषणमिति  
समासः । आदिना परमकारक इत्यादिपरिग्रहः । ननु नाय नियतदोषो लोके स्वरस्यैवा-  
नियतत्वाच्छब्दासि तु तत्त्वादेव सुपरिहरत्वादत आह—तथेति । परस्यापि, सिच इति  
शेषः । लक्षणोति । अत्र लक्षण च प्रतिपद चेति द्वन्द्व कृत्वोक्तशब्देन यथासभवमर्थ-  
केन तृतीयासमासः । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात्प्रत्येक सबन्धः । लक्षणशब्देन च सामान्य-  
लक्षणमत्र प्रतिपदोक्तसमभिव्याहारादिति बोध्यम् । तदाह—लक्षणोक्तेत्यर्थ इति ।  
एकदेशस्येति भावः । अर्शाद्यचाऽर्पाद सुवचम् । एतेन लक्षण लाक्षणिकमुपचारादिति  
सीरदेवोक्तमपास्तम् । यत्त्वत्र लाक्षणिकत्व खण्डशो व्युत्पन्नत्वमिति सीरदेवस्तत्र । प्रति-  
पदोक्तेऽपि तत्त्वस्य क्वचित्स्वरादिविषय उक्तस्थले विभाषा दिक्समास इत्यादौ विषये च  
सत्त्वेन तत्र दोषापत्तेः । प्रतिपदोक्तत्वं च विशिष्यप्रतिपादितत्वमत्र न तु तत्पदमुच्चार्य-  
विहितत्वम् । इष्टासिद्धेरनिष्ठापत्तेश्च । तदेतत्प्रतिपादयन्नाद्यदोषमुद्धरति—तत्तदिति ।  
प्रतिपदेत्यस्यायमर्थः । पदशरीर उभयोर्निवेशात्, अत एवाऽऽदिना प्रकृतिविशेषादिपरि-  
ग्रहः । विहितो हीति । हि यतस्तादृश स प्रतिपदोक्तोऽतस्तस्यैव ग्रहणमित्यर्थः ।  
प्रतिपदोक्तत्वस्य तत्र हेतुत्वस्यै प्रकटनाय तत्तात्पर्यार्थ प्रतिपादयन्परिभाषाबीजसत्ता ध्वनयं-

\* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ख. पुस्तकस्थः ।

१ घ. 'य दो' । २ घ. 'निष्ठत्वा' । ३ क. 'त्यादिविषयत्वे च । ड. 'त्यादेविष' । ४ घ.  
'शेषप' । ५ घ. 'स्य तत्र हेतुत्वमत्र तात्प' ।

सादिः प्रतिपदोक्तस्तस्यैव ग्रहणं शीघ्रोपस्थितिकत्वात् । द्वितीयो हि विलम्बोपस्थितिकः । पै इत्यस्य पा इति रूपं लक्षणानुसंधानपूर्वकं विलम्बोपस्थितिकं पिबतेस्तु तच्छीघ्रोपस्थितिकम् । इदमेव ह्येतत्परिभाषाबीजम् ।

इयं च वर्णग्रहणेऽपि । ओःसूत्र भाष्ये संचारितत्वात् । यत्तु वर्णग्रहणे जैषा ' आदेचः ' ( ६ । १ । ४५ ) इत्यत्रोपदेशग्रहणादिति तत्तु तास्मिन्नेव सूत्रे शब्देन्दुशेखरे दूषितामिति तत एव द्रष्टव्यम् । अनित्या चेयं ' भुवश्च महाव्याहृतेः ' ( ८ । २ । ७१ ) इति महाव्याहृतिग्रहणादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११३ ॥

आत्र हेतुमाह—शीघ्रोपेति । द्वितीयो हीति । तदननुवादेन विहितः समासादिर्यत इत्यर्थः । लाक्षणिकशब्दतात्पर्यार्थमाह—विलमिति । यद्यपि प्रागुक्तशब्दार्थमादायै-बोक्तस्थले निर्वाहस्तथाऽप्यन्यत्रानिर्वाह इति तात्पर्यार्थावश्यकत्वमिति ध्वनयितुं द्वितीयदोषमुद्धरति—पै इत्यस्येति । लक्षणेति । हेतुगर्भ विशेषणम् । पिबतेस्त्विति । तुर्वैलक्षणे । तत्, पा इति रूपम् । ननु नाय परिभाषाशब्दार्थ इति कथमत्र प्रवृत्तिराद्ये तथाऽप्यस्याः साफल्यत्र वैयर्थ्यमत आह—इदमेवेति । शीघ्रोपस्थितिकत्व विलम्बोपस्थितिकत्वं च रूपमेव यत इत्यर्थः । अत एवाध्याप्य गत इत्यत्र विभाषाऽऽपि इति नाय । एतत्परितीति षाठः । एतेन प्रतिपदोक्तलाक्षणिकशब्दोर्थथाश्रुतार्थनिरासः । एतेन लक्ष्यत इति लक्षणमनुमेयम् । प्रतिपदोक्त च प्रत्यक्षम् । तथा च प्रत्यक्षानुमानयोः प्रत्यक्षं बलीय इतिन्यायसिद्धैवेयमिति भ्रान्तोक्तमपास्तम् । अनेनैव तत्संग्रहादशब्दार्थत्वाच्च । तत्राप्येतस्यैव बीजत्वाच्च । बीज, तत्प्रवृत्तिबीजम् । तथा च लौकिकलाघवगौरवमूलकोऽयं न्यायः । एतेन खिप्णुच इकारादित्वमत्र ज्ञापकम् । तदुक्तम्—' उदात्तत्वाद्भ्रुवः सिद्धमिकारादित्वमिणुच । नै वास्तु स्वरसिद्धचर्थमिकारादित्वमिण्यते ' इति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्तं मपास्तम् । लोकत एव सिद्धे तद्वाश्रयणे फलाभावात्तस्यापि साफल्यच्च ।

वर्णेति । ऋत इद्गतोरित्यादावित्यर्थः । संचारीति । तत्रैव सूत्र इति भावः । दीक्षिताद्युक्ति खण्डयति—यच्चिति । दूषितामिति । ओःसूत्रभाष्यविरोधापत्तेरुपदेशग्रहणस्यान्यार्थत्वाच्चेति भावः । नन्वेवमध्यापयतीत्यत्र कथं पुक् द्राघेत्यत्र घेटः कथं च सिद्धान्ते ग्रहणमत आह—अनित्येति । यावत्पुरेतिनिपातग्रहणमयीह ज्ञापकं बोध्यम् । महेति । अन्यथाऽनया तस्या एव ग्रहणं न जसन्तस्येति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति भावः ॥ ११३ ॥

नन्वेवं देङो दोधातोश्च कृतात्वस्य घुसंज्ञा न स्यात्तथा मेङ् आत्वे प्राणिमातेत्यादौ 'नेर्गदनद्' ( ८ । ४ । २७ ) इति णत्वं न स्यात्तथा गै इत्यस्याऽऽत्वे 'घुमास्था' ( ६ । ४ । ६६ ) इतीत्वं न स्याद्दत्त आह—

गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ ११४ ॥

अत्र ज्ञापकं दैपः पित्वम् । तद्ध्यदाबिति सामान्यग्रहणार्थम् । अन्यथा लाक्षणिकत्वादेव विधौ तदग्रहणे सिद्धे किं निषेधे सामान्यग्रहणार्थेन पित्वेन । तेन चैकदेशानुमतिद्वारा संपूर्णपरिभाषाज्ञाप्यते ।

इयं च लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषानिरनुबन्धकपरिभाषालुग्विकरणपरिभाषाणां बाधिका । 'दाधा घु' ( १ । १ । २० ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा । 'गातिस्था' ( २ । ४ । ७७ ) इति सूत्रे इणादेशगाग्रहणमे-

एवम्, अनित्यलक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाङ्गीकारे । अनेन संगतिः सूचिता । परिभाषान्युत्क्रमेणाऽऽह—देङ् इति । न स्यादिति । तथा चेत्वादि न स्यादिति भावः । इदमेवाग्रेऽपि बीजम् । अदाबितीति । अस्य निषेध इति शेषः । अन्यथा, अस्या अभावे । तदिति । दैचित्यर्थः । निषेध इत्यस्यादाबितीत्यादिः । नन्वेवं दाशसिद्धावपीतराशासिद्धिरत आह—तेन चैकेति । दैपः पित्वेन चेत्यर्थः ।

लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषानन्तरमस्या उल्लेखेन तदपवादत्वमेवेति भ्रमस्य तदनित्यत्वादेव सिद्धे वैफल्यस्य च निरासायाऽऽह—इयं चेति । अत्रैवोल्लेखस्तु ज्ञापकानुरोधाद्दशोक्तवैनिकान्यायात्सर्वान्त औचित्याच्चेति भावः । बाधिकेति । बाध्यसामान्यचिन्तया येन नाप्राप्तिन्यायादिति भावः । एतेनानन्तरस्येति न्यायेन लक्षणेत्यस्या एव बाधिकेयमिति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्त तदनित्यत्वादेव सिद्ध इयं निष्फलेति तदुक्तं चापास्तम् । अन्यबाधेन साफल्यात् । प्रत्यासत्तिन्यायतो व्याप्तिन्यायस्य प्राबल्याच्च । नन्वेव गातिस्थेत्यत्रापि सर्वग्रहणापत्तिरत आह—गातीति । गापोर्ग्रहण इण्पिबत्योर्ग्रहणमिति भाष्योक्तेरिति भावः । एतेन लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाया एवेयं बाधिका न निरनुबन्धकपरिभाषायास्तस्याः प्रत्ययविधिविषयत्वात् । नापि लुग्विकरणपरिभाषाया बहिरङ्गत्वात् । अत एव नेर्गदत्यत्र माङ्मेडोरेव ग्रहणं न तु मा मान इत्यस्यैत्यपि सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तस्याः प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणत्वात् । द्वितीये बहिरङ्गत्वस्य दुर्वचत्वात् । अर्थकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणात् । तत्र तदग्रहणस्येष्टत्वाच्च । अत एव तत्र अस्य प्रणिमातीत्युदाहृत चन्द्रगोमिना । भाष्ये घुप्रकृतिमाङ्गिति



वेष्यत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११४ ॥

नमु वृद्ध्यादिसंज्ञाः समुदाये स्युरत आह—

प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ ११५ ॥

देवदत्तादयो भोज्यन्तामित्यत्र भुजिवत् ॥ ११५ ॥

नन्वेवं संयोगसंज्ञासमाससंज्ञाभ्यस्तसंज्ञा अपि प्रत्येकं स्युरत आह—

क्वचित्समुदायेऽपि ॥ ११६ ॥

गर्गाः शतं दण्ड्यन्तामर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्तीत्यादौ दण्ड-  
नवत् । लक्ष्यानुरोधेन च व्यवस्था ॥ ११६ ॥

पाठेनैव तद्वारणाच्च । अर्थवत्परिभाषायास्तु नेय बाधिका । लक्ष्यानुरोधात् । एकमग्रेऽपि । अत एव दाशो दाशब्दस्य घुसज्ञाया न ग्रहणम् । नापि साहचर्यपरिभाषायाः । अत एव ह्यवामश्चेति सूत्रे सानुबन्धकपूर्वोभयसाहचर्यान्माङ्गमेङ्कोरेव ग्रहण न तु मा मान इत्यस्येति बोध्यम् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ११४ ॥

बौद्धघुसंज्ञाप्रसङ्गादाह—नन्विति । आदिना गुणादिपरिग्रहः । समुदाय इति । तथा निर्देशादिति भावः । लोकसिद्धोऽयं न्याय इत्याह—देवदत्तेति । देवदत्तयज्ञदत्त-  
विष्णुमित्रा इत्यर्थः । भुजिवदिति । यथा तत्र समुदाये बाधात्तत्त्वं तथाऽत्रापि समुदा-  
यस्यैकत्राभावात्तत्त्वमिति भावः ॥ ११५ ॥

एवम्, एतच्छास्त्रस्थवाक्यानां प्रत्येक परिसमाप्स्यङ्गीकारे । अनेन संगतिः सूचिता । संयोगेति । पाठक्रमस्य बोध्यत्वात्तस्य पूर्वनिपातः । क्वचिदिति । इष्टस्थल इत्यर्थः । वाक्येत्याद्यनुवृत्तिः । अपिः पूर्वसमुच्चय एव । अयमपि लोकसिद्ध एव न्याय इत्याह—  
गर्गा इति । ननु कथमनयोर्व्यवस्थेष्टत्वस्य दुर्ज्ञेयत्वादन आह—लक्ष्येति ।  
तेनानियमो नेति बोध्यम् । इदं लक्ष्यैकचक्षुष्कभाष्यकारमते । लक्षणैकचक्षुष्कमतेनाऽऽह—  
चेति । तेनान्वर्थत्वादिरूपगमकसमुच्चयः । तथा च क्वचिदित्यस्य तादृशगमकवतीत्यर्थः ।  
एवं च यथा तत्र वाक्यशेषात्तत्त्वं तथाऽत्रापि लक्ष्यानुरोधादन्वर्थत्वादिगमकत्वलाच्च तत्त्व-  
मिति भावः । गर्गैः सह न भोक्तव्यमित्युक्ते समुदितैस्तैः सह प्रत्येकं चाभोजनवदुभयथा  
वाक्यपरिसमाप्तिरित्यस्य न्यायस्य तु नात्रोपयोगः । लक्ष्याभावात् । अट्कुप्वाङित्यत्र  
समुदायव्यवाय इत्यर्थस्यासम्भवात् । अवान्तरसमुदायग्रहणस्य व्याख्यानसापेक्षत्वेन तत्प-  
रिभाषयैव निर्वाहाच्च । द्व्यकयोरित्यादावेकवाक्यतानेकवाक्यतयोरपि व्याख्यानत एव  
लाभाच्च । एतेन ता वदन्तः सीरदेवादयः परास्ताः ॥ ११६ ॥

ननु 'यू रूयाख्यौ' ( १।४।३ ) इत्यत्र व्यक्तिपक्षे दीर्घनिर्देशादनन्तेन ग्राहकसूत्राप्राप्त्योदात्ताद्यन्यतमोच्चारणेऽन्यस्वरकस्य संज्ञा न स्यादत आह—

अभेदका गुणाः ॥ ११७ ॥

असति यत्ने स्वरूपेणोच्चारितो गुणो न भेदको न विवक्षित इत्यर्थः । अत्र च 'अस्थिदधि' ( ७।१।७५ ) इत्यादावनङ्गादेरुदात्तस्यैवोच्चारणेन सिद्ध उदात्तग्रहणं ज्ञापकम् । स्वरूपेणोच्चारित इत्युक्तेरनुदात्तादेरन्तोदात्तादित्युदात्तादिशब्दोच्चारणे विवक्षैव । 'उत्रः' ( १।१।१७ ) 'ऊं' ( १।१।१८ ) इत्यत्राननुनासिक एवोच्चारणीये यत्नाधिक्येनानुनासिकोच्चारणाद्विवक्षा बोध्या । 'पथिमथ्यमृक्षाम्' ( ७।१।८५ ) इत्यादौ स्थान्यनुरूपतयाऽनुनासिक एवोच्चारणीये निरनुनासिकोच्चारणात्तद्विवक्षा । एतदर्थमेवासति यत्न इत्युक्तम् ।

न चैवम् 'अस्थ्यादीनां नचविषयस्य' ( फि० २।३ ) इत्याद्युदात्ततयाऽन्त्यादेशस्यानङ्गः स्थान्यनुरूपेऽनुदात्त एवोच्चारणीय उदात्तो-

आद्यविषयविषयकत्वसंगतिं ध्वनयन्नाह—नन्विति । ज्ञातिपक्षेऽनुपयोगस्य वक्ष्यमाणत्वादाह—व्यक्तीति । दीर्घेति । व्याख्यानदिति भावः । अन्त्येति । शेषषष्ठ्या समासः । अन्यस्वरकेति । यत्स्वरकोच्चारण तद्विन्नस्वरत्वावच्छिन्नस्वरकस्येत्यर्थः । संज्ञा, नदीसंज्ञा । संग्राहकपरिभाषाया तत्त्वेऽपि लक्ष्यसस्कारकवाक्ये बहुत्वानुपयोगग्रहाह—असतीति । शेषपूरणमिदम् । स्वरूपेणेति । तत्तद्रूपेणेत्यर्थः । उच्चारित इति । अनेनात्र शास्त्र एवमिति सूचितम् । तेन लोके द्वैविध्येऽपि न क्षतिः । अत्र च, अस्यां परिभाषायां च । आदिना चतुरनङ्गहोरामुदात्त इत्यादिपरिग्रहः । स्यैवोच्चेति । एवो भिन्नक्रमः उच्चारणेनैवेत्यर्थः । स्वरूपेणोच्चारित इति निगोर्षणस्य फलमाह—स्वरूपेणेति । इति, इत्यादौ । व्युत्क्रमेणाऽऽह—उदात्तादीति । असति यत्न इत्यस्य यत्नविशेषेऽसतीत्यर्थकस्य फले आह—उत्र ऊं इत्यादि । ननुनेति । स्थान्यनुरूपतयेति भावः । एतदर्थमेव, एतदुभयार्थमेव ।

चैवम्, असति यत्न इतिविशेषणोपादाने । उदात्तादयः शब्दा धर्मपरा धर्मिपराश्चेति न दोषः । भविष्यतीतीत्यत्रे स्वस्मिन्नचारितार्थादिति शेषः । अस्य, उदात्तग्रहणस्य पूर्वो-

१ क विशेषवि° । घ. 'विषयेऽस्य°' । २ घ. 'षणं ज्ञापकसाजात्येन लब्धमस्य । ३ क. घ. फलमाह । ४ घ. 'ने । अनुदात्तोदा°' । ५ घ. 'तीत्यस्य स्व°' ।

ञ्चारणं विवक्षार्थं मविष्यतीति कथमस्य ज्ञापकत्वमिति वाच्यम् । परमास्थिशब्दादावन्तोदात्त उदात्तगुणकस्यापि स्थानित्वेन विवक्षार्था मानामावात् । चतस्र्याद्युदात्तनिपातनं करिष्यते वधादेश आद्युदात्तनिपातनं करिष्यते पदादयोऽन्तोदात्ता निपात्यन्ते सहस्य स उदात्तो निपात्यत इत्यादिभाष्यं त्वेकश्रुत्याऽष्टाध्यायीपाठे क्वचिदुदात्ताद्युच्चारणं विवक्षार्थमित्याशयेन । त्रैस्वर्येण पाठ इति पक्षे तु ज्ञापकपरं भाष्यमिति कैयटादयः ।

परे तु निपातनं नामान्यादृशे प्रयोगे प्राप्तेऽन्यादृशप्रयोगकरणं तद्वृषाद्यन्तात्तत्रतोदात्तादिविवक्षा । तिसृचतस्रित्यत्र द्वन्द्वप्रयुक्तेऽन्तोदात्त उच्चारणीय आद्युदात्तोच्चारणमन्यत्र स्थान्यनुरूपे स्वर उच्चारणीये तत्तदुच्चारणं विवक्षार्थम् । संपूर्णाष्टाध्याय्याचार्येणैकश्रुत्या पाठितेत्यत्र न मानम् । क्वचित्पदस्यैकश्रुत्याऽपि पाठो यथा दाण्डिनायनादिसूत्र ऐक्ष्वाकेति । यद्यप्यध्येतार एकश्रुत्यैवाङ्गानि पठन्ति ब्राह्मणवक्तथाऽपि व्याख्यामतोऽनुनासिकत्वादिवदुदात्तनिपातनादिज्ञानमित्याहुः ।

क्तस्य । यद्वा अस्य, न्यायस्य । उदात्तग्रहणस्येति शेषः । दात्त इति । समासस्वरेषेति भावः । अपिरनुदात्तगुणकसमुच्चारकः । स्थानित्वेनेत्यग्रे स्थान्यनुरूपोच्चारणस्यैव सत्त्वेन यत्नविशेषाभावादिति शेषः । एव च केवलेऽनुदात्त एव स्यादित्युदात्तग्रहणं चरितार्थमिति भावः । नन्वेवमपि निपातनस्थले यत्नविशेषाभावाच्चतसरीत्यादिभाष्यासगतिरत आह—चतेति । नन्वेव ज्ञापकपरभाष्यासंगतिस्तत्राप्युक्तरीत्या तदुच्चारणस्य विवक्षार्थत्वसंभवादत् आह—त्रैस्वर्येणेति । पाठ इत्यस्याष्टाध्यायीत्यादिः ।

पूर्वत्रारुच्या सिद्धान्तमाह—परे त्विति । एव सामान्येनोक्तमर्थमुक्तेषु विशिष्याऽऽह—तिसृचतस्रित्यत्र द्वन्द्वेति । अत्रापिपाठो लेखकप्रमादात् । च्चारणमित्यस्य विवक्षार्थमित्यत्रान्वयः । अन्यत्र, वधाद्द्वै । कैयटादय इति सूचितामरुचिं तत्राऽऽह—संपूर्णेति । त्रैस्वर्येण संपूर्णा सा पठितेत्यत्र मान ध्वन्यन्संपूर्णादिपदेषुक्तिफलमाह—क्वचिदिति । अपिर्च्युत्क्रमे । पाठोऽपीत्यर्थः । यदि कैयटोक्तोऽर्थः स्यात्तर्हि तत्राऽऽशङ्कैवायुक्ता स्यात् । यद्यपि तत्र द्वन्द्वेन समासान्तोदात्तत्वे तन्निमित्तशेषनिघातेन निर्देशान्नाऽऽद्युदात्तस्य नाप्यन्तोदात्तस्य निर्देश इति शङ्काऽयुक्तैव तथाऽपि तदीयविग्रहवाक्याभिप्रायेण शङ्कादिसत्त्वमिति भावः । पाणिनेस्तथा पाठोऽप्यध्येतृणा तथा पाठाभावात्तदज्ञानेन निपातनेनापि कथं सिद्धिरत आह—यद्यपीति ।

विधेयाण्विषये त्वप्रत्यय इति निषेधान्न गुणाभेदकत्वेन सर्वग्रहणम् । अत एव घटवदित्यादौ मतोर्मस्य नानुनासिको वकारः । अत एव ' तद्धानासाम् ' ( ४ । ४ । १२५ ) इति सूत्रनिर्देशः । अन्यथा प्रत्यये भाषायामिति नित्यमनुनासिकः स्यात् ।

जातिपक्षे तु नास्योपयोग इति बोध्यम् । यू इत्यादौ दीर्घमात्रवृत्तिजातिनिर्देशान्न क्षतिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११७ ॥

ननु ' सर्वनामानि ' ( १ । १ । २७ ) इत्यत्र णत्वाभावनिपातनेऽपि लोके सणत्वप्रयोगस्य साधुत्वं स्यादत आह—

बाधकान्येव निपातनानि ॥ ११८ ॥

तत्तत्कार्ये नाप्राप्ते निपातनारम्भात् । ' पुराणप्रोक्तेषु ' ( ४ । ३ । १०५ ) इति निपातितपुराणशब्देन पुरातनशब्दस्य बाधः प्राप्तोऽपि

ननु व्यक्तिपक्षेऽनर्थं स्वीकृतैतत्परिभाषाया अनूद्यमानेऽपि प्रवृत्तानुपायस्योपायान्तरादूषकत्वाद्बाधकाभावेऽपि विधेयेऽपि प्रवृत्त्यापत्तिरप्रत्यय इति तु सूत्रस्थैव निषेधोऽत आह-विधेयाणिति । अप्रत्यय इत्यस्य योगविभागेन सर्वनिषेधकत्वात् । एतेनाजुदित्येव सिद्धेऽणग्रहणेनाणसु गुणभेदकत्वं ज्ञाप्यत इत्यनित्येयमित्यपास्तम् । विधेये प्राप्त्यभावेनानुवादे दोषाभावेन च तज्ज्ञापने फलाभावादिति भावः । अत एव, विधेयाण्येतदप्रवर्तनादेव । अत्र मान सूचयन्निष्ठापत्तिं तत्र परिहरति—अत एव तद्धानिति । नित्यमित्यनेन पक्षे तत्सिद्धयभावः सूचितः । यवला निरनुनासिका एवेति शब्देन्दुशेखरे स्पष्टम् ।

अवतरणे व्यक्तिपक्ष इत्युक्तेः फलमाह—जातीति । तेनैवेष्टसिद्धेरिति भावः । अस्य, उक्तन्यायस्य । नन्वेवं यू इत्यादौ सर्वग्रहणापत्तिस्त आह—यू इत्यादाविति । वृद्धिसूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम् । देवदत्तो मुडचपीत्यादिन्यायश्चात्र मूलमिति भ्रान्तोक्तं तु न युक्तम् । अन्यदिदमुष्णमिति दृष्टान्तस्यापि लोके सत्त्वेनात्रापि द्वैविध्यापत्तेः । एतेनाऽऽश्रीयमाणो गुणो भेदको भवतीति परिभाषान्तरमित्यपास्तम् । फलाभावात् । तदाह—इत्यन्यत्रेति ॥ ११७ ॥

उक्तासंगतिं गुणपदबोध्यसंज्ञाप्रसङ्गं च सूचयन्नाह—नन्विति । इत्यत्र, सूत्र इति शेषः । इत्यादावित्यपपाठः । स्य साधुत्वमिति । पूर्वपदादिति सूत्रेणेति भावः । नाप्राप्त इति । तथा च येननाप्राप्तिन्यायमूलकत्वमस्या इति भावः । परिभाषान्तरसाधकं सीरदेवाद्युक्तमितिप्रसङ्गं निराचष्टे—पुरेति । पुरातनेति । सायमिति व्युत्पन्नस्ये-

१ घ. 'क्षेऽपि त° । २ ह. °तः । विधेये प्राप्त्यभावेनानुवादे दोषाभावेन च तु य° । ३ घ. मुण्डयतीत्या° ।

पृषोदरादित्वाच्चेति बोध्यम् । पुराणेति पृषोदरादिः पुरातनेति चेत्यन्ये । इयं सर्वादिसूत्रे भाष्ये स्पष्टा । अबाधकान्यपि निपातनानीति तु भाष्यविरुद्धम् ॥ ११८ ॥

ननूखधातोर्द्विस्वे स्वत एव ह्रस्वत्वात्पूर्वमभ्यासह्रस्वत्वाप्रवृत्तौ हलादिः शेषे सवर्णदीर्घे ह्रस्वापत्तिरत आह—

पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः ॥ ११९ ॥

एवं च ह्रस्वस्योपि ह्रस्वत्वे कृते लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायेन न पुनर्ह्रस्वः । तदुक्तम् 'इको झल्' (१।२।९) इति सूत्रे भाष्ये कृतकारि खल्वपि शास्त्रं पर्जन्यवदिति । सिद्धेऽपि ह्रस्वादिकारीत्यर्थः ।

स्यर्थः । प्राप्तेऽपीति पाठः । प्राप्तेतीति पाठे यद्यपि तथाऽपीति शेषपूर्व्येन व्याख्येयम् । पृषोदेति । बाधकस्य पुराणेति निपातनस्य पक्षे बाधनार्थं तत्र तस्यापि निपातनमिति भावः । उभयत्रानिपातनजलाभवादाह—पुराणेतीति । एतेन 'पुरातनीर्नदीर्दधतः' 'पुरातनमुनेर्मुनितामिति' माधभारविप्रयोगौ प्रामादिकाविति भागवृत्तिसीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । कैयटेदीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—अबाधेति । भाष्येति । बाधकान्येव हीत्यादि तत्रोक्तेरिति भावः । अत एव पुरुषोत्तमदेवादिभिरप्येवमेवोक्तम् । एतेन निजां त्रयाणामिति निपातनादेव सिद्धे पक्षे त्रीणामिति प्राप्तव्यावर्तकेन त्रेत्रय इति सूत्रेण ज्ञापितां तामेवाङ्गीकुर्वन्सीरदेवभ्रान्तादिः परास्तः ॥ ११८ ॥

संज्ञाप्रसङ्गात्सज्ञोद्देश्यकविधिविषयोक्तिरिति निपातनप्रसङ्गात्तदुक्तिरिति वा सूचयन्नाह—ननूखेति । द्विवचनादाविति भावः । पूर्व, वक्ष्यमाणत् । एवं च, परिभाषासत्त्वे च । कृत इति । अस्य ततो हलादिःशेषादाविति शेषः । इयं च शब्दान्तरेण भाष्यारूढेत्याह—तदुक्तमिति । दृष्टान्तेन लोकासिद्धत्वमस्या दर्शितम् । मेघो ह्यने पूर्णे चोख- ( ५ ) रेऽनूख ( ५ ) रे च वर्षति तद्वत् । एतेन जलेऽपि वर्षतीति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । अपूर्णे जले फलसत्त्वात् । ननु कृतादिशब्दबलादन्यशास्त्रकृतेऽन्यशास्त्रप्रवृत्तिरित्यर्थस्यान्यशास्त्रकृतमेव करोतीत्यर्थस्य वा लाभात् प्रकृतसिद्धिरनिष्टापत्तिर्लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायविरोधापत्तिश्चात आह—सिद्धेऽपीति । स्वतः सिद्धेऽपीत्यर्थः । एतेन खट्वाढकमित्यादौ दीर्घसिद्धिः फलमित्यपि सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । अत्र ज्ञापकमपि प्रवाहणस्य दे इत्युत्तरपदस्याऽऽदेर्वृद्धिविधानम् । तद्धि प्रवाहणेयीमानिनीत्यत्र वृद्धिनिमित्तेति पुंवत्वप्रतिषेधार्थम् । अमानिनीत्यनुवृत्तेर्जातेश्चेत्यनेन न सिद्धिरित्यपि बोध्यम् ।

न च लक्ष्ये लक्षणस्य सकृदेव प्रवृत्तिरित्यत्र न मानमिति वाच्यम् । समो वा लोपमेक इति लोपेनैकसकारस्य द्वित्वेन द्विसकारस्य पुनर्द्वित्वेन च त्रिसकारस्य सिद्धौ 'समः सुटि' (८।६।५) इति सूत्रस्यैव मानत्वात् । 'संप्रसारणाच्च' (६।१।१०८) 'सिचि वृद्धिः' (७।२।१) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वाच्च । अत्र विकारकृतो लक्ष्यभेदो ज्ञेति सिचि वृद्धिरिति भाष्यात्प्रतीयत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११९ ॥

ननु स्यन्दुधातोः स्यन्त्स्यतीत्यादौ सकारादिविशेषापेक्षत्वादात्मनेपदानिमित्तत्वाभावादिमित्तत्वात् 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' (७।२।५९) इति निषेधस्य बहिरङ्गत्वेनान्तरङ्गत्वाद्बहुविकल्पस्येद्विकल्पस्याऽऽपत्तिरत आह—

निषेधाश्च बलीयांसः ॥ १२० ॥

प्रसङ्गात्ता प्रतिपादयितुं शङ्कते—न चेति । न मानमिति । तथा च पुनरपि ह्रस्वापत्त्या पर्जन्यवदिति परिभाषा निष्फलैव स्यादिति भावः । इरयोर इति द्विवचनं तत्र मानमिति खण्डनकृदुक्त्यसाङ्गत्य ध्वनयन्नाह—सम इति । ननु वार्तिक दृष्ट्वा सूत्रकृतो न प्रवृत्तिरिति सूत्रमते तस्या वैयर्थ्येनाज्ञापकत्वेऽप्येकसकारकप्रयोगसिद्ध्यर्थमावश्यकवार्तिकेनैव सिद्ध्या तस्य वैयर्थ्यमिति वार्तिकमते ज्ञापकत्वमिति वार्तिकारूढत्वेऽपि न भाष्यारूढत्वमिति भ्रममपाकुर्वन्नाह—संप्रोति । तथा च तावताऽपि प्रामाण्यमेवेति भावः । ननु लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायस्य प्रामाणिकत्वेऽपि प्रकृते विकारकृतलक्ष्यभेदादप्राप्तावुक्तदोषस्तदवस्थ एवात आह—अत्रेति । लक्ष्य इति प्रोक्तन्याय इत्यर्थः । विकारकृत इति पाठः । विकारागमकृत इत्यपपाठः । आगमकृतलक्ष्यभेदाङ्गीकारात् । तद्भाष्यात्तदलाभाच्च । भाष्यादिति । तत्र ह्युदबोदामित्यादावोत्वात्परत्वाद्वदन्नजेतिवृद्धौ वर्णपदसामर्थ्येनौत्वेनेष्टं साधितम् । अन्यथा पुनर्वृद्ध्यापत्त्या भाष्यासगतिः स्पष्टैव । प्रतीयते, निश्चीयते । तदसांगत्यादि चान्यत्र स्पष्टमित्याह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ॥ ११९ ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति । धातोरिति । प्रकृतिविकृतिभावसंबन्धे षष्ठी । इत्यादावित्यस्याऽऽपत्तिरित्यत्रान्वयः । सकेति । सकारादित्वरूपो यो विशेषस्तदपेक्षत्वादित्यर्थः । ननु तत्रापि बलादित्वापेक्षत्वेन समत्वमत आह—आत्मन इति । इति केचित् । वस्तुतस्तु तीत्यादावात्मनेपदानिमित्तत्वाभावादिमित्तत्वान्न वृद्भ्य इति पाठः । तत्र पूर्वनिमित्तकत्वस्योभयत्र तुल्यत्वादाह—आत्मनेपदेति । तथा चाधिकनिमित्तकत्वेनात्र तत्त्वं बोध्यम् । धाश्चेति । चो ह्यर्थे । स चात्र हेतोः प्रसिद्धत्वसूचकः । स चानुपदमेव

अन्तरङ्गादुपजीव्यादपि बलीयांस इत्यर्थः । चतुर्भ्य इति तु स्पष्टार्थमेव । अत एव तत्प्रत्याख्यानं भाष्योक्तं संगच्छते । अत एव सवर्णसंज्ञादे-  
निषेधविषये न विकल्पः । अन्यथा मीमांसकरीत्या विधेरुपजीव्यत्वेन प्राबल्यात्तस्य सर्वथा बाधानुपपत्त्या दुर्वारः स इति मञ्जूषायां विस्तरः । अत एव 'द्वन्द्वे च' ( १ । १ । २१ ) 'विभाषा जसि' ( १ । १ । ३२ ) इति चरितार्थम् । विध्युन्मूलनाय प्रवृत्तिरस्या बीजम् । 'न लुमता' ( १ । १ । ६३ ) 'कमेणिङ्' ( ३ । १ । ३० ) इत्यनयो-  
र्भाष्ये स्पष्टैषा ॥ १२० ॥

व्यक्ती भविष्यति । अन्तरिति । अन्तरङ्गादुपजीव्याच्चेत्यर्थः । अपिः परादिसमुच्चायकः । तथा चानयाऽन्तरङ्गमपि विकल्प बाधित्वा तत्र निषेध इति भावः । नचूक्तफलस्य चतुर्भ्य-  
हणसामर्थ्यादेव सिद्धिरत आह—चतुर्भ्य इतीति ।

ननु परिभाषाङ्गीकारेण सौत्रपदस्यान्यार्थत्व नोचितमत आह—अत एवेति । तस्य स्पष्टार्थत्वादेवेत्यर्थः । वृत्तादिभ्यो यद्यत्प्राप्त तत्तन्नेति वचनव्यक्त्या सर्वेणनिषेधसिद्धेरिति भावः । एवमन्तरङ्गतस्तस्य प्राबल्यमुक्त्वोपजीव्यात्तत्साधयति लक्ष्यदर्शनद्वारा—अत एवेति । उपजीव्यतोऽपि तत्प्राबल्यादेवेत्यर्थः । अन्यथा, एतत्परिभाषायास्तथार्थाभावे । स्वमते तस्य तत्त्वेन प्राबल्यस्याभावादाह—मीमांसेति । नानुयानैष्वित्यादौ पर्युदास एव न प्रसज्यप्रतिषेधः । विहितप्रतिषिद्धत्वेन विकल्पापत्तेरिति हि तैरुक्तम् । सः, विकल्पः । मञ्जूषाया, नञ्वादे । तदशे ज्ञापकमपि ध्वनयन्नाह—अत एवेति । तत्रापि निषेध-  
प्राबल्येन विकल्पालाभादेवेत्यर्थः । द्वन्द्वे चेति । अस्येति कृतेऽपीति इत्यग्रिमामिति वा शेषः । द्वितीयं तदनुवृत्तिमूचनार्थमात्र तदुल्लेखः । अन्यथोक्तरीत्या द्वन्द्वे चेत्येतावतैव विकल्पलाभे तदसगतिः स्पष्टैव । न च नियमार्थं तदिति वाच्यम् । विधिनियमसंभवे विधे-  
रेव ज्यायस्त्वादिति भावः । अस्या लोकसिद्धत्वमाह—विध्युन्मूलेति । प्राप्तस्य विधे-  
निवर्तनायेत्यर्थः । यस्य यदुन्मूलनाय प्रवृत्तिस्तस्य तत्त्व ततो लोके प्रसिद्धतरमित्यपवादन्या-  
येनैवैतद्विषयेऽन्तरङ्गाद्यसंभव इति भावः । तसिलादिषु जातीयदेशीययोर्ग्रहणर्मध्यत्र लिङ्गम् । अन्यथा पुंत्कर्मधारयेति सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्यपि बोध्यम् । न लुमतेति । तत्र ह्युत्तरपदत्वे चेत्यस्य प्रत्याख्यानावसरेऽसर्वनामस्थान इति प्रतिषेधोऽनया प्राप्नोतीत्युक्तम् । कमेणिङित्यत्रापि णिङोऽनुबन्धयोः सावकाशत्वेन प्रतिषेधबलीयस्त्वात्प्रतिषेधः प्राप्नोती-  
स्युक्तम् ॥ १२० ॥

अन्वत्यन्तस्वार्थिकानामर्थप्रत्यायकत्वरूपप्रत्ययत्वानुपपत्तिरत आह—

अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे ॥ १२१ ॥

यस्यार्थः प्रकृत्या प्रत्याप्यते सोऽपि प्रत्यय इत्यस्याप्यङ्गीकारात्तस्य प्रत्ययत्वमिति न दोषः । स्वार्थ इत्यस्य स्वीयप्रकृत्यर्थ इत्यर्थः । महा-संज्ञाबलादर्थकाङ्क्षायामन्यानुपस्थितिरस्या बीजम् । 'सुपि स्थः' ( ३ । २ । ४ ) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टेषा ॥ १२१ ॥

योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥ १२२ ॥

इष्टसिद्धिरेव न त्वनिष्ठापादनं कार्यमित्यर्थः । तत्तत्समानविधिकद्वि-तीययोगेन विभक्तस्यानित्यत्वज्ञापनमेतद्बीजम् ॥ १२२ ॥

पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाऽऽद्रियते ॥ १२३ ॥

तत्र तत्रान्यतरस्यां विभाषा वेति सूत्रनिर्देशज्ञापितमिदम् ॥ १२३ ॥

निषेधप्रसङ्गादाह—नन्विति । स्वार्थिके दोषाभावादाह—अत्यन्तेति । तत्रार्थ-स्यैवाभावादिति भावः । स्वार्थिके सत्त्वेऽप्यत्यन्तस्वार्थिकेऽन्वयव्यतिरेकयोरभावात्प्रकृत्यर्थ-प्रत्यायकत्वमपि दुर्वचमत आह—यस्यार्थ इति । तत्त्वेनाभिमत इत्यर्थः । अनेन विकारागमयोर्नानया तत्त्वमिति सूचितम् । यत्र हि प्रकृतेः पृथगर्थस्तत्रैवास्याः प्रवृत्तिः । न हि विकारादिरहिता प्रकृतिरर्थवतीति बोध्यम् । प्रकृत्येति । अन्वयव्यतिरेकयोः सत्त्वादिति भावः । इत्यस्य, प्रत्ययपदार्थस्य । अपिना प्रत्येत्यर्थ बोधयति यः स प्रत्यय इत्यस्य परिग्रहः । तथा च प्रत्ययशब्दे तन्त्रेणार्थद्वयम् । तस्य, अत्यन्तस्वार्थिकत्वावच्छि-न्नस्य । नन्वेवं स्वीयार्थाभावात्स्वार्थ इत्यनुपपन्नमत आह—स्वार्थ इति । स्वशब्द आत्मीयवार्त्ता नाऽऽत्मवाचीति भावः । अस्या न्यायसिद्धत्वमाह—महेति । प्रत्यय इति महेत्यर्थः । एतेन यावादिभ्य कानित्याद्युदाहरन्तः सीरदेवादर्थ परस्ताः । सुपि स्थ इति । तत्र ह्याखूथ इत्याद्यर्थ योगविभागेन विहितः प्रत्ययो भाव एव न कर्मादावनेन न्यायेनेत्युक्तम् ॥ १२१ ॥

बौद्धयोगविभागप्रसङ्गादाह—योगेति । सर्व वाक्यमिति न्यायेनाऽऽह—इष्टेति । एवव्यवच्छेद्यैमेवाऽऽह—न त्विति । तत्तदिति योगान्वयि । विधीति । कर्मणि किः । यदि विभक्तस्य सर्वविषयत्व स्यात्तर्हि तस्य वैयर्थ्य स्पष्टमेव । विकल्पस्य तु शङ्कैव न सामान्ये बोधकाभावादेकयोगवत् ॥ १२२ ॥

बौद्धविकल्पप्रसङ्गादाह—पर्यायेति । एतेनान्यत्र साऽस्तीति सूचितम् । अस्या मानमाह—तत्र तत्रेति । बहुषु सूत्रेष्वित्यर्थः । विभाषा वेति सूत्रेति । इत्या-



ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥ १२४ ॥

स्पष्टमेव पठितव्येऽनुमानाद्बोधनमसार्वत्रिकत्वार्थमित्यर्थः । तेन ज्ञापकसिद्धपरिभाषयाऽनिष्टं नाऽऽपादनीयमिति तात्पर्यम् । भाष्येऽपि ध्वनितमेतन्ङ्चाप्सूत्रादौ । ज्ञापकेति न्यायस्याप्युपलक्षणम् । न्यायज्ञापकसिद्धानामपि केषांचित्कथनमन्येषामनित्यत्वबोधनायेति भावः । यथा तत्स्थानापन्ने तद्धर्मलाभ इति न्यायसिद्धं स्थानिवत्सूत्रं ज्ञापकसिद्धं च तन्नानलविधाविति ॥ १२४ ॥

ननु द्रोग्धा द्रोग्धा द्रोढा द्रोढेत्यादौ घत्वादीनामसिद्धत्वात्पूर्वं द्वित्व एकत्र घत्वमपरत्र ढत्वमित्यस्याप्यापत्तिरत आह—

पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे ॥ १२५ ॥

द्वित्वभिन्ने पूर्वत्र कर्तव्ये परमसिद्धमित्यर्थः । ‘पूर्वत्रासिद्धम्’ (८।२।१) इत्यधिकारभवं शास्त्रमस्या लिङ्गम् ।

दिविविधसूत्रनिर्देशोत्थाद्यर्थः । अन्यथा सर्वत्र वेत्येव सिद्धे तदानर्थक्य स्पष्टमेवेति भावः ॥ १२३ ॥

बौद्धज्ञापकप्रसङ्गादाह—ज्ञापकेति । अस्या बीजमाह—स्पष्टमेवेति । ज्ञापकशब्दार्थमाह—अनुमानादिति । तेन, तदसार्वत्रिकत्वेन । अस्या भाष्याभिमतत्वमाह—भाष्येऽपीति । ङचाप्सूत्रादौ भाष्येऽपीत्यर्थः । आदिना स्व रूपमित्यादिपरिग्रहः । नन्वेवमपि न्यायसिद्धाना सार्वत्रिकत्वापत्तिरेवात आह—ज्ञापकेतीति । ननु स्पष्टोक्तौ गौरवमित्यनुमानाद्बोधन लघुभूतामिति कथमसार्वत्रिकत्वमत आह—न्यायेति । प्रारम्भे तथा प्रयोगस्तु साभिप्राय इत्युक्तम् । केषांचित्, अर्थानाम् । अन्येषां, परिभाषार्थानाम् । अस्योदाहरणमाह—यथेति । इति न्यायेति । यथा गुरोः स्थाने शिष्यो याज्यकुलानि गत्वाऽग्रासनादीनि लभते तद्वदत्रापि सिद्धिरित्यर्थः । इदं च स्व रूपमितिशास्त्राविषये बोध्यम् । ज्ञापकेति । अदो जगिन्निरित्यत्रत्वल्यब्रह्मणेत्यर्थः ॥ १२४ ॥

विकल्पप्रसङ्गात्तथाऽतिदेशप्रसङ्गाच्चाऽऽह—नन्विति । त्यादौ, साध्य इति शेषः । घत्वादीनामिति । आदिना ढत्वादिपरिग्रहः । पूर्वमिति । तथा च द्रोहताद्रोहतेति स्थितिर्बोध्या । त्यस्याप्येति । अपिर्भिन्नकमः । इत्यस्याऽऽपत्तिरपीत्यर्थः । अपिना पाक्षिकेष्टसिद्धिसमुच्चयः । अयं भावः—यद्येकस्या आकृतेरित्यस्याः सचारोऽर्थान्तरसभावनाया द्वित्वाभावसभावनायाः सत्त्वात्तदेष्टसिद्धिर्यदाऽनित्यत्वादिनाऽनाश्रयण तदापत्तिरिति । एतेन तत्र संचार कुर्वन्भ्रान्त परास्तः । पूर्वत्रेति । यत्पूर्वत्रासिद्धीय शास्त्र तत्राद्वित्व इत्युपतिष्ठत इत्यर्थः । एव सति पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकारोदेकवाक्यतया तत्रत्यार्थमाह—द्वित्वेति । परिभाषाया उक्तार्थं ध्वनयस्तदानर्थक्यं परिहरस्तन्नियमादाह—पूर्वत्रेति ।

यत्र च सिद्धत्वासिद्धत्वयोः फले विशेषस्तत्रैवेयम् । कृष्णद्विरिति-  
त्यादौ जज्ञत्वात्पूर्वमनन्तरं वा द्वित्वे रूपे विशेषाभावेन नास्याः प्रवृत्ति-  
रित्यन्यत्र विस्तरः । ' सर्वस्य द्वे ' ( ८ । १ । १ ) इति सूत्रे भाष्ये  
स्पष्टेयम् ॥ १२५ ॥

ननु गोष्वश्वेषु च स्वामीत्यादिवद्गोष्वश्वानां च स्वामीत्यपि स्यात्  
' स्वामीश्वर ' ( २ । ३ । ३१ ) इति सूत्रेण षष्ठीसप्तम्योर्विधाना-  
दत आह—

एकस्या आकृतेश्वरितः प्रयोगो द्वितीयस्या-

स्तृतीयस्याश्च न भविष्यति ॥ १२६ ॥

यत्रान्याकृतिकरणे भिन्नार्थत्वसंभावना तद्विषयोऽयं न्याय इत्यन्यत्र

लक्षणया तस्य तत्परत्व गहादित्वाच्छ इति भावः । एतेन द्वित्वे कार्ये पूर्वत्रासिद्धमिति  
सूत्रं न प्रवर्तत इति परिभाषार्थं इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । उदक्षरत्वात् ।

परिभाषाणां फलवत्त्वनियमादाह—यत्र चेति । कृष्णद्विरिति । अस्य तथा  
चेत्यादिः । एतेन तत्र सचारं कुर्वन्भ्रान्तः परास्तः । इयं द्वित्वाश्रयवर्णस्यान्यस्य वा  
सिद्धत्व यत्र कार्ये तत्र सर्वत्र प्रवर्तते । अप्रवृत्तौ मानाभावात् । उद्घोतादिग्रन्थास्वेकदे-  
शिन इति न दोषः । अनित्या चेयम् । उभौ साम्यासस्येति लिङ्गात् । तेन प्रणिनाये-  
त्यादिसिद्धिः । बौक्कृ वागिति भाष्योक्तलक्ष्यसिद्धयेऽर्थान्तरमप्यस्या स्वीकार्यं तदाह—  
इत्यन्यत्रेति । शेखरादावित्यर्थः । स्पष्टेयमिति । उक्तप्रयोगसिद्धयर्थमेव तत्र वार्ति-  
कत्वेन पठितेत्यर्थः । एतेन न मु न इति योगविभागेन सिद्धेयमित्यपास्तम् । तस्य  
भाष्यादावदर्शनात् । यत्त्वर्शाद्यजन्त कृतसर्वकार्यकेत्यर्थक सर्वस्य द्व इत्यत्रत्यसर्वग्रहण-  
मत्र ज्ञापकमिति सीरदेवादयस्तत्र । तस्यान्यार्थत्वस्य भाष्य एव स्पष्टत्वादिति  
दिक् ॥ १२६ ॥

उक्तोपयोगित्वादेवाऽऽह—नन्विति । त्यादिवदिति । आदिना गवामश्वानां च  
स्वामीत्यादिपरिग्रहः । विधानादिति । प्रयोगभेद इवैकप्रयोगेऽपि तयोर्दुर्वारित्वादिति  
भावः । एकस्या इति । यतोऽत इति शेषः । यत एकस्या आकृतेः स्वरूपस्य प्रयोग-  
श्वरितः कृतोऽतो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च नेत्यर्थः । चश्चतुर्थीदिसमुच्चायकः । अत्र बीजं  
ध्वनयन्नतिप्रसङ्गाभावमाह—यत्रेति । अस्ति चात्र गोष्वश्वानां चेत्युक्तेऽश्वानां स्वामी  
गोषु तिष्ठतीत्यर्थान्तरस्य तादृशी प्रतीतिरिति भावः । तथा च लोकसिद्धप्रतिपत्तिलाघवमू-  
लकोऽयं न्याय इति बोध्यम् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः ।

विस्तरः । ' कृश्वानुप्रयुज्यते ' ( ३ । १ । ४० ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ १२६ ॥

ननु विव्याधेत्यादौ परत्वाद्भलादिःशेषे वस्य संप्रसारणं स्यादत आह—

संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत् ॥ १२७ ॥

तदाश्रयं ' संप्रसारणाच्च ' ( ६ । १ । १०८ ) इति पूर्वरूपम् । वस्तुतो ' लिट्यभ्यासस्य ' ( ६ । १ । १७ ) इति सूत्र उभयेषां ग्रहणस्योभयेषां संप्रसारणमेव यथा स्यादित्यर्थकत्वेनेदं सिद्धमित्येषां व्यर्थेति लिट्यभ्यासस्येति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । फलान्तरान्यथासिद्धिरपि तत्रैव भाष्ये स्पष्टा । ' णौ च संश्रद्धोः ' ( ६ । १ । ३१ ) इत्यादौ संश्रद्धोरित्यादि विषयसप्तमीति तत्रापि न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १२७ ॥

भाष्य इति । तत्र हि सूत्रालेखे लिट्परस्यैवानुप्रयोगो यथा स्यादन्यपरस्य मा भूदित्युत्तर-  
मनया संखण्ड्यान्यथा सिद्धान्तितम् । कैयटेन वेदप्रसिद्धत्वमप्यस्यास्तत्रोक्तम् । एतेनैनामब-  
दन्तीरदेवादिः परास्तः ॥ १२६ ॥

द्वित्वप्रसङ्गादाह—नन्विति । परत्वादित्यस्य संप्रसारणादित्यादिः । तदाश्रयत्व-  
स्यातिप्रसक्तत्वादाह—संप्रेति । रणमेवेति । अन्यथा वच्यादीना ग्रह्यादीना चानु-  
वृत्त्यैव सिद्धे किं तेनेति भावः । नेद, विव्याधेत्यादिरूपम् । फलान्तरेति । प्यल्लोपे-  
यङ्यण्निवृत्तिरूपेत्यर्थः । भृष्टो जुहुवतुः शुश्रुवतुरित्यादौ नित्यत्वादिना तस्सिद्धिरिति  
भावः । भाष्ये न्यूनता परिहरति—णौ चेति । एतेनोभयेषां ग्रहणेनेय ज्ञापिता । तद्धि-  
वत्रश्रेत्यादौ हलादिःशेषे बाधित्वा संप्रसारणं यथा स्यादित्येवमर्थमिति सिरिदेवाद्युक्तं  
सहिवहोरिति सूत्रैस्थवर्णग्रहणं ज्ञापकमूढवानिति व्यावर्तकं हि तादिति न्यासकृदाद्युक्तं  
चापास्तम् । भाष्यविरोधात् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावित्यर्थः । वस्तुतोऽभ्यास-  
विकारेण बाध्यबाधकभावाभावेनेष्टानुरोधेन कार्यप्रवृत्त्येष्टसिद्ध्या व्यघादौ न दोष इत्यपि  
बोध्यम् ॥ १२७ ॥

यत्तु—

कचिद्विकृतिः प्रकृतिं गृह्णाति ॥ १२८ ॥

तेन 'निसमुपविभ्यो ह्वः' ( १ । ३ । ३० ) इत्यत्र ह्वाग्रहणेन ह्वेजो ग्रहणसिद्धिः ॥ १२८ ॥

तथा—

औपदेशिकप्रायोगिकयोरौपदेशिकस्यैव ग्रहणम् ॥ १२९ ॥

तेन 'दादेर्धातोः' ( ८ । २ । ३२ ) इत्यत्रौपदेशिकधातोरेव ग्रहणमिति तन्न । तयोर्निर्मूलत्वान्द्राष्याव्यवहृतत्वाच्च । न च विकृतिः प्रकृतिं गृह्णातीति 'ग्रहिज्या' ( ६ । १ । १६ ) इतिमूत्रस्थभाष्येणाऽऽद्यायास्तिरस्काराच्च । निसमुपविभ्यो ह्व इत्यादौ ह्वेजोऽनुकरणे सौत्रः प्रयोगः ।

आत्वविषय एवाऽऽत्मनेपदं प्रयोगस्थानामेवानुकरणस्य घुसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वादित्यन्ये । अन्त्याऽपि तत्र तत्रोपदेशग्रहणं कुर्वतः

अथ तदुक्ताः काश्चित्खण्डयति—यत्त्विति । सिद्धिरिति । तथा च निह्वयत इत्यादावात्मनेपदसिद्धिः ॥ १२८ ॥

अन्यामाह—तथौपदेशिकेति । उपदेशे भव औपदेशिकः । अध्यात्मादित्वावृत्त् । एवमग्रेऽपि । ग्रहणमिति । तेनाधोगित्यस्य सिद्धिर्दामलिडित्यादौ च नेति भावः । तत्राऽऽदौ साधारणदोषमाह—तयोरिति । ननु तयोर्मूलमस्ति । तत्र द्वितीये मूलं श्रुदित इत्यादौ श्रुयादिग्रहणं यथाकथंचित्सीरदेवादिभिरुक्तम् । तद्धि शून इत्यादावनया श्रुयुक्त इत्यस्याप्रवृत्तौ सार्थकम् । न हि तत्रोपदेशग्रहणस्यानुवृत्तिः । तीर्णमित्यादेरनथैव सिद्धेः । तथा न व्यो लिटीति विकृतनिर्देश आद्ये ज्ञापक इति कथं निर्मूलत्वमत आह—भाष्येति । नन्वेवमप्यप्रतिषिद्धमिति न्यायेनानुमतत्वमास्तामतो विशेषदोषमाद्य आह—न चेति । न हीत्यर्थः । नन्वेवं निसेत्यादौ का गतिरत आह—निसेति । नन्वशितीति प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि पक्षान्तरैकवाक्यतया शित्परत्वयोग्यस्यैव तेनाऽऽत्वविधानाल्लक्षणवशसपन्नत्वमात्वस्य सीरदेवाद्युक्त दुर्वचमत आह—सौत्र इति । एतेन न व्यो लिटीत्यस्य ज्ञापकत्वमपास्तम् ।

सिद्धान्तमाह—आत्वेति । कृतात्वस्यैवानुकरणादिति भावः । अत्र हेतुमाह—प्रयोगेति । एवं च फलाभावान्नेयमिति भावः । अन्त्याया तमाह—अन्त्याऽपीति ।

सूत्रकृतो वार्तिककृतश्चासंमता । इह हि व्याकरणे सर्वेष्वेव सानुबन्ध-  
कग्रहणेषु रूपमाश्रीयते यत्रास्यैतद्रूपमिति रूपनिर्ग्रहश्च शब्दस्य नान्त-  
रेण लौकिकं प्रयोगं तस्मिंश्च लौकिके प्रयोगे सानुबन्धकानां प्रयोगो  
नास्तीति कृत्वा द्वितीयः प्रयोग उपास्यते क उपदेशो नामेति घसंज्ञा-  
सूत्रभाष्येण प्रायोगिकासंभवे तद्ग्रहणमित्यर्थस्य लाभेन भाष्यासंमता  
च । भाष्ये सानुबन्धकेत्यादि प्रकृताभिप्रायेण । दादेरितिसूत्रे दादिपद-  
स्यौपदेशिकदादित्ववति लक्षणेति न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १२९ ॥

यदपि नन्वजर्वा बेभिदीतीत्यादौ तत्तद्गणप्रयुक्ता विकरणा  
यङ्लुकि स्युस्तथा यङ्लुकि बेभेदितेत्यादौ 'एकाच' ( ७ । २ । १० )  
इतीणनिषेधः स्यादत आह—

शितपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च ।

यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ १३० ॥

अनुबन्धनिर्देशो द्विधा स्वरूपेण ङित इत्यादिपदेन च । 'हन्ति  
याति वाति' ( ८ । ४ । १७ ) 'सनीवन्त' ( ७ । २ । ४९ ) इति

औपदेशिकेति परिभाषाऽधीत्यर्थः । भाष्यासंमतत्वमाह—इह हीत्यादिना । यत्रास्यै-  
तदिति । यत्रास्यैतद्रूपमनुबन्धयुक्तं तत्र घसंज्ञेत्याद्यर्थः । एव चोपदेश एव 'घसंज्ञादि ।  
प्रयोगे तु स्थानिकद्भावेन तदिति बोध्यम् । तद्ग्रहणम्, औपदेशिकग्रहणम् । भाष्ये न्यूनता  
निराचष्टे—भाष्य इति । शब्दमात्रग्रहणेऽपि स्व रूपमित्यनेन रूपाश्रयणादिति भावः ।  
नन्वेवं दादेरित्यत्र का गतिरत आह—दादेरिति । दीक्षिताद्युक्तप्रकारस्यासागत्यादाह—  
दादीति । इदं च शेखरादौ स्पष्टम् । एतेनाऽऽद्याया दाधा ध्वदाबित्यत्र देङ्घेटोर्ग्रहणा-  
त्प्रणिदयते- प्रणिधयतीति सिद्धिः । फलमिति सीरदेवाद्युक्तमन्त्याऽनित्योपदेशेऽजित्यत्रो-  
पदेशग्रहणादिति भ्रान्तोक्तं चापास्तम् । तदाह—इत्यन्यत्रेति । उद्घोतादावि-  
त्यर्थः ॥ १२९ ॥

अन्यामपि कैयटदीक्षिताद्युक्तां खण्डयति—यदपीति । यङ्लुकरञ्जान्दसत्त्वेऽदोष-  
गणनाद्भाषायामसार्वत्रिकत्वात्तत्र भाष्योक्तलक्ष्याण्याह—अजर्वा इति । आदिना चेच्छि-  
दीतीत्यादिपरिग्रहः । विकरणा इति । श्रमश्शजादय इत्यर्थः । यङ्ङिति । लक्ष्य-  
विशेषणम् । अत एव तथैव दोषान्तरमाह—तथा यङ्ङिति । गणकार्यानित्यत्वेन तत्-  
सुपरिहरमित्याशयः । निषेध इति । उपदेश एकाच्त्वस्य सत्त्वादिति भावः । यदिति ।

१ इ. त्वे तु दोषाणाद्गा° । घ. ° त्वेऽपि माषा° । २ ख °गणाद्गा° । ३ क. ख. इ. °यः ।  
तस्य नि° ।

सूत्रे भरेति । 'दीङो युङ्चि' ( ६ । ४ । ६३ ) 'अनुदात्तङितः' ( १ । ३ । १२ ) 'दिवादिभ्यः श्यन्' ( ३ । १ । ६९ ) 'एकाच उपदेशे' ( ७ । २ । १० ) इत्युदाहरणानि । द्वित्वं 'सनाद्यन्ताः' ( ३ । १ । ३२ ) इति 'भूवादयः' ( १ । ३ । १ ) इति च धातुत्वं च भवत्येव 'गुणो यङ्लुकोः' ( ७ । ४ । ८२ ) इत्यादिभिर्निषेधानित्यत्वकल्पनात् । तेन भङ्भावोऽप्यजर्धा इत्यादौ भवति । अत एव 'श्वीदितः' ( ७ । २ । १४ ) इति सूत्रे कैयटे यत्रैकाज्ग्रहणं किञ्चिदिति पाठः । 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' ( ७ । २ । १० ) इति सूत्रे एकाज्ग्रहणेनैकदेशानुमत्यैषा ज्ञाप्यते । अन्यथापदेशेऽनेकाचामुदात्तत्वस्यैव सत्त्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति ।

तदपि न । भाष्यानुक्तत्वात् । एकाज्ग्रहणस्य वधिव्यावृत्त्यर्थमावश्यकत्वाच्च । न च वधिः स्थान्युपदेश एकाजेवेति वाच्यम् । साक्षादुपदेशसंभवेनैतद्विषये स्थान्युपदेशाग्रहणादुपदेशत्वावच्छेदेनैकाजित्यर्थाच्च । किञ्चित्तरार्थमेकाज्ग्रहणम् । अत एव जागरितवानित्यादावुपदेश उग-

यत्रेत्यर्थेऽव्ययम् । यद्वा यत्, शब्दस्वरूपम् । यत्रेत्यस्य सर्वत्र सन्धः । इत्युदेति । क्रमेणेति भावः । नन्वेव तत्र द्वित्वादिक न स्यादत आह—द्वित्वमिति । सनाद्यन्ता इत्यस्य प्रत्याख्यानादाह—भूवादेति । इति च धातुत्वं चेति पाठः । गुणो यङ्गिति । अन्यथाऽभ्यासाभावेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । आदिना दीङोऽङ्कित इत्यादिपरिग्रहः । निषेधेति । एतत्परिभाषावोच्यनिषेधेत्यर्थः । अनित्यत्वस्य फलान्तरमाह—तेनेति । एतदनित्यत्वेनेत्यर्थः । भ्र्भावोऽप्येति । अपिरुक्तफलादिसमुच्चायकः । अत एव, एतदनित्यत्वादेव । किञ्चिदित्यस्य सर्वत्रान्वयः । तथा च केषाचिदेव तत्राप्रवृत्तिर्न तु सर्वेषामिति भावः । नुमत्या, तद्वारा । अन्यथा, अस्या अभावे । तद्वैयर्थ्यम्, एकाचुपदवैयर्थ्यम् ।

ननु तदनुक्तत्वेऽपि प्राग्वदङ्गीकारोऽत आह—एकाजिति । तस्यादन्तत्वात् । तथा च निर्मूल्यमिति भावः । न चेति । तथा च तेन तस्याव्यावृत्त्या वैयर्थ्येन तस्य ज्ञापकत्व सुस्थमेवेति भावः । साक्षादिति । मुख्यत्वादिति भावः । उपेति । अवच्छेदकावच्छेदेनान्वयस्यौत्सर्गिकत्वाल्लक्ष्यानुरोधाच्च । तथा च तद्व्यावर्त्यो वधिरेवेति न ज्ञापकत्वमिति भावः । तत्र दोषान्तरमाह—किं चेति । उपदेशे, तत्कालिकम् । ननुपदेश-

१ ख. घ ड तदानर्थवयम् १५° । २ ड. 'षालभ्यनि' । ३ घ. ° त्वेऽयप्रतिषिद्धमिति न्यायेन तद° । ४ ड. 'न ज्ञा' ।

न्तत्वमादाय 'श्रुक्ः किति' (७।२।११) इतीणनिषेधो न । तत्रो-  
पदेश इत्यनुवृत्तिश्च स्तीर्णमित्यादाविण्निषेधाद्येत्याकरे स्पष्टम् । न च  
भाष्ये यद्भ्रूलोपे बेभिदितेत्यादाविट्प्रवृत्त्यर्थमुपदेशेऽनुदात्तादेकाचः श्रूय-  
माणादङ्गादित्यर्थं सनीट्प्रतिषेधो वक्तव्यो षिभित्सतीति दोषोपन्या-  
सवद्यद्भ्रूलुकि दोषानुपन्यासेन तत्रेडिष्टः । यद्भ्रूलोप इत्यादि भाष्यं  
नूपक्रमोपसंहारबलेन न यद्भ्रूलुग्विषयम् ।

किंच तस्य तद्विषयकत्वे यद्भ्रूलोपे स्थानिवत्त्वस्येव यद्भ्रूलुक्युपाया-  
प्रदर्शनेन न्यूनतापत्तिरिति वाच्यम् । इहविषये यद्भ्रूलुको लोकेऽनभि-  
धानेन च्छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकत्वेन च तत्र दोषानुपन्यासेनादो-  
षात् । अन्यथैकाज्ग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्योत्तरत्र जागर्त्यर्थमिह  
वध्यर्थमित्युत्तरस्य च भाष्ये निरालम्बनतापत्तेः ।

ग्रहणस्य तत्र नानुवृत्तिरेव मानाभावादिति तत्र न तत्प्रवृत्तिरत आह—तत्रोपेति ।  
श्रुक् इत्यत्रेत्यर्थः । वृत्तिश्चेति । चस्त्वर्थे । अत एव पूर्वमवतरणे यथाकथंचित्पुक्तम् ।  
प्रवृत्त्यर्थमिति । अस्याङ्गीक्रियमाण इति शेषः । दोषानुपेति । यद्भ्रूलुकीट्प्रतिषेधो  
वक्तव्य इति दोषेत्यर्थः । तत्र, यद्भ्रूलुकि । इडिष्ट इति । स च सिद्धान्तार्थे श्लिषा  
शपेति निषेध विनाऽनुपपन्न इतीयमावश्यकतीति भावः । ननु तद्भाष्यं यद्भ्रूलुग्विषयमेवेति  
तत्र दोषोपन्यास एवेति तत्सिद्धयर्थं तदर्थस्यैवाङ्गीकारेण सिद्धान्तार्थाभावेन तदप्राप्त्या  
निषेधानावश्यकत्वमेवेति<sup>१</sup> न तदभावप्रयुक्तभवदिष्टसिद्धिरत आह—यद्भ्रूलोप इति ।  
नूपेति । उपक्रमो लोपपदेन, अग्रे स्थानिवत्त्वेन व्यवयेन समाधानमुपसंहारस्तद्वत्त्वेनेत्यर्थः ।  
न यद्भ्रूलुग्विषयमिति । न तन्मात्रविषयमित्यर्थः ।

ननु तद्विषयत्वमप्युच्यते लोपत्वस्य व्यापकत्वादिति नोपक्रमविरोधो लोपमात्रविषय-  
त्वात्रोपसंहारविरोधोऽप्यत आह—किं चेति । तस्येति । उपक्रमभाष्यस्य तद्विषयक-  
त्वेऽप्यङ्गीकृत इत्यर्थः । पात्तिरिति । तथा च न तद्विषयकत्वमिति प्रागुक्तार्थसिद्धिरिति  
भावः । नन्वेवमपि च्छन्दस्यभिधानमेवेति तत्र का गतिरत आह—छन्देति । तत्र, यद्-  
भ्रूलुकि । दोषानुपेति । दोषानुपन्यासकृतपरिभाषाङ्गीकारापत्तिरूपदोषाभावादित्यर्थः ।  
अत्र बीजमाह—अन्यथैकाजिति । उक्तप्रकारानङ्गीकार इत्यर्थः । तत्र, श्रुक्ः  
कितोत्यत्र । ननु तर्हि तत्रैव कर्तव्यमत आह—इह वेति । यद्भ्रूलुग्व्यावृत्त्यर्थत्वेनोक्त-  
रीत्या साफल्ये प्रश्नादेर्निरालम्बनत्वमिति भावः ।

अ चाऽऽर्धधातुकाक्षिप्तधातोरेकाच इति विशेषणम् । एवं च विभि-  
त्सतीत्यादावुत्तरखण्डस्य धातोरेकाचत्वमस्त्येवोत्तरखण्डेऽस्तित्ववत् ।  
एतच्च ' द्यतेः ' ( ७ । ४ । ९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । एवं च  
प्रकृतभाष्यासंगतिरिति वाच्यम् । आक्षेप आक्षिप्तस्यान्वये च माना-  
भावात् । अङ्गत्वं तु विशिष्ट एवेति ' एकाचो द्वे ' ( ६ । १ । १ )  
इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । निरूपितं च तनादिशेषे शब्देन्दुशेखरे ।

धातुत्वं तूत्तरखण्ड एव । अत एव ' एकाचो बशो भष् झपन्तस्य  
स्थवोः ' ( ८ । २ । ३७ ) इति सूत्रे धातोर्वयवस्यैकाच इति वैयधि-  
करण्येनान्वये गर्धपिसिद्धिः प्रयोजनमुक्तं भाष्ये न तु प्रसिद्धमजर्घा इति ।  
अजर्घा बेभिदीतीत्यादौ श्रद्ध्यनाद्यस्तु चर्करीतं चेत्यस्यादादौ पाठेन

एवं च । तस्य तादृशतद्विशेषणत्वे च । दृष्टान्तासिद्धिं परिहरति—तच्चेति । तत्रा-  
स्तित्वं चेत्यर्थः । स्पष्टमेतत्प्रकृतिग्रहणे यद्भ्रुगन्तस्यापीति परिभाषाखण्डनावसरे मूल एव ।  
ततः किमत आह—एवं चेति । तत्र तत्त्वादिष्णिषेधसिद्धौ चेत्यर्थः । असंगति-  
रिति । एव चैकदेश्युक्तित्वेन नोक्तार्थे साधकत्वमुक्तभाष्यस्येति भावः । आक्षेप इति ।  
फलाभावात् । यथा पानित्वानुपपत्त्याऽनुमीयमानरात्रिभोजनस्य पानित्वोपपत्तिः फल न तथा  
तत्र सूत्रे तदनुमानेनाऽऽर्धधातुकत्वोपपत्तिर्भवति । किं चाऽऽर्धधातुकस्योत्पत्तौ धात्वपेक्षत्वेऽपि  
ज्ञाने तदनुपेक्षत्वादिति भावः । अन्वये चेति । अनतिप्रसङ्गाय वृत्त्युपस्थितस्यैव प्रायेण  
शाब्देऽन्वयप्रतियोगित्वाङ्गीकारादिति भावः । नन्वेवमप्यङ्गस्येत्यस्याधिकारादेकाचोऽङ्गादि-  
त्यर्थेन प्रागुक्तरीत्योत्तरखण्डे तस्य सत्त्वेन विभित्सतीत्यादावदोषेण भाष्यासंगतिरेवात्  
आह—अङ्गत्वं त्विति । द्विप्रयोगो द्विर्वचनमिति सिद्धान्तेनाऽऽद्ये प्रत्ययवि-  
धानावधित्वप्रत्यभिज्ञया तदादिग्रहणसत्त्वेन समुदाय एव तत्त्वम् । निरर्थकेऽप्यङ्गत्वदर्शने-  
नाङ्गसंज्ञायामर्थवत्परिभाषाया अप्रवृत्तेः । यस्मादित्यनेनोद्देश्यतावच्छेदकशब्दानुपूर्वामात्राव-  
च्छिन्नस्यैव ग्रहणाच्च । तदाह—निरूपितं चेति ।

नन्वेव धातुत्वमपि समुदाय एवेत्येव कुतो न समाहितमत आह—धातुत्वं त्विति ।  
अभ्यासस्य नैरर्थक्यात् । इदमपि तत्रैव निरूपितमत्र प्राकप्रतिपादितं च । अत्रान्य-  
द्भाष्यमपि प्रमाणयति—अत एवैकेति । तस्योत्तरखण्डीयत्वादेवेत्यर्थः । भाष्ये, दादे-  
रितिसूत्रस्ये । नन्वेवमजर्घा इत्यादौ विकरणाः कुतो नात आह—अजर्घा इति ।  
पाठेनेति । अस्य बोधितयेति शेषः । चर्करीतमिति यद्भ्रुकः संज्ञासामर्थ्यात्तद्वन्तग्रहणम् ।  
संग्राहकवाक्य चैतन् । तथा चानेन यद्भ्रुगन्तत्वावच्छिन्नस्य तत्त्वं बोध्यते । यदि ते



यद्ग्लुगन्ते गणान्तरप्रयुक्तविकरणस्याप्राप्त्या न भवन्ति । छान्द-  
सत्वादेव कार्यान्तराणामपि च्छन्दसि दृष्टप्रयोगेष्वदृष्टानामभावो बोध्यः ।  
भाषायां तु तादृशानामभाव एव । शितप्शबादिनिर्देशास्तु ' भवतेरः '  
( ७ । ४ । ७३ ) इत्यादिसूत्रस्थतन्निर्देशवन्नार्थसाधका इत्यन्यत्र  
विस्तरः ॥ १३० ॥

ननु जभोऽचि रधेश्च नेत्र्यलिटीत्येव सूत्र्यतां किं द्वी रधिग्रहणेनेत्यत  
आह—

पद्गौरवायोगविभागो गरीयान् ॥ १३१ ॥

प्रतिवाक्यं भिन्नवाक्यार्थबोधकल्पनेन गौरवं स्पष्टमेव । परं तु  
माष्यासंभतेयम् । ' टाडसि ' ( ७ । १ । १२ ) इतिसूत्रस्थभाष्यविरुद्धा  
च । तत्र चेनादेशेकारप्रत्याख्यानं योगविभागेनैव कृतमिति बहवः ॥ १३१ ॥

अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ॥ १३२ ॥

एओडैः औचसूत्रयोर्ध्वनिषा माष्ये ।

स्युस्तर्हि तथा बोधनासगतिसेव । तस्मात्तदन्ताच्छेव । तेन बोध्यत इति भावः । नन्वेव-  
मप्यन्यत्र दोषः स्यादेवात आह—छान्देति । नन्वेवमपि भाषाया स्युरत आह—  
भाषायां त्विति । तादृशानामिति । परिभाषाविषयाणामित्यर्थः । अनेन केषा-  
चित्सत्ता सूचिता । नन्वेव शितबादिनिर्देशानर्थक्यमत आह—शितप्शबेति । भवतेर  
इति । प्रयोगदृष्टानुकरणाच्छित्त्रनिपातनाच्छप् । अत्र लियो निमित्तत्वेन यद्ग्लुकि  
न प्राप्तिरिति तन्निर्देशः साधुत्वद्वाराऽदृष्टार्थ एव यथैवमन्यत्रापीति भावः । तन्निर्देशेति ।  
शबादिनिर्देशेत्यर्थः ॥ १३० ॥

धातुप्रसङ्गात्पदप्रसङ्गाच्चाऽऽह—नन्विति । सूत्र्यता त्रिसूत्री क्रियतामिष्टानुवृ-  
त्तये । क्वक्यमिति । तथा च पद्गौरवापेक्षया प्रतिपत्तिगौरवे प्रकर्षेण योगविभागे-  
न भिन्नवाक्ये गौरवाधिक्यं स्पष्टमेवेति भावः । परं त्विति । तदनुक्तत्वादिति भावः ।  
पूर्ववदाह—टाडसीति । द्विर्तीयचो ह्यर्थे । योगेति । आडि चाऽऽप इत्यत्रेति भावः । एतेन  
प्रतिपदविधानाद्योगविभागो गरीयानिति सीरदेवाद्युक्त परिमाणान्तरमपास्तम् । द्वी रधिग्रहणं  
त्वेकदेशानुवृत्तिबोधकपरिभाषायाः अनित्यत्वज्ञार्पणद्वारा तत्रत्यस्य क्वचिदित्यस्य बोधनार्थ-  
मिति बोध्यम् ॥ १३१ ॥

गौरवप्रसङ्गादाह—अर्धेति । वैयाकरणा अर्धमात्रालाघवेनापि पुत्रोत्सवं मन्यन्ते  
क्रिसुताधिक्रलाघवेनेत्यर्थः । एओडिति । तत्र ह्येव इगित्यस्य प्रत्याख्यानायार्धकारा-

१ क. ड. °वेति न बो° । २ ड. °सिद्धान्तो° । ३ ग. °गेनाति भि° । ४ क. °पत्रार्थ-  
मिति. बोधनद्व° ।

तत्रानेकपदघटितसूत्रे प्रायेण पदलाघवविचार एव न तु मात्रालाघवविचार इति 'ऊकालोऽच्' ( १ । २ । २७ ) 'अपृक्त एकाल्' ( १ । २ । ४१ ) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम् । तत्र हि सूत्रेऽल्यग्रहण-हल्यग्रहणयोर्विशेषविचारे संज्ञायां हल्यग्रहणं 'ण्यक्षत्रिय' ( २ । ४ । ५८ ) इति सूत्रेऽणित्रोरिति वाच्यमिति त्रीणि पदान्यल्यग्रहणे तदेकं स्वादिलोपे हल्यग्रहणं ण्येति सूत्रेऽणित्रोरिति न वाच्यमपृक्तेति वाच्यमिति त्रीण्येव पदानीति नास्ति लाघवकृतो विशेष इत्युक्तम् । 'अचि श्नु' ( ६ । ४ । ७७ ) इति सूत्र इण इत्येव सिद्धे य्वोरिति संमृद्य ग्रहणात्पूर्वणेण्यग्रहणं न । तत्र विभक्तिनिर्देशे संमृद्य ग्रहणे च सार्धास्ति सौ मात्रा इण्यग्रहण इति तिस्रो मात्रा इति लणसूत्रे भाष्योक्तेः ।

बौकारौ यदि स्याता तर्हि तावेव लाघवादयमुपदिशेदित्युक्तम् । ताम्यामुपदिष्टाम्या दीर्घप्लुतयोरपि प्रदेशेषु ग्रहण सिध्यति । नन्वेव मात्रिकयोरेव गुणसज्ञा स्यात्तपरत्वादिति चेन्न । तत्र दीर्घयोरेव स्वरूपेण निर्देशादिति कैयटः । एवमपि तत्र ह्रस्वपाठेऽर्धमात्रमलाघवं भवतीति तदाकृतम् ।

मात्रापदलाघवयोर्व्यवस्थामाह—तत्रेति । तयोर्मध्य इत्यर्थः । एवव्यवच्छेद्यमाह—न त्विति । आदिना प्रत्ययस्य लुक्लुलुप एओडै औजित्यादिसूत्रपरिग्रहः । तत्रान्यध्वनितमुपपादयति—तत्र हीति । अपृक्त एकालिति सूत्रे हीत्यर्थः । उक्तमित्यत्रान्वयः । वाच्यमिति त्रीणीति पाठः । अवान्तरपदत्वाभिप्रायमिदम् । अल्यग्रहण इति । अस्य सज्ञायर्धमित्यादिः । तदेकम्, अल्यग्रहणमेकम् । त्रीण्येवेति । अपृक्तशब्दस्य सज्ञाशब्दत्वान्नावान्तरपदभेद इति भावः । ऊकालोऽजित्यत्र ह्रस्वसज्ञावचनसामर्थ्यादीर्घप्लुतयोः पूर्वसज्ञा न भविष्यतीति समाधान समर्थयितु यावदज्यग्रहणं तावद्ध्रस्वग्रहणमिति सज्ञाया अभावे त्रिह्रस्वप्रदेशेष्वेव इमिति षड्यग्रहणानि सज्ञाकरणे पुनरष्टावित्युक्तम् । प्रत्ययस्य लुगिति सूत्रे स एषोऽनन्यार्थः कर्त्तीयपरशब्दयोर्विशिष्टनिर्देशः कर्त्तव्यः प्रत्ययग्रहण वा कर्त्तव्यमित्युक्तम् । ए ओडित्यादौ वर्णकदेशानां वर्णग्रहणेन ग्रहणपक्षे दीर्घे प्राप्तह्रस्वविध्यभावाय दीर्घादिति तुग्विधायक ज्ञापकमित्युक्तम् । अन्यथा ह्रस्वस्येत्यत्राच इत्येव सिद्धे ह्रस्वग्रहणसामर्थ्यादेवं तुङ्नेति ज्ञापकपर्यन्तधावनासगतिः स्पष्टैवेति बोध्यमिति भावः । प्रायेणेत्युक्तस्य फलमाह—अचीति । संमृद्येति । आदेशेन तौ निवर्त्येत्यर्थः । ग्रहण नेति पाठः । तदेवोपपादयति—तत्रेति । अचीति सूत्र इत्यर्थः । तयोर्मध्य इति वाऽर्थः । ग्रहणे चेति पाठः । इति तिस्र इति । पदच्छेदाभिप्रायेण-

तथा 'ओतः श्यनि' (७।३।७१) इति सूत्रे शितीति वक्तव्यं तत्राच-  
मप्यर्थः 'ष्ठिवुकुमु' (७।३।७५) इति सूत्रे शितीति न कर्तव्यं  
भवतीति माष्ये न केवलं मात्रालाघवं यावदयमप्यर्थ इति कैयटोक्तेः  
प्रायेणेति शिवम् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदुपाध्यायोपनामकशिवमहसुतसतीगर्भजनागेश-  
महकृतः परिभाषेन्दुशेखरः समाप्तः ।

दम् । अत एवोक्त विभक्तिनिर्देश इति । सहिताया तु सार्धमात्राद्वयमेवेति बोध्यम् ।  
तथेति । तथेति भाष्य इति कैयटोक्तेरित्यन्वयः । मप्यर्थः, प्रयोजनम् । यावदिति ।  
पदगौरवलाघवमपीत्यर्थः । ऋलृकसूत्रभाष्यं तु पदलाघवपक्षेणापि सुयोजमिति नात्र तदु-  
क्तम् । एवं ज्ञानोर्जेत्यादिसूत्रभाष्यमप्यत्र गमकं बोध्यमित्यन्यत्र विस्तर इति सर्वमनव-  
ग्रामिति शिवम् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमत्पामगुण्डोपाख्यमहादेवसुतवेणीगर्भजवैद्यनाथमहकृतपरिभाषेन्दु-  
शेखरकाशिका परिपूर्णा ।

**चसंज्ञकगदाटीकासमेतपरिभाषेन्दुशेखर-  
पुस्तकस्थपाठान्तराणि ।**

—.\*:—

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | मूलम् ।                    | पाठ ।                                                                                                                                                                      |
|-----------|-----------|----------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| १         | ९         | गङ्गाऽम्बु°                | तमम्बु°                                                                                                                                                                    |
| ३         | १४        | ‘तु सज्ञापकादिति           | ‘तु सा सज्ञापकादिनेति                                                                                                                                                      |
| ३         | २८        | ‘व प्लु°                   | ‘व वैकल्पिकत्वात्प्लुता                                                                                                                                                    |
| ६         | १३        | ‘तिदेशस्य                  | ‘तिदेशस्य                                                                                                                                                                  |
| १८        | १८        | तु त°                      | तु न त°                                                                                                                                                                    |
| २४        | २१        | विच्यतु°                   | विच्यतु°                                                                                                                                                                   |
| २९        | १९        | ‘कत्व°                     | ‘क विधत्व°                                                                                                                                                                 |
| ३०        | १९        | ‘हे स्था°                  | ‘हेण स्था°                                                                                                                                                                 |
| ३२        | २५        | ‘र्थे चाय°                 | ‘र्थेऽव्यय°                                                                                                                                                                |
| ३२        | २७        | ‘ति । गु°                  | ‘ति । प्रवृत्तिकगु°                                                                                                                                                        |
| ३४        | ११        | ‘प्रातिपदिककार्यव्य°       | प्रागुक्तपदकार्यद्वयव्य°                                                                                                                                                   |
| ३५        | २१        | ‘यि । द्वि°                | ‘यि । तेन न्यायेन द्वि°                                                                                                                                                    |
| ३९        | १८        | ‘योगेति°                   | ‘योगानिर्दिष्टेति°                                                                                                                                                         |
| ४०        | २३        | ‘न तत्र कृतेऽग्रहणाश्रयणेन | ‘न आर्धधातुकेति सूत्र इट्शब्दस्य,<br>करणेन                                                                                                                                 |
| ४३        | १५        | चानणि                      | चाणि                                                                                                                                                                       |
| ५७        | २८        | ‘त्वेन ततो भेदाभावाद्°     | ‘त्वेनान्तोदात्ताभावाद्°                                                                                                                                                   |
| ८२        | २०        | ‘त्र कृ°                   | ‘त्र गुणे कृ°                                                                                                                                                              |
| ८५        | २८        | ‘यन्तोपा°                  | ‘यन्तशब्दोपा°                                                                                                                                                              |
| १०३       |           | ‘व ग°                      | ‘वग°                                                                                                                                                                       |
| ११२       | १८        | ‘न्तत°                     | ‘न्त इव त°                                                                                                                                                                 |
| १२६       | २०        | नाङ्ग                      | ‘नान्तरङ्ग°                                                                                                                                                                |
| १२७       | २९        | ‘त्राय् कु°                | ‘त्राय् कु°                                                                                                                                                                |
| १४१       | २०        | ‘तीते स                    | ‘तीतेस्तत्र तेभ्य स                                                                                                                                                        |
| १५७       | १७        | ‘न तत्र तथो°               | ‘न तत्तथो°                                                                                                                                                                 |
| १६२       | ८         | ‘न्येति । अ°               | ‘न्येति । प्रातिपदिकत्वात्मकसामान्यधर्म-<br>प्रकारोपस्थितिजनकशब्दोच्चारण इत्यर्थः ।<br>विशेषरूपेणेत्यस्य प्रातिपदिकत्वव्याप्यध-<br>र्मविशिष्टबोधकशब्दोच्चारण इत्यर्थः । अ° |
| १७२       | २७        | ‘विधौ तथा स्या°            | ‘विधावित्यर्थं स्म°                                                                                                                                                        |
| १७५       | २०        | ‘था क विना°                | ‘था कविना°                                                                                                                                                                 |

## २ असंज्ञकगदाटीकासमेतपरिभाषेन्दुशेखरपुस्तकस्थपाठान्तराणि ।

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | मूलम् ।        | पाठ ।                                   |
|-----------|-----------|----------------|-----------------------------------------|
| १९७       | २९        | 'दङ्गी°        | 'दनङ्गी°                                |
| १९८       | १०        | तत्र स°        | तत्रास°                                 |
| २००       | १४        | 'म् । त°       | 'म् । सानाभावात् । त°                   |
| २०७       | २६        | 'म् १०५ प्राब° | 'म् १०५ प्राधान्येन तात्पर्यविषयप्राक्° |

समाप्तानि पाठान्तराणि ।

